बुद्ध पूर्व का भारतीय इतिहास

अर्थात

भारतवर्ष का इतिहास—प्रथम भाग
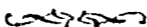
वैदिक पूर्व से आदिम कलि काल तक

[२७५० बी० सी० से ५६३ बी० सी० पर्यन्त]

लेखक

रावराजा डाक्टर श्यामविहारी मिश्र रायबहादुर
डी० लिट० तथा
रायबहादुर पण्डित शुकदेवविहारी मिश्र
} मिश्र बन्धु

प्रकाशक

हिन्दी साहित्य सम्मेलन

प्रयाग

तृतीय संस्करण
१००० प्रतियाँ

संवत् १९९६

मूल्य २॥)

वक्तव्य

इस भारतीय इतिहास को हम बड़ी प्रसन्नता के साथ प्रिय पाठकों की सेवा में उपस्थित करते हैं। इस ग्रन्थ के पूरे विषय को तीन भागों में विभक्त किया गया है, जिन में से पहला अब जनता के सम्मुख है। इसमें हमारे प्राचीन इतिहास का वर्णन है जिसे बहुतेरे लोग यदि बिलकुल नहीं तो मुख्यत: कहानी मात्र मानते हैं। हमें आशा है कि इधर की खोज के सविधि अवलोकन से आलोचकों को विश्वास हो जायगा कि हमारे प्राचीन संस्कृत ग्रन्थों में ऐसी प्रचुर सामग्री वर्तमान है, जिसकी सहायता से प्राचीन भारत का सच्चा और क्रमबद्ध इतिहास लिखा जा सकता है।

इस इतिहास का पहला खण्ड, अर्थात यह जिल्द प्राय: २२ शताब्दियों पर विस्तृत है (बी० सी० २७५० से बी० सी० ५६३ तक)। दूसरा खण्ड बौद्ध काल (बी० सी० ५६३) से चल कर हिन्दू साम्राज्य के अन्त पर समाप्त होगा और तीसरे में मुसलिम तथा अँगरेजी समयों का हाल इस काल तक पाया जायगा। स्मरण रहे कि हिन्दू काल ४००० वर्षों से भी बड़ा है, पर मुसलिम और बृटिशकाल पूरे १००० वर्षों के भी नहीं हैं। द्वितीय समय का अन्त काल विविध प्रान्तों के लिये भिन्न है।

आशा करते हैं कि हमारे इस दीन परिश्रम से कदाचित् विद्वानों की प्रवृत्ति भारतीय प्राचीन इतिहास की ओर कुछ झुक जाय, क्योंकि इस पर श्रम करने से वास्तव में अलौकिक आनन्द आता है। इस ग्रन्थ के विषय तथा आधारों के विवरण भूमिका और ग्रन्थ में मिलेंगे।

लखनऊ
१९९३

श्यामविहारी मिश्र,
शुकदेव विहारी मिश्र, } मिश्र बन्धु

भूमिका

हमारे प्राचीन इतिहास के दो प्रधान और एक दूसरे से पृथक् साधन हैं, अर्थात् वैदिक साहित्य और पुराण। वैदिक साहित्य में संहिता (ऋक्, यजुः, साम और अथर्व), ब्राह्मण, उपनिषत्, आरण्यक, और सूत्र ग्रन्थों की गणना है। मुख्यतया ये सब धार्मिक साहित्य में माने जा सकते हैं और इनमें ब्राह्मण लेखकों का प्राधान्य है तथा विषय बहुत करके धार्मिक हैं। पुराणों में लौकिक साहित्य की प्रधानता है और आदि में इसका मूल प्रधानतया अब्राह्मण लेखकों और सहायकों से भी सम्बन्ध रखता है। वेदों में सूतों, मागधों, चारणों आदि के कथन आये हैं। जिस प्रकार ब्राह्मणों ने वैदिक साहित्य को स्मरण-शक्ति द्वारा सुरक्षित रक्खा, उसी प्रकार सूतों आदि ने (स्मरण शक्ति द्वारा) लौकिक साहित्य एवं राजवंशों के मूलों की रक्षा की। पुरोहितों आदि ने भी ऐसा ही किया। जब भगवान वेदव्यास ने प्राचीन साहित्य और सामग्री को इतना बढ़ा हुआ पाया कि बिना घरानों के विषय-विभाग किये हुये उसके नष्ट हो जाने का भय देख पड़ा, उस काल उन्होंने स्वयं वेदों का सम्पादन करके उनके चार भाग किये, और एक एक वेद को एक एक प्रधान शिष्य परम्परा में बांट दिया। उसी समय उन्होंने रक्षणार्थ और वर्द्धनार्थ अन्य विषयों को अन्य शिष्यों में बांटा। इस प्रकार स्वयं एक पुराण रचकर आपने इतिहास का विषय लोमहर्षण सूत को दिया। इस के दृढ़ आधारों का विवरण ग्रन्थ में मिलेगा। वैदिक साहित्य में घटनाओं के कथनों में अत्युक्ति का प्रयोग पुराणों की अपेक्षा बहुत ही कम है। मेगारथनीज कहता है कि उसने महाराज चन्द्रगुप्त के यहाँ प्रायः ६००० बी० सी० से चलने वाले राजाओं के वंशवृक्ष देखे थे। इन बातों से प्रकट है कि हमारा प्राचीन ऐतिहासिक विभाग अत्युक्तिपूर्ण तो है किन्तु निर्मूल नहीं।

इतिहास प्राचीनों के केवल गुणगानार्थ नहीं लिखा जाता वरन् हम लोगों का यह भविष्य के लिये सबसे बड़ा पथ-प्रदर्शक है। हमारे तथा पूर्व पुरुषों के सभी अनुभव बहुत करके इतिहास द्वारा ही सुर-

चित रह कर मनुष्य जाति के विचारों को उन्नत बनाते हैं। बिना प्राचीन कर्म समुदाय तथा उसके फलों को जाने हुए मनुष्य भविष्य के लिये नितांत अनभिज्ञ रहेगा। इसलिये इतिहास का अस्तित्व मानव जाति के लिये परमोपयोगी है।

इतिहास की आवश्यकता राजनैतिक, सामाजिक तथा धार्मिक विषयों ही के लिये नहीं है वरन् सभी बातों की उन्नति-सम्बन्धी अभिज्ञता के लिये तद्विषयक ऐतिहासिक ज्ञान की आवश्यकता है। फिर भी केवल "इतिहास" कहने से उपर्युक्त तीनों विषयों ही का कथन माना जाता है, विशेषतया राजनीति का। हमने इस इतिहास में इन्हीं तीनों विषयों की प्रधानता रक्खी है। इनका प्राचीनकालिक ज्ञान बहुत करके भारतीय साहित्य से होता है। इस लिये इन विषयों के साथ साहित्योन्नति-सम्बन्धी भी कुछ कथन कर दिये गये हैं। हमारे ऋषिगण की प्राचीन रचनायें धर्म से ऐसी मिली हुई हैं कि बहुत करके ये दोनों एक ही हैं। अतः इनमें से किसी एक का भी पूर्ण वर्णन करने से वह कथन दोनों के सम्बन्ध में हो जायगा। राजनैतिक वर्णन धार्मिक और सामाजिक विषयों से पृथक् किया जा सकता है। हमने इस भारतीय इतिहास में धार्मिक तथा साहित्यिक वर्णन राजनैतिक से पृथक् अध्यायों में किये हैं। सामाजिक कथन जहाँ राजनैतिक से अधिक सम्बन्ध रखते थे वहाँ वे राजनैतिक अध्यायों में आ गये हैं और जो सामाजिक विषय धार्मिक विवरणों से मिलते हुए देख पड़े, उनका वर्णन धार्मिक अध्यायों में हुआ है।

शुद्ध इतिहास लिखने के लिये गुण-दोष दोनों का उचित कथन होना चाहिये, क्योंकि केवल गुण-कथन से वह अधूरा एवं भ्रमोत्पादक हो जायगा, और ज्ञान-वर्द्धन के स्थान पर उसका संकुचन करेगा। प्रत्येक मिथ्या कथन हमारे ज्ञान को मिथ्या बनाने की ओर जाता है और लोगों में अंध-विश्वास की टेव उत्पन्न कर देता है। हमारे भारतवर्ष में बहुत काल से प्राचीनता का बहुत बड़ा मान होता आया है। इसलिए अपने पूर्व पुरुषों की वास्तविक भूलों तक का कथन हमारे यहाँ अप्रयुक्त समझा जाता रहा है। वीर-पूजन के साथ यहाँ पूर्व-पुरुष-पूजन भी चला आया है। यह गुण भारत, चीन, जापान आदि

सभी पूर्वी देशों में पाया जाता है। इस ग्रन्थ के लेखक भी इस विषय पर भक्ति रखते हैं और श्राद्ध के विषय पर भी उन्हें श्रद्धा है। फिर भी सत्य से बढ़कर कोई धर्म नहीं है। जब किसी विषय विशेष का वर्णन ऐतिहासिक दृष्टि से किया जावे तब लेखक को वर्ण्य विषय का यथावत् रूप दिखलाना पड़ेगा, चाहे उसमें उसकी इच्छा के प्रतिकूल बहुत से दोष ही क्यों न आ जावें। जब तक ऐसा वर्णन न होगा तब तक ग्रन्थ इतिहास कहलाने की पात्रता न रक्खेगा।

पूर्वज-पूजन के विचारों ने यहाँ पौराणिक समय में विशेष बल पाया। इसीलिए उस काल का साहित्य न केवल प्राचीन छिद्रों का गोपन करता है, वरन् अत्युक्तिपूर्ण कथनों की भरमार करके माहात्म्य बढ़ाने का प्रयत्न बहुधा कहीं भी नहीं छोड़ता। फल बिलकुल विपरीत हुआ। जिन लोगों का माहात्म्य बढ़ाने को पौराणिक ऐतिहासिकों ने दोष-गोपन और अत्युक्तिपूर्ण कथन किये, उन्हीं लोगों के अस्तित्व पर भी सभ्य संसार को आज संदेह हो रहा है। यह संदेह इतिहासाभाव से नहीं है, वरन ऐतिहासिकों की अनुचित भक्ति के कारण ही आज यह बुरा दिन हम लोगों के सामने उपस्थित हुआ है कि रामचन्द्र, युधिष्ठिर आदि महापुरुषों को न केवल बहुतेरे पाश्चात्य ऐतिहासिक, वरन् कुछ भारतीय लेखक भी कल्पित पुरुष मात्र मानते हैं।

रावण के दस शिर, तथा नृसिंह का साथ ही साथ मनुष्य और सिंह होना, जनमेजय का सारे संसार के सर्पों को मंत्रों से पकड़ बुलाकर अग्निकुण्ड में डालना, महावीर का शतयोजन समुद्र कूद जाना तथा द्रोणाचल पर्वत उठा लेना, प्रियव्रत द्वारा नौ दिनों तक रात ही न होने देना, किसी का दस हज़ार वर्ष जीना, वानरों, रीछों, यहां तक कि साँपों का भी मनुष्यों की भाँति बातचीत करना और विज्ञान के गूढ़ तत्त्वों का हल करना तथा उनके नर-मादाओं का मनुष्यों से विवाह तक होना (यथा जाम्बवन्ती और उलूपी), सूर्य या हवा का मानुषी स्त्रियों से पुत्र उत्पन्न करना (यथा कर्ण और भीम), सुरसा साँपिन का १०० योजन (८०० मील) मुँह फैला देना इत्यादि के कथन अनर्गल हैं ही। वेदादि पूज्य ग्रन्थों में इनका कहीं पता भी नहीं है। वेदों, ब्राह्मणों, सूत्रों, तथा पुराणों में पुराण ही अत्युक्ति पूर्ण हैं।

शेष ग्रन्थों में ऐसे प्रमत्त कथन नहीं पाये जाते और उनमें असंभव घटनाओं का अभाव सा है, किन्तु प्राचीन साहित्य में पुराण ही सब से नवीन हैं और इन्हीं का चलन देश में अधिक है। इसीलिये अधीर लोगों की दृष्टि में हमारा पूरा प्राचीन काल प्रमत्त इतिहास की कोटि से बाहर निकल जाता है।

इस विषय पर परिश्रम करनेवाले पर एक ओर पगड़बाज़ पण्डित तो इसलिये बिगड़ेंगे कि उसने कुम्भकर्ण की मूँछ को एक योजन से तिल भर भी कम क्यों माना, और दूसरी ओर पाश्चात्य शिक्षा-गृहीत भारतवासी बिना मुसकराये न रहेंगे और यही कहेंगे कि इस पोपलीला को इतिहास के सुन्दर वस्त्र पहिनाने का प्रयत्न सर्वथा व्यर्थ और तिर-स्करणीय है। उनके विचार से ऐसे विषय पर परिश्रम करनेवाला मनुष्य अपने समय को नष्ट करता है। अब पंडितों का विचार है कि वेदों, ब्राह्मणों, सूत्रों और पुराणों को ध्यानपूर्वक पढ़कर अथच माहात्म्य-सम्बन्धी अत्युक्तियों को सहज ही में अलग कर, हमारे प्राचीन ग्रन्थों एवं अन्य ऐतिहासिक आधारों से सच्चा बुद्धि-ग्राह्य इति-हास निकल सकता है।

इस विषय पर इन दिनों अँगरेज़ी में तीन महत्तायुक्त ग्रन्थ निकल चुके हैं, जिनके लेखक पार्जिटर महोदय, डाक्टर राय चौधरी, तथा डाक्टर सीतानाथ प्रधान हैं। इन तीनों महाशयों ने हमारे वैदिक और लौकिक साहित्य तथा इतर आधारों का खासा मथन करके अपने साधार विवरणों में सिकन्दर पूर्व भारतीय इतिहास का पुण्य कथन किया है। इनमें से पार्जिटर ने तो पूरा समय लिया है, किन्तु प्रधान ने रामचन्द्र से महाभारतीय युद्ध तक का विवरण उठाकर उसे खूब दृढ़ कर दिया है, अथच राय चौधरी ने महाभारतीय युद्ध से गुप्त काल तक का इतिहास लेकर उसे बुद्ध काल पर्यन्त बहुत दृढ़ बनाया है। सिकन्दर से इधर का इतिहास आपने बहुत संक्षेप में कहा है किन्तु वह इतर अनेक ग्रन्थों में विस्तार पूर्वक मिलता है। फल यह है कि रामचन्द्र से गौतम बुद्ध तक के समय का इतिहास इन दोनों लेखकों के द्वारा बहुत कुछ पुष्ट हो गया है। ऐसे प्राचीन विषय पर मतभेद बना ही रहेगा, क्योंकि अनेकानेक आधारों तथा अर्थों के सहारे नवीन

कथन होते ही रहेंगे, किन्तु प्रधान और राय चौधरी के परिश्रमों से रामचन्द्र से इधर वाला सन्दिग्ध इतिहास बहुत कुछ दृढ़ हो गया है। इन दोनों महाशयों ने अपने कथनों के आधारों को प्रचुरता पूर्वक लिख दिया है। पार्जिटर महोदय ने भी आधार उसी प्रचुरता से लिखे हैं, किन्तु उन्होंने अयोध्या के मानव कुल की वंशावली में जो प्रायः २६ नाम पौराणिक सम्पादकों की भूल से रामचन्द्र के पूर्व या पश्चात् वाली बिरादरी की नामावली से उठकर पूर्वपुरुषों की गणना में आ गये हैं, उन्हें अलग नहीं कर पाया, वरन इन २६ नामों के इस वंशावली में अनुचित प्रकारेण बढ़ जाने से सारी सम सामयिक ऐल वंशावलियों को अधूरी मानकर उनके पूर्व पुरुषों की दस बारह नामावलियों से चौबीस पचीस नाम छूटे हुये निराधार समझा। इस कारण से उनके सम सामयिक कथनों में स्वभावशः बहुत से भ्रम पड़ गये हैं। उन्हें इसी कारण से अनेकानेक वशिष्ठों और विश्वामित्रों के अस्तित्व की निराधार कल्पना करनी पड़ी है। इसलिये यद्यपि उन्होंने वंशावलियाँ वैवस्वत मनु से अन्त पर्य्यन्त दी हैं, तो भी वे स्थान स्थान पर भ्रमात्मक हैं।

इन सब बातों पर ध्यान देने से निश्चय होता है कि बुद्ध से रामचन्द्र तक के समय की नामावलियाँ तो दृढ़ हैं, किन्तु वैवस्वत मनु से रामचन्द्र तक के समय वाले वंश वृक्षों पर अब तक उतनी दृढ़ता नहीं आई है। इसलिये हमें वंशावलियों के इस भाग पर विशेष छान-बीन करनी पड़ी है। वैवस्वत मनु से पूर्व वाले जो छै और मन्वन्तर हैं, उनमें से स्वायम्भुव मन्वन्तर की वंशावली तो प्रायः सभी पुराणों में है, किन्तु इतर पांचों मनुओं में से चार के वंश मात्र ज्ञात हैं तथा चाक्षुप मनु का वश वृक्ष यद्यपि दिया हुआ है, तथापि है वह अधूरा। यह पुराणों से प्रकट है कि ये पांचों मनु स्वायम्भुव मनु के ही वंशधर थे। इन छवों मन्वन्तरों का पार्जिटर महोदय ने न तो विवरण लिखा है, न वंश वृक्ष। प्रधान और राय चौधरी के विषय रामचन्द्र से पहले जाते ही नहीं, सो उनके द्वारा इन मन्वन्तर कालों का कथन न होना स्वाभाविक ही है। हमने मन्वन्तरों के समयों का भी विवरण, जहाँ तक पुराणों में मिलता है वहां तक दे ही दिया है। इस काल को

अनिश्चित समझकर छोड़ देना अनुचित है, क्योंकि जिन पौराणिक और वैदिक आधारों पर इतर कालों का इतिहास दृढ़ किया गया है, वही दोनों आधार इन मन्वन्तर कालों का भी कथन करते ही हैं।

हमारे विवरण में यह प्राचीन काल चार भागों में विभक्त है, अर्थात् सत्ययुग या मन्वन्तर काल, त्रेता या मनु-रामचन्द्र काल, द्वापर या राम-युधिष्ठिर काल, और आदिम कलिकाल या युधिष्ठिर-बुद्ध काल। ऊपर के तीनों आधारों द्वारा बुद्ध से द्वापरान्त तक का इतिहास निर्णीत है, तथा सत्ययुग और त्रेतावाले पर हमें अधिक परिश्रम करना पड़ा है, क्योंकि सत्ययुग का हाल तो इधर किसी ने कहा ही नहीं, और त्रेता के सम्बन्ध में उपर्युक्त २६ पुश्तों के घट जाने से पार्जिटर कृत समकालीनताओं के कथन बिगड़ गये हैं। आशा है कि पाठक महाशय इन २६ पुश्तों सम्बन्धी कथनों एवं समकालीनताओं के विवरणों पर विशेष ध्यान देंगे। इन २६ नामों के मुख्य वंशावली से अलग करने का सूत्रपात प्रधान और राय चौधरी में प्रस्तुत है, केवल अन्य विषयों के विवरण लिखने के कारण उन्होंने इस विषय पर विशेष कथन नहीं किया है। फिर भी प्रधान महाशय के ग्रन्थ में इसका कुछ वर्णन है भी। इन २६ नामों को हमने दक्षिण कोशल, हरिश्चन्द्र और सगर सम्बन्धी राजकुलों में विभक्त किया है। इस विभाजन के कारण ग्रन्थ में यथास्थान मिलेंगे। इसके मान लेने से सारी पौराणिक समकालीनताओं का सामंजस्य बैठ जाता है। वंशावलियों के लिखने तथा आधारों के खोजने में हम को इन तीनों ग्रन्थ-रत्नों से बहुत कुछ सहायता मिली है।

विनीत

लखनऊ
सं० १९९३

मिश्र बन्धु

विषय सूची

पृष्ठ १६२ तथा १६९-७१ Pargiter, Dr. Roy Chaudhri,
Dr. Pradhan.

पृष्ठ २८ तथा ७२ स्वायम्भुव मनु—प्रियव्रत — २७ विपज्ज्योति

" ७३-९ स्वारोचिष, उत्तम, तामस और रैवत
" ७९ चाक्षुष मनु नं० ३६ — ४५ पृथु
" ३० हरिश्चन्द्र
" ३१ सगर
" ३७ सुदास
" ४१ विश्वामित्र, कान्यकुब्ज काशी शाखा
" ५१ मोहंजोदड़ो, हड़प्पा
" ७२ स्वायम्भुव मन्वन्तर
" ११३-६ वेदों का समय
" १६१ समय निरूपण
" १६३ राम के समय का राज चक्र
" १६७ द्वापर का राजचक्र
" १८३ मनुरामचन्द्र काल
" १९५ हरिश्चन्द्र वंश
" २०० सगर वंश
" २०२ दक्षिण कोशल वंश
} तीनों पर विचार पृष्ठ २०३
" २०७ सूर्य वंशी वैदिक References
" २१० पौरव वंश
" २२८ यदु वंश
" २४४ त्रेतायुग का सम्मिलित विवरण
" २४८ References
" २५३ भगवान रामचन्द्र
" २७६ द्वापर पूर्वार्द्ध
" ३५३ आदिम कलिकाल
" ३७० सोलह रियासतें
" ४८२ प्रजातन्त्र रियासतें

भारतवर्ष का इतिहास

पहला अध्याय

भूगोल एवं अन्य जानने योग्य बातें ।

भारतवर्ष एशिया महाद्वीप के तीन दाक्षिणात्य प्रायद्वीपों में से एक है। इसका क्षेत्रफल १८,०२,६२९ वर्गमील है और १९३१ में इसकी जन-संख्या बर्मा छोड़ कर ३३,८३,४०,९०७ थी। उत्तर से दक्षिण तक इसकी बड़ी से बड़ी लम्बाई प्राय: १९०० मील है और अधिक से अधिक चौड़ाई भी बहुत करके इतनी ही है। इसके उत्तर में हिमाचल नामक भारी पहाड़ है, दक्षिण में हिन्द महासागर, पूरब में बर्मा और बङ्गाल की खाड़ी, तथा पश्चिम में सफ़ेद कोह, सुलेमान पहाड़, बलोचिस्तान एवं अरब का समुद्र। हिमालय पहाड़ प्राय: १,५०० मील लम्बा और २०० मील चौड़ा है। इसकी ऊँचाई बहुधा २०,००० फ़ीट के लगभग है और कहीं कहीं इससे भी अधिक है यहाँ तक कि ऊँची से ऊँची चोटी गौरीशंकर २९,००२ फ़ीट ऊँची है। इसकी अन्य ऊँची चोटियों के पहाड़ किंचिंचंगा, धौलागिरि, नन्दादेवी और नंगा पर्वत कहलाते हैं। इस पहाड़ में कई देश बसे हैं जिनमें कश्मीर, गढ़वाल, तिब्बत, नैपाल, भूटान और शिकम की मुख्यता है। तिब्बत का सम्बन्ध प्राचीनकाल से भारत से न रहकर चीन से रहा है और शेष उपरोक्त पार्वतीय देश भारत से सम्बद्ध रहे आये हैं। हिमाचल की बृहदंश लम्बाई बर्फ़ से ढकी रहती है। इसीलिये इसका नाम हिमालय पड़ा। इसका जल-वायु पाश्चात्य देशों के समान ठंढा एवं स्वास्थ्यकर है। यहाँ के रहने वाले भारतीय शेष प्रांतों के निवासियों से गोरे भी हैं। यहाँ केसर, मृगमद, पश्मीने आदि का अच्छा व्यापार होता है।

भारत में हिमालय के अतिरिक्त विन्ध्याचल, पूर्वी घाट, पश्चिमी घाट, नीलगिरि आदि पहाड़ हैं। हिमाचल पर एक छोटा सा ज्वालामुखी भी है और सीताकुण्ड आदि कुछ गरम जल के सोते हैं। भारत में नदियाँ बड़ी और लम्बी हैं। इनमें सिन्धु, सतलज, व्यास, रावी, चनाब, झेलम, सरस्वती, गंगा, जमुना, सरजू, गोमती, गण्डक, घसान, चम्बल, केन, सोन, ब्रह्मपुत्र, महानदी, गोदावरी, कृष्णा, कावेरी, नर्मदा और ताप्ती की मुख्यता है। भारतीय नदियों में गंगा, सिन्धु, सरस्वती, यमुना, गोदावरी, नर्मदा, कावेरी, सरयू, गोमती, चर्मण्वती (चंबल), क्षिप्रा, वेत्रवती, महानदी और गण्डकी विशेष पुनीत समझी जाती हैं।

भारत के इस समय दो मुख्य भाग हैं अर्थात् अंग्रेजी-राज्य और देशी रियासतें। बर्मा अब भारत का भाग नहीं है। देशी रियासतें भी अङ्गरेजी रक्षा में हैं किन्तु नैपाल, भूटान और तिब्बत स्वतन्त्र हैं। अँगरेजी सरकार द्वारा भारतीय शासन का भार भारत सचिव को सौंपा गया है, जिनका उत्तरदायित्व अँगरेजी पार्लीमेंट को है जिसके हाथ में उनकी बहाली तथा बर्खास्तगी है। इन्हीं की सलाह से ब्रिटेन के बादशाह भारत का शासन करते हैं। भारत में सम्राट् के प्रतिनिधि स्वरूप एक वाइसराय नियुक्त रहते हैं जिन्हें बड़े लाट कहते हैं। एक वाइसराय प्रायः पांच वर्ष तक रहता है। उनकी दो सभायें हैं। बड़े लाट का एक मन्त्रिमंडल भी है। आईन इन्हीं सभाओं की सम्मति से बनता है और और भी कई बातों में इन्हें मुख्य मुख्य अधिकार प्राप्त हैं। अँगरेजी भारत में इस काल १६ प्रांत हैं, अर्थात् मद्रास, बम्बई, बङ्गाल, युक्तप्रांत, पञ्जाब, बिहार, मध्यदेश व बरार, आसाम, वायव्य सीमाप्रान्त, सिंध, उड़ीसा, अजमेर-मेरवाड़ा, कुर्ग, बलोचिस्तान, दिल्ली और अंडमन नीकोबार टापू। उपर्युक्त प्रथम ११ प्रान्तों के शासक एक एक गवर्नर हैं। शेष छोटे छोटे प्रान्तों का पृथक प्रबन्ध है। प्रत्येक प्रान्त में कई ज़िले हैं जिनके शासक ज़िला अफ़सर कहलाते हैं। सारे ब्रिटिश भारत में प्रायः २६७ ज़िले हैं। प्रति गवर्नर के यहाँ भी एक सभा तथा मन्त्रिमण्डल है।

देशी भारत में प्रायः ७०० रियासतें हैं जिनमें हैदराबाद, बड़ौदा, मैसूर, ग्वालियर, कश्मीर, उदयपुर, ट्रावंकोर, इन्दौर, जयपुर, पटियाला, कोल्हापुर, जोधपुर, भरतपुर, भूपाल, भाऊनगर, अलवर, रीवां, आदि की प्रधानता है। इन रियासतों को अन्तरंग शासन में बहुत करके स्वतंत्रता प्राप्त है किन्तु ये बाहरी रियासतों से सन्धि विग्रह आदि नहीं कर सकतीं।

मुख्य प्रान्तों एवं रियासतों का क्षेत्रफल तथा सन् १९३१ की जनसंख्या नीचे दी जाती हैः—

नाम प्रान्त या रियासत	रकबा वर्गमीलों में	सन् १९३१ की जनसंख्या
बङ्गाल ...	७८.९९९	८,१७,१३७६९
बिहार उड़ीसा ...	८३, १८१	३,७६,७६,५७६
बंबई सिंध ...	१,२३,०६४	२,१८,५४,८४१
मध्यदेश बरार ...	८१,३९९	१,५५,०७,७२३
मद्रास ...	१,४२,३३०	४,६५,७५,६७०
पंजाब ...	९९,७७९	२,३५,८०,८५२
युक्तप्रान्त ...	१,०७,२६७	४,८४,०८,७६३
देशी रियासतें ...	भारत का प्रायः २/५	८,१७,१३,७६९
योग भारत का	१८०२६२९	३३,८३,४०,९०७

देशी भारत फैलाव में भारत का प्रायः २/५ है और जनसंख्या में १/५। समस्त भारत का फैलाव १८ लाख वर्गमील ऊपर लिखा जा चुका है। इसमें से ७,०९,५५५ वर्गमीलों में देशी रियासतें हैं।

भारतवर्ष एक प्रकार से संसार भर का सारांश है। इसमें सभी प्रकार की जलवायु है और दुनिया भर की प्रायः सारी वस्तुयें यहाँ कहीं न कहीं पाई जाती हैं। भारत पहाड़ों तथा समुद्रों द्वारा सारी दुनिया से पृथक् सा है। इसमें घुमने के लिये खैबर, बोलन घाटियाँ आदि मानो फाटक हैं। इन्हीं मार्गों से समय समय पर यहाँ कई जातियाँ आईं, अर्थात् आर्य, सीदियन, शक, कुशान, हूण और मुसलमान। इनमें से अब आर्य और मुसलमान ही पृथक् रह गये हैं, तथा शेष जातियाँ और भारत के आदिम निवासी आर्यों में ही मिल गये हैं। आसाम तथा तिब्बत की ओर से भी भारत में आने के मार्ग हैं किन्तु इन मार्गों से आर्य तथा कुछ मंगोल जातियों को छोड़ कर भारत में कोई विजयिनी धारा आई नहीं। यूरोपीय जातियाँ समुद्र मार्ग द्वारा दक्षिण से आईं। पहले विजयिनी जातियाँ उत्तर से प्रारम्भ होकर दक्षिण तक फैलती थीं किन्तु यूरोपीय जातियाँ दक्षिण से चल कर उत्तर फैलीं। हिमालय पहाड़ ने हमारे लिये हजारों वर्षों तक एक दुर्गम दुर्ग का काम दिया और आज भी दे रहा है। संसार के सभी पहाड़ों से यह ऊँचा है। रक्षक होने के अतिरिक्त मेघों को रोक कर हमारे लिये जलप्रद भी है। भूगर्भ विद्या विशारदों ने जाना है कि किसी समय यही हिमालय पहाड़ समुद्र का पेंदा था। जो जो चीजें समुद्र के पेंदे में मिलती हैं वही हिमालय के ऊँचे से ऊँचे शिखरों पर पाई जाती हैं। जाना गया है कि प्राचीनकाल में दक्षिणी भारत ही देश था और शेष समुद्र का पेंदा। दक्षिणी भारत से लेकर मडागास्कर तथा पूर्वी अफ़रीका तक खुला हुआ भूभाग था। जिस प्रकार के जीवजन्तु मडागास्कर और पूर्वी अफ़रीका में पाये जाते हैं तथा पृथ्वी के अन्य देशों में नहीं मिलते, वे भी दक्षिणी भारत में वर्तमान हैं। इन्हीं बातों एवं अन्य कारणों से जाना गया है कि पूर्वी अफ़रीका तथा दक्षिणी भारत कभी एक देश था। समय के साथ समुद्रीय पेंदे का उतार चढ़ाव आरम्भ हुआ और धीरे धीरे पूर्वी अफ़रीका तथा दक्षिणी भारत के बीच की भूमि समुद्र गर्भ में लीन होगई एवं हिमाचल सागर गर्भ से इतना ऊँचा उठ गया। पूर्वी अफ़रीका से दक्षिणी भारत पर्यन्त समुद्र के नीचे अब भी पृथ्वी की एक ऊँची रीढ़ सी बनी है जो दक्षिणी ध्रुव के

बर्फीले ठंडे पानी को उत्तर की ओर न आने देकर उत्तर का जलवायु सादरा ठंडा नहीं होने देती। हिमाचल और दक्षिणी भारत के बीच में फिर भी समुद्र भरा रहा, किन्तु यह पृथ्वी भी धीरे धीरे उठती गई तथा सिन्धु, गंगा, जमुना, ब्रह्मपुत्रा, घाघरा आदि नदियां द्वारा लाई हुई मिट्टी यहाँ जमती गई, यहाँ तक कि समुद्र बंगाल की खाड़ी तक ढकेल दिया गया और पूरा देश बनकर तैयार हो गया। गंगा जी के मुहाने पर सुन्दरवन के पास अब भी नई भूमि निकलती आती है। एक समय वह था कि मध्य यूरोप तथा मध्य एशिया में भारी समुद्र लहराता था। धीरे धीरे वहाँ की भी भूमि उठकर जर्मनी आदि देश बन गये। इसी समुद्र के विषय में छाया समान कुछ कुछ कथन प्राचीन ग्रंथों में पाये जाते हैं।

भारत में तीन ऋतुएँ प्रधान हैं अर्थात् जाड़ा, गर्मी और बर्सात। कार्तिक से आधे फाल्गुन तक जाड़ा समझा जाता है, चैत्र से आषाढ़ तक गर्मी और श्रावण से क्वार तक वर्षा। मुख्य बर्साती महीने सावन भादों हैं। माघ में भी प्रायः १५ दिन बर्सात होती है। भारतवर्ष में कितने ही देशी तथा विदेशी संवत् थोड़े या बहुत प्रचलित हैं। विशेषतः विक्रमी सवत्, सन् ईस्वी एवं शालिवाहन शाके का अधिक प्रचार है। धर्म कार्य संकल्पादि में सृष्टि संवत् का हवाला दिया जाता है। भूमि सम्बन्धी हिसाब के कागज़ों में फ़सली सवत् पूर्व भारत में प्रायः लिखा जाता है। विक्रम-संवत् चांद्र वर्ष है और शक संवत् सौर। अधिकांश भारतनिवासी हिन्दू हैं जिनके मतानुसार द्वारिका, बदरीनाथ, जगन्नाथ और सेतुबन्ध रामेश्वर चारों दिशाओं में चार धाम हैं तथा अयोध्या, मथुरा, हरिद्वार, काशी, कांची, उज्जैन और द्वारका सप्त पुरियों में हैं। ये दशों स्थान परम पवित्र माने जाते हैं। भारत में १२ ज्योतिर्लिङ्ग परम पवित्र हैं। इनमें विश्वनाथ, घृष्णेश्वर, बदरीनाथ, केदारनाथ, वैद्यनाथ, श्रीनाथ, महाकालेश्वर, सोमनाथ, मल्लिकार्जुन, त्र्यम्बकेश्वर, ओंकारेश्वर तथा रामेश्वर की गणना है।

धान्य में पूर्वी देशों में चावल की प्रधानता है। शेष भारत में धनी पुरुष विशेषतया गेहूँ का व्यवहार करते हैं और साधारण लोग जौ, जुवार, चना, बाजरा आदि का। अधिकांश लोग मांस नहीं खाते।

उनके यहाँ दाल और दूध का अधिक व्यवहार होता है। पशु पक्षी भारत में हजारों प्रकार के पाये जाते हैं। प्राचीनकाल में सुगन्धित पुष्पों ही की महिमा थी किन्तु अब योरोपीय लोगों की देखा देखी सुन्दर निर्गन्ध पुष्पों का भी माहात्म्य बढ़ रहा है। मृदुल स्वभाव भारतीयों का मुख्य गुण है। प्राचीनकाल से इनमें धर्म का बड़ा मान रहा है। यहाँ के धर्मों में हिन्दू, बौद्ध, जैन, मुसलमान और ईसाई मतों की प्रधानता है। वेद हमारे परम पूज्य और प्राचीन ग्रंथ हैं। बौद्धों का धर्म-ग्रन्थ त्रिपिटक है, मुसलमानों का क़ुरान और ईसाइयों का बाइबुल। हिन्दू मत के मुख्य आधार स्वरूप कृष्णद्वैपायन व्यास, बादरायण व्यास तथा शंकराचार्य हैं, बौद्ध मत के गौतम बुद्ध, मुसलमानों के मुहम्मद, ईसाइयों के जीजस क्राइस्ट, तथा जैनों के आदि नाथ।

भारतवर्ष इस काल ८ जातियों का मिश्रण स्थल है। इसने प्राचीनकाल से नवागन्तुकों का आदर किया है। फिर भी अद्यपर्यन्त इसके ऊपर सबसे बड़ा प्रभाव आर्यों का पड़ा है क्योंकि उन्होंने न केवल आदिम निवासियों को अपनाया वरन् सीदियनों, शकों, कुशानों और हूणों को भी अपना बना कर सारे देश में एकता स्थापित की। अंग्रेजों के पूर्व सारा भारत कभी एक शासनाधीन नहीं रहा। बंगालियों पंजाबियों, कौशलों, महाराष्ट्रों और मद्रासियों में इतना अंतर है कि उन्हें कोई एक जाति के मनुष्य नहीं कह सकता। उनकी सूरत शकल, पहिनाव उढ़ाव, बोली भाषा सभी कुछ भिन्न हैं और राजनैतिक भिन्नता भी उनमें कम नहीं है। सब के इतिहास अलग अलग हैं और सब के देशों में एक दूसरे से पृथ्वी आकाश का अन्तर है। एक जल प्रधान है तो दूसरा रेगिस्तान, एक समथल है तो दूसरा पहाड़ी, एक की पृथ्वी लाल है तो दूसरे की काली, एक अग्नि के समान तपता है तो दूसरा हिम के समान गलानेवाला है। इन सब भिन्नताओं के होते हुये भी इन सब प्रान्तों में भारतीयता क्या है सो बहुत से विदेशी पण्डित नहीं जान पाते, किन्तु इन भिन्नताओं को रखते हुए भी इन सब प्रान्तों में ऐक्य धर्म, सभ्यता और विचारों का है। भारतीयता का मुख्य साधन हमारे सारे प्रान्तों की सभ्यता एवं विचारों का साम्य है। देश में २००० शासक होते हुए भी बिना किसी लेजिस्लेटिव कौंसिल के

विज्ञानेश्वर की मिताक्षरा को सभी शिरोधार्य मानते आये हैं। यदि कुरुक्षेत्र के द्वैपायन व्यास एक प्रधान आचार्य थे तो ठेठ दक्षिण के शंकराचार्य दूसरे। उत्तरी गौतम और दाक्षिणात्य आपस्तंब के कथन समभाव से सारे देश में माने गये और लोगों ने यह जानने की कभी इच्छा न की कि यह किस प्रान्त के निवासी थे। शेषनाग, काश्मीरी मम्मट और कान्यकुब्जीय भरत समभाव से काव्याचार्य माने गये हैं। उनकी जातीय भिन्नता में किसी प्रान्त ने उनके कथनों में अश्रद्धा न दिखलाई। वेदों, ब्राह्मणों, सूत्रों, स्मृतियों, और पुराणों का सभी कहीं समभाव से मान होता आया है। अतः यदि राजनैतिक सम्बन्ध, भाषा और जलवायु हमें पूरी एकता नहीं देते, तो सभ्यता और विचार साम्य उसके पूर्ण सहायक हैं। इन्हीं बातों पर भारत की भारतीयता निर्भर है। आशा है कि आगे के पृष्ठावलोकन से इन कथनों के पुष्टी करण में कुछ विचार मिलेंगे।

हमारा भारत एक ऐसा अनोखा देश है जो एक साथ ही वृद्ध और बालक है। प्राचीन सभ्यता की उन्नति प्रदर्शन में यह वृद्ध भारत है किन्तु वर्तमानकाल की पाश्चात्य सभ्यता के लिये, कला कौशल और व्यापारिक गरिमाओं के विचार से, यही बूढ़ा आज कल बाल भारत हो रहा है। पयफेन सी श्वेत पगड़ी के साथ अब इसे सलमे सितारे की टोपी भी पसंद आने लगी है। धार्मिक विचारों तथा दर्शनशास्त्रों में यह आज आधी दुनिया का गुरु है और शेषार्द्ध भी थोड़े ही दिनों में इसका महत्व मानती हुई देख पड़ती है। राजनैतिक उन्नति भी इसने ८वीं शताब्दी पर्यन्त सब से अच्छी की किन्तु पीछे समय के उलट फेर से इसने अपना पाठ भुला दिया और अब बाल भारत होकर पाश्चात्य राजनैतिक प्रणाली की प्रवेशिका परीक्षा में उत्तीर्ण होने का यत्न कर रहा है। कला कौशल और व्यापार में भी यही आशा है कि यह वृद्ध बालक थोड़े ही दिनों में अपने प्राचीन गौरव को प्राप्त होगा। अङ्गरेजों के सम्बन्ध से इसने थोड़े ही दिनों में नवीन विचारों में भी अच्छी उन्नति करली है और आगे भी उत्तरोत्तर वृद्धि की आशा है। इन दिनों थोड़े ही वर्षों से उन्नति की धारा इस वेग के साथ प्रवाहित हो रही है कि जिससे शीघ्र सारे देश के आप्यायित होजाने की दृढ़ आशा है।

दूसरा अध्याय

भारतीय इतिहास के आधार

विनसेंट स्मिथ महाशय ने भारतीय इतिहास के आधारों को चार भागों में विभक्त किया है, अर्थात् स्वदेशी ग्रंथ, विदेशियों की रचनाएँ, पाषाण लिपि, सिक्के, आदि और सम सामयिक ऐतिहासिक ग्रन्थ। इन दिनों मोहंजोदड़ो और हड़प्पा की खोदाइयों से भी परमोत्कृष्ट ऐतिहासिक मसाला प्राप्त हुआ है। स्वदेशी ग्रंथों में स्मिथ ने राजतरङ्गिणी, महाभारत, रामायण, जैन पुस्तकें, जातक और अन्य बौद्ध-पुस्तकें, लंका के पाली में ऐतिहासिक ग्रन्थ, पुराण आदि का वर्णन किया है। राजतरङ्गिणी १२वीं शताब्दी का ग्रन्थ है और स्मिथ साहब का विचार है कि उसमें कथित समय से थोड़े ही पहले का वर्णन ऐतिहासिक सत्यता रखता है, शेष अनिश्चित है। कई महाशयों ने व्याकरण एवं अन्य ग्रन्थों के साधारण वर्णनों से इतिहास की पुष्टि की है। ऐसे अनेक वर्णन खोज निकाले गए हैं जिनसे इतिहास की भारी पुष्टि हुई है। मुख्यतया जैन और जातक ग्रन्थों से सातवीं या छठवीं शताब्दी बी० सी० का अच्छा चित्र मिलता है। लंका के उपयोगी ग्रंथों में द्वीपवंश और महावंश प्रधान हैं। यह तीसरी चौथी शताब्दी के हैं। विद्वान लोग वायु, ब्रह्माण्ड, हरिवंश, पद्म और मत्स्य पुराणों का विशेष प्रमाण मानते हैं। स्मिथ महाशय छठी शताब्दी बी० सी० से ऐतिहासिक काल मानते हैं, उससे पहले से नहीं। इसलिए आप वेदों और ब्राह्मण ग्रंथों का हवाला नहीं देते। वास्तव में वेदों, ब्राह्मणों, सूत्रों और स्मृतियों से भी बहुत कुछ ऐतिहासिक मसाला उपलब्ध होता है, किन्तु इनसे सन् संवतों का ब्योरा हद होते न देख कर आपने वैदिक को ऐतिहासिक काल से निकाल डाला है। हमारी समझ में ६०० बी० सी० से ही भारत का वर्णन बहुत अधूरा है, क्योंकि हिन्दुओं की वास्तविक महत्ता इसके

पहले ही बहुत रही है। आपने महाभारत और हरिवंश पर विशेष ध्यान नहीं दिया है, यद्यपि इन ग्रंथों से भी इतिहास लेखक को बहुत बड़ी सहायता मिलती है। प्रसिद्ध ऐतिहासिक मैकडानल महाशय ने महाभारत के मूलरूप को बौद्धकाल से भी पुराना माना है। तिलक महाशय ने भी इस विषय पर अनेक प्रमाण दिये हैं। पार्जिटर महाशय ने पुराणों पर अच्छा श्रम किया है। पुराणों की प्राचीनता आपने मानी है। हम इन ग्रन्थों को भी बहुत करके प्रमाणनीय मानते हैं। स्मिथ महाशय का भी मत है कि योरोपीय लेखकों ने पुराणों की उचित से अधिक अवहेलना की है। विष्णु और मत्स्य पुराणों ने मौर्य्य तथा आन्ध्र घरानों का इतिहास बहुत करके शुद्ध दिया है। जैसा कि भूमिका में हमने लिखा है, संहिता, ब्राह्मण और सूत्र ग्रन्थ वैदिक तथा बहुत कर के ब्राह्मण साहित्य के अंग हैं और पुराण मूलतः बहुधा अब्राह्मण के।

विदेशी लेखकों में भारत का सब से पहला कथन फ़ारस के बादशाह हिस्टस्पस के पुत्र डेरियस ने परसेपुलिस और नक़्श रुस्तम में किया। इस दूसरे ग्रन्थ का समय ४८६ बी० सी० है। इससे कुछ पीछे हेरोडोटस ने और भी कुछ अधिक वर्णन किया। सिकन्दर का धावा ३२५-२३ बी० सी० में हुआ। इसके थोड़े ही पीछे सीरिया और मिश्र के राजदूत मौर्य्य-महाराजाओं के यहाँ पटना में रहने लगे। इन लोगों ने अपने विवरण छोड़े हैं जिनमें मेगास्थनीज़ का सर्व प्रधान है। दूसरी शताब्दी के एरियन का वर्णन भी अच्छा है। यह यूनान और इटली का राजसेवक था। पहली शताब्दी बी० सी० में चीनी लेखक सोमाचीन ने भारत का बहुत अच्छा वर्णन किया। ३९९ में चीनी यात्री फ़ाहियेन और ६२९ में ह्यूयन्-त्सान भारत में आये। इन दोनों के कथन बहुत ही उपयोगी हैं विशेष कर के ह्यूयन्-त्सान के। इस यात्री ने भारत में १६ वर्ष रह कर अपना अनमोल ग्रंथ रचा जिसका ऐतिहासिक मूल्य वर्णनातीत है। इन्होंने कन्नौज, वल्लभी, दक्षिण और कांची के राज्यों का वर्णन किया और बहुत सी ऐसी बहुमूल्य कथायें भी लिख दीं जो बिना इस प्रकार रक्षित हुए नष्ट हो जातीं। आठवीं शताब्दी का मंजुश्री मूलकल्प

नामक एक उत्कृष्ट बौद्ध ग्रन्थ निकला है जिस में प्रायः ३०० श्लोकों में प्राचीन से तत्कालीन पर्य्यन्त इतिहास कथित है। महमूद गजनवी के साथ अलबरूनी नामक एक ऐसा अरबी पंडित आया था, जिसने संस्कृत भाषा पढ़कर भारत का वर्णन लिखा जो बहुत उपयोगी है। मुसलमानी ऐतिहासिक फ़रिश्ता आदि ने भी भारत का इतिहास रचा है किन्तु इन्होंने मुसलमानी बल बढ़ा हुआ कहने के विचार से हिन्दुओं का प्रताप घटा कर लिखा। बर्नियर मनूची आदि ने भी मुग़ल भारत का आँख देखा कथन किया और हाल में प्रोफ़ेसर जदुनाथ सरकार ने औरङ्गजेब का विशद इतिहास पाँच भागों में रचा है। पाश्चात्य विद्वानों में से सर विलियम जोन्स, कोलब्रुक, विलसन, डा० मिलर, पार्जिटर, स्मिथ, डा० बरनल, डा० फ़्लीट, प्रोफ़ेसर कीलहार्न और रायल एशियाटिक सोसायटी तथा एशियाटिक सोसायटी आफ़ बङ्गाल, भारतीय विषयों पर प्रामाणिक माने जाते हैं।

शिला लेखों, ताम्रपत्रों, सिक्कों आदि से भारतीय इतिहास का बहुत विशद पता चला है। अशोक, समुद्रगुप्त आदि ने पाषाणों पर अपने हाल खुदवाए। दक्षिणी भारत में ऐसी सामग्री बहुत प्रचुरता से मिलती है। प्राचीन ग्रन्थों में भी इतिहास का वर्णन है, किन्तु इनसे अधिक लाभ नहीं हुआ है क्योंकि इनमें से बहुतों में अत्युक्ति की मात्रा बहुत अधिक है। कश्मीरी ग्रन्थ राजतरंगिणी भी कुछ अत्युक्ति पूर्ण है। राजतरंगिणी सन् ११४८ में लिखी गई। उसकी प्रत्यक्ष भूलें यह हैं कि उसमें अशोक का समय १२०० बी० सी० तथा मिहिर कुल का ८१८-७४८ बी० सी० लिखा है और रणादित्य का भी समय सन् २२२-५२२ ई० अर्थात ३०० वर्षों का दिया है। मिहिर कुल के पिता तोरमान को मिहिर कुल के उपरांत ७ वीं शताब्दी का लिखा है। बाणकृत हर्षचरित्र और बिल्हण-कृत विक्रमाङ्कदेव चरित्र अच्छे ग्रन्थ हैं। रामचरितम् में बंगाली पाल राजाओं का वर्णन एवं जैन ग्रंथों में पश्चिमीय चालुक्य राजकुल का कथन है। भारत में बहुत से संवत् होने के कारण यहाँ का समय निरूपण एक कठिन काम है। कनिंघम ने बीस से ऊपर संवतों का वर्णन किया है। अलबरूनी ने १०३० ई० में विष्णु पुराण में लिखित १८ पुराणों के नाम लिखे और कहा कि भारत का कोई

क्रम बद्ध इतिहास नहीं है। बाणभट्ट ने ६२० के ग्रन्थ हर्षचरित्र में भी १८ पुराण कहीं तथा अग्नि, भागवत और स्कन्द पुराणों का व्यवहार किया। "मिलिन्द के प्रश्न" नामक बौद्ध ग्रन्थ ३०० ई० से प्रथम का है। इसमें भी पुराणों के किसी न किसी रूप का कथन आया है। गुप्त राजाओं के समय में पुराणों को बहुत करके वर्त्तमान रूप मिला। उस समय कुछ घटा बढ़ा कर इनका जीर्णोद्धार हुआ।

उपर्युक्त सामग्री के अतिरिक्त बहुत से अन्य आधार भी मिलते हैं। इनमें पृथ्वीराज रासा, बीसलदेव रासो, परमाल रासो, टाड राजस्थान, गुजराती राष्ट्र माला आदि प्रधान हैं। सरकारी ग्रन्थ गजेटियरों में भी प्रायः प्रत्येक स्थान का इतिहास थोड़े में दे दिया गया है। राजपूताने की रियासतों में भी अच्छे इतिहास-ग्रन्थ उपलब्ध हैं विशेषतया मेवाड़ तथा जैसलमेर में। इनके अतिरिक्त हिन्दी, मराठी, बंगला आदि के प्राचीन साहित्य ग्रंथों में ऐतिहासिक सामग्री प्रचुरता से मिलती है। भारत में ऐतिहासिक सामग्री की कमी नहीं है पर समय निरूपण एवं अत्युक्ति और पक्षपात पूर्ण वर्णनों से उचित ऐतिहासिक घटनाओं का निकालना कुछ कठिन काम है। मुसलमानी लेखक अपने पक्ष में खींचतान करते हैं और हिन्दू रजवाड़े अपना प्रभाव बढ़ाकर लिखते हैं। कुछ हिन्दू धर्म ग्रन्थ प्राचीन घटनाओं को लाखों वर्षों की प्राचीनता देना चाहते हैं और यूरोपीय लेखक प्राचीन से प्राचीन घटनाओं को कल की प्रमाणित करते हैं। इन सब झगड़ों से बचकर कोई सर्वमान्य इतिहास लिखना बहुत सरल नहीं है। इसीलिए स्मिथ महाशय ने ६०० बी० सी० से ही ऐतिहासिक काल माना है। इससे प्रथम वाले इतिहास के आधार स्वरूप बहुत करके हिन्दू धार्मिक और ऐतिहासिक ग्रन्थ ही मिलते हैं। इनमें वेदों, ब्राह्मणों, स्मृतियों, सूत्रों, पुराणों आदि को प्रधानता है। वेदों में घटनाएँ घटा बढ़ा कर नहीं लिखी गयी हैं, वरन् सच्चे और प्रामाणिक कथन उनमें पाये जाते हैं। यदि देवताओं के माहात्म्य एवं प्रकट धार्मिक अत्युक्तियों को निकाल डालिये, तो वेदों का एक एक अक्षर सच्ची ऐतिहासिक सामग्री देता है। वस्तुतः वेदों का सब से बड़ा मूल्य ऐतिहासिक है। फिर भी इतनी कठिनाई है, कि वेद इतिहास

कथन के लिए नहीं बनाये गये वरन् उनमें ऐतिहासिक सामग्री अप्रासंगिक प्रकार से है। उनके मुख्य विषय कुछ और ही हैं और उपमा, रूपक, उदाहरण, महिमा-कथन आदि के सहारे हम लोगों को ऐतिहासिक सामग्री वेदों में मिलती है। फिर भी इतनी त्रुटि रह जाती है कि पूरा ऐतिहासिक वर्णन नहीं मिलता, वरन् उनके इशारे मात्र उपलब्ध हैं। वेदों में मनु, इक्ष्वाकु, पृथु, दिवोदास, सुदास, ययाति, यदु, पुरु, त्रैवन, शम्बर, वृत्र, नमुचि, बलि, पुरोचन, प्रह्लाद आदि सैकड़ों महाशयों के नाम आए हैं और बहुतों के सम्बन्ध में कुछ कुछ घटनाएँ भी लिखी हैं, किन्तु पूर्वापर क्रम, मिलित वर्णन आदि कुछ भी नहीं है। उनमें ऐतिहासिक रीति पर कुछ नहीं कहा गया है वरन् स्फुट प्रकार से घटनाएं कथित हैं।

यह त्रुटि ब्राह्मण ग्रन्थों में गाथाओं द्वारा कुछ कुछ दूर की गयी है, किन्तु इनमें भी गाथाएँ हैं अप्रासंगिक मात्र, क्योंकि इतिहास से इतर विषयों की पुष्टि में वे स्फुट प्रकार से कही गयी हैं। शास्त्रों का कथन है कि ब्राह्मण ग्रन्थ भी वेद ही हैं। हमें इस कथन पर मत प्रकाश करने की कोई आवश्यकता नहीं क्योंकि हमारा विषय धार्मिक नहीं है। हम संहिता मात्र को वेद कहेंगे और ब्राह्मणों को ब्राह्मण। सूत्रों और स्मृतियों में भी सामाजिक ज्ञान प्रदायिनी प्रचुर सामग्री मिलती है। सब से पहले ऐतिहासिक ग्रन्थ जो हमारे यहाँ लिखे गए वे पुराण हैं। ब्राह्मण ग्रन्थों से ही धार्मिक विषयों की महिमा बढ़ने लगी। यह परिपाटी सूत्रों तथा स्मृतियों में बढ़ी और पुराणों में पराकाष्ठा को पहुँच गयी। जहाँ वेदों में मानुष जीवन सौ से सवा सौ वर्षों का माना गया और कोई मनुष्य अमर नहीं कहा गया, वहीं पुराणों में कहीं कहीं वह दस हजार वर्षों का होगया और कई मनुष्य अमर कहे गए। इस एक भूल ने पौराणिक ग्रन्थों के ऐतिहासिक मूल्य को बहुत घटा दिया है। देखने में पुराणों के कथन वेदों से ढ़दतर अथच पूर्ण मिलते हैं, किन्तु संहिता का जो प्रत्येक शब्द दृढ़ है, यही उसकी महत्ता है। शेष वैदिक साहित्य भी इसी कारण से पुराणों की अपेक्षा अधिक मान्य है। गुप्त काल पर्य्यन्त पुराणों में सम्पादकों द्वारा घटाव बढ़ाव हुये, जिससे उनका प्रत्येक भाग वैदिक साहित्य के समान

प्रामाणिक नहीं है। इसलिए सत्यता की जांच में सारा वैदिक साहित्य पौराणिक से दृढ़तर है। फिर भी पुराणों के शुद्ध कथन मान्य अवश्य हैं। उनमें सामग्री प्रचुर तथा अच्छी है। समय सम्बन्धी अभाव अवश्य कठिन आपत्ति है, किन्तु प्रसिद्ध राजघरानों के वंशवृक्ष मिलाने से और समकालिक नामों के सहारे उनका पूर्वापर क्रम स्थिर करने से मोटे मोटे समय मिल जाते हैं जिनमें इतिहास का वर्णन हो सकता है। फिर भी प्रत्येक राज्य के सम्बन्ध में सन् संवतों का ब्योरा खोज निकालना अभी तक असाध्य समझ पड़ता है। इसलिए आदिमकाल से ६०० बी० सी० तक के समय को हम भी अनैतिहासिक काल कहेंगे। अपने ग्रंथ को ३ भागों में हमने विभक्त किया है जिसमें पहला भाग यही अनैतिहासिक काल सम्बन्धी है, दूसरे भाग में ६०० बी० सी० से प्रायः १३१४ ई० तक का वर्णन होगा और तीसरे में १३१४ से अब तक का। हम ऊपर वेदों, ब्राह्मणों, सूत्रों तथा पुराणों को इतिहासाधार कह आये हैं। कोई ग्रन्थ उसी समय के इतिहास का आधार हो सकता है जब कि वह बना हो या उससे कुछ पहले का। वेद, ब्राह्मण और सूत्र विशेषतया ब्राह्मणों द्वारा कहे और रचित किये गये। इस प्रकार यह वैदिक साहित्य बहुधा ब्राह्मण कृत है। पौराणिक साहित्य का मूल बहुधा चारणों, सूतों, मागधों आदि के द्वारा रचित हुआ जैसा कि भूमिका में कहा गया है। इसके व्यास कृत पुराण तथा इतरों के चार मीमांसा ग्रन्थ प्राचीन काल में बने। अब हम कुछ अन्य आधारों का कथन करके यह अध्याय समाप्त करेंगे।

डाक्टर राय चौधरी के विचार

ऐतिहासिक ज्ञान के लिए हमारे निम्नलिखित ग्रन्थ मान्य हैं:—

अ—परीक्षित के पीछे दृढ़ किया हुआ हिन्दू साहित्य।

१—चारों वेद, मुख्यतया अथर्ववेद की अन्तिम पुस्तक।

२—एतरेय, शतपथ, तैत्तिरीय एवं अन्य प्राचीन ब्राह्मण ग्रन्थ।

३—बृहदारण्यक, छान्दोग्य, तथा अन्य प्राचीन उपनिषत्।

आ—बिम्बिसार के पीछे का हिन्दू साहित्य, रामायण, महाभारत, और पुराणग्रन्थ।

इ—बिम्बिसार के पीछे का निश्चित कालीन हिंदू साहित्य।
कौटिल्य कृत अर्थशास्त्र, पातंजलि महाभाष्य, पाणिनीय अष्टाध्यायी।

ई—बौद्ध सुत्त, विनय सुत्त तथा जातक ग्रन्थ। ये प्रायः शुंग पूर्व के हैं।

उ—जैन ग्रन्थ ४५४ ई० में लिपिबद्ध हुए।

श्रीयुत पार्जिटर के विचारानुसार सूत पौराणिक हैं, मागध वंश-वृत्त के ज्ञाता तथा बन्दिन प्रशंसक। जहाँ इतिश्रुतिः लिखा रहता है वहाँ वेद से प्रयोजन है। व्यास ने पहले पुराण बनाई, फिर महाभारत, जिसका नाम उन्होंने जय रक्खा। वर्तमान पुराणों में वायु और ब्रह्माण्ड सबसे पुराने हैं। पहले ये दोनों एक थीं और पीछे दो हुईं। उग्रश्रवस रोम हर्षण के पुत्र थे तथा छः शिष्यों में पाँच ब्राह्मण थे। वायु के पीछे मत्स्य, ब्रह्म और हरिवंश बनी। पुराणज्ञ, पुराणवित, पौराणिक और वंशवित् प्राचीन हाल जानते थे। ब्युलरके अनुसार आपस्तम्ब तीसरी शताब्दी बी० सी० में थे या डेढ़ दो सौ वर्ष और पूर्व। वे भविष्यत और मत्स्य पुराणों से उद्धरण देते हैं, जिससे ये ५०० बी० सी० से पूर्व चली जाती हैं। भविष्य का प्रारम्भ शाम्ब से होता है। वायु पुराण अधिसीम कृष्ण को सुनाई गई। कौटिल्य कृत अर्थशास्त्र चौथी शताब्दी से पहली बी० सी० तक का है। इस समय पुराणें भली भाँति ज्ञात और सर्वमान्य थीं। पहली व्यास कृत पुराण पाण्डवों के समय बनी, तथा भागवत् नवीं शताब्दी में। वायु, ब्रह्माण्ड, हरिवंश, पद्म और मत्स्य पुराण औरों से अधिक मान्य हैं। उनमें मूल वृत्तान्त है। विष्णु पुराण में बौद्धों तथा जैनों के पराजय भी कथित हैं, जिससे वह ५०० ई० तक आ जाती है।

डाक्टर प्रधान के विचार

प्राचीन कथनों में सूत, मागध, पौराणिक, पुराणज्ञ, पुराविद, गाथा आदि के विवरण आते हैं। पुराणें इस प्रकार हैं:—पहला व्यास

कृत, दूसरे ग्रंथ मागध नरेश सेनजित के समय के, तीसरे नन्दवंश के समय के और चौथे गुप्त कालीन। भागवत बहुत पीछे की। वायु अन्य पुराणों से पहले की है।

इतर आधारों के अनुसार कथन

वायु, ब्रह्माण्ड और विष्णु पुराणों का कथन है कि व्यास ने चारों वेद पेल, वैशम्पायन, जैमिनि और सुमन्तु को दिये। अनन्तर आख्यान, उपाख्यान, गाथा और कल्प जो कियां बांटीं। कल्प वाक्यों के आधार पर उन्होंने एक पुराण बनाई, तथा उसे एवं इतिहास को अपने शिष्य रोम हर्षण या लोम हर्ष को सिखलाया। रोम हर्षण ने उसको छः रूपों में अपने निम्न षट शिष्यों को पढ़ाया:—आत्रेय सुमति, काश्यप-कृतव्रण, भरद्वाज, अग्निवर्चस, वशिष्ठ, मित्रयु, सावर्णि, सोमदत्ति और सुदर्शन शांशपायन। इनमें से काश्यप सावर्णि, और शांशपायन ने एक एक संहिता बनाई। पहली संहिता रोमहर्षण कृत थी। इनमें से शांशपायन की संहिता का आकार नहीं दिया हुआ है; शेष तीनों संहितायें चार चार हजार श्लोकों की थीं।

तीसरा अध्याय

भारतीय इतिहास का महत्व

कुछ इतिहासज्ञों ने लिखा है कि भारतीय इतिहास बहुत फीका है। इसमें बार बार एक बड़ा साम्राज्य क़ायम होकर तथा कुछ दिन भारी रियासत चला कर टूट जाता है और विविध प्रान्तों में छोटी छोटी रियासतों में बँट कर छिन्न भिन्न हो जाता है। सुदास, रामचन्द्र, जरासन्ध, युधिष्ठिर, अजातशत्रु, अशोक, प्रवरसेन, समुद्रगुप्त, शर्ववर्मन, हर्षवर्द्धन, अलाउद्दीन, औरंगजेब, माधवराव आदि अवश्य भारी सम्राट थे, किन्तु इन सब के पीछे समय पर देश की एकता छिन्न भिन्न हो गयी और वह छोटी छोटी रियासतों में बँटकर मांडलिक राजाओं से भर गया। एक दो नहीं बारह पन्द्रह बार ऐसे दृश्य देख कर भी स्वतन्त्रता, प्रतिनिधि बल, प्रजा के अधिकार आदि में समय के साथ कोई विशेष वृद्धि न होने से यदि कोई आलोचक हमारे राजनैतिक इतिहास को फीका बतलावे तो हम उसे बक्रालोचक नहीं कह सकेंगे। यह नहीं कि हमारे यहाँ स्वतन्त्रता आदि के विचार उत्पन्न हुए ही नहीं और उनकी उन्नति का सूर्य्य कभी चमका ही नहीं, किन्तु फिर भी इतना दुःख के साथ मानना पड़ेगा कि समय के साथ इन सुविचारों की समुचित उन्नति नहीं हुई, विशेषतया बारहवीं शताब्दी के पीछे।

यदि हिन्दू राजाओं का प्राचीन इतिहास देखा जावे तो प्रत्यक्ष प्रकट होगा कि "राजा करै सो न्याय,पाँसा पड़ै सो दाँव" वाली कहावत हमारे यहाँ कभी चरितार्थ नहीं हुई। यहाँ राजा लोग सदैव सनातन विचारों और धर्मों को मानते रहे। आज तक देशी रियासतों में प्रजा को जब कोई बात अनुचित जान पड़ती है तब वह हाकिमों से यही कहती है कि "अब तुम नई नई बातें करने लगे।" हाकिम लोग भी प्रायः ऐसे ही उत्तर देते हुये देखे जाते हैं कि "कौन नई करियति है ? सनातन से का यही नाईं चली आई है ?" प्राचीनता का इतना मान है कि

खंड में आज तक लगान की रीति कहते हैं। यदि कहीं नेवते जावें तो जो साधारण मान मरातब होता है उसे दस्तूर कहते हैं।

हमारे यहाँ प्राचीन और नवीन राजाओं में से प्रायः किसी ने *घर जानी मन मानी नहीं* की। सब लोग लोक प्रचलित विचारों तथा आचारों पर शासन करते रहे। धार्मिक सहनशीलता इतनी रही है कि हिन्दू, जैन, बौद्धादि सभी हिल मिल कर एक ही जगह बने रहे और पारसी भी यहीं आ बसे, किन्तु कभी धार्मिक महा संग्राम नहीं हुए। सभी को अपने विचारों एवं आचारों पर चलने का पूरा अधिकार रहा। हमारे सभी प्रधान शासकों में से अशोक बड़ा धर्म फैलानेवाला था, किन्तु उसने भी बौद्धों तथा ब्राह्मणों का सदैव प्रायः समभाव से सत्कार किया और धर्म फैलाने में कभी बल का प्रयोग नहीं किया। यही दशा गुप्तवंशी हिन्दू-शासकों की रही। प्रसिद्ध महाराज हर्षवर्द्धन का भी यही हाल था। केवल एक मात्र राजा वेन ऐसा हुआ जिसने अपने को ब्राह्मणों से पुजवाने की आज्ञा प्रचारित की। उसको प्रजा ही ने उसका बध कर डाला और फिर भी राज्य लोभ न करके उसी के पुत्र प्रसिद्ध राजा पृथु को शासक बनाया, जिसने इस उत्तमता से राज्य किया कि धरणी उसी के नाम पर पृथ्वी कहलाने लगी। क़ानून बनाने के लिये हमारे यहाँ राजा को कभी प्रयत्न नहीं करना पड़ता था और विद्वान ब्राह्मणों के रचे हुये ग्रन्थ अपनी भलाई अथच लोक-मान्यता के कारण राज्य सभा में क़ानून की भाँति माने जाते थे। यही दशा पेशवाओं के राज्य तक में रही। इतनी भारी उन्नति प्राप्त करने के लिए थोड़ी शिक्षा अथवा थोड़ा प्रभाव पर्याप्त नहीं हो सकता।

योरोप तथा अमेरिका में दास प्रथा उठाने के लिये भारी-भारी संग्राम हुए किन्तु हमारे यहाँ यह प्रथा कभी बलवती हुई ही नहीं। जितनी उन्नति हिन्दू राज्य ने शासन पद्धति, प्रजा-अधिकार, स्वतंत्रता आदि के विचारों में कर ली उतनी तत्कालिक किसी साम्राज्य ने पृथ्वी-मंडल में नहीं कर पाई। यदि समय मिलता तो अन्य उन्नत देशों की भाँति भारत भी बारहवीं शताब्दी के पीछे इन विचारों को दृढ़ करता,

किन्तु हिन्दू मुसलमानों की सामाजिक एवं धार्मिक भिन्नता ऐसी पड़ गई कि प्रजा और राजा में एकता का भाव मुसलमानी राज्य में नहीं आया। इसी से मुसलमान लोग अपने को सदा विजयी समझते रहे और उनकी पाँच शताब्दियों में प्रजा के अधिकार समुचित प्रकारेण उन्नत नहीं हुए। यह दशा राजनैतिक विचारों एवं अधिकारों की रही और एक प्रकार से कुछ फीकी कही जा सकती है, किन्तु अन्य बातों में भारतीय इतिहास फीका नहीं है। गौतम बुद्ध के पूर्व से हमारे यहाँ कुछ प्रजातन्त्र राज्य थे। ऐसे कुछ राज्य गुप्त काल तक चले। किसी देश की ऐतिहासिक गरिमा उसके द्वारा सांसारिक सभ्यता की उन्नति पर निर्भर है, अर्थात् इस उन्नति में उसने जितनी सहायता पहुँचाई होगी उसी के अनुसार उसका इतिहास अच्छा अथवा बुरा कहा जावेगा। संस्कृत के इतिहास-लेखक मैकडानल महाशय ने इस विषय पर २० पृष्ठों का एक अध्याय लिख कर भारत को बहुत बाधित किया है। उन्होंने दिखलाया है कि किन किन बातों में भारत ने सांसारिक सभ्यता को वर्द्धमान किया। उन्हीं के आधार पर यहाँ कुछ वर्णन करके तब हम आगे बढ़ेंगे।

५०९ बी० सी० में रिक्लैक्स नामक एक यूनानी भारत में आया और उसने सिन्ध नदी पर नाव चलाई। उसके वर्णनों से हेरोडोटस ने भारत का हाल जाना। ४८० बी० सी० में चर्कसीज़ जो सेना ग्रीस को ले गया उसमें भारतीय दल भी था। इस फ़ारसी सेना का वर्णन इतिहास लेखक हेरोडोटस ने किया। सिकन्दर ने जब ३२५ बी० सी० में भारत पर धावा किया तब यूनानियों ने झेलम और सिन्ध के बीच जोगियों को देखा। यूनानी एलची मेगास्थनीज़ ३०५ बी० सी० के पीछे कुछ साल पटना में रहा। उसने टा इन्डिका नाम्नी एक पुस्तक लिखी जिसमें भारत का वर्णन किया। उसमें लिखा है कि हिन्दुस्तानी लोग इन्द्र और गङ्गा की पूजा करते थे। उसके लेख से विदित है कि उसके समय में सतयुग, त्रेता, द्वापर और कलियुग के विचार दृढ़ हो चुके थे तथा विष्णु, शिव एवं कृष्ण का पूजन होता था। कृष्ण पूजन मेगास्थनीज़ मथुरा में लिखता है। उसका यह भी कथन है कि भारत में कोई दास न था। इधर कौटिल्यकृत अर्थशास्त्र में दास बल्प

का विवरण इसी काल में है। इससे जान पड़ता है कि दास थे अवश्य किन्तु गणना में वे इतने कम थे तथा उनके साथ ऐसा सुव्यवहार था कि मेगास्थनीज़ को समाज में उनका अस्तित्व ही न समझ पड़ा। इसके बाद प्रायः २०० वर्ष तक यूनानियों का आना जाना भारत में रहा।

डिओकिसास्टुमस नामक एक यूनानी का समय ५१ से ११७ ई० तक का है। इसने लिखा कि हिन्दुस्तानी लोग अपनी भाषा में होमर-कृत इलियड के वीरों का गीत गाते हैं। इससे उसका प्रयोजन महाभारत से समझ पड़ता है और जान पड़ता है कि यह लोग उस समय महाभारत को जानते थे। महमूद ग़ज़नवी के जब धावे हुये तब उसके साथ अलबरूनी नामक एक पंडित आया।

कुछ पादरियों ने श्रीकृष्ण सम्बन्धी बहुत सी घटनाओं को ईसा वालियों से मिलती देखकर कृष्ण पूजन की उत्पत्ति उन से मानी है, किन्तु कृष्ण पूजन मेगास्थनीज़ के समय भी चलता था, जिसके ३०० वर्ष पीछे ईसा उत्पन्न हुए। दूसरी शताब्दी बी० सी० में रचित महाभाष्य में लिखा है कि कृष्ण सम्बन्धी नाटक भी खेले जाते थे। इन बातों से प्रकट है कि ईसा की जीवनी में घटना वर्णन पर कृष्ण की जीवनी का प्रभाव पड़ा है। बालकृष्ण पूजन पीछे का है और इसके विवरण में ईसाई कथनों का कुछ प्रभाव असम्भव नहीं है।

भारतीय पर यूनानी नाटकों का कोई प्रभाव नहीं पड़ा, ऐसा मैकडानल महाशय ने दिखलाया है। फिर भी यूनानी लोगों का भारत में बहुत आना जाना था जिससे संभव है कि भारतीय का यूनानी नाटकों पर प्रभाव पड़ा हो। शकुन्तला नाटक की प्रस्तावना के आधार पर प्रसिद्ध जर्मन कवि गेटी ने फ़ाउस्ट की प्रस्तावना बनायी। भारतीय भूत प्रेतों की कथा कहानियों तथा उपन्यासों का प्रभाव योरोप में बहुत अधिक पड़ा। छठवीं शताब्दी में पंचतंत्र के समान एक बौद्ध ग्रंथ का अनुवाद फ़ारसी वैद्य बरज़ोई ने पहलवी भाषा में सासानी बादशाह

खुसरो अनुशीरवाँ की आज्ञा से किया। यह बौद्ध ग्रन्थ और अनुवाद अब दोनों लुप्त हो गये हैं, किन्तु इस पहलवी पुस्तक का अनुवाद अरबी भाषा में ८ वीं शताब्दी में हुआ, जो अब भी प्रस्तुत है। इसका नाम कलैला दमना है। इसमें लिखा है कि बिदपा नामक एक हिन्दुस्तानी दार्शनिक ने एक दुष्ट राजा को भला बना दिया। बिदपा विद्यापति था। इसी कलैला दमना से समय पर फ़ारसी ग्रन्थ अनवार सुहेली निकला और मध्य कालिक योरोप में अनेकानेक भाषाओं में कई ग्रन्थ रचे गये। छान्दोग्य उपनिषत् में भी ऐसी ही कहानियाँ पाई जाती हैं जिससे प्रकट है कि यह भारत में बहुत काल से प्रचलित थीं। शतरंज का खेल भी योरोप में भारत से गया। इसे संस्कृत में चतुरंग कहते हैं, क्योंकि इसमें चतुरंग सेना होती है, अर्थात् रथी, गजी, हयसादी और पदाती।

दर्शन शास्त्र में भारत का प्रभाव यूनान पर बहुत पड़ा। प्रसिद्ध यूनानी दार्शनिक पिथैगुरस के प्रायः सभी सिद्धान्त छठी शताब्दी बी० सी० से ही भारत में ज्ञात थे। जान पड़ता है कि पिथैगुरस ने फ़ारस में हिन्दुस्तानियों से मिलकर ये सिद्धान्त जाने थे। प्लाटनस और उसके शिष्य पारफ़ी (२३२-३०४ ई०) के सिद्धान्तों में योग और सांख्य के प्रभाव देख पड़ते हैं। दूसरी और तीसरी शताब्दियों में ईसाई दर्शन शास्त्र पर सांख्य का प्रभाव पड़ा। १९ वीं शताब्दी में शोपिनहार और हार्टमैन के सिद्धान्तों पर भारतीय दर्शन का प्रभाव देख पड़ता है।

विज्ञान में भी योरोप हिन्दुस्तान का थोड़ा ऋणी नहीं है। आठवीं और नवीं शताब्दी में हिन्दुस्तानियों ने अरबवालों को गणित एवं बीज-गणित सिखलाया। रेखागणित में कैन्टर महाशय के अनुसार यूनानी विचारों और हमारे शुल्व सूत्रों में इतना मेल है कि वे इन सूत्रों को यूनानी ग्रन्थों पर आश्रित समझते हैं। कैन्टर महाशय गणित शास्त्र के ऐतिहासिक हैं और जिस ग्रन्थ को वे शुल्व सूत्र का आधार मानते हैं वह २०५ बी० सी० का है किन्तु हमारे शुल्व सूत्र श्रौत सूत्रों के अङ्ग हैं जो ५०० बी० सी० से भी पुराने हैं। अतः यूनानी रेखागणित का

शुल्व सूत्रों पर ही अवलम्बित होना सिद्ध होता है। ज्योतिष शास्त्र में भारतीय ऋषियों ने यूनान आदि से कुछ सहायता ली, जैसा कि हेली, होरा शास्त्र, रोमक सिद्धान्त आदि शब्दों से भी प्रकट होता है। फिर हिन्दुस्तानियों ने स्वतन्त्र उन्नति बहुत की और इसका प्रभाव पश्चिम पर भी पड़ा है। ८वीं एवं ९वीं शताब्दी में भारतीयों ने अरबों को ज्योतिष विद्या सिखलाई और हिन्दू ज्योतिष ग्रन्थों का अनुवाद अरबी में हुआ। यवनाचार्य आदि ब्राह्मण ज्योतिषी अरब में हुये। बगदाद के खलीफा ने कई बार हिन्दू ज्योतिषाचार्यों को इस काम के लिये अपने यहाँ बुलाया। आयुर्वेद में हिन्दुओं के कई ग्रन्थ खलीफा बग़दाद द्वारा ७ वीं शताब्दी के लगभग अनुवादित कराये गये। चरक और सुश्रुत के कई ग्रन्थ ८ वीं शताब्दी में अरबी में अनुवादित हुये। १० वीं शताब्दी का अरबी वैद्य अलरज़ी इनका प्रमाण स्वरूप लिखता है। चरक महाराजा कनिष्क का राजवैद्य था। १७वीं शताब्दी तक अरबी आयुर्वेद इस योरोपीय शास्त्र का आधार स्वरूप रहा। अरबी आयुर्वेदीय ग्रन्थों के जो लैटिन में अनुवाद हुये उनमें चरक का नाम बहुधा आया जिससे प्रकट है कि अरबी वैद्यगण चरक का बड़ा आदर करते थे। वर्तमान योरोप ने कृत्रिम नाक का बनाना भारत से ही सीखा। जब सिकन्दर का धावा हुआ तब उसके वैद्य सर्पदंश निवारण नहीं कर सकते थे। इसलिये इस काम पर उसने भारतीय वैद्य रक्खे। अनेकानेक योरोपीय साहित्यिक भाव बौद्ध ग्रन्थों से निकले। यहाँ तक इस विषय पर जो विचार लिखे गये हैं वे मैकडानल महाशय के आधार पर हैं।

बाबू गंगाप्रसाद एम० ए० पेंशनर डेपुटी कलेक्टर युक्त प्रान्त ने "धर्मों के मूल स्रोत" (Fountainhead of Religion) नामक ग्रन्थमें बड़ी विद्वत्ता पूर्वक सिद्ध किया है कि संसार के सारे भारी धर्म अन्त में वैदिक पर अवलम्बित हैं। यह तो प्रकट ही है कि बौद्धमत वैदिक धर्म का सन्तान है। बाबू साहब ने अकाट्य तर्कों से सिद्ध किया है कि मुसलमानी मत का आधार ईसाई है तथा ईसाई का बौद्ध। वे यहूदी का पारसी और इसका वैदिक मत आधार स्वरूप सिद्ध करते हैं।

अतः ऐसा प्रकट होता है कि संसार के सारे मत अन्त में वैदिक धर्म पर अवलम्बित हैं। जूरास्टर और आब्रहम के मत वैदिक पर अवलंबित माने जा सकते हैं अथवा कम से कम इन के मूल एक थे। "जान दि बैपटिस्ट" ईसा के गुरु बौद्ध सिद्धान्तों से अभिज्ञ थे। उन्हीं से ईसा ने बौद्ध मत जाना होगा। बाबू साहब ने बहुत से बौद्ध और ईसाई सिद्धान्त एक ही जगह रख कर उनकी समानता दिखलाई है। रमेशचन्द्र दत्त ने दिखलाया है कि बौद्ध और ईसाई गिरजाओं में बहुत बड़ी समानता है। अवेह् नामक ईसाई पादरी ने तिब्बत में जो बौद्ध रीतियाँ देखीं, उनसे उसे ईसाई रीतियों की इतनी बड़ी समानता देख पड़ी कि उसे जान पड़ा कि वे इस मत से ली गयीं, किन्तु इतिहास से सिद्ध हुआ है कि वह रीतियाँ ईसा के पूर्व से इसी प्रकार चली आयी हैं। इसलिये बौद्ध मत का ही आधार स्वरूप होना सिद्ध होता है। ईसा से बहुत दिन पूर्व से बौद्धमत की एक शाखा पैलेस्टाइन में स्थापित थी। मध्य एशिया, लङ्का, बर्मा, तिब्बत, चीन, जापान, स्याम आदि में भारतीय बौद्धमत फैला सो प्रत्यक्ष ही है। वालगानदी पर आस्ट्राखान में एक हिन्दू बस्ती अद्यापि वर्तमान है और कैस्पियन सागर के पश्चिमी तट पर हिन्दू अग्नि मन्दिर बना हुआ है। मेक्सिको में एक हाथी के सरवाले मनुष्य रूपी देवता का पूजन होता था। हाल ही में वहाँ एक पत्थर की मूर्ति मिली, जो कदाचित श्रीकृष्ण या बुद्धदेव की है। अतः भारत ने एक प्रकार से सारी दुनिया को धर्म सिखलाया, और मनुष्य जाति में आधी से अधिक आज भी सीधा सीधा भारती मत मानती है।

जो कोमलता, दयालुता, पर-दुख-हानीच्छा आदि भारतीय मत समुदाय ने सिखलायीं, वे अन्यत्र देख नहीं पड़तीं। कारीगरी भी हमारे यहाँ की लोकमान्य है। ताजमहल आज भी संसार के सात आश्चर्यों में गिना जाता है। इसी भांति कांची, मदुरा, साँची, भुवनेश्वर खजुराहा, एलीफ़ैन्टा, अजेन्टा, इलोरा कार्ली आदि की कारीगरी आज भी संसार को चकित करती है। १७ वीं शताब्दी तक बंगाली कपड़े की बारीकी योरोपीय महिलाओं को मुग्ध करती थी और उसका प्रचार रोकने को

इङ्गलैण्ड में क़ानून बनाने की आवश्यकता पड़ी। कपड़े की बारीकी यहाँ बहुत प्राचीन काल से स्थिर थी। दर्शन शास्त्र का तो भारतवर्ष मानों केन्द्र ही रहा है और यहाँ का साहित्य संस्कृत, प्राकृत एवं देशी भाषाओं में बहुत ही प्रशंसास्पद है। ऋषियों तथा योगियों की यहाँ इतनी भरमार मची रही है कि इनका बाहुल्य उचित से बहुत अधिक कहा गया है। ऐसी ऐसी अनेकानेक अन्य बातें दिखलाई जा सकती हैं। अतः केवल पूर्ण राजनैतिक उन्नति न होने के कारण ही भारतीय इतिहास को फीका कहना नहीं फबता जब कि उपरोक्त अन्य उन्नतियाँ इसे गौरव प्रदान करती हैं।

पुराणों के लक्षण कहने में पंडितों ने पाँच मुख्य बातें मानी हैं जिनका वर्णन अन्यत्र होगा। उनके अनुसार जाँचने पर विष्णु पुराण एक बहुत ही माननीय ग्रन्थ ठहरता है। इसमें राजवंशों का कथन है भी बहुत अच्छा, बड़ा और पूरी पीढ़ियों तक। यह ग्रन्थ कहने को तो विष्णु पर है, किन्तु साम्प्रदायिक ग्रन्थों की भांति इसमें कट्टरपन कहीं नहीं है और सर्वत्र गम्भीरता देख पड़ती है। इसलिए हम अपना पौराणिक राजवंश मुख्यतया विष्णु पुराण के ही आधार पर कहेंगे, किन्तु फिर भी ऊपर लिखे हुये ग्रन्थों तथा महाभारत, हरिवंश, अग्नि पुराण आदि को भी मिलाकर जहां तक हो सकेगा शुद्ध राजवंश लिखे जावेंगे। विष्णु पुराण और हरिवंश के कथन पूर्ण हैं।

जैन पंडितों ने भी पुराणों के महत्व को माना है। ५ वीं शताब्दी की जैन पुस्तक शत्रुंजय माहात्म्य में लिखा है कि "पुराणों के तीन भेद हैं, अर्थात हिन्दू, जैन और बौद्ध। उनमें वायु, मत्स्य और विष्णु पुराणों की राजवंशावलियाँ माननीय हैं और कितने ही विषयों के सम्बन्ध में कुछ लोगों को विष्णु पुराण अन्य दो पुराणों से कम प्रामाणिक प्रतीत होता है।" तंत्रों की ऐतिहासिक तथा भौगोलिक टिप्पणियों से भी अच्छी ऐतिहासिक सामग्री मिलती है।

पौराणिक राजवंश मुख्य करके तीन ही हैं, अर्थात स्वायम्भुवमनु वंश, सूर्यवंश और चन्द्रवंश। हमने सुभीते के लिये दैत्यों, दानवों आदि का भी कुछ कथन कर दिया है तथा प्रद्योतन, शिशुनाग और महापद्म के वंशों का भी कथन मिला कर कुल सात राजवंश कहे हैं। सूर्य और चन्द्रवंशियों की शाखाओं को अलग नम्बर न देकर नम्बर के साथ अ, आ, आदि करके कहा है, जिसमें हर एक वंश की एकता पाठक के ध्यान से न उतरे।

द्वितीय संस्करण तक हमने विष्णु और हरिवंश के आश्रय पर वंशावलियाँ लिखी थीं। दूसरा संस्करण सन् १९२३ में निकला था, और पहला सन् १९१९ में। इधर पौराणिक राजवंशों पर दो और प्रधान ग्रन्थ निकले हैं अर्थात् पहला पार्जिटर कृत Ancient Indian *Historical Tradition 1922* का, और दूसरा डा० सीतानाथ प्रधान कृत chronology of Ancient India १९२७ का। डा०

रायचौधरी महाशय का एक तीसरा ग्रंथ इन्हीं दोनों के बीच में निकला है। इसमें परीक्षित के समय से गुप्त काल के पूर्व तक का हाल दृढ़ है। प्रधान ने रामचन्द्र के समय से महाभारत काल तक का वर्णन बड़े परिश्रम के साथ वैसा ही अच्छा लिखा है, जैसा कि रायचौधरी ने परीक्षित से पीछे वाला हाल कहा। इन दोनों ग्रन्थों से भगवान रामचन्द्र के समय तक का इतिहास दृढ़ हो जाता है। उसके पूर्व के विवरण में अब तक सन्देह उपस्थित है। रामचन्द्र से महाभारत पर्यन्त वंशावली निरूपण करके प्रधान महाशय ने बड़ा ही भारी कार्य किया है। उन्होंने तेरह वंशावलियाँ प्राचीन पौराणिक ग्रन्थों से निकाल कर यह प्रमाणित कर दिया है कि उपर्युक्त समय में १२ से १५ तक पीढ़ियाँ हुई थीं। पुराणों में जो वंशावलियाँ दी हुई हैं. उनमें से प्रधान की विधि पूर्वक जाँच में कई पीढ़ियाँ अशुद्ध हो गयी हैं। वे सब कारण यहाँ भी कहने से हमारे ग्रन्थ की अनावश्यक वृद्धि होगी। यह ग्रन्थ कलकत्ता विश्वविद्यालय ने छपवाया है। उसकी कारण माला हमें भी दृढ़ मालूम पड़ती है। अतएव यहाँ प्रधान महाशय के निष्कर्ष मात्र दिए जावेंगे। पार्जिटर महाशय ने जितने कथन किए हैं, वे कोई आधार शून्य नहीं हैं। उन्होंने अपने प्रत्येक कथन के आधार-पाद नोटों में दे दिये हैं। फिर भी वंशावलियों के कथन में प्रधान के तर्कों से उनकी बहुतेरी पीढ़ियाँ अशुद्ध हो जाती हैं। भेद मिटाने के विचार से हम यहाँ पार्जिटर और प्रधान को मिलाकर पीढ़ियाँ लिखेंगे। राम से पहले वाली पीढ़ियाँ प्रधान में सब हैं नहीं, तथा पार्जिटर वाली बहुतेरी (पुराणों पर अवलम्बित होकर भी) गड़बड़ हैं। इसलिए सब बातों पर विचार करके हमको इस ग्रन्थ में कुछ नवीनता के साथ वंश-वृक्ष लिखने पड़े हैं। इनमें प्रधान से तो प्रायः पूरा का पूरा साम्य है, किन्तु प्रकट कारणों से अन्यों से थोड़ा सा भेद है। भेद के कारण यथा स्थान दे दिए जायेंगे। अब मुख्य विषय उठाया जाता है। पार्जिटर ने मनु वैवस्वत से वंश-वृक्ष उठाया है, किन्तु पुराणों में स्वायम्भुव मनु का भी वंश है। हम उसका तथा दैत्यों आदि का भी कथन करेंगे।

ब्रह्मा विष्णु के अवतार थे (वि० पु०)। उन्होंने सनक, सनन्दन, सनातन और सनत्कुमार नामक चार मानस पुत्र उत्पन्न किये, अर्थात्

साधारण रीति से न रचकर इन्हें मन से बनाया। इन चारों ने उनके कहने पर भी सृष्टि न चलाई। तब ब्रह्मा ने और दस मानस पुत्र उत्पन्न किये, अर्थात् अत्रि, क्रतु, मरीचि, अंगिरा, पुलह, भृगु, प्रचेता, पुलस्त्य, वशिष्ठ और नारद। इनके अतिरिक्त स्वायम्भुव मनु, इन्द्र और दक्ष नामक तीन और ब्रह्म पुत्र हुये। इन्हीं से प्रसिद्ध पौराणिक वंश चले, जिनका वर्णन अब किया जाता है। पुराणों के अनुसार मनुष्यों की सृष्टि दो बार कर के हुई। इस कथन से भारत में आनेवाली आर्य्यों की दो धाराओं का पता पड़ता है।

मनु स्वायम्भुव वंश।

वंश नं० (१)

(१) स्वायम्भुव मनु—प्रियव्रत (उत्तानपाद भाई)—अग्नीध्र—नाभि (किम्पुरुष, हरिवर्ष, इलावृत, रम्य, हिरण्यवान, कुरु, भद्राश्व, केतुमाल भाई)—(५) ऋषभ—भरत-सुमति-इन्द्रद्युम्न परमेष्ठि-(१०) प्रतिहार-प्रतिहर्ता—भुव—उद्गीथ्य—प्रस्तार—(१५) पृथु—नक्त—गय—नर-विराट—(२०) महावीर्य्य—धीमान—महान—मनुस्य—त्वष्टा—(२५) विरज—रज—(२७) विपज्ज्योति।

मनु स्वायम्भुव की कन्यायें प्रसूति, आकूति और देवहूति थीं। आदिम बटवारे में भारत नाभि को मिला। भारत नाम भरत (नं० ७) पर पड़ा। विष्णु पुराण के अनुसार स्वारोचिष, उत्तम, तामस और रैवत मनु सब प्रियव्रत के वंशधर थे। इन चारों मन्वन्तरों में चार ही और नाम मानने से स्वायम्भुव मनु की प्रियव्रत वाली शाखा में ३५ राजे पाये जाते हैं। इनके पीछे उत्तानपाद के वंशज चाक्षुष छठें मनु हुए। ये मनुवंशी ३६ वें नरेश थे।

वंश नं० (१ अ)

(१) स्वायम्भुव मनु—उत्तानपाद—ध्रुव (उत्तम भाई)—श्लिष्टि (भव्य भाई)—रिपु (रिपु)—(नं० ६ से ३५ तक अज्ञात नाम)-

(३६) चाक्षुप मनु—ऊरु (सुद्युम्न भाई)—अंग—(३९) वेन—(४०) पृथु (निपाद भाई)—अन्तर्द्धान (पालित भाई)-हविर्द्धान—प्राचीन बर्हिष (प्रभावशाली; प्रजा की वृद्धि हुई।) शुक्र (कृष्ण भाई)—(४४) प्रचेतस—(४५) दक्ष।

सूर्य्य वंश।

ब्रह्मा के मानस तनय मरीचि के पुत्र कश्यप हुये जिन्होंने दक्षपुत्री अदिति में सूर्य्य को उत्पन्न किया। वैवस्वत मनु इन्हीं सूर्य्य के पुत्र थे। इसीलिये मनुवंशी सूर्य्यवंशी कहलाते हैं। इन्हीं मनु से सूर्य्य और चन्द्र दोनों वंशों वालों पीढ़ियों की गिनती होगी। यह सूर्य्य वंश इस प्रकार है:—

वंश नं० २ सूर्यवंश।

१. मनुवैवस्वत—इक्ष्वाकु (नृग या नाभाग, धृष्ण या धृष्ट, शर्याति, प्रांशु, प्रपध्र, नाभानेदिष्ठ, सुद्युम्न, करपु, नरिष्यन्त आदि भाई)—विकुक्षि उपनाम शशाद (निमि दंड आदि कई भाई) —पुरंजय उपनाम ककुत्स्थ—५. अनेनस—पृथु—विष्टराश्व (विश्वगश्व)—आर्द्र—युवनाश्व (प्रथम)—१०. श्रावस्त—बृहदश्व—कुवलयाश्व (उपनाम धुंधमार)—दृढ़ाश्व—प्रमोद—१५. हर्यश्व (प्रथम)—निकुम्भ—संहताश्व—अकृशाश्व —प्रसेनजित—२०. युवनाश्व (दूसरे)—मान्धातृ—पुरुकुत्स (अम्बरीप, मुचकुन्दभाई)—त्रसदस्यु—सम्भूत (वेद में तृक्षि)—२५, त्रुरुक—वृक—श्रुत—नाभाग—अम्बरीप—३०. सिन्धु द्वीप—शतरथ (कृतशर्मन)—विश्वशर्मन-विश्वसह (विश्वमहत) प्रथम—दिलीप खट्वांग—३५. दीर्घबाहु—रघु—अज—दशरथ—३९. राम— ४०. कुश—अतिथि—निषध—नल—नभस—४५. पुण्डरीक—क्षेम धृत्वन—देवानीक — अहीनगु— (रूप—रुरुभाई पारिपात्र के) पारिपात्र (सहस्राश्व छोटेभाई) शल—दल—५०. वल (शल और दल वल के बड़े भाई, तथा उनसे पूर्व राजा थे)—उक्थ—वज्रनाभ - शंखन—व्युषिताश्व—५५. विश्वसह—हिरण्यनाभ—

नं०२ (अ)-कुशवंशी नं० ४९ पारिपात्र के भाई सहस्राश्व का वंश।

४९. सहस्राश्व—५०. चन्द्रावलोक—तारापीड—चन्द्रगिरि—भानुश्चन्द्र—५४. श्रुतायुस।

नं० २ (आ) सूर्यवंशी नं० ३९ के पुत्र लव का वंश, श्रावस्तीराज्य।

३९. राम—४०. लव—पुष्प—ध्रुवसन्धि—सुदर्शन—अग्निवर्णशीघ्र—४५. मरु—अश्रुश्रुत—सुसन्धि— अमर्ष— विश्रुतवन्त—५०. विश्वबाहु—प्रसेनजित—तक्षक— बृहद्बल—बृहद्रक्षण -५५. उरुक्षय-वत्सव्यूह—प्रतिव्योम (प्रतिव्यूह)—दिवाकर—सहदेव—६०. बृहदश्व—भानुरथ—प्रतीताश्व—सुप्रतीक—मरुदेव—६५. सुनक्षत्र — किन्नर (पुष्कर)-अन्तरिक्ष—(सुषेण)—सुवर्ण (सुषेण इनके बड़े भाई थे-तथा सुपर्ण और सुतपस छोटे)—अमित्रजित (सुमित्र भाई)—७०. बृहद्राज (भरद्वाज भाई)—धर्मिन —(बर्हिष भाई) कृतंजय (भ्रात)—रणंजय, (भ्रात इनके बड़े भाई थे)—संजय—७५. महाकोशल (शाक्य भाई)—प्रसेनजित—विदूरथ (क्षुद्रक भाई)—क्षुलिक—सुरथ ८० सुमित्र।

प्रधान का कथन है कि बृहद्बल नं० ५३ से प्रसेनजित नं० ७६ तक २३ पीढ़ियां पड़ती हैं। प्रसेनजित ५३३ बी० सी० में गद्दी पर थे। बृहद्बल महाभारत युद्ध में लड़े थे। आप एक पीढ़ी के २८ वर्ष जोड़ते हैं। अतएव ५३३ + २३ × २८ = ५३३ + ६४४ = ११७७ बी० सी० महाभारत युद्ध का समय इस हिसाब से पड़ता है।

नं० २ (इ) लववंशी महाकोशल, नं० ७५ के भाई शाक्य का विष्णुपुराण के अनुसार वंश।

७५—शाक्य-शुद्धोदन—गौतमबुद्ध—राहुल—क्षुद्रक—८०. कुण्डक—सुरथ—८२. सुमित्र।

नं० २ (ई) हरिश्चन्द्र का राजवंश।

३०. अनरण्य, त्रसदश्व (वृषदश्व)—हर्यश्व—वसुमनस (वसुमत)

—वृषन्वन—३५. त्र्य्यारुण—सत्यव्रत (त्रिशंकु)—हरिश्चन्द्र—रोहिताश्व—हरित—४०. चंचु—४१. विजय।

यह वंश पुराणों तथा पार्जिटर में उपरोक्त सूर्यवंश के नं० २४ सम्भूत के पीछे चलता है, और हमारे नं० २५ ककुत्स्थ। हमारे हरिश्चन्द्र वंश के नं० ४१. विजय चचु के पुत्र लिखे हैं। इसमें कठिनता यह पड़ती है कि पुराणों तथा एतरेय ब्राह्मण में लिखा है कि हरिश्चन्द्र के शुनःशेप वाले बलिदान सम्बन्धी यज्ञ में विश्वामित्र और जमदग्नि मौजूद थे। यही विश्वामित्र रामचन्द्र तथा उत्तर पांचाल महीप सुदास के समकालीन थे। वेद के तृतीय एवं अन्य मंडलों से भी विश्वामित्र और जमदग्नि की मित्रता, शुनः शेप से उनका सम्बन्ध तथा सुदास के यहाँ होना प्रकट है। वशिष्ठ की म्लेच्छ सेना से हार कर ही विश्वामित्र तपस्या करने लगे। उसी दशा में त्रिशंकु द्वारा अपने कुटुम्ब पर उपकार होने से आप इनके सहायक बने। फिर वशिष्ठ को हटा कर आप तृशंकु को राज्य दिला उनके पुरोहित बने। अनन्तर तृशकु पुत्र हरिश्चन्द्र के अश्वमेध में आप वशिष्ठ से पराजित हो कर फिर तप करने पुष्कर चले गये। अतएव हरिश्चन्द्र के समय वाले विश्वामित्र वही कौशिक कान्यकुब्ज नरेश थे। उनके तृतीय मंडल वेद में इनके पिता गाथिन (गाधि) के भी मंत्र हैं। इनका सुदास का पुरोहित होना तृतीय मंडल ऋगवेद में प्रकट है। वहाँ कुशिक भी इनके पितामह या पूर्व पुरुष हैं। सुदास और राम प्रायः समकालीन थे। इसके कारण इस ग्रन्थ में अन्यत्र हैं। ऐसी दशा में यदि हरिश्चन्द्र राम के पूर्व पुरुष हों, तो विश्वामित्र का जीवन काल सूर्य वंशी २० पीढ़ियों के बराबर पर जावेगा, तथा सूर्यवंश में ये १२ पीढ़ी जुड़ जाने से राम की सुदास से समकालीनता नष्ट हो जावेगी, जो दृढ़ प्रमाणों पर आधारित है। अतः यह हरिश्चन्द्र का वंश राम के पूर्व पुरुषों का न होकर बिरादरी वालों का था।

नं० २ (उ) सगर का राजवंश।

३८. बाहु—सगर—४०. असमंजस—अंशुमंत—दिलीप—४३. भगीरथ।

काशीराज प्रतर्दन ने हयहय वंशी वीतिहोत्र को पराजित किया जिससे वह राज्य छोड़ कर भरद्वाज के साथी भार्गव ऋषि हो गये। उनके पुत्र अनन्त, पौत्र दुर्जय और प्रपौत्र सुप्रतीक के नाम हैहय भूपालों में लिखे हैं। सगर ने इस वंश का राज्य ही नष्ट कर दिया। (प्रमाण आगे सगर के वर्णन में मिलेंगे।)

उनके द्वारा सुप्रतीक का राज्य जीता जाना सिद्ध है। अतएव सगर प्रतर्दन के पौत्र अलर्क के प्रायः समकालीन होंगे। उधर रामायण के अनुसार अलर्क के पितामह प्रतर्दन रामाभिषेक के समय अयोध्या में नेवते आए थे। हरिवंश के अनुसार अगस्त्य की स्त्री लोपामुद्रा ने अलर्क को आशिर्वाद दिया। उधर रावण को जीतने में अगस्त्य ने राम की शस्त्रास्त्रों द्वारा सहायता की। अतएव अलर्क, प्रतर्दन, सगर और राम प्रायः समकालीन बैठते हैं। सगर ने हैहयों को हराकर वैदर्भ राजकुमारी से विवाह भी किया। प्रशस्ति के पूर्व वे और्व अग्नि ऋषि के आश्रम में रहते थे। ये अग्नि और्व ऋचीक के पिता और्व के वंशधर थे। अतएव बाहु और सगर राम के बहुत पहले नहीं हो सकते थे। सगर मध्य भारतीय भूपाल समझ पड़ते हैं। कम से कम वे रामचन्द्र से २३ पीढ़ी ऊँचे पूर्व पुरुष नहीं हो सकते, जैसा पौराणिक वंशावलियों में दर्ज है। यहाँ बाहु, (मुख्य वंश नं० २६) वृक के पुत्र लिखे हुए हैं। सम्भव है, बाहु और सगर हरिश्चन्द्र के वंशधर हों, जैसा कि पुराणों में कथित है, किन्तु वे राम के पूर्व पुरुष न थे। उपर्युक्त वीतिहोत्र सुदास के पिता के समकालीन भरद्वाज के साथी थे। उससे भी वे बहुत पुराने न थे।

नं० २ (ऊ) दक्षिण कोशल का रामवंश।

३५. अयुतायुस (उपनाम भगस्वर) ३६. ऋतुपर्ण—सर्वकाम—सुदास—३९ मित्रसह कल्मापपाद—अश्मक—४१. उरकाम—४२. मूलक।

नं० ३९. कल्मापपाद का (दूसरा वंश)—सर्व कर्मन—अनरण्य—निघ्न—४३. अनमित्र (रघुभाई)। दक्षिण कोशल वर्तमान ज़िलों रायपुर, बिलासपुर, और सम्भलपुर तथा कभी कभी गंजाम के भी अंश पर

विस्तृत था। उसकी राजधानी रायपुर ज़िले में श्रीपुर थी। ऋतुपर्ण के यहाँ प्रसिद्ध नैपध राजा नल रहे थे। नल उत्तर पांचाल नरेश (नं० ३५) के सम्बन्धी थे, क्योंकि इनकी पुत्री इन्द्रसेना उनके पुत्र मुद्गल को व्याही थी। नल विदर्भ के यादव नरेश भीम रथ नं० ३४ के दामाद थे। इसलिए इनका स्थान दो समकालीनताओं से दृढ़ होता है। नल की पुत्री इन्द्रसेना को वैदिक साहित्य में नलायनी कहा है। मुद्गल वेदर्षि भी थे। नल श्रेष्ठ रथ संचालक थे। उनकी पुत्री नलायनी ने भी रथ संचालन द्वारा एक युद्ध में अपने पति को विजय दिला कर उनका प्राय: खोया हुआ प्रेम फिर से प्राप्त किया। नल मुद्गल के श्वसुर होने से उनसे एक पीढ़ी ऊँचे थे। इधर मुद्गल के पुत्र वध्यूश्व के पुत्र एवं कन्या दिवोदास एवं अहल्या थी। अहल्या शरद्वन्त गोतम को व्याही थी और उसे राम ने पवित्र किया। तिमिध्वज शम्बर को जीतने में राम के पिता दशरथ ने दिवोदास की सहायता की। इन्हीं दिवोदास के चचेरे भाई पिजवन के पुत्र प्रसिद्ध वैदिक विजयी सुदास थे। ऋतुपर्ण नल के साथी होने से दिवोदास से चार पीढ़ी ऊँचे के समकालीन थे। अतएव कल्मापपाद राम के प्राय: समकालीन बैठते हैं। पौराणिक वंशावलियों में उनके प्रपौत्र मूलक राम से आठ पीढ़ी ऊचे पूर्व पुरुष हैं जो बात उपरोक्त कारणों से असिद्ध है। कल्मापपाद राम के समकालीन विश्वामित्र और वशिष्ठ के भी समकालीन थे। रामायण में दशरथ का शम्बर के जीतने में भाग लेना लिखा है। इधर वेद में दिवोदास शम्बर को जीतते ही हैं। समझ पड़ता है कि गुप्त काल के पौराणिक सम्पादकों ने सगर, हरिश्चन्द्र तथा दक्षिण कोशल का पूरा हाल जाने विना ही उनकी वंशावलियाँ मुख्य सूर्यवंश में मिला दी हैं। महर्षि वाल्मीकि ने इस वंशावली को निम्न प्रकार से लिखा :—

१. वैवस्वतमनु—इक्ष्वाकु-कुक्षि—विकुक्षि—५. बाण—अनरण्य—पृथु—त्रिशंकु—धुन्धमार—१०. युवनाश्व—मान्धातृ—सुसन्धि—ध्रुवसन्धि—(प्रसेनजित भाई)—भरत—१५. असित—सगर-असमंजस-दिलीप—भगीरथ—२०. काकुत्स्थ—रघु—कल्मापपाद—शंखण—

सुदर्शन—२५. अग्निवर्ण—शीघ्रग—मनु—प्रशुश्रुक—अम्बरीष—३०. नहुष—ययाति—नाभाग—अज—दशरथ—राम ।

यह वंश वृक्ष बालकाण्ड के ७०वें अध्याय में रामचन्द्र के वैवाहिक शाखोच्चार में लिखा हुआ है। इसमें हरिश्चन्द्र तथा दक्षिण कोशल के वंश तो प्रायः नहीं हैं, किन्तु सगर उपस्थित हैं, तथा लववंशी ध्रुवसन्धि, सुदर्शन, अग्निवर्ण आदि भी राम के पूर्व पुरुषों में लिखे हैं। चन्द्रवंशी नहुष और ययाति भी यहीं आ गए हैं। यह वंश वृक्ष व्यासों द्वारा सुरक्षित न था, वरन इक्ष्वाकुओं में प्रचलित था, जिनसे प्रायः छठी सातवीं शताब्दी बी० सी० में इसे वाल्मीकि ने पाया। तो भी यह मनु से राम तक केवल ३० पीढ़ियाँ मान कर कम से कम ६३ पीढ़ी मानने वाले वंश वृक्ष के बहुत प्रतिकूल है।

उपरोक्त वंशावली में हमने दक्षिण कोशल की शाखा अलग करने में प्रधान का भी अनुगमन किया है। सगर और हरिश्चन्द्र की शाखायें सर्वमान्य घटनाओं के आधार पर अलग की गई हैं। सुदास तथा राम की शाखाओं की समकालीनता प्रधान ने भी दिखलाई है। वंशावली में राम पर्य्यन्त बहुत करके पाजिटर, विष्णु पुराण और हरिवंश का अनुगमन है। राम के पीछे प्रधान के निष्कर्ष माने गये हैं। वे सब वैदिक अथच पौराणिक साहित्य पर आधारित हैं। उपर्युक्त कई स्थानों पर जो विविध घटनायें अंकित हैं, उनके आधार उनके यथा-स्थान वर्णनों में दिये जायँगे। सुदास और राम की समकालीनता के कारण उत्तर पांचाल वंश के नीचे भी लिखे जावेंगे—

नं० २. (ए) विदेह का सूर्यवंश—मैथिल शाखा

मुख्यवंश का (नं० २) इक्ष्वाकु—(३ से १४ तक नाम अज्ञात)—निमि—१६. मिथि—जनक—उदावसु—नन्दिवर्द्धन—२०. सुकेतु—देवरात—२२. बृहदुक्थ—महावीर्य—धृतिमन्त—सुधृति—धृष्टकेतु—२७. हर्यश्व—मरु—प्रतिन्धक—कीर्तिरथ—देवमीढ़—विबुध—महाधृति—कीर्तिरात—महारोमन—स्वर्ण रोमन—३७. ह्रस्वरोमन—सीरध्वज (कुशध्वज भाई)—३९. भानुमन्त—शतद्युम्न—शुचि—४२. ऊर्जवह—सनद्वाज—शकुनि—४५. स्वागत (अनुमित भाई)—

सुवर्चसश्रुत ४७. सुश्रुतजय - विजय ऋतु--सुनय—वीतहव्य—५२. घृति -५३. बहुलाश्व—५४ कृति।

नं० २ (ऐ) मैथिल सांकाश्य शाखा।

वंश नं० २ ए का (नं० ३७) ह्रस्वरोमन--कुशध्वज --धर्मध्वज —कृतध्वज (मितध्वजभाई जिसका पुत्र खांडिक्य था) ४१. केशिध्वज।

नं० २. (ओ) मैथिल वंश की ऋतुजित शाखा

वंश नं० २, ए, का नं० ४४ शकुनि—ऋतुजित—अरिष्ट नेमि—४७. श्रुतायुस सूर्याश्व संजय—क्षेमारि—अनेनस—मीनरथ—सत्यरथ ५३. सात्यरथी —उपगुरु—श्रुतअग्नि — ५६. उपगुप्त (शायद उग्रसेन हों)। सीरध्वज जनक, नं० २ ए ३८. (सूर्यवंशी ३८) दशरथ के समधी समकालीन थे। इस शाखा में वंशावलियों से प्राय: १२ नाम छूट रहे हैं, ऐसा समझ पड़ता है। सम्भव है कि इक्ष्वाकु से ही निमि अथवा मिथि कई पीढ़ी नीचे हों।

नं० २. (औ) वैशाली का सूर्यवंश

१. मनुवैवस्वत -नाभानेदिष्ठ—भलन्दन —वत्सप्री—५. प्रांशु—प्रजाति—खनित्र—क्षुप—विंश—१०. विविंश—खनीनेत्र—करन्धम—अवीक्षित—१४. मरुत्त--१५,नरिष्यन्त -दम--राष्ट्रवर्द्धन--सुधृति—नर—२०, केवल—बन्धुमन्त—वेगवन्त—बुध- तृणविन्दु—२५, निश्रवस—विशाल--हेमचन्द्र—सुचन्द्र--धूम्राश्व- ३० संजय--सहदेव—कृशाश्व—सोमदत्त—जनमेजय - ३५. उपरोक्त वंश वृत्त पार्जिटर महाशय ने कई पुराण मिला कर लिखा। अश्वमेघपर्व म० भा० में यही निम्नानुसार लिखा है:—

१. मनु—प्रसन्धि—क्षुप—इक्ष्वाकु -५. विंश (९९ भाई और)—विंश्वास—खनिनेत्र (चौदह और भाई)—सुवर्चस—१०. कारन्धम—अवीक्षित् ११. मरुत्त।

पहला वंश वृक्ष प्रमाणनीय समझ पड़ता है।

अब चन्द्रवंश का कथन चलता है। ब्रह्मा के मानसपुत्र अत्रि

अज्ञात नाम) ४८. दुष्टरीतु—४९. पृषत्—५०. द्रुपद—५१. धृष्टद्युम्न—५२. धृष्टकेतु। हरिवंश में लिखा है कि मुद्गल, सृञ्जय, बृहदिषु, क्रिमिलाश्व और जवीनर का बसाया हुआ देश पांचाल कहलाया। इस काल इस वंश में राजबल मुद्गल, काम्पिल्य, दिवोदास, प्रतीक और सहदेव में बटा हुआ समझ पड़ता है। सुदास के पिता पिजवन थे और सुदास का दिवोदास से इतना मेल था कि दूर के चचा हो कर भी दिवोदास वेद में सुदास के पिता कहे गए हैं। यादव नं० ४४ भजमान की उत्तर पांचाल नं० ३७ संजय की दो पुत्रियां ब्याही थीं। भजमान के पितामह सत्वन्त राम के समकालीन थे। इससे भी सुदास का समय राम के निकट आता है। भजमान के विवाहों के प्रमाण यादववंश के कथन में हैं। उपरोक्त नं० ३४ भ्रत के पुत्र भृम्याश्व के पुत्र मुद्गल और काम्पिल्य थे। मुद्गल को निषधनाथ प्रसिद्ध नल की बेटी इन्द्रसेना नलायनी ब्याही थीं। मुद्गल अच्छे युद्धकर्ता तथा वेदर्षि थे। इनके बेटे वेद में ख्यात वध्र्यश्व के पुत्र दिवोदास थे, तथा कन्या शारद्वन्त गौतम की स्त्री अहल्या। राम ने अहल्या को पुनीत किया, तथा उनके पिता दशरथ ने शम्बर को जीतने में दिवोदास की सहायता की। वेद में सुदास, पिजवन और दिवोदास दोनों के पुत्र लिखे हैं। सम्भवतः दिवोदास ने इन्हें गोद लिया हो, या काका होने के कारण ये पिता लिखे हों। एक स्थान पर यह भी लिखा है कि प्रसिद्ध पौरव भीष्म ने अपने ताऊ बाल्हीक को पिता कहा था। दिवोदास के पुत्र थे मित्रयुस, पौत्र सोम, और प्रपौत्र मैत्रेयस। बाजिनेय भरद्वाज वैदिक ऋषि थे। उनके मंत्रों में आया है कि दिवोदास प्रतीक तथा अभ्यावर्तिन चायमान ने उनका मान किया। दशरथ उनके समकालीन थे। अभ्यावर्तिन चायमान के पुत्र थे। भरद्वाज के बेटे थे पायु और शुनहोत्र। प्रसिद्ध वैदिक ऋषि गृत्समद शुनहोत्रात्मज थे। अहल्या के पुत्र शतानन्द, सीरध्वज जनक के पुरोहित थे। हरिवंश सत्यधृति को शतानन्दात्मज बतलाता है। द्रोण की स्त्री कृपी और साले कृपाचार्य सत्यधृति के वंशधर थे। हरिवंश में यह सत्यधृति की पुत्री और पुत्र ही कहे गए हैं, किन्तु पुश्तों का बीच पड़ता है, सो वास्तव में ये दूर के वंशधर। द्रोणाचार्य से हार हार कर द्रुपद उत्तर से दक्षिण पांचाल मात्र के राजा रह

गए, तथा उत्तर पांचाल के शासक द्रोणाचार्य और फिर अश्वत्थामा हुए। बौद्ध ग्रन्थ मंजु श्री मूलकल्प में अश्वत्थामा प्रसिद्ध मन्त्री लिखे हैं।

वंश नं० ३ (इ) दक्षिण पांचाल वंश।

(वंश नं० ३ का नं० ३०) हस्तिन—अजमीढ़—बृहद्वसु—बृहदिपु ३४. बृहद्धनुष—बृहद्धर्मा - (हरिवंश के अनुसार)—जयद्रथ—३७. विश्वजित—सेनजित—३९. रुचिराश्व—४०. पृथुषेण—पौरपार (प्रथम)—नीप—समर—पार (दूसरे)—४५. पृथु—सुकृति—विभ्राज—४८. अणुह (इनको किसी शुकदेव की कन्या ब्याही थी)—ब्रह्मदत्त—५०. विश्वसेन—दृढ़सेन—(उदक्सेन)—भल्लाट—५३. जनमेजय। इनके पीछे दक्षिण पांचाल में द्रुपद का राज्य हुआ। पहले दोनों पांचाल द्रुपद के हुए, किन्तु द्रोण से हारने पर केवल दक्षिण पांचाल द्रुपद के पास रहा। प्रधान में इसकी कुछ पीढ़ियाँ निम्नानुसार हैं:—बृहदनु—बृहन्त—बृहन्मनस - बृहद्धनुष—बृहदनुहपु—बृहत्कर्मन—जयद्रथ।

वंश नं० ३ (ई) मागध शाखा।

(वंश नं० ३ का नं० ३८) कुरु—सुधन्वन (प्रथम। चित्ररथ भाई। हरिवंश में सुधन्वन कुरु के पुत्र लिखे हैं किन्तु प्रधान उन्हें चित्ररथ का पुत्र कहते हैं)—४०. सुहोत्र—४१. च्यवन—कृतयज्ञ—४३. उपरिचरवसु—४४. बृहद्रथ—कुशाग्र—वृषभ (या ऋषभ)—पुष्पवन्त—सत्यहित (या सत्यधृति)—४९. सुधन्वन (दूसरे)—उर्ज—सम्भव—५२. जरासन्ध - सहदेव—५४. सोमाधि—श्रुत श्रवस—अयुतायुस—निरमित्र—सुक्षेत्र —५९. बृहत्कर्म—सेनजित—श्रुतंजय—महाबाहु (विभु, विप्रभाई)— शुचि —६४. क्षेम —भूव्रत—(अनुव्रत, सुव्रतभाई)—६६. धर्मनेत्र (सुनेत्र भाई)—निवृति (नृपति भाई)—सुव्रत—(सुश्रय, सम, सुनेत्र भाई) – ६९. दृढ़सेन (द्युमत्सेन भाई)—महीनेत्र (सुमति भाई)—सुचल (अचल भाई)—सुनेत्र—७३. सत्यजित—विश्वजित (५८८ बी० सी० में गद्दी पर बैठे)—७५. रिपुञ्जय (५६३ बी० सी० में गद्दी

पर बैठे, तथा ५१३ बी० सी० में अपने मन्त्री पुणिक द्वारा मारे गए)।

प्रधान के अनुसार सोमाधि नं० ५४ से रिपुञ्जय नं० ७५ तक २२ पीढ़ियों का भोगकाल २८×२२=६१६ वर्ष होता है। नं० ६० सेनजित के समय वायु पुराण सुना कर कहा गया कि १६ भविष्यत् बार्हद्रथ राजे होंगे। ये सेनजित (लवबशी न० ५९) दिवाकर तथा (पुरुवंशी नं० ७९) अधिसीम कृष्ण के समकालीन थे। सोमाधि नं० ५४ से विश्वजित नं० ७४ तक २१ पीढ़ियाँ (२१×२८=५८८ वर्ष) हैं। इनका अन्त काल ५६३ बी० सी० में है, सो भारत युद्ध ५६३+५८८=११५१ बी० सी० में आता है। सोमाधि के पिता सहदेव उसी युद्ध में मारे गए थे। पुराणों में सोमाधि से रिपुञ्जय तक ६३८ वर्ष लिखे हैं। पौरव तथा मागध वंशों में प्रधान और पार्जिटर में काफ़ी अन्तर है। यहाँ प्रधान माने गये हैं, क्योंकि इन्होंने कई पुराणों को मिला कर तथा दृढ़ विचार करके अपने कथन किए हैं। वे अभी तक अकाट्य हैं। इतिहास के लिए सौर, पौरव, और मागधवंश बहुत उपयोगी हैं, क्योंकि ये महाभारत के पीछे भी कई पीढ़ियों तक चले हैं। महाभारत के समय पौरव नं० ५३ अर्जुन के समकालीन लववंशी नं० ५४ बृहद्बल, कुशवंशी न० ५४ श्रुतायुस तथा मागधवंशी नं० ५३ सहदेव थे।

वंश नं ३ (उ) चेदिशाखा।

(वंश नं० ३ का नं० ३८) कुरु—सुधन्वन—४०, सुहोत्र—४१, च्यवन—४२, कृतयज्ञ—चेदि—४४, वसुचैद्य—प्रत्यग्र—(४६ से ५० तक अज्ञात नाम) ५१, दमघोष —५२, शिशुपाल—५३, धृष्टकेतु। मागधवंशी नं० ४३ उपरिचर वसु ने चेदि नं० ४४ की सहायता से मगध जीत कर राज्य प्राप्त किया। शिशुपाल पैंतालीस तीन ही पीढ़ी नीचे लिखे हैं, यद्यपि ये पौरव नं० ५३ अर्जुन तथा मागध नं० ५३ सहदेव के समकालीन थे। इससे ज्ञात पड़ता है कि चेदिवंश की प्रायः पांच पीढ़ियां पुराणों से छूट गई हैं। नैषधनल के चैद्य सुबाहु समकालीन थे। ये दमयन्ती के मौसिया थे

(घनपर्ण)। इनका नाम ही उपरोक्त वंशावली में न होकर उसका अधूरापन प्रकट करता है।

वंश नं० ३ (ऊ) काशी शाखा।

(वंश नं० ३ का नं० २४) भरत—विद्थिनभरद्वाज, २६—वितथ—सुहोत्र—काशिक—काशेय—३०. दीर्घतमा—धन्वन्तरि—केतुमान (प्रथम) —भीमरथ—३४. दिवोदास (प्रथम) (अष्टारथ, भार्ड)—३५. हर्यश्व—सुदेव - दिवोदास (दूसरे)—प्रतर्दन—वत्स (अन्यनाम ऋतध्वज घत्रपी या कुवलयाश्व)—४०. अलर्क—सन्तति—सुनीथ—सौम्य—केतुमान (दूसरे) ४५. सुकेतु—धर्मकेतु—सत्यकेतु—विभु (सुविभु)—आनर्त—५०. सुकुमार—धृष्टकेतु—वेणहोत्र--५३. भग—अजातशत्रु—भद्रसेन—५५. दिवोदास (राक्षसों के नाशक लिखे हुये हैं, हरिवंश में)। प्रतर्दन ने भद्रश्रेण्यवंश का नाश किया। उपयुक्त वंश हरिवंश में कथित है। अन्य पुराणों तथा हरिवंश में भी यही वंश दूसरे प्रकार से भी लिखा है। वहाँ सुहोत्र उपनाम सुनहोत्र के पिता क्षत्रवृद्ध और पितामह नहुष लिखे हैं। इस प्रकार जोड़ने से अलर्क मनु से केवल बीसवीं पीढ़ी पर पड़ते हैं, यद्यपि वे ३९वीं पीढ़ी वाले राम के समकालीन थे। अतएव पहले लिखा हुआ वंश ही मान्य है।

वंश नं० ३ (ए) कान्यकुब्ज शाखा।

वंश नं० ३ ऊ, का (नं० २७) सुहोत्र—अजमीढ़—३०. जह्नु—अजक-(सिन्धुद्वीप म० भा० शान्ति पर्व) बलाकाश्व—बल्लभ (म० भा० शान्तिपर्व)—कुशिक— गाधि—३५. विश्वामित्र—अष्टक—३७. लौहि।

उपरोक्त वंशावली हरिवंश में है। यही कुछ अन्य पुराणों में निम्नानुसार है:—

वंश नं० ३ का नं०३. पुरूरवस—अमावसु—५. भीम—कांचनप्रभ— सुहोत्र—जह्नु— सुनह—१०. अजक—बलाकाश्व—कुश—कुशाश्व— कुशिक—१५. गाधि— विश्वामित्र— अष्टक— १८. लौहि।

पुराणों में उपर्युक्त काशी वंश में कथित दूसरी वंशावली के आधार पर विश्वामित्र का नं० १६ आता है। उत्तर पांचाल के (नं० ३९) सुदास के पुरोहित विश्वामित्र, ऋग्वेद के अनुसार थे। अतएव विश्वामित्र का नं० १६ बिलकुल गड़बड़ बैठता है, अथच, ३५ ठीक आता है। इस प्रकार पहली वंशावली यहाँ भी ठीक उतरती है, और दूसरी अशुद्ध। शान्ति पर्व दान धर्म म० भा० में यही शुद्ध वंशावली अजमीढ़ से विश्वामित्र तक है। इसमें केवल एक पीढ़ी अधिक है, अर्थात् कुशिक के पिता बल्लभ हैं, और पितामह बलाकाश्व। विश्वामित्र वशिष्ठ से लड़कर राज छोड़ ब्राह्मण होगए। उनके पौत्र लौहि का राज्य हैहयों द्वारा छिन कर कान्यकुब्ज राज्य उस काल गिर गया। ब्राह्मण होकर विश्वामित्र ने वेद का तीसरा मण्डल गाया। उसमें गाधि की भी ऋचायें हैं। कुशिक की ऋचाएँ दशवें मण्डल में हैं। शुनःशेप थे तो विश्वामित्र के भागिनेय, किन्तु राजा हरिश्चन्द्र की नरबलि से उसे बचा कर आपने पुत्रत्व में ले लिया। भागिनेय जमदग्नि भी आपको परम प्रिय थे। इन दोनों का जन्म भी प्रायः साथ ही हुआ। प्रसिद्ध परशुराम इन्हीं जमदग्नि के पुत्र होने से, थे तो विश्वामित्र से दो पीढ़ी नीचे, किन्तु आयु के विचार से केवल एक पीढ़ी नीचे थे। इन्हीं ने हैहयराज अर्जुन को मारा।

विश्वामित्र के मुख्य ब्राह्मण पुत्रों में मधुच्छन्दस वेदर्षि, कतिपाकत, ऋषभ, रेणु, गालव, शुनःशेप (देवरात) के नाम हैं। कुछ बड़े पुत्रों ने शुनःशेप के पुत्रत्व को न माना, जिससे विश्वामित्र ने उन पुत्रों को छोड़ दिया। विश्वामित्र वंशियों में निम्न गोत्र हैं:—

बभ्रु, देवरात, गालव, हिरण्याक्ष, जाबाल, करीशि या कौशिक, लोहित, मधुच्छन्दस, कात्यायन, पाणिनि, सैन्धवायन, शालंकायन, सुश्रुत, तारकायण और याज्ञवल्क्य। वाशिष्ठ में भी एक याज्ञवल्क्य गोत्र है। याज्ञवल्क्य वैशम्पायन के भागिनेय और शिष्य थे। महाभारत शांति पर्व दान धर्म में विश्वामित्र के उपर्युक्त संतानों का कथन है। ये वंश मत्स्य पुराण में भी कथित हैं। निरुक्त, ऐतरेय तथा पंचविंश ब्राह्मणों द्वारा वेदर्षि विश्वामित्र का आदिम राजत्व प्रमाणित है। इन्होंने देवराज वशिष्ठ को जीत कर सशरीर त्रिशंकु को स्वर्ग दिलाई।

(वायु पु० ८८, ७८—११६, हरिवंश १२, ७१७ से १३,७५३ तक विष्णुपुराण, IV ३, १३, १४, भागवत IX ७, ५-६; म० भा० XIII १३७, ६२५७)

वंश नं० ३ (ऐ) यदुवंश माथुर शाखा।

मनुवैवस्वत—इला—पुरूरवस-आयु—५.नहुप—ययाति—७.यदु—क्रोष्ट,—पृश्निनीवन्त—१०. स्वाहि—रुषद्गु—चित्ररथ—पृथुश्रवस—अन्तर (तम)—१५. सुयज्ञ—उशनस—काशिनेयु—मरुत—कम्बल बर्हिष—२०. शशिबिन्दु—रुक्म कवच—परावृत—ज्यामत—विदर्भ २५. क्रथभीम—कुन्ति—धृष्ट—निर्वृति विदूरथ—३०. दशार्ह—व्योमन—जीमूत—विकृति—भीमरथ—३५. दशरथ (रथवर या एकादशरथ) शकुनि—करम्भ—देवराट—देवक्षत्र (या देवन)—मधु—४०. पुरुद्वन्त (या पुरवश)—जन्तु (या अंशु)—४२. सत्वन्त, ४३. भीम सात्वत—अंधक (भाई भजमान, देववृद्ध तत्पुत्र बभ्रु)—४५. कुकुर—वृष्णि—कपोत रोमन—रेवत (विलोमन या तित्तिरि)—भवरैवत—५०. अज्ञात नाम (प्रधान के अनुसार)—पुनर्वसु—आहुक—उग्रसेन (देवक भाई, देवकी भतीजी)—कंस—५५ श्रीकृष्ण (भागिनेय)।

उपर्युक्त नं० ५२ आहुक के समकालीन देवमीढ़स थे, जो नं० ४६ वृष्णि से इतर किसी वृष्णि के वंशज थे। इनके पुत्र सूर, पौत्र वसुदेव, और प्रपौत्र नं० ५५ श्रीकृष्ण थे। इनके पुत्र, पौत्र, प्रपौत्र क्रमशः प्रद्युम्न, अनिरुद्ध और वज्र नं० ५८ थे। श्रीकृष्ण ५५ पौरव नं० ५३ अर्जुन के समकालीन और साले थे। अन्धक के भाई भजमान ने उत्तर पाँचाल नरेश संजय की दो कन्याओं के साथ विवाह किया। (वायु पु० ९६, ३, हरिवं० ३८, २०००१, मत्स्य ४४, ४९, पद्मपथ १३७३३)

वंश नं० २ (ओ) यदुवंशी हैहय का माहिष्मती वंश दक्षिण मालवा में।

(वंश नं० ३ ऐ का नं० ७) यदु—सहस्रजित—९. शतजित—(१० से २४ तक अज्ञात नाम)—२५. हैहय—२६. धर्मनेत्र—कुन्ति—

२८. साहंज—महिष्मन्त—३०. भद्रश्रेण्य—दुर्दम—कनक—३३. कृतवीर्य—३४. अर्जुन—जयध्वज—३६. तालजंघ—३७. वीतिहोत्र (या वीतिहव्य)—अनन्त—दुर्जय—४०. सुप्रतीक। प्रतर्दन और सगर ने हैहय वंश को नष्ट किया, और वह राज्यच्युत हो गया। सुप्रतीक के पीछे इस वंश का पता न रहा। इस काल दो हैहय वंश थे। वे दोनों गिर गए।

वंश नं० ३ (श्री) की वैदर्भ चेदि शाखा।

(वंश नं० ३ ए का नं० २४) विदर्भ—२५. कथ कैशिक—चिदि—वीरबाहु—२८. सुबाहु। इस वंश में केवल मुख्य नाम हैं, सब नहीं। शेष का पता नहीं है।

वंश नं० ३ (क) तुर्वश का मरुत्त वंश (उत्तरी विहार)।

(यादववंश ३ ऐ का नं० ६) ययाति—तुर्वश (या तुर्वसु)—वन्हि—गर्भ—१०. गोभानु — (११ से १९ तक अज्ञात नाम) २०. त्रसानु—करन्धम—२२. मरुत्त—२३. दुष्यन्त।

राजा मरुत्त बड़े प्रसिद्ध यज्ञकर्त्ता थे। बृहस्पति के भाई संवर्त ने इन्हें यज्ञ कराया। पुत्र के अभाव में आप ने पौरववंशी दुष्यन्त को गोद लिया। यह पौरव वंश प्रायः नं० २१ हंसु के समय मान्धाता द्वारा राज्यच्युत किया गया था। पीछे से उत्तरी विहार का राज्य पाकर दुष्यन्त ने अपना पौरव राज्य फिर से प्राप्त किया। इसी से पौरव कुल में आप वंशकर कहलाये। यद्यपि दुष्यन्त गोद से तुर्वश वंशी होगए थे, तथापि इनका वंश कहलाया पौरव ही। किसी विश्वामित्र की मेनका अप्सरा से उत्पन्न पुत्री शकुन्तला से आपको भरतपुत्र प्राप्त हुआ। प्रसिद्ध कौशिक विश्वामित्र इन्हीं भरत के वंशधर थे। प्रसिद्ध ऋषि गौतम दीर्घतमस ने भरत का ऐन्द्र महाभिषेक किया। दीर्घतमस आनव नरेश बलि के भी समकालीन थे।

वंश नं० ३ (ख) द्रुह्यु वंश, पंजाबी नरेश।

(यादव वंश ३ ऐ का नं० ६) ययाति—द्रुह्यु—बभ्रु (नं० ९ से नं० १९ तक अज्ञात नाम)—सेतु—२१. अंगार—कहद्र—गान्धार—धर्मघृत—दुद्दम—२६. प्रचेतस—२७. सुचेतस।

नं० २१ अंगार से सूर्यवंशी, नं० २१. मान्धाता का युद्ध हुआ। (ह० वं० ३२, १८३७, ८, म० भा० १२६, १०४६५)

वंश नं० ३ (ग) आनव वंश अंग शाखा।

(यादव वंश ३ ए का नं० ६) ययाति—अनु—सभानर—कालानल—१०. सृंजय—(११ से १७ तक अज्ञात नाम) १८. पुरञ्जय—जनमेजय—महाशाल—महामनस-२२. तितिक्षु—उशद्रथ—हेम (फेन) सुतपस—२५. बलि—२६. अंग-दधिवाहन—२८. दिविरथ-(२९ से ३५ तक अज्ञात नाम)—३६. धर्मरथ—चित्ररथ—सत्यरथ—३९. लोमपाद—चतुरंग—पृथुलाक्ष—४२. चम्प—हर्यंग—४४. भद्ररथ—बृहत्कर्मन—बृहद्रथ—(बृहद्रथ के भाई थे बृहत्कर्मन तथा बृहद्भानु)—बृहन्मनस (बृहद्रथ के पुत्र) ४८. जयद्रथ (विजय भाई)—दृढ़रथ—५०. विश्वजित—अंग—५२. कर्ण—वृषसेन—५४. पृथुसेन।

दूसरा वंश।

उपर्युक्त नं० ४७ बृहन्मनस— विजय—धृति-धृतिव्रत—५१. सत्यकर्मन—अधिरथ—५३. कर्ण—वृषसेन—५५. पृथुसेन।

समझ पड़ता है कि कर्ण अधिरथ और अंग दोनों के द्वैमुष्यायन पुत्र थे। वे वास्तव में कुन्ती से सूर्य नामक किसी व्यक्ति द्वारा कानीन पुत्र हुये थे। फिर अधिरथ द्वारा पाले जाकर उसके पालित पुत्र हुए। माता का नाम राधा होने से आप राधेय भी कहलाते थे। इस वंश के किसी पूर्व पुरुष ने एक ब्राह्मणी से विवाह कर लिया था जिससे अनुलोमपन के कारण वंश सूत हो गया। जान पड़ता है कि जब कर्ण ने जरासन्ध को जीत कर खोया हुआ अंग राज्य फिर से प्राप्त किया, तब अंग ने भी इन्हें अपना पुत्र मान लिया।

वंश नं० ३ (घ) आनव कुल (उत्तर पश्चिमी शाखा)

(वंश नं० ३ ग का नं० २१) महामनस— २२. उसीनर—२३. शिवि (नृगभाई)—(नं० २४ से ३६ तक) अज्ञात नाम—३७. केकय (कैकेयी कन्या सूर्यवंश नं० ३८. दशरथ को ब्यांही गई) युधाजित (कैकेयी के भाई थे)।

इसके पीछे यह वंश शत्रुओं द्वारा नष्ट हो गया और इनका राज्य राम के भाई भरत के दोनों पुत्रों पुष्कर और तक्ष ने पाया। तक्ष का राज्य तक्षशिला में हुआ और पुष्कर का पुष्करावती में। इनके वंशधर उधर ही के क्षत्रियों में मिल गए; अथवा शायद राज्य खो बैठे। (वायु पु० ८८. १८९—९०, विष्णु पुराण ४, ४७, पद्म २७१. १०. अग्नि, ११, ७, ८, रघुवंश ८८—८९)। दोनों आनव शाखाओं में जो अज्ञात नाम की पीढ़ियाँ जोड़नी पड़ी हैं, वे समसामयिक अन्य नामों के कारण। केकय राजा दशरथ के ससुर थे, तथा लोमपाद इन्हीं दशरथ के मित्र थे। बलि की स्त्री में उन्हीं की आज्ञा से दीर्घतमस ने पुत्र उत्पन्न किए। अनन्तर उन्हीं दीर्घतमस ने पौरव वंशी नं० २४ भरत को यज्ञ कराया। ये कथन म० भा० और रामायण पर आधारित हैं।

अब कुछ ऋषियों के भी वंश वृक्ष दिए जाते हैं। प्राचीन भारत में राजा के पीछे पुरोहित का ही दर्जा होता था। इन वंशों से भी कुछ राजाओं के समय सिद्ध होते हैं।

वंश नं० ४ कान्यकुब्ज का विश्वामित्र वंश।

१. गाथिन (गाधि)—विश्वामित्र—सामकाश्व—(देवराट मधुच्छन्दस भाई) व्यश्व—५. विश्वमनस—उद्दालक—सुश्रुत—बृहद्दिव—९. नाम अज्ञात—१०. प्रतिवेश्य—सौत प्रतिवेश्य—अज्ञात—१३. सौगाव्य—प्रियव्रत सौमापि—१५. अज्ञात—उद्दालक आरुणि—कहोड़—कौशीतकि—गुणाख्य शांख्यायन—२०. शांखायन आरण्यक के कर्ता। ऋषि दुमावर्त के पुत्र प्रतिदर्श थे। ये विश्वामित्र के समकालीन थे।

वंश नं० ४ (अ) काश्यप वंश।

१. विभाण्डक काश्यप—ऋष्य शृङ्ग काश्यप (राम के बहनोई) मित्रभुकाश्यप (ये ऋष्य शृङ्ग के समकालीन थे)—इन्द्रभुकाश्यप—अग्निभुकाश्यप—५. शायस देवतरस—शावसयन—प्रतिथि देवतरस—निकोथक भायजात्य—कृष्णधृत्य सात्यकि सत्यश्रवस्‌—१०. इन्द्रोत दैवापशौनक—धृति इन्द्रोत शौनक—पुलुष प्राचीन योग्य—

१३. सत्ययज्ञ पौलुषि। यह शाखा वंश ब्राह्मण में कथित है। शतपथ ब्रा० के अनुसार इन्द्रोतशौनक ने जनमेजय को यज्ञ कराया। ऋष्य शृंग राम के बहनोई थे।

वंश नं० ४ (आ) वेदव्यास का वंश

१. पराशर (दूसरे)—वेदव्यास (कृष्ण द्वैपायन)—शुक—जैमिनि—सुमन्तु—सुत्वन (कबन्ध भाई, तत्पुत्र पथ्य और वेददर्श। अन्तिम के पुत्र मौद्ग और प्रश्नोपनिषत् के पिप्पलाद ऋषि) सुकर्मन (सुत्वन के पुत्र) पौष्यंजि (हिरण्य नाभ भाई) लौगाक्षि (कुथुमि, कुसीदिन, लांगलि भाई) पराशर (तीसरे भावित्ति भाई) पाराशर्य कौथुम—प्राचीनयोग्य (पतंजलि प्रथम, आसुरायण भाई)। उपर्युक्त सुकर्मन, हिरण्यनाभ-याज्ञवल्क्य (प्रोतिकौसुर, विन्दि, अश्वल भाई), आसुरि, (भैवनि, औप जन्धिनि भाई) हिरण्यनाभ कौशल नरेश थे।

वैशंपायन और उपमन्यु चन्द्रवंश ३ के नं० ५६ जनमेजय तथा उपरोक्त पिप्पलाद के समकालीन थे। प्राचीन शाल उपमन्यु के पुत्र थे, तथा याज्ञवल्क्य वैशंपायन के भागिनेय और शिष्य। सत्यकाम जाबाल जनमेजय के पौत्र अश्वमेध दत्त के समसामयिक थे। उपरोक्त नं० १६ पतंजलि के समकालीन यास्क थे, जिनके भाई पंचशिख थे। यास्क का वंश यों चलता है:— १६. यास्क—जातूकर्ण्य—पाराशर्य—बादरायण—२०. तांडि (शाट्यापति भाई)।

ये वंश लिखने में प्रधान ने पराशर के पितामह शक्ति और वशिष्ठ को नहीं लिखा है। प्रधान ने जिस वशिष्ठ के पुत्र शक्ति और पौत्र पराशर कहे हैं, उन्हें दक्षिण कोशल नरेश सुदास का समकालीन माना है।

वंश नं० ४ (इ) नवीन भार्गव वंश।

वीत हव्य (या वीति होत्र हैहयवंशी नं० ३७) गृत्समद (वेद के दूसरे मण्डल के ऋषि)—सवेतस—४०. वर्चस सावेतस—विहव्य—वितत्त्य (वितस्य भाई)—सत्य—शिवस्त—सन्तस—४५. श्रवस—

तमम—प्रकाश—वागिन्द्—प्रमति—५०. कठ—शुनक—दैवापि शौनक —इन्द्रात दैवापि शौनक ५४. धृति ऐन्द्रोत दैवापि शौनक।

वंश नं० ४ (ई) उद्दालक आरुणिवंश।

१. तुरकावषेय—यज्ञवचसराजस्तम्भायन—कुश्रि (वाजश्रवस के पुत्र)—उपवेश अरुण आपव्शी—५. उद्दालक, आरुणि (शिष्यपुत्र, वेद-भाई) शिष्य याज्ञवल्क्य विजयसेन (शिष्य तथा पुत्र) तुरकावशेय पौरव वंश नं० ५६ जनमेजय के समय में थे। ऐतरेय पुराण में आया है कि इन्हीं तुरकावशेय से जनमेजय ने महाभिषेक पाया।

वंश नं० ४ (उ) अष्टावक्र का वंश।

१. अम्भण— वाक— कश्यपैनध्रुवि— शिल्पकश्यप—५. हरि कश्यप—असितवार्ष गण—जिह्वावन्त वाध्योग—वाजश्रवस कुटवाजश्रवस—उपवेश—१०. अरुण—कुशीलक [उद्दालक, भद्रारट,
| |
श्वेतकेतु याज्ञवल्क्य

असवतरास्य भाई] कहोड़ १३. अष्टावक्र।
|
वुदिल

वंश नं० ४ (ऊ) पैल और भारद्वाज वंश।

१. वेदव्यास पैल—इन्द्रप्रमति (वाष्कल भाई) मांडूकेय (शूरवीर) —सत्यश्रवस—५. सत्यहित—सत्यश्री—शाकल्य (रथीतर शाकपुणि भाई) ८. सुकेश—भारद्वाज (कासस आश्वलायन भाई)।

वंश नं० ४ (ए) माण्डव्य का वंश।

वंश नं० ४ ई का ३ कुश्रिवाजश्रवस—शाण्डिल्य—५. वात्सुप्य—कामकलायण—माहित्थि— कौत्स — मांडव्य १०. मांडूकायनि— ११. मांडीर्घापुत्र।

बृहदारण्यक में कथित उद्दालक आरुणि और याज्ञवल्क्य मैथिल सम्राट जनक के दरबार में थे। उद्दालक आरुणिवंश नं० ४ ई में नं०

५ है, तथा तुरकावशेय नं० १ है। अतएव जनक जनमेजय से पांच पीढ़ी नीचे थे।

वंश नं० ४ (ए) शिष्य गुरुवंश नकि पिता पुत्र।

१. अमात्य के शिष्य—पाधिन—घतमनपात—विदर्भि—कौंडिन्य—५. गालव—कुमार हारीत—कैसोर्य—शांडिल्य—९. वात्स्य (वृहद्‌ारण्यक वाले)।

वंश नं० ४ (ऐ) शिष्य वंश।

वंश नं० ४ ई का नं० १, तुरकावशेय का शिष्य—यज्ञवचस—कुश्रि—शांडिल्य—५. वात्स्य—वामकक्षायण—माहित्थि—कौत्स—९. मांडव्य।

ये उपर्युक्त राजवंश प्रधान तथा पार्जिटर के ग्रन्थों में साधार प्रमाण से कहे गये हैं।

वंश नं० ५ दैत्य वंश।

१. मरीचि (ब्रह्मा के मानसिक पुत्र)—कश्यप—हिरण्य कशिपु (हिरण्याक्ष, वज्रांग, अन्धक भाई)—प्रह्लाद (अनुह्लाद, ह्लाद, संह्लाद भाई)—५. विरोचन—बलि—बाण।

हिरण्याक्ष के उत्कुर, शकुनि, भूत संतापन, महानाभि, महाबाहु, कालनाभ, ये पुत्र हुये। वज्रांग का पुत्र तारक था। उपर्युक्त वंश कश्यप की स्त्री दिति का है। इन सबकी दैत्य संज्ञा है। कश्यप की अन्य स्त्री दनु थी, जिसके वंश की दानव संज्ञा है। दनु के शम्बर, शंकर, एकचक्र, महाबाहु, तारक, वृषपर्वा, पुलोमा, विप्रचित्ति आदि पुत्र हुये। वृषपर्वा की कन्या शर्मिष्ठा से राजा ययाति के पुरुनाम प्रतापी पुत्र उत्पन्न हुआ। पुलामा और कालिका नाम्नी कन्यायें दनु के वंश में थी, जिनके वंशज प्रसिद्ध दानव पौलोम और कालिकेय कहलाये। दिति की पुत्री सिंहिका विप्रचित्ति को ब्याही थी। इन दोनों के पुत्रों के नाम शल्य, वातापी, नमुचि, इल्वल, नरक, कालनाभ, चक्रयोधी आदि थे। प्रसिद्ध दैत्य निवत कवच तपस्वी थे। ये संह्लाद के वंश में हुये। ये सब चाक्षुप मन्वन्तर में थे (वि० पु०)। यहाँ जो पुत्र कहे गये हैं वे कभी कभी दूर के भी वंशधर हैं।

वंश नं० ६।

शुनक—प्रद्योतन—पालक—विशाखयूप—जनक—नन्दिवर्द्धन । पुराणानुसार इन लोगों ने १३८ वर्ष मगध में वंश नंबर (३ ई) के पीछे राज्य किया।

वंश नं० ७।

शिशुनाग—काकवर्ण—क्षेमधर्म्मा—क्षत्रौज—बिन्दुसार— अजात शत्रु—दर्भक—उदयन—नन्दिवर्द्धन—महानन्दी। इन लोगों का राज्य मगध में वंश नम्बर ६ के पीछे हुआ। विष्णु पुराण इनका राजत्व काल ३६२ वर्ष कहता है, किन्तु यह काल उचित से अधिक है जैसा कि आगे विदित होगा।

वंश नं० ८।

महापद्म (यह राजा शूद्रा से उत्पन्न था)—सुमाली (७ भाई)। इन लोगों ने वंश नम्बर ७ के पीछे मगध में राज्य किया। विष्णु पुराण इनका राजत्व काल १०० वर्ष मानता है।

इन सब राजवंशों और नामों का ब्योरा चाहे कुछ पाठकों को फीका लगे पर विचारने से इसमें बहुत सी जानने योग्य बातें मिलेंगी।

पांचवां अध्याय

वेद पूर्व का भारत।

समय १९०० बी० सी० से पूर्व ।

प्राचीन समय में इस विषय का विवरण प्राय: वैदिक आधारों पर ही दिया जाता था, किन्तु सन् १९२२ से २७ तक जो खुदाई मोहंजो दड़ो (सिन्ध) तथा हड़प्पा, पञ्जाब, में हुई, उससे परम प्राचीन भारतीय सभ्यता की प्रचुर सामग्री प्राप्त हुई है। उसके विषय में पुरातत्व विभाग के डाइरेक्टर-जनरल सरजान मार्शल ने कई भागों में एक भारी ग्रन्थ बनाया है, जिसमें फोटो का प्रचुर प्रयोग हुआ है। उसी के आधार पर हम यहाँ कथन करेंगे। इसी विषय पर जनवरी सन् १९३५ में लखनऊ विश्व-विद्यालय के इतिहासज्ञ श्रीयुत डाक्टर राधाकुमुद मुकर्जी ने एक छोटा सा व्याख्यान भी दिया। पहले उसका सारांश कह कर हम सरजान के विचारों का विवरण देवेंगे।

डाक्टर राधाकुमुद मुकर्जी के आधार पर कथन

शिकागो ओरियन्टल इन्स्टिट्यूट ने इराक़ में जाँच कराई तो प्राय: २५०० बी० सी० के एक अखद राजा की कुछ सामग्री बग़दाद के निकट मिली। इसमें भारत से तत्काल कुछ मोहरें मिलीं जो मोहंजो-दड़ो के बीचवाले परतों में प्राप्त हुई मोहरों के समान थीं। इसमें सात तहें निकली थीं जिनमें से प्रत्येक नीचे वाली तह ऊपर वाली तह से सैकड़ों वर्ष पुरानी है। जब २५०० बी० सी० में प्राप्त मोहरें बीच की तहों में हैं, तब मुकुर्जी महाशय का विचार है कि मोहंजो दड़ो की सब से नीचे वाली तह प्राय: ४००० बी० सी० के निकट की होगी। बग़दाद की इन मोहरों में, सिन्ध (मोहंजो दड़ो) की लिखावट है तथा बैबिलोन में अप्राप्त भारतीय जानवर हाथी और गैंडे इनमें खुदे हैं। सभ्यता की दृष्टि से मोहंजोदड़ो के लोग बहुत बातों में संसार

सभ्यता में सर्व प्रथम थे। शहरों में रहना, शहर बनाना, पक्की ईंटें बनानी, पत्थर पर खोदाई और कारीगरी, गेहूँ और जौ की उत्पत्ति, ऊन एवं सूत कातना और बुनना, मिट्टी के बर्तनों पर ग्लेज़ का काम करना, गाड़ी बनाना, लेख लिखना (जो अब तक पढ़ा नहीं गया है), दूर देशों में व्यापार आदि के ऐसे काम हैं जिन में वे संसार में प्राय: प्रथम थे। सोना, चाँदी, हीरा जवाहिरात आदि के अलंकार उनके पास थे। हाथी, गाय, ऊँट आदि पालते तथा खाते, गैंडे या बनैले सुअर का शिकार खेलते थे। उनके सोना, तांबा, टीन और जवाहिरात कोलर, अनन्तपुर, फारस, जैसलमेर, नीलगिरि, बदख्शाँ, खुरासन, तुर्किस्तान, तिब्बत आदि से आते थे।

जानवरों के होने से उनके यहाँ जंगलों का होना सिद्ध है, जिससे जलवाहुल्य प्रकट है। मोहरों और सक्ष से प्रकट है कि उनकी कारीगरी संसार में प्रथम थी। उन्होंने पत्थर और कांसे में मनुष्य की मूर्तियाँ बनाईं। धर्म में वे आदिम मातृ देवी, शिव और शक्ति का पूजन करते थे। जानवर देवताओं के वाहन थे, तथा वृक्ष पूजन भी चलता था। उनमें ध्यानमग्न शिव-मूर्तियाँ मिली हैं, तथा नासिका पर दृष्टि लगाये हुये ध्यान धारे योगियों की मूर्तियाँ हैं। इन बातों से इतने प्राचीन काल में ऐसे विचारों का अस्तित्व मिलता है।

सर जानमार्शल के ग्रन्थ के आधार पर।

उस काल सिन्ध देश की उपज बहुत बढ़िया थी, किन्तु आवहवा निकृष्ट। गर्मी Zero (शून्य) के नीचे से १२० तक होती थी। समय के साथ सिन्ध की आवहवा बहुत बदली है। चौदहवीं शताब्दी तक (अरबों के राज्यकाल में) सिन्ध में सिंध न या हकरा और सिन्ध नाम की दो नदियाँ थीं, जिनमें पञ्जाबी नदियों का पानी बहता था। अनन्तर अरबों सिन्ध रह गई। इन नदियों के मार्ग प्रायः बदला किए हैं। यहाँ की लिपि दायें से बायें ओर चलती है। ब्राह्मी लिपि शायद इसी से निकली हो। इनमें पृथ्वी या सिंहवाहिनी मातृदेवी बहुत पाई जाती हैं। त्रिनेत्र शिव के तीन सर हैं। शायद इसी प्राचीन भाव से हिंदू त्रिमूर्ति का विचार निकला हो। त्रिशूल है। योग का विचार

भी पुराना था। शिव के निकट हाथी, चीता, गैंडा, और भैंसा हैं। नाग उनकी पूजा करते हैं, और वे दो मृग चर्मों पर बैठे हैं। पशुपति वे उस काल भी समझ पड़ते हैं। यहाँ लिंग और योनि के पूजन थे। सिन्ध और बलोचिस्तान में वर्तमान अरघों (जलेरियों) के समान लिंगयुक्त अर्घे मिले हैं। जानवरों का भी पूजन था। सींग देवत्व का चिन्ह था। आराम की सभ्यता में वे आर्यों से बढ़े हुये थे। भाषा उनकी अब तक पढ़ी नहीं गई है, सो उसमें लिखित विचार अज्ञात हैं। उनके सम्बन्ध का अब तक जो ज्ञान है, वह वस्तुओं मात्र से प्राप्त है। हिन्दुओं में पीछे से शिव, मातृदेवी, कृष्ण, नाग, जानवर, वृक्ष, पत्थर लिंग, योग, शक्ति, संसार भक्ति आदि के पूजन-विधान जो उठे, उनके मूल इनमें पाये जाते हैं। स्नान पर बड़ा जोर था। शायद यह धार्मिक हो। मोंहजोदड़ो में शव प्रायः जलाए जाते थे; कुछ पूरे शव पाये भी गए हैं। इस सभ्यता का समय ३२५० बी० सी० से पुराना नहीं है और २७५० बी० सी० से नया भी नहीं। आजकल के पंडित इसे २८वीं शताब्दी बी० सी० मानते हैं। यहाँ ५९० मोहरें मिली हैं, जिन सब की तसवीरें ग्रन्थ में हैं। स्त्रियों का नाच, अच्छी मूर्त्ते, मिट्टी के बर्तन, कारीगरी, स्नानागार-प्राचुर्य आदि प्राप्त हैं। पूजनालय शायद न थे। बूड़ा का भय था। नदियों के पेंदे समय पर ऊँचे होगए। इमारतों में मकानात, खम्भोंदार हाल, छोटे-बड़े हम्माम और अनिश्चित कामों के कमरे मिले हैं। शायद ये अन्तिम मन्दिर या पूजनालय हों। ये लोग गेहूँ और जौ खाते थे। नंगी नर मूर्तें भी मिली हैं। कारीगरी अच्छी है। मोंहजोदड़ो में जो मनुष्यों की पूरी हड्डियाँ मिली हैं, उन पर विद्वानों के विचार से जाना गया है कि वहाँ चार प्रकार के मनुष्य थे, अर्थात् प्रोटो आस्ट्रेल्वायड, मेडिटरेनियन, आल्प्स शाखा के मंगोलियन तथा शुद्ध आल्प्स शाखा। पहली शाखा भारत की थी, दूसरी दक्षिणी एशिया से, तीसरी पाश्चात्य एशिया से, और चौथी प्राच्य एशिया से। यह सभ्यता वैदिक आर्यों से असम्बद्ध थी, किन्तु द्राविड़ों तथा सुमैरियनों का सम्बन्ध सोचा जाता है। मोहंजोदड़ो में तांबे के सिक्के भी हैं। कोई गोल खम्भा नहीं है, कुएँ हैं। बांट छेददार हैं। धातुओं के

छल्ले, अँगूठी और मुद्रायें मिली हैं। मनुष्य की ऊँचाई ६१ से ६७ इंच तक थी। मार्शल साहब के ग्रन्थों में जो यहां के सैकड़ों चित्र हैं, उनके देखने से बहुत सी बातें ज्ञात होती हैं। यहाँ की प्रचुर सामग्री जो शिमले में रक्खी थी, उसे भी हमने जाकर देखा। इस चित्रमय संसार से उस काल का जो परमोत्कृष्ट ज्ञान प्राप्त है, वह बहुत अनमोल है। वेदों की सभ्यता का चित्र हमारे सामने लेखों से आता है, और यहाँ का चित्रों द्वारा।

यूरोपियन लेखकों का विचार है कि भारत में सबसे पहला आर्यागमन २५०० बी० सी० के निकट हुआ। उनका दो धाराओं में आना लिखा है। इसका उत्कृष्ट विवरण मुख्यतया ऋग्वेद से प्राप्त है।

उस समय यहाँ कैसे मनुष्य रहते थे और उनकी सभ्यता तथा देश की दशा क्या थी, इन बातों को जानने के लिये सिवा उपर्युक्त खोदाई तथा आर्य्य ग्रंथावलोकन के और कोई उपाय हम लोगों के पास नहीं है। आर्य्यों का प्रथम ग्रन्थ ऋग्वेद है जिसमें भारतीय आदिम निवासियों को अनास, भाषाहीन, और केवल चिल्लाने वाले कहा गया है। आदिम निवासियों में पिशाच जाति चिल्लाती बहुत थी। जिस समय में यह लिखा गया तब आर्य्यों का उनसे युद्ध होता था और इन दोनों जातियों में सामाजिक सम्बन्ध बिल्कुल स्थिर नहीं हुआ था। ऐसी दशा में आर्य्यों का उनकी भाषा को चिल्लाना मात्र कहना स्वाभाविक था। आदिम निवासियों ने आर्य्यों से जैसा प्रचंड संग्राम किया और अपनी जातीयता एवं स्वतंत्रता स्थापित रखने के जो-जो उपाय किये, उनके देखने से अनार्य्यों की सभ्यता बहुत थोड़ी नहीं मालूम पड़ती। उन लोगों ने भाषाहीन वनमानुषों की भाँति कभी व्यवहार नहीं किया, वरन् सैकड़ों वर्षों तक दल बाँध बाँध कर आर्य्यों से युद्ध किए और हर प्रकार से यथा साध्य इनकी गति रोकी। उनके कई बड़े बड़े नेता भी थे। इन बातों से प्रकट है कि उनमें भाषा अवश्य थी। मोहंजोदड़ो में भाषा और लिपि दोनों प्राप्त हैं किन्तु वे अभी पढ़ी नहीं जा सकी हैं। वर्तमान समय में ज्ञात आर्य्यों की प्राचीनतम भाषा आसुरी कहलाती है, जिसमें वेदों का निर्माण हुआ। धीरे धीरे अनार्य्यों की भाषा पर यह आर्य्य भाषा अपना प्रभाव डालती गई,

यहाँ तक कि समय पर उसका एक रूप बन गया, जो अब पहली प्राकृत या पाली कहलाती है और जिसका वर्णन आगे आवेगा। भारत की जो दशा थी उसका अनुमान उपर्युक्त खोदाई तथा ऋग्वेद के कथनों से होता है।

भारत की स्थिति उस काल आज से बहुत ही भिन्न थी। नदियाँ, पहाड़ आदि तो प्रायः ऐसे ही थे, किन्तु ग्राम आदि बहुत कम थे और सारा देश प्रायः जंगल से भरा हुआ था। अनार्यों में खेती का प्रचार बहुत कम था। जिस काल आर्य्य लोग देश में बसने लगे, तब उन्हें जंगल जला कर खेती और निवास के लिये भूमि निकालनी पड़ी। जङ्गल की बहुतायत से समझ पड़ता है कि उन दिनों जङ्गली जीव अधिकता से होंगे। व्यापार इत्यादि की क्या दशा थी सो हम नहीं जान सकते। ऊन और खाल का चलन बहुतायत से था। अनार्य्य लोग धनुष बाण से शिकार खेलते और प्रायः जङ्गलों ही में रहते थे। मोहंजोदड़ो आदि बड़े बड़े नगर भी थे, किन्तु अधिकतर मनुष्य उस उच्च सभ्यता से असम्बद्ध होंगे। पहाड़ों पर उनके क़िलों का भी होना वेद में लिखा है, किन्तु यह निश्चय नहीं है कि इन लोगों ने आर्य्यों की नक़ल करके अपनी रक्षा के लिए दुर्ग रचे थे अथवा वे पहले ही से थे। आर्य्यों से संघट्ट होने पर यह लोग पहाड़ों और जङ्गलों में छिपे रहते थे और वहीं से सहसा धावा करके जानवर छीन ले जाते और खेती उजाड़ जाते थे। जान पड़ता है कि दूध आदि के लिए यह जानवर पालते और उनका भक्षण भी करते थे। देश के जङ्गली होने से आर्य्य लोग बहुत धीरे धीरे आगे बढ़े।

इसलिए अनार्य्यों ने पूरे देश में विजित होने से पूर्व आर्य्यों से बहुत कुछ सीख लिया था। अतः हम साथ ही साथ इन लोगों के परम ओछे और गंभीर वर्णन पाते हैं। जान पड़ता है कि ओछे वर्णन आदिम काल के हैं और गंभीर उस समय के जब यह लोग आर्य्य सभ्यता से बहुत कुछ सीख चुके थे। हिरण्य कशिपु, बलि, शुम्भ, निशुम्भ, आदि के समय में इन लोगों ने अच्छी उन्नति कर ली थी। किसी किसी का यह भी विचार है कि देवासुर संग्राम फ़ारस में हुआ और तब आर्य्यों का दूसरा धारा भारत आई।

अनार्य्यों की कई जातियाँ थीं, जिनका हाल वेदों, इतिहासों और पुराणों से विदित होता है। इन में महिष, कपि, नाग, मृग, ऋक्ष, राक्षस, मत्स्य, आजिक, दैत्य, दानव, कीकट, महावृष, बाल्हीक, मूजवन आदि प्रधान हैं। कीकट गया प्रान्त को कहते हैं। वहाँ के निवासी कीकट अनार्य्य थे। इन सब को अनार्य्य कहते हैं और पौराणिक काल में इनमें कुछ जातियाँ असुर भी कहलाती थीं। वैदिक समय में पहले असुर देवताओं को कहा गया और इन लोगों को राक्षस, यातुधान, दस्यु, सिम्यु आदि नामों से पुकारा गया। कुछ ऐतिहासिकों का विचार है कि जो अग्नि पूजक पार्सी ईरान में थे, उनके तथा भारतीय आर्यों के पूर्व पुरुष एक ही थे और साथ ही फारस आदि में रहते थे। युद्ध के पीछे भारतीय होने वाले आर्य्य इधर चले आये। इन विचारों का कथन आगे होगा।

ऐतिहासिकों ने आर्य्यों से पहले वाले भारतियों की दो प्रधान शाखायें कही हैं, अर्थात कोल और द्रविड़। नाग नाम्नी एक और प्राचीन जाति थी। ये कोल या द्रविड़ों की शाखा थे या स्वतंत्र जाति, सो अनिश्चित है। ये तीनों जातियाँ श्याम वर्ण की थीं। भील और सन्थाल कोलों की प्रशाखायें हैं। इस काल भारत में ३० लाख कोल हैं। ये लोग मुंडा भाषा बोलते हैं। कोल पत्थर और हड्डी के आयुध बनाते थे। ये वीर, चतुर, प्रसन्नचित्त, आलसी और सन्तोषी थे। कोलों के पीछे द्रविड़ भारत में आये। इन्होंने कोलों को हराया। गोंड और गोंड़ इनकी उपशाखायें हैं। आज कल प्रायः ५,७०,००००० द्रविड़ भारत में हैं। यह लोग खेती और व्यापार करते, नगरों और ग्रामों में बसते, सूती कपड़े पहनते, सोने के गहने धारण करते और ताँबे के आयुधों का व्यवहार करते थे। ये भूमि, वृक्ष, सर्प आदि की पूजा करते और अपने देवताओं से डरते थे। मंगोल लोग पाल नरेशों के समय भारत में आसाम होकर आये और आसाम, बंगाल आदि में बसे। आसामी मंगोल आहम कहलाते हैं। ऐतिहासिकों की कल्पना है कि आधुनिक भारतवासियों में केवल काश्मीर, पञ्जाब और राजपूताना में असली आर्य्य लोग हैं। गंगा यमुना की घाटियों और बिहार आदि में आर्य्यों और द्रविड़ों का मिश्रण पाया जाता है। गुजरात,

सिन्ध, बम्बई में सीदियनों तथा द्रविड़ों का मिश्रण है, नैपाल, भूटान आसाम आदि में मंगोलों का प्राधान्य है, बंगाल, छोटानागपूर और उड़ीसा में मंगोल द्रविड़ों का मिश्रण है और वायव्य सीमा प्रांत के लोग तुरुष्क (तुर्की ईरानी) हैं। यह योरोपीय अनुमान ऐतिहासिक घटनाओं पर निर्भर है। जहाँ जहाँ जो जो जातियां बसी हैं वहीं वहीं उन सब का मिश्रण देशवासियों में माना गया है। कोलों के कारण भारत में परम प्राचीन समय कोलेरियन काल कहा गया है और उसके पीछे वाला द्रविड़ काल। द्रविड़ों के विषय में अभी पूरी दृढ़ता नहीं है कि वे कौन थे और कहां से आये, जैसा कि आगे कहा जायगा।

अब हम उपर्युक्त महिष, कपि आदि के विषय में कुछ हाल लिखते हैं जो वेद, पुराणादि प्राचीन ग्रन्थों में पाया जाता है।

महिष—इनको दुर्गासप्तशती में महिषासुर करके कहा गया है। यह आर्यों के शत्रु थे और इसी लिये देवी ने इन्हें पराजित किया। कुछ पंडितों का मत है कि इस जाति के लोग दक्षिण में अब भी पाये जाते हैं। मैसूर प्रान्त को प्राचीन ग्रन्थों में महिष मंडल कहा है।

कपि अथवा वानर—इन लोगों ने रामचन्द्र की सहायता की। किष्किन्धा में इनका राज्य था और बालि, सुग्रीव, हनुमान आदि नेता थे। कुछ लोगों का विचार है कि दक्षिण की वर्तमान टोडा जाति के लोग शरीर पर केश बाहुल्य के कारण उस काल कपि करके पुकारे गये। रामायण में जो इनकी पूँछ आदि के वर्णन हैं वे अत्युक्ति पूर्ण एवं प्रक्षिप्त समझने चाहिये। ऋक्ष भी इसी प्रकार के लोग समझ पड़ते हैं। इनकी सभ्यता समय पर इतनी बढ़ गई थी कि जाम्बवंत नामक एक ऋक्ष की कन्या के साथ स्वयम् श्रीकृष्ण चन्द्र ने विवाह किया। इन लोगों को वास्तव में बन्दर, भालू, भैंसा आदि समझना भारी भूल है, क्योंकि कोई रीछ रामचन्द्र का मंत्री तथा श्रीकृष्ण का ससुर नहीं हो सकता था। इन लोगों की सभ्यता के जैसे वर्णन ग्रन्थों में आए हैं, उनसे प्रकट है कि यह लोग वन्यजन्तु न होकर द्रविड़ जातियों के मनुष्य थे।

नाग—इस जाति के लोगों का वर्णन पहिले पहल समुद्र मन्थन के समय में आया है। इन लोगों ने देवताओं की सदैव सहायता की। राजा जनमेजय को छोड़ और किसी आर्य राजा से इनका भारी युद्ध नहीं हुआ। शेष, वासुकि, तक्षक, धृतराष्ट्र आदि इनके सरदार थे। इनका वैवाहिक सम्बन्ध आर्यों से हुआ अवश्य किन्तु बहुतायत से नहीं। विशेषतया पाताल में नाग लोक कहा गया है। सिन्धप्रान्त में पाताल नगर था जहाँ वासुकि वंशी एक नाग राजा का शासन था। वहाँ से वैबिलोन का भारतीय व्यापार चलता था। ये कथन आरियन के हैं। कहीं कहीं पूर्वी बंगाल के समुद्र तट वाले भाग को भी पाताल कहा है। भारत में भी यह लोग रहते थे और गंगा, सरजू आदि नदियों के सहारे इनके देश में पहुँचने के वर्णन आए हैं। वहाँ जल का बाहुल्य समझ पड़ता है। समुद्र मन्थन में इन लोगों ने आर्यों की सहायता की, जिससे इनका समुद्र तट वासी होना अनुमान सिद्ध है। बंगाल में कुछ जातियों की नाग संज्ञा अब तक है और बिहार में शिशुनाग वंशियों का कुछ दिन राज्य भी रहा। इन सब बातों से इन लोगों का आदिम निवास स्थान बंगाल समझ पड़ता है। छोटा नागपुर के उत्तर इनका मुख्य केन्द्र था। आर्य वंशी राजा युवनाश्व और हर्यश्व की बहिन धूम वर्ण नामक नाग को ब्याही थी। इसी की ५ कन्याओं का विवाह हर्यश्व के दत्तक पुत्र यदु के साथ हुआ था। युधिष्ठिर के भाई अर्जुन ने नाग सुता उलपी के साथ ब्याह किया था, जिससे इरावान् नामक पुत्र उत्पन्न हुआ। वासुकि की बहिन जरत्कार का विवाह इसी नाम के एक ऋषि से हुआ। आस्तीक इन्हीं का पुत्र था जिसने जनमेजय के यज्ञ में नागों की रक्षा की। रामचन्द्र के पुत्र कुश ने भी एक नाग कन्या के साथ विवाह किया। दाक्षिणात्य ग्रन्थ मणि मेगलय के अनुसार चोल राजा वेण्ण आवेयर किल्ली ने पील वलय नाम्नी नाग कन्या के साथ विवाह किया। श्रीकृष्ण ने वृन्दावन के समीप से कालीय नाग को सपरिवार खदेर कर आज्ञा दी कि वह समुद्र के निकट जाकर वास करे। इससे भी अनुमान होता है कि नाग लोक समुद्र के निकट था। नागों के वैवाहिक सम्बन्ध और भी यत्र तत्र राजाओं से निकलेंगे। ऋषिवर उत्तंक ने अपने खोए हुए

कुंडल नागों से ही छीने। सुरसा नाम्नी नाग माता ने उदधि उल्लंघन के समय देवताओं के कहने से हनुमान के बल की परीक्षा की। राजा बलि को क़ैद करके जब भगवान वामन ने पाताल भेजा था, तब उनके निरीक्षक नाग लोग नियत हुए। कुशान वंश को पराजित करके नागों ने भारत में अपना साम्राज्य स्थापित किया अथच हिन्दू सभ्यता की रक्षा की। उसी वंश का दौहित्र तृतीय वाकाटक नरेश पीछे शासक हुआ, जिससे वाकाटक राज्य चला। इनके पीछे गुप्त साम्राज्य जमा। इतनी बातों के होते हुए भी पुराणों में बहुत स्थानों पर ऐसे वर्णन मिलते हैं कि नाग लोग वास्तव में सर्प ही थे। ऐसे वर्णन अमान्य हैं।

मग—इन लोगों का वर्णन भविष्य पुराण में कई अध्यायों द्वारा हुआ है, जहाँ इनकी पृथक् जाति सी मानी गई है। वहाँ लिखा है कि यह लोग सूर्य के उपासक थे। इनके कई राजा सरदारों आदि के नाम भी वहाँ पर आए हैं। मग शाकद्वीपी ब्राह्मण थे। इन्हें कृष्ण पुत्र शाम्ब ने बाहर (फ़ारस) से लाकर मुलतान में बसाया था और वहाँ एक सूर्य मन्दिर भी बनवाया जो ह्यूनत्सांग के समय तक प्रस्तुत रहा।

दैत्य—इनका वर्णन वेदों में कुछ है और पुराणों में बहुत अधिकता से आया है। इनके सरदार हिरण्यकशिपु, वज्रांग, अंधक, वज्रनाभि आदि थे। इनकी माता दिति थीं, जिससे इनकी दैत्य संज्ञा हुई। इनके पिता कश्यप ऋषि कहे गए हैं, किन्तु ये ही दैत्य, दानव, देवता, पशु, पक्षी यहाँ तक कि वृक्ष आदि के पिता हैं। इससे यह पितृत्व का वर्णन दार्ष्टान्तिक है। इन लोगों की देवताओं से बहुत काल पर्य्यन्त शत्रुता रही। देवताओं से ऐसे स्थानों पर रूपक द्वारा आर्य्यों का प्रयोजन समझना चाहिए। समझ पड़ता है कि यह केवल अनार्य्य ही अनार्य्य न थे, वरन् अनार्य्यता के साथ इनमें कुछ आर्य्य रुधिर भी मिला हुआ था। यह लोग आर्य्य सभ्यता गृहीत थे। प्रह्लाद विष्णु भक्त थे और बलि बहुत बड़े दानी और यज्ञकर्त्ता। आर्य्यों से इनका वैवाहिक सम्बन्ध अधिकता से था। पुलोमा दैत्य

हुई है। अब तक की जाँच से यह विषय पूर्णतया अज्ञात है। पाश्चात्य पण्डितों का विचार है कि उत्तर से ब्राह्मण इतनी संख्या में दक्षिण कभी नहीं गये कि वहाँ आर्य्यों की इतनी भारी बस्ती होती जैसी आज पाई जाती है। हम को इस मत के ग्रहण करने में संकोच है। महाराजा रामचन्द्र के समय से कुछ ही पहले वीर वर अगस्त्य मुनि के नेतृत्व में आर्य्यों का एक बड़ा उपनिवेश दक्षिण में स्थापित हुआ था। शरभंग ऋषि भी वहाँ पहुँच चुके थे तथा परशुराम भी वहीं के हैं। जनस्थान में बहुत से ऋषि राम से मिले। राक्षसों द्वारा जो ब्राह्मण खाये गये थे, उन की अस्थि का टीला सा राम ने देखा। पुलस्त्य ऋषि के वंशी भी बहुतायत से वहीं रहे। रामचन्द्र के समय में दक्षिण का उत्तर से घनिष्ठ सम्बन्ध हो गया। युधिष्ठिर के समय में दक्षिण में आर्यों के कई राज्य स्थापित थे। गौतम बुद्ध, अशोक, समुद्रगुप्त आदि के समयों में भी यही दशा थी। इन सब बातों के होते हुये भी महाकान्तार वन इतना विकराल नहीं माना जा सकता कि कोई उसको पार ही न कर सकता। इसलिये आर्य्यों का बहु संख्या में दक्षिण जाना कुछ असंभव नहीं है। मिश्र अथवा उत्तरी भारत की इस आर्य शाखा की सभ्यता पहुँचने के पूर्व ही वहां हिन्दू सभ्यता स्थापित हो चुकी थी। ब्राह्मणों की दस प्रधान शाखायें हैं, जिनमें उत्तरवाली पञ्चगौड़ कहलाती हैं और दक्षिणवाली पंचद्राविड़। कम से कम कुछ ब्राह्मणों का दक्षिण जाना सर्वमान्य है। इन सब बातों से पंचद्राविड़ ब्राह्मण आर्य्य सभ्यता गृहीत और कुछ अंशों में आर्य्य रुधिर सम्पन्न द्रविड़ समझ पड़ते हैं। दक्षिण के क्षत्रियों और वैश्यों में अनार्य्य रुधिर अवश्य पाया जाता है जैसा कि वहां के ब्राह्मण भी कहते हैं। तामिल जाति की अनार्य्यता के विषय में बहुत से पंडितों का मत [illegible] ...र्य्य न[illegible]

मत्स्यपुराण के अनुसा[illegible] ...नां अ[illegible] में निम्न-स्थानों में बसी थीं:—दैत्य [illegible] पर्वत [illegible] पर), देवगण [illegible] ...ि) [illegible] पर), ग[illegible] और वह[illegible] ...ा [illegible]

में) और फिर शृङ्गवान पर्वत पर जो सुमेरु से पश्चिम कास्पियन समुद्र के निकट है । ये स्थान किसी समय में इन लोगों के निवास-स्थान थे। समय पर इनमें बहुत से हेर फेर भी हुये जैसे कि स्थान स्थान पर दिखलाये जावेंगे।

आर्य्य लोग कौन थे और भारत में कहां से आये इन प्रश्नों के जानने के लिये सांसारिक जातियों का कुछ वर्णन करना ठीक समझ पड़ता है। मानव-शास्त्र-वेत्ताओं ने मनुष्यों को पांच जातियों में विभक्त किया है, अर्थात् काकेशियन, मंगोलियन या तातार, हब्शी, मलय और अमरीकन। रंगों के अनुसार यही लोग क्रमशः गोरे, पीले, काले, बादामी और लाल हैं। गोरे लोग प्रधानतया योरोप, पश्चिमी और दक्षिणी एशिया तथा उत्तरी अफरीका में रहते हैं और उत्तरीय एवं दक्षिणीय अमरीका में हाल में बस गये हैं तथा आस्ट्रेलिया और न्यूजीलैण्ड में बसते जाते हैं। मंगोल लोग प्रधानतया चीन, जापान, बर्मा, स्याम आदि में रहते हैं। हब्शी लोगों का स्थान अफरीका है तथा मलयों का मलक्का, मडागास्कर, न्यूजीलैण्ड आदि। अमरीकन लोग जो लाल इंडियन कहलाते हैं दोनों अमरीकाओं में रहते हैं।

इन सब में गोरी जाति प्रधान है। मिश्र, असीरिया, बैबिलोनिया, फ़िनिशिया, फ़ारस, यूनान, इटली आदि के लोग सब गोरे थे। हिन्दू और हिब्रू लोग भी गोरे हैं। इस गोरी जाति की तीन प्रधान शाखाएँ हैं, अर्थात् आर्य, सेमेटिक और हैमेटिक। सेमेटिकों में हिब्रू लोगों, अरबों एवं फिनिशिया, बैबिलोनिया और असीरियावालों की गिनती है, तथा हैमेटिकों में मिश्रवालों की। यह दोनों नाम नूह के पुत्रों शेम और हेम के नामों से निकले हैं।

आर्य्य जाति संसार में सर्वप्रधान है। इसी में भारतवासियों, जर्मनों, रूसियों, अंग्रेजों, फ्रांसीसियों आदि की गणना है। सब योरोपवासी आर्य्य नहीं हैं। पाश्चात्य पंडितों में से कुछ का विचार है कि आर्य्य लोग मध्य एशिया में रहते थे और कुछ लोग उन्हें पूर्वीय योरोप का निवासी मानते हैं। पंडितवर मैक्समुलर का मत है कि एक वह समय था कि जब हिन्दुओं, जर्मनों, रूसियों, यहूदियों, अफग़ानों,

हुई है। अब तक की जाँच से यह विषय पूर्णतया अज्ञात है। पाश्चात्य पण्डितों का विचार है कि उत्तर से ब्राह्मण इतनी संख्या में दक्षिण कभी नहीं गये कि वहाँ आर्य्यों की इतनी भारी बस्ती होती जैसी आज पाई जाती है। हम को इस मत के ग्रहण करने में संकोच है। महाराजा रामचन्द्र के समय से कुछ ही पहले वीर वर अगस्त्य मुनि के नेतृत्व में आर्य्यों का एक बड़ा उपनिवेश दक्षिण में स्थापित हुआ था। शरभंग ऋषि भी वहाँ पहुँच चुके थे तथा परशुराम भी वहीं के हैं। जनस्थान में बहुत से ऋषि राम से मिले। राक्षसों द्वारा जो ब्राह्मण खाये गये थे, उन की अस्थि का टीला सा राम ने देखा। पुलस्त्य ऋषि के वंशी भी बहुतायत से वहीं रहे। रामचन्द्र के समय में दक्षिण का उत्तर से घनिष्ट सम्बन्ध हो गया। युधिष्ठिर के समय में दक्षिण में आर्यों के कई राज्य स्थापित थे। गौतम बुद्ध, अशोक, समुद्रगुप्त आदि के समयों में भी यही दशा थी। इन सब बातों के होते हुये भी महाकान्तार वन इतना विकराल नहीं माना जा सकता कि कोई उसको पार ही न कर सकता। इसलिये आर्य्यों का बहु संख्या में दक्षिण जाना कुछ असंभव नहीं है। मिश्र अथवा उत्तरी भारत की इस आर्य शाखा की सभ्यता पहुँचने के पूर्व ही वहाँ हिन्दू सभ्यता स्थापित हो चुकी थी। ब्राह्मणों की दस प्रधान शाखायें हैं, जिनमें उत्तरवाली पञ्चगौड़ कहलाती हैं और दक्षिणवाली पंचद्राविड़। कम से कम कुछ ब्राह्मणों का दक्षिण जाना सर्वमान्य है। इन सब बातों से पंचद्राविड़ ब्राह्मण आर्य्य सभ्यता गृहीत और कुछ अंशों में आर्य्य रुधिर सम्पन्न द्रविड़ समझ पड़ते हैं। दक्षिण के क्षत्रियों और वैश्यों में अनार्य्य रुधिर अवश्य पाया जाता है जैसा कि वहाँ के ब्राह्मण भी कहते हैं। तामिल जाति की अनार्य्यता के विषय में बहुत से पंडितों का मत है कि ये आर्य्य नहीं हैं।

मत्स्यपुराण के अनुसार निम्न जातियाँ आदिम काल में निम्न-स्थानों में बसी थीं:—दैत्य दानव (श्वेत पर्वत या सफ़ेद कोह पर), देवगण [सुमेरु (पामीर) पर], राक्षस, पिशाच, यक्ष (हिमालय पर), गन्धर्व और अप्सरस (हेमकूट अर्थात् फराकुरम पर), नाग और तक्षक (निषध अर्थात् निरसा पहाड़ पर), ऋषि (नीलाचल

में) और पित् शृङ्गवान पर्वत पर जो सुमेरु से पश्चिम कास्पियन समुद्र के निकट है। ये स्थान किसी समय में इन लोगों के निवास-स्थान थे। समय पर इनमें बहुत से हेर फेर भी हुये जैसे कि स्थान स्थान पर दिखलाये जावेंगे।

आर्य्य लोग कौन थे और भारत में कहां से आये इन प्रश्नों के जानने के लिये सांसारिक जातियों का कुछ वर्णन करना ठीक समझ पड़ता है। मानव-शास्त्र-वेत्ताओं ने मनुष्यों को पांच जातियों में विभक्त किया है, अर्थात् काकेशियन, मंगोलियन या तातार, हबशी, मलय और अमरीकन। रंगों के अनुसार यही लोग क्रमशः गोरे, पीले, काले, बादामी और लाल हैं। गोरे लोग प्रधानतया योरोप, पश्चिमी और दक्षिणी एशिया तथा उत्तरी अफ़रीका में रहते हैं और उत्तरीय एवं दक्षिणीय अमरीका में हाल में बस गये हैं तथा आस्ट्रेलिया और न्यूज़ीलैण्ड में बसते जाते हैं। मंगोल लोग प्रधानतया चीन, जापान, बर्मा, स्याम आदि में रहते हैं। हबशी लोगों का स्थान अफ़रीका है तथा मलयों का मलया, मडागास्कर, न्यूज़ीलैण्ड आदि। अमरीकन लोग जो लाल इंडियन कहलाते हैं दोनों अमरीकाओं में रहते हैं।

इन सब में गोरी जाति प्रधान है। मिश्र, असीरिया, बैबिलोनिया, फ़िनिशिया, फ़ारस, यूनान, इटली आदि के लोग सब गोरे थे। हिन्दू और हिब्रू लोग भी गोरे हैं। इस गोरी जाति की तीन प्रधान शाखाएँ हैं, अर्थात् आर्य, सेमेटिक और हैमेटिक। सेमेटिकों में हिब्रू लोगों, अरबों एवं फ़िनिशिया, बैबिलोनिया और असीरियावालों की गिनती है, तथा हैमेटिकों में मिश्रवालों की। यह दोनों नाम नूह के पुत्रों शेम और हेम के नामों से निकले हैं।

आर्य्य जाति संसार में सर्वप्रधान है। इसी में भारतवासियों, जर्मनों, रूसियों, अंग्रेजों, फ्रांसीसियों आदि की गणना है। सब योरोपवासी आर्य्य नहीं हैं। पाश्चात्य पंडितों में से कुछ का विचार है कि आर्य्य लोग मध्य एशिया में रहते थे और कुछ लोग उन्हें पूर्वीय योरोप का निवासी मानते हैं। पंडितवर मैक्समुलर का मत है कि एक वह समय था कि जब हिन्दुओं, जर्मनों, रूसियों, यहूदियों, अफ़ग़ानों,

अँगरेजों, फ़ारसियों आदि के पूर्व पुरुष सेमेटिक और हैमेटिक जातियों से पृथक् एक ही स्थान पर रहते थे। यह एक छोटी सी जाति थी और इसकी भाषा वह थी जो तब तक संस्कृत, यूनानी अथवा जर्मन नहीं हुई थी, वरन् इन सब का मूल अपने में रखती थी। योरोपीय पंडितों के अनुसार सांसारिक जातियों का विभाग उपर्युक्तानुसार है। यही मत ठीक भी समझ पड़ता है।

ज्यों ज्यों आर्यों की संख्या तथा साहस में वृद्धि होती गयी, त्यों त्यों यह अपने निवास स्थान से आगे बढ़ते गये। इन लोगों ने क्रमशः भारत, पश्चिमी एशिया और सबसे पीछे योरोप में फैलकर इन देशों में आर्य्य सभ्यता का विस्तार किया। केल्ट भी आर्य्य थे जो फ्रांस और ब्रिटेन में पाये जाते हैं। इन लोगों ने पहले मध्य और दक्षिणी योरोप को अपना निवासस्थान बनाया। धीरे धीरे यूनानियों, रूमियों एवं ट्यूटनों ने केल्टों को इटली, ग्रीस, मध्य-योरोप, डेन्मार्क, स्वीडन और नार्वे से निकाल दिया। इसके पीछे स्लाव लोग रूस, पोलैण्ड, बोहेमिया, सर्विया आदि में फैल गए। लिथुएनियावाले रूस में बाल्टिक के किनारे रहते हैं।

समग्र आर्य्य जाति की आदिम एकता की साक्षी स्वरूपा बहुत करके अब आर्य्य भाषा ही है। संस्कृत, ज़ेंद, अँगरेज़ी, यूनानी, लैटिन, फ़ारसी, अरबी आदि भाषाओं के मिलाने से प्रकट होता है कि इन सब की मूल स्वरूपा कभी एक ही भाषा थी। इन सब में साधारण बातों, औजारों, कामों, रिश्तों आदि के लिये प्रायः एक ही से शब्द हैं। इन भाषाओं को बोलनेवाली जातियाँ हज़ारों वर्षों से पृथक् हैं, सो एक दूसरी से शब्द नक़ल नहीं कर सकती थीं और न ले सकती थीं। अतः इनकी आदिम,एकता प्रमाणित होती है। इसी भाषा सम्बन्धी जाँच से इस प्रभावशालिनी जाति की उस काल तक की उन्नतियों का परिचय मिलता है जब तक कि उसने अपना आदिम निवास स्थान नहीं छोड़ा था। पंडितों ने निष्कर्ष निकाला है कि उस समय भी आर्य्य लोग मकानों में रहते, पृथ्वी जोतते और चक्कियों से अनाज पीसते थे। यह भेड़, गाय, बैल, कुत्ता, बकरा आदि को पालते और शहद से निकाला हुआ मद्य पीते थे। वे ताँबा, चाँदी, सोना आदि का व्यवहार करते

और धनुष बाण तथा तलवार से लड़ते थे। उनमें राज्य शासन प्रणाली का आरम्भ हो चुका था। वे आकाश अथवा आकाशवासी देवता का पूजन करते थे।

कुछ पाश्चात्य पंडितों का विचार है कि प्राचीन संसार का सब से बड़ा इतिहास स्थल मेडेटरेनियन समुद्र का किनारा है। वे समझते हैं कि चीनी स्वपांडित्याभिमानी मात्र रहे हैं, हिन्दू स्वप्नवत् विचाराश्रयी मात्र, ग्रीक विचारशील तथा कारीगर और रूमी पूरे मनुष्य। अभिमानी कुछ सिखला नहीं सकता था, स्वप्नाश्रयी ने कुछ नहीं किया, कारीगर ने अपनी और अपने पड़ोस की उन्नति की और पूर्ण मनुष्य ने संसार पर शासन किया। आशा है कि ऐसे ओछे विचारों का कुछ संशोधन इन पृष्ठों के अवलोकन से हो जायगा, क्योंकि हिन्दुओं ने बहुत सी उन्नति अवश्य की थी। मिश्र, शे (चै) ल्डिया, भारतवर्ष और चीन में अति प्राचीन समय से यथेष्ट सभ्यता वर्तमान थी। इनमें आर्य जाति सब से अधिक सभ्य थी। मिश्र और असीरियावासियों ने कई बार भारतवर्ष पर चढ़ाइयाँ कीं।

भारतीय इतिहास आरम्भ करने के पूर्व यह ठीक समझ पड़ता है कि अपने पड़ोसी फ़ारस का कुछ सूक्ष्म दिग्दर्शन करा कर तब आगे बढ़ें। दलाल महाशय ने १९१४ के निकट प्राचीन भारत पर एक ग्रन्थ अँगरेज़ी में प्रकाशित किया। उसमें आर्यों के विषय में उनके जो विचार हैं उन में से कुछ का सारांश यहाँ दिया जाता है। ८००० से ७००० बी० सी० तक ग्लेशियरों (समुद्र में तैरनेवाले बर्फ़ के पहाड़ों) से शीताधिक्य एवं जनवृद्धि के कारण आर्य लोग अपने प्राकृति कसदनों को छोड़ कर नीचे उतरे। अनन्तर वे योरोप और एशिया में बँट गए। ७००० से ६००० बी० सी० तक वे मध्य एशिया में बसे, तथा ४००० बी० सी० में फ़ारस एवं भारत पहुँचे। ८००० से ६००० बी० सी० तक वे खाद का हाल नहीं जानते थे, किन्तु रथ, नाव, बुनाई का काम, यव और मधुपान से अभिज्ञ थे। उनके देवता उषस, द्युस और वरुण थे और वे यज्ञ करते थे। ६००० से ४००० बी० सी० तक वे बैबिलोन के निवासियों से मिले। उनकी सभ्यता उच्च थी, सो आर्यों की गति

अवरुद्ध हुई और इन्होंने उनसे बहुत कुछ सीखा। तदनन्तर आर्यों का फ़ारस और भारत से संबंध प्रारम्भ हुआ। फ़ारसी और भारतीय आर्य प्रायः एक ही थे। उनमें बहुत कुछ साम्य था। ज़न्दावस्ता के शब्द और विचार बहुत कुछ ऋग्वेद से मिलते हैं। यथाः—

वृत्रघ्न (इन्द्र) ईरानी वैरेथृघ्न। जैतन=थइटौन।

तृत, वेदों का, थृत ईरानी। प्रथम वैश मित्र=मिथृ।

शतपथ ब्राह्मण ९, ५, १ से निष्कर्ष निकलता है कि देव तथा असुर प्रजापति के पुत्र थे। देव सत्य पर रहे, असुर असत्य पर। देवासुर युद्ध होने से देव ईरान के उत्तर पूर्व में बसे, और वहां से भारत आये। यह युद्ध दीर्घ कालीन और भारी था।

भारत में आने पर आर्यों ने यहां द्रविड़ों तथा कोलों को पाकर उन्हें दास या दस्यु कहा। कोल उत्तर पूर्व से और द्रविड़ उत्तर पश्चिम से आये थे। कोई कोई इन्हें बलूचिस्तान से आनेवाले समझते हैं। कोलैरियनों को विन्ध्य के निकट पराजित करके द्रविड़ दक्षिण चले गए। कुछ लोगों का विचार है कि कोल आदिम भारतीय थे। द्रविड़ों का बैबिलोन से अच्छा व्यापार था। वे पृथ्वी और शेषनाग को पूजते थे। ग्राम्य समाजों का चलन द्रविड़ों ने चलाया। तरु पूजन भी उनका था। खेती का अच्छा प्रचार दक्षिण में हुआ। उनके कुटुम्ब माताओं पर थे। ऋग्वेद में ये राक्षस और यातुधान हुए। पिशाच लाली लिए हुए बहुत चिल्लाने वाले थे। बृहत्कथा मूलतः पैशाची भाषा में थी। नागों और यक्षों की भी दो जातियां थीं। कुबेर यक्ष थे। दक्षिण में नागों के चित्र मनुष्यों के हैं न कि सर्पों के। आर्यों की दूसरी धारा गिलगिट और चितराल होकर आयी। पहले देव असुरों से हार गए, किन्तु पीछे पुरंजय की सहायता से विजयी हुए। पुरुकुत्स नर्मदा तक बढ़े।

पार्जिटर महाशय का विचार हिन्दू शास्त्रों के अनुसार चलता है। हिन्दुओं में तिब्बत गन्धमादन आदि तो पवित्र देव देश हैं, किन्तु पंजाब अफ़ग़ानिस्तान आदि ऐसे नहीं हैं। इससे आपका कथन है कि आर्य लोग भारतवर्ष में उत्तर पश्चिम से न आकर इधर ही से आये।

फ़ारस का राज्य—यह राज्य पहले पहल पारसियों के अधीन हुआ। ये लोग आर्य्य थे और हमारे पूर्व पुरुषों की भाँति मध्य एशिया अथवा पूर्वीय रूस से आए थे। इनकी भाषा जन्द पुरानी संस्कृत से मिलती-जुलती है। इस भाषा में जन्दावस्ता नामक इनका प्राचीन धर्म ग्रन्थ मात्र रह गया है। हेरोडोटस ने बी० सी० १४०० के लगभग वाले फ़ारस राज्य के भारतीय सम्बन्ध का हाल कहा है। पारसियों ने कई जातियों को पराजित किया, किन्तु ये लोग उनका एकीकरण न कर सके। फ़ारस पहले मीडिया के अधीन रहा, किन्तु ७०० बी० सी० के लगभग इन लोगों का शासक पृथक् हो गया। फिर भी वह रहा मीडियों के अधिकार में, किन्तु ५५० बी० सी० में साइरस ने मीडिया को जीत कर फ़ारस का राज्य स्थापित किया। यह शासक बहुत बड़ा विजयी था। इसने ५४६ में लिडिया और ५३८ में बैबिलोनिया को भी जीत कर फ़ारस में मिला लिया। पूर्व में इसने हिन्दूकुश तक अपना राज्य फैलाया। यह बड़ा प्रतापी राजा था, किन्तु ५२९ में सीरिया वालों से युद्ध करने में मारा गया। इसके पुत्र कम्बीसिस ने ५२९ में मिश्र देश को जीत लिया। ५२१ से ४८५ बी० सी० तक इसके पुत्र दारा ने राज्य किया। इसने फ़ारस के विशाल राज्य को दृढ़ करके उसे कई प्रान्तों में विभाजित किया। प्रत्येक प्रान्त का शासक सट्रैप कहलाता था। दारा ने सड़कें बनवायीं और डाकख़ानों का अच्छा प्रबन्ध किया। इसने योरोपीय प्रान्त, थ्रेस और मैसिडोनिया को भी जीत कर फ़ारसी राज्य में मिलाये। इसके पीछे दारा ने यूनान (ग्रीस) जीतने का प्रबन्ध किया, किन्तु ४९० में मराथान के जगत्प्रसिद्ध युद्ध में फ़ारसी लोगों ने करारी पराजय पायी और योरोपीय पंडितों के अनुसार एशिया की योरोप विजय वाली कामना सदा के लिये अस्त हो गयी। इसके पुत्र ने फिर यूनान विजयार्थ युद्ध किये किन्तु फल यह हुआ कि उसके हाथ से मैसिडोनिया और थ्रेस भी जाते रहे। ४१४ में मिश्र स्वतन्त्र हो गया। ३३६ में तीसरा दारा गद्दी पर बैठा। इसने ३३१ में सिकन्दर के हाथ अर्बेला में वह करारी पराजय पायी कि जिससे फ़ारस का राज्य ध्वस्त हो गया। इसके पीछे फ़ारस साम्राज्य पद से गिर कर एक साधारण

राज्य रह गया। फ़ारस का भारत से कभी कोई ऐतिहासिक भारी युद्ध नहीं हुआ। भारत के बहुत से शक राजे अपने को सट्रैप (क्षत्रप) कहते थे, जिससे अनुमान किया जाता है कि वे लोग फ़ारस के अधीन थे, क्योंकि फ़ारस के प्रान्तीय शासक सट्रैप कहलाते थे, जैसा कि हम ऊपर देख चुके हैं।

भारतीय इतिहास के लिये यह वर्णन कुछ कुछ अप्रासंगिक समझा जा सकता है, किन्तु प्राचीन भारत का इस देश से बहुत कुछ सम्बन्ध रहा है। तिलक महाशय ने अपने 'ओरियन' ग्रन्थ में सिद्ध किया है कि आर्य्य लोग सब से पहले उत्तरीय ध्रुव के निवासी थे। हमारे शास्त्रों में लिखा है कि देवताओं के दिन रात छः छः महीनों के होते हैं। यह बात उत्तरीय ध्रुव के विषय में आज भी घटित है। आइसलैण्ड नामक टापू में भी यही दशा है। जब तक सूर्य्य उत्तरायण रहते हैं तब तक वहाँ बराबर दिन रहता है। इसी प्रकार दक्षिणायन सूर्य्य में छः मासों तक रात बनी रहती है। इस प्रकार ध्रुव प्रदेशों में वर्ष में एक ही दिन रात होती है। हिन्दू शास्त्र देवताओं का यही दिन मानते हैं। इससे कुछ ध्वनि निकलती है कि आदिम आर्य्य लोग उत्तरीय ध्रुव में रहते थे। सम्भवतः वहीं से चल कर वे पूर्वीय रूस और मध्य एशिया होते हुए भारत, पश्चिमी एशिया और योरोप में फैले। तिलक महाशय के अनुसार आर्य्यों का पदार्पण भारत में ६००० बी० सी० के लगभग हुआ और ४००० से २५०० तक ऋग्वेद तथा सामवेद की रचना हुई। यजुर्वेद और अथर्ववेद इस से कुछ पीछे के हैं। इसलिये इस अध्याय में वेदों का वर्णन न करके हम उसे यथा स्थान कहेंगे। यहाँ वेदों एवं अन्य ग्रन्थों के सहारे से आर्य्यों के आगमन का कथन किया जायगा और पुराणों आदि के आधार पर शेष इतिहास कहा जायगा। वायु पुराण का कथन है कि भूत, पिशाच, नाग और देव उत्तर से भारत को आये। भूतगण भूत स्थान (भूटान) में बसे। भविष्य पुराण बतलाता है कि आर्य उत्तर कुरु (साइबेरिया) में रहते थे और वहाँ से मध्य भूमि (युक्त प्रान्त) में आए।

आर्य्यों की संख्या आगमन के समय बहुत अधिक न थी। ऊपर दिखलाया जा चुका है कि भारत में आने के पूर्व आर्य्य लोग रूसी

तथा राज्य व्यवस्था से कुछ कुछ अभिज्ञ थे। अपने देश में स्थानाभाव तथा देशान्तरों में भ्रमण का चाव उन्हें हिन्दुस्तान तक ले आया। यहाँ की भूमि को बहुत उपजाऊ देख वे जङ्गलों का जला और मैदानों को साफ कर यहीं बस गए। अनार्य्य लोगों ने धनुष बाणों से उनका सामना किया, किन्तु बढ़ी हुई आर्य्य सभ्यता के सम्मुख भारतीय शिकारीगण बलवान होने पर भी ठहर न सके। उस काल अधिकतर भारतीयों को सेना बना कर लड़ने की प्रथा ज्ञात न थी। वे बिना दल जोड़े और बिना मंत्रणा किए सौ सौ दो दो सौ के झुंडों में आर्य्यों से लड़ लड़ कर हारते गये। जो जहां हुआ वह वहीं लड़ पड़ा। ये लोग घोड़े का हाल नहीं जानते थे। आर्य्यों के घुड़सवार देख कर इन लोगों ने घोड़ा और सवार को एक ही व्यक्ति समझा। ऐसे भयानक व्यक्ति से विजय की कुछ भी आशा न रख कर बेचारे अनार्य्य हाय हाय करके भागे। यही भ्रम अमरीका में स्पेन वालों के घुड़सवार देखकर वहाँ के आदिम निवासियों (रेड इंडियनों) को हुआ। घोड़े से विशेष कार्य्य सिद्ध होने के कारण आर्य्यों में उसका मान बहुत बढ़ा, यहाँ तक कि दधिक्रव्रण के नाम से वेदों में उसकी पूजा तक हुई। इसी अवसर पर आर्य्यों ने प्राचीन भारतीयों को भाषाहीन पशु मात्र समझा। ये लोग रङ्ग में काले और सभ्यता के सभी अंगों में आर्य्यों से बहुत नीचे थे। अतः आर्य्यों और अनार्य्यों के भेद को वर्ण भेद की उपाधि मिली। इसी से समय पर जाति भेद निकला जैसा कि आगे दिखलाया जावेगा।

अनार्य्यों ने बहुत शीघ्रता से अपनी हार नहीं मान ली, वरन् वे जङ्गलों, पहाड़ों आदि में छिप जाते थे और मौका पाकर आर्य्यों को भारी हानि पहुँचाते थे। इसी प्रकार इन दोनों जातियों में सैकड़ों वर्षों तक युद्ध होता रहा। ज्यों ज्यों आर्य्य आगे बढ़ते जाते थे त्यों त्यों अनार्य्य लोग पीछे हटते जाते थे, किन्तु प्रत्येक जङ्गल और पहाड़ को उन्होंने कठिन युद्ध करके छोड़ा और प्रत्येक नदी पार करने में आर्य्यों को पूरी अड़चन डाली। इसलिए नदियाँ पार करने के वास्ते आर्य्यों को बहुत बड़े बड़े जलयान बनाने पड़े। १०० मस्तूलों तक के जलपोतों का वर्णन वेदों में कई स्थानों पर आया है। इस

चिरकालिक युद्ध के कारण आर्यों तथा अनार्यों में भारी शत्रुता हो गयी। इसीलिए ऋग्वेद में जहाँ कहीं अनार्यों का कथन आया है, वहाँ वह विद्वेषपूर्ण शब्दों में है। प्रार्थनाओं में यहाँ तक कहा गया है कि हे इन्द्र तू इनकी काली चमड़ी उधेड़ दे। यह दशा यजुर्वेद और अथर्ववेद के समयों में नहीं रही थी, क्योंकि उन में अनार्यों के साथ प्रेमपूर्ण व्यवहार का परिचय मिलता है। हड़प्पा मोहंजोदड़ो आदि के समान कुछ उन्नत नगर और प्रान्त भी थे। वेदों में भी शम्बर, वृत्र आदि के पाषाण दुर्ग लिखे हैं। और भी अनेकानेक भारी अनार्य्य नेता थे। उनके जीतने में आर्य्यों को कठिनता पड़ी, किन्तु अन्त में ये ही विजयी हुये।

इस लम्बे समय में आर्य्यों का जीवन बहुत करके वैसा ही था जैसा कि ऋग्वेद में पाया जाता है। इन आर्य्यों ने वेदमंत्रों तक न पहुँचने वाले गद्य पद्य मय साहित्य की भी रचना की, जिसे निविध कहते हैं। यह अब हम लोगों के पास प्रस्तुत नहीं है, किन्तु इसके तात्कालिक अस्तित्व की खोज पंडितों को वेदों से ही मिली है। इस लम्बे समय में आर्य्यों की भाषा भी अन्य बातों के साथ उन्नति करती तथा बदलती रही, यहाँ तक कि इस समय के पीछे ऋग्वेद जिस भाषा में लिखा गया वह आर्य्यों की प्राचीन भाषा जन्द से मिलती होने पर भी बहुत कुछ भिन्न हो गयी थी। यह निश्चयपूर्वक नहीं कहा जा सकता कि आर्य्यों की प्राचीन भाषा जन्द ही थी। हम लोगों को केवल इतना ज्ञात है कि आर्य्यों की दूसरी धारा जो फ़ारस में रही, उसकी प्राचीन भाषा जन्द थी। आर्य्यों का कथन कुछ विस्तार के साथ वैदिक वर्णन में आवेगा। यहां केवल उतना ही कहा गया है जो उनको अवैदिक समय वाली दशा का दिग्दर्शन करा सके। पूर्वोक्त कथन विशेषतया वेदों के आधार पर किये गए हैं। अब हम पुराणों के आधार पर इस काल का इतिहास लिखते हैं।

हमारे यहाँ पौराणिक विवरणों में समय का विभाग मन्वन्तरों के अनुसार किया गया है। पूरा भूत भविष्य काल चौदह मन्वन्तरों में बाँटा गया है, जिसमें से ६ मन्वन्तर हो चुके हैं और ७ वां इस समय चल रहा है, तथा सात आगे आने वाले हैं। एक मन्वन्तर

७१ चतुर्युगियों से कुछ अधिक होता है। प्रत्येक चतुर्युगी में सत्ययुग, त्रेता, द्वापर और कलियुग होते हैं। सत्ययुग की संख्या ४००० वर्षों की है और चार-चार सौ वर्षों की उसकी सन्ध्या और सन्ध्यांश होते हैं। त्रेतायुग ३००० वर्षों का है और उसकी सन्ध्या-सन्ध्यांश में ६ सौ वर्ष लगते हैं। द्वापर में २००० वर्ष और चार सौ वर्षों की संध्या-संध्यांश हैं तथा कलियुग में १००० वर्ष और दो सौ वर्षों की संध्या-संध्यांश हैं। प्रयोजन यह है कि जितने हजार वर्षों का युग होगा उतने ही सौ वर्षों की सन्ध्या होगी और उसी के बराबर संध्यांश होगा। अतः एक चतुर्युगी में १२००० वर्ष होते हैं।

यह गणना अच्छी थी, किन्तु पौराणिक पंडितों ने इस काल को देवताओं का समय कह कर बहुत बढ़ा दिया। इस पौराणिक मत के अनुसार उपर्युक्त प्रत्येक वर्ष हमारे ३६० वर्षों का होता है, क्योंकि देवताओं का एक दिन हमारे एक वर्ष के बराबर है। अतः एक चतुर्युगी ४३२०००० वर्षों की हो जाती है और एक मन्वन्तर में ऐसी ऐसी ७१ चतुर्युगियां पड़ जाती हैं। इसलिए यह पौराणिक समय संख्या बिलकुल बेकार हो गयी है। फिर भी मन्वन्तरों के कथन से इतना लाभ अवश्य है कि वैवस्वत मनु के पहले हमें छः मन्वन्तर मिलते हैं और जिस मन्वन्तर में जो कथाएँ पुराणों में वर्णित हैं, उनके अनुसार घटनाओं का पूर्वापर क्रम मिल जाता है। युगों के अनुसार घटनाओं का कथन भी कुछ कुछ सहायता देता है, किन्तु प्रत्येक राजत्व काल के विषय में निश्चयपूर्वक यह नहीं ज्ञात होता है कि वह किस युग में था। मोटे प्रकार से बलिबन्धन सत्ययुग में हुआ, रामावतार त्रेता में, महाभारत युद्ध द्वापर में और इधर की घटनाएँ कलियुग में हुईं। महाभारत का काल बहुत लोग ६०० गत कलि में भी मानते हैं, यद्यपि पुराणों में कृष्ण के शरीर-त्याग, महाभारत युद्ध अथवा परीक्षित के समय से कलि का प्रारम्भ लिखा है। जो हो, हम युगों, मन्वन्तरों तथा राजवंशों के सहारे इतिहास लिखना श्रेष्ठतर समझते हैं।

चौदहों मनुओं के नाम ये हैं:—स्वायम्भुव, स्वारोचिष, उत्तम, तामस, रैवत, चाक्षुष, वैवस्वत, सावर्णि, दक्षसावर्णि, ब्रह्मसावर्णि,

धर्मसावर्णि, रुद्रसावर्णि, देवसावर्णि और इन्द्रसावर्णि। इन सब में सावर्णि वाले मन्वन्तर भविष्य से सम्बन्ध रखते हैं, न कि भूत और वर्त्तमान कालों से। अतः इनका कथन अनावश्यक है और इनके नाम केवल वर्णन पूर्णता के विचार से यहाँ लिख दिए गये हैं। इन सब का भोग काल समान मानने की कोई आवश्यकता नहीं है। पृथक् पृथक् राजघरानों के समान इनका समय भी न्यूनाधिक अवश्य होगा। स्वायम्भुव मनु पहले थे। इनके वंश का वर्णन राजवंश कथन वाले अध्याय में नं० १ पर दिया हुआ है। ऋग्वेद का निर्माण काल मोटे प्रकार से चाक्षुप मन्वन्तर से प्रारम्भ होता है। इसी में समुद्र मन्थन भी हुआ जैसा कि आगे कहा जायगा। अतः समझ पड़ता है कि चाक्षुप मन्वन्तर आर्यों के लिये बहुत ही गौरवपूर्ण समय था। सातों मनुओं में से केवल चाक्षुप और वैवस्वत वेदर्षि थे, शेष कोई नहीं। इससे भी चाक्षुप मन्वन्तर से ही मुख्यतया वैदिक समय चलने की झलक मिलती है। वेदों में आर्यों की बहुत छोटी छोटी बातों तक के वर्णन हैं, किन्तु यह साफ कहीं नहीं लिखा है कि वे लोग कहीं बाहर से आकर भारत में बसे। इससे प्रकट होता है कि आर्य लोग वेद निर्माणारम्भ के समय इतने दिन पहले से भारत में बसते थे कि वे अपना बाहर से आना बिलकुल भूल चुके थे। यह बात तिलक महाशय के इस सिद्धान्त को पुष्ट करती है कि आर्य लोग वैदिक समय से बहुत वर्ष पूर्व भारत में आए थे। यहां जैसे जैसे उनकी संख्या और शक्ति में वृद्धि हुई, वैसे ही वैसे वे आगे बढ़ते गए।

स्वायम्भुव मन्वन्तर

स्वायम्भुव से चाक्षुप पर्यन्त छवों मन्वन्तरों में जो विवरण है, वह श्रीभागवत, विष्णु पुराण, हरिवंश और दुर्गा सप्तशती के आधार पर है।

ऋग्वेद में कहा गया कि हे इन्द्र तू ने यह देश मनु को दिया। इस से स्वायम्भुव मनु का प्रयोजन समझ पड़ता है। वैवस्वत मनु का कथन वेदों में जहाँ हुआ वहाँ वैवस्वत भी कह दिया गया है। वेदों में घटनाओं का पूर्वापर क्रम नहीं कहा गया है। पुराणों से हमें ज्ञात

होता है कि स्वायम्भुवमनु १४ मनुओं में पहले थे। इनकी ४५ पीढ़ियों ने भारत में राज्य किया। इस कारण से यह मन्वन्तर कई सौ वर्षों का समझ पड़ता है। इनके प्रियव्रत और उत्तानपाद नामक दो पुत्र थे। ये दोनों बड़े प्रतापी राजा हो गए हैं। आर्यों के सब से पहले राजा स्वायम्भुव मनु थे। इन्हीं से नरवंश का चलना कहा गया है, किन्तु वास्तव में यह कई भारी राजवंशों मात्र के पूर्व पुरुष थे। उत्तानपाद और प्रियव्रत साथ ही साथ भिन्न भिन्न प्रदेशों के स्वामी हुए ।

मनु के दो पुत्रों के अतिरिक्त आकूति, प्रसूति और देवहूति नाम्नी तीन कन्यायें भी थीं। देवहूति का विवाह पुलह के पुत्र कर्दम ऋषि के साथ हुआ जिनसे कपिल का जन्म हुआ। कर्दम की कन्या के साथ मनु पुत्र प्रियव्रत का विवाह हुआ जिससे दस पुत्र और दो कन्याओं का जन्म हुआ। कहा गया है कि प्रियव्रत ऐसे प्रतापी राजा थे कि उन्होंने राज्य में कई दिन तक रात्रि नहीं होने दी थी । इन्होंने राज्य अपने पुत्रों में बांट दिया। अग्नीध्र को जम्बू द्वीप (शायद एशिया) मिला; द्युतिमान को क्रौंच द्वीप, भव्य को शक द्वीप (शायद योरोप) तथा औरों को अन्य प्रान्त। बुढ़ापे में इस प्रकार पुत्रों में राज्य बांट कर प्रियव्रत गृहत्यागी हो गये। षष्ठी देवी की पूजा इन्होंने चलाई । बंगाल में स्त्रियां पुत्र कामना से अब भी षष्ठी का पूजन करती हैं। अग्नीध्र के नौ पुत्र थे जिनमें इन्होंने अपना राज्य बांट दिया। नाभि को हिम वर्ष मिला जो हिमालय से अरब समुद्र पर्य्यन्त कहा गया है । हरि को नैषध उपनाम हरि वर्ष (रूसी तुर्किस्तान), इलाव्रत को इला वर्ष (पामीर), रम्यक को चीनी तातार, हिरण्मय को मंगोलिया, कुरु को कुरु वर्ष (साइबेरिया), किम्पुरुष को उत्तरी चीन, भद्राश्व को दक्षिणी चीन और केतुमान को रूसी तुर्किस्तान मिले। महाराजा नाभि भारत का शासक हुआ। इसके पुत्र ऋषभदेव थे। हरि वर्ष को कहीं कहीं अरब या तिब्बत भी कहा है। इन्द्र की कन्या जयन्ती का विवाह ऋषभदेव से हुआ।

ऋषभदेव न केवल भारी सम्राट थे वरन् भारी धर्मोपदेशक भी हो गये हैं। आप जैनों के प्रथम तीर्थंकर होने से आदिनाथ भी कहलाते

हैं। इनके सिद्धान्त निम्नानुसार कहे जाते हैं:-(१) ईश्वर सम्बन्धी विचारों से इतर भी मुक्ति संभव है। (२) संसार स्वयं मुक्त और नित्य है। (३) अहिंसा, आत्म-शिक्षण और दिगम्बरपन सदाचार हैं। इनसे "केवल ज्ञान" प्राप्त होता है। पुराणों में लिखा है कि बुढ़ापे में ऋषभदेव आँय बाँय बकने लगे। इस कथन से उनके हिन्दुओं के प्रतिकूल विचारों की झलक मिलती है। ऋषभदेव द्वारा प्रतिपादित जो मत ऊपर कहे गये हैं वे ऐतिहासिक ज्ञान-वृद्धि के विचार से उस काल के लिये अयुक्त हैं। जान पड़ता है कि उन्होंने कुछ नव विचारोत्पादन किया था जिनका मूल समय के साथ उन्नति करता हुआ अब उपर्युक्त रूप में उन्हीं के विषय में कहा गया है। कहते हैं कि उत्तानपाद के वंशधर वेन को ऋषभदेव ने स्वमत में दीक्षित किया। यह कथन दो कारणों से अयुक्त समझ पड़ता है। एक तो ऋषभदेव मनु से पाँचवीं पीढ़ी पर थे और वेन ३९वीं पर, सो इन दोनों का समकालिक होना असंभव था। दूसरे वेन ने जो मत चलाना चाहा था वह ऋषभदेव के मत से भिन्न था, क्योंकि वेन राजा अपने को प्रजा द्वारा पुजवाना चाहता था जो ऋषभदेव के मत से इतर मत है।

ऋषभदेव के पुत्र महाराजा भरत हुये जिनके नाम पर देश भारतवर्ष कहलाया। भरत बड़े ही पुण्यवान और वीर थे। इन्होंने आठ द्वीप जीते जिससे इनका राज्य नौ भागों में कथित है। वायुपुराण कहता है कि इनके नवों द्वीप समुद्र द्वारा एक दूसरे से पृथक थे। उनके नाम ये हैं:—इन्द्रद्वीप, कसेरु, ताम्रवर्ण, गोभस्तिमान, नागवर, सौम्य, गन्धर्व, वरुण और भारत। मजुमदार महाशय इन्हें सिन्धु, कच्छ, सीलोन, अंडमन, नीकोबार, सुमात्रा, जावा, बोर्नियो और भारत समझते हैं। भरत ने यज्ञ किया। अनन्तर आप राज्य छोड़ कर योगी हुये और योग में आपने इतना मन लगाया कि शरीर तक को भुला दिया जिससे उपाधि जड़ भरत हुई। वन में एक बार सिंह की गरज सुन कर एक मृगी का गर्भपात हो गया और वह मर गई। भरत ने दया से उस मृगशावक को पाला। उसमें ये इतने अनुरक्त हुये कि जप तप सब भूल बैठे। एक बार अन्य मृगों में मिल कर वह उनके साथ जंगल में चला गया और फिर इनके पास न पलटा। उसके

विरह से इन्हें इतना कष्ट हुआ कि अन्त में इनका शरीर ही छूट गया। भरत के पीछे इस वंश का राज्य निर्बल हो गया। किसी ने कोई ख्याति प्राप्त न की।

मनु के दूसरे पुत्र उत्तानपाद के दो स्त्रियाँ थीं। बड़ी स्त्री सुनीति से ध्रुव पुत्र उत्पन्न हुआ और कनिष्ठा सुरुचि से उत्तम। उत्तानपाद निर्बल चित्त के मनुष्य थे। आप छोटी रानी से अधिक स्नेह करते थे जिससे ध्रुव का भी उचित सम्मान नहीं होता था। इस कारण बाल्यवय में ही पिता से रुष्ट होकर ध्रुव तपस्या करने के लिए जंगल को चले गये। श्रेष्ठ भक्तों में इनका नाम ऊँचा है। इनके चरित्र गौरव से माहात्म्य संसार में बहुत बढ़ा। उधर उत्तम को युद्ध में यक्षों ने मार डाला। तब उत्तानपाद ने ध्रुव को राजा बना कर स्वयं जंगल का रास्ता लिया। कहीं कहीं यह भी लिखा है कि उत्तम को जीत कर ध्रुव ने अपना राज्य पाया। आपने यक्षों को पराजित करके बहुत दिनों तक सुख पूर्ण, शान्ति पूर्ण और प्रजा-प्रिय-शासन किया। इनको ब्रह्मज्ञान भी प्राप्त होना लिखा है यद्यपि यह कथन काल विरुद्ध दूषण से रहित नहीं है। उत्तरी ध्रुव नक्षत्र में इनका लोक समझा जाता है और उत्तानपाद, प्रियव्रत एवं सप्तर्षि नक्षत्र इनकी सदा परिक्रमा किया करते हैं।

उत्तानपाद के वंश में ४५ पीढ़ी राज्य चला। इन राजाओं में ध्रुव, चाक्षुष मनु, वेन, पृथु, प्रचेतस और दक्ष प्रधान थे। दक्ष के पीछे इस घराने में राज्य नहीं रहा। अंग ने यज्ञ किया, किन्तु पुत्र वेन के कुव्यवहार से राज छोड़ वे जंगल चले गये। राजा वेन एक दुश्चरित्र पुरुष था। इसने शायद अच्छे घराने की रानी के अतिरिक्त एक नीच वंश की स्त्री भी अपने घर में डाल ली थी जिससे निषाद नामक इस का बड़ा पुत्र उत्पन्न हुआ। वेन का छोटा पुत्र पृथु कुलीन रानी से था। यह बड़ा सुयशी राजकुमार था। राजा वेन ने एक नया धर्म चलाना चाहा और आज्ञा प्रचारित करदी कि सारी प्रजा देवभाव से राजा ही को पूजै, और किसी को नहीं। उस काल तक जन्म से जातिभेद स्थापित नहीं हुआ था और लोग अपने अपने कर्मानुसार ब्राह्मण, क्षत्री आदि माने जाते होंगे। ब्राह्मणों के कर्म करनेवाले लोग प्रजा

से पुकारा गया है। उस समय आर्यों की नेत्री देवी नाम्नी एक प्रसिद्ध आर्य महिला थीं। इन्होंने महिषासुर का वध किया।

थोड़े दिनों के पीछे शुम्भ निशुम्भ नामक दो भारी अनार्य राजे हुये। इन्होंने आर्यों को कई युद्धों में पराजित किया, किन्तु देवी ने इनको भी ससैन्य मार कर आर्य संकट दूर किया। चंड मुंड नामक दो प्रसिद्ध सेनापति शुम्भ के सहायक थे। इनका भी देवी ने वध किया। महिषासुर तथा इन लागों के नाम वेदों में नहीं आये हैं। स्वारोचिष मन्वन्तर की और कोई प्रधान घटना नहीं मिलती, केवल इतना और लिखा है कि उपर्युक्त राजा सुरथ से मधु कैटभ का हाल कहा गया। ये दोनों प्रलय के समय में विष्णु से लड़े थे। इससे जान पड़ता है कि महाप्रलय स्वारोचिष मन्वन्तर के पहले हुआ। जिन मनु को मत्स्य देव ने भारी जहाज पर चढ़ा कर बचाया था उनका क्या नाम था सो शतपथ ब्राह्मण में नहीं लिखा हुआ है। वहां केवल मनु का बचाया जाना कहा गया है और यह भी लिखा है कि उन्हीं मनु के हवन से इड़ा नाम की एक कन्या हुई थी, जिससे मनु ने सृष्टि उत्पन्न की। ब्राह्मण ग्रंथों से इन मनु का इससे अधिक कुछ परिचय नहीं मिलता और न वेदों में इसका कुछ हाल कहा गया है। पुराणों में महा प्रलय वाले मनु कहीं कहीं वैवस्वत मनु कहे गये हैं, किन्तु स्कन्द पुराण के अनुसार वे या तो स्वायंभुव मनु हो सकते हैं अथवा स्वारोचिष। श्री भागवत में महा प्रलय सम्बन्धी राजा का नाम सत्यव्रत था, वही प्रलय के पीछे इसी जन्म में वैवस्वत मनु हुये। स्वायंभुव की इड़ानाम्नी कोई कन्या कहीं नहीं लिखी है, वरन् उनकी कन्याओं के नाम आकूति, प्रसूति और देवहूति थे। अतः महाप्रलय से सम्बन्ध रखने वाले स्वारोचिष ही समझ पड़ते हैं। महाप्रलय का कोई ऐतिहासिक विवरण मिलना सर्वथा असम्भव है, किन्तु इसका कथन हिन्दू, मुसलमान, ईसाई आदि सभी के धार्मिक ग्रंथों में पाया जाता है। इसलिये इसका सूक्ष्म विवरण यहां लिख दिया गया। कुछ पंडितों का मत है कि महाप्रलय तथा मार्कण्डेय का विवरण केवल काल्पनिक था। विष्णु पुराण में लिखा है कि चैत्र, किम्पुरुष आदि स्वारोचिष के पुत्र थे।

उत्तम और तामस मन्वन्तर

उत्तम मन्वन्तर के विषय में कोई विशेष घटना नहीं ज्ञात है। तामस मनु उत्तम के पुत्र थे। इस (तामस) मन्वन्तर में गजेन्द्र मोक्ष की कथा कही जाती है। ख्याति, शतहय, जानुजंघ आदि तामस के पुत्र थे।

रैवत मन्वन्तर

इसमें वैकुण्ठ निर्माण कहा गया है। वैकुण्ठ स्वर्गलोक को भी कहते हैं, किन्तु इस मन्वन्तर में उसका बनना भी श्री भागवत में लिखा है। इससे जान पड़ता है कि यह पृथ्वी पर कोई स्थान था। कश्मीर या तिब्बत में वैकुण्ठ का होना अनुमान होता है। फ़ारसी कवियों ने भी कश्मीर के विषय में कहा है कि "अगर फ़िरदौस बर रूए ज़मीनस्त। हमीनस्तो हमीनस्तो हमीनस्त॥" तिब्बत को भी वैकुण्ठ मानना युक्तियुक्त है। संस्कृत में वैकुण्ठ को त्रिविष्टप भी कहते हैं जो नाम तिब्बत से बहुत कुछ मिलता है। जो हो, राजा बलि का इन्द्र से शायद इसी लोक के लिये युद्ध हुआ था। हरिवंश में कहा गया है कि जिस काल राजा बलि की फ़ौज वैकुण्ठ विजयार्थ गयी थी, तब वह आसमान में छा गयी थी। इससे उसका किसी पहाड़ पर जाना अनुमान सिद्ध है। विष्णु पुराण के अनुसार स्वारोचिष, उत्तम, तामस तथा रैवत मनु प्रियव्रत के वंशज थे।

चाक्षुष मन्वन्तर

चाक्षुष मनु उत्तानपाद के वंशज कहे गये हैं। ये छठवें मनु हैं। उपर्युक्त चारों मनु प्रियव्रत की २७ वीं पीढ़ी के पीछे के हैं, सो चाक्षुष मनु का ३६ वाँ नम्बर योग्य समझ पड़ता है। इनके वंश वृक्ष से प्रायः तीस नामों का छूट जाना पाया जाता है। इस गिनती में इन चारों मन्वन्तरों में आठ राजे माने गये हैं, अर्थात् चार स्वयं मनु तथा उन चारों मन्वन्तरों में चार और राजे। श्री भागवत के अनुसार समुद्र मन्थन और बलि बन्धन चाक्षुष मन्वन्तर की मुख्य घटनाएँ हैं। बलि बन्धन के थोड़ा ही पीछे वैवस्वत मन्वन्तर प्रारम्भ होता है।

इससे जान पड़ता है कि हिरण्याक्ष तथा हिरण्यकशिपु के भी युद्ध चाक्षुष मन्वन्तर के ही अन्तर्गत हैं, क्योंकि बलि हिरण्यकशिपु के प्रपौत्र थे, सो इन दोनों का अन्तर १०० वर्षों से अधिक का नहीं हो सकता, और बलि बन्धन चाक्षुष मन्वन्तर के अन्त में होने से यदि यह मन्वन्तर प्रायः २०० वर्षों का हो, तो हिरण्याक्ष आदि की कथाएँ इसी के अन्तर्गत पड़ेंगी।

पुराणों में कहा गया है कि देवताओं की माता अदिति हैं और दैत्यों की दिति तथा दानवों की दनु। ये तीनों बहनें थीं और अदिति के देवमाता होने से इन तीनों का आर्य महिलाएँ होना अनुमान सिद्ध है। इन तीनों के पति भी एक ही व्यक्ति कहे गये हैं अर्थात् कश्यप। यदि यह बात मान ली जावे तो दैत्यों, दानवों और देवताओं में कोई भी जाति भेद नहीं रह जाता, क्योंकि उनके मातृ और पितृ दोनों कुल एक ही हो जाते हैं। फिर भी यह बात सभी पौराणिक ग्रन्थों से प्रकट है कि देवताओं का दैत्यों तथा दानवों से भारी जाति भेद था। इससे जान पड़ता है कि दिति और अदिति के पतियों के नाम कश्यप अवश्य थे, किन्तु वे दो व्यक्ति थे न कि एक ही। पुराणों में अदिति के पति का नाम सब जगह कश्यप लिखा हुआ है और वे इन्द्र के पिता कहे गये हैं, किन्तु ऋग्वेद में अदिति के पति का नाम शुस है। इन्द्र का वर्णन अनेक ऐसे समयों में हुआ है जिससे सभी स्थानों पर उन्हें एक ही व्यक्ति मानने से काल-विरुद्ध दूषण आ जावेगा। वेदों में इन्द्र देवता माने गए हैं किन्तु विनतियों में आर्यों द्वारा किये हुए बहुत से कर्म भी इन्द्र द्वारा किये हुए माने गये हैं, जैसे कि भक्त लोग सभी के कर्म ईश्वर कृत मानते हैं। वेदों में प्रायः ऐसे कथन हैं कि इन्द्र, अग्नि आदि ने अमुक के लिये अमुक कार्य किया। ऐसे स्थानों पर ये कार्य उन्हीं राजाओं आदि के हैं और इन्द्रादि के नाम भक्ति के कारण कहे गये हैं। पुराणों में इस विचार का बहुत बड़ा विस्तार हुआ है। वहाँ इन्द्र की बड़ी सेनाएँ हैं और उनके कार्य महाराजाओं के समान हैं। वैदिक इन्द्र कभी पराजित नहीं हुये किन्तु पौराणिक इन्द्र कई बार हारे हैं। वैदिक इन्द्र के प्रायः सभी कर्म उच्चाशय पूर्ण हैं, किन्तु पौराणिक इन्द्र बहुत

से गर्हित कर्मों के कर्त्ता हुये हैं। फिर भी वैदिक इन्द्र के प्राय: सभी गुण पौराणिक इन्द्र में वर्त्तमान हैं। इन सब बातों से समझ पड़ता है कि पुराणों में इन्द्र का विचार वैदिक इन्द्र से उठकर आर्यों के प्रधान सम्राट में परिणत हो गया। महाभारत के शान्ति पर्व में आया है कि कोई सदा को इन्द्र नहीं रहता। बहुत से इन्द्र पहले हो चुके हैं और बहुतेरे आगे होंगे। यह बलि ने इन्द्र से कहा था। दुर्गा सप्तशती में आया है कि देवताओं को जीतकर महिषासुर इन्द्र हो गया। उसके पीछे वह पराजित हुआ।

दैत्यों, दानवों आदि के वंशों का कुछ कथन पौराणिक राजवंशों के अध्याय में हो चुका है। कुछ योरोपीय विद्वानों का मत है कि ऋग्वेद के समय पर्यन्त आर्य्य लोग सरस्वती नदी के पश्चिम तक रहे और उसके पूर्व नहीं आये। इस कथन के प्रमाण में वे ऋग्वेद की उस ऋचा का सहारा लेते हैं जिसमें लिखा है कि सरस्वती नदी के पूर्व अनार्य्यों की बस्ती है। हमारी समझ में इससे केवल इतना सिद्ध होता है कि उस काल सरस्वती के पूर्व आर्य्यों का राज्य न था और वे इधर बसे कम थे, न यह कि वे इस ओर आते जाते ही थे। ऋग्वेद में यह भी लिखा है कि आर्य्य लोग सौ सौ मस्तूलों के जहाज समुद्र पर चलाते थे। कुछ योरोपीय विद्वानों का मत है कि ये जहाज समुद्र पर न चल कर केवल सिन्धु नदी पर चलते थे। हमारी समझ में यह विचार कुतर्क मात्र है। समझ पड़ता है कि सरस्वती के पूर्व अनार्य्यों की बस्ती बतानेवाली ऋचा चाक्षुष मन्वन्तर के प्रारम्भ काल की है और सारे वैदिक समय से भी सम्बन्ध नहीं रखती।

पौराणिक वर्णनों से अनुमान होता है कि वृत्र-वध दैत्य अभ्युत्थान से पहले हुआ। कहते हैं कि ९९ वृत्रों को इन्द्र ने मारा। कहीं कहीं वेदों में वृत्र के पहाड़ी दुर्गों का कथन है जिन्हें इन्द्र ने विमर्दित किया। ये घटनाएँ चाक्षुष मन्वन्तर की समझ पड़ती हैं। इस मन्वन्तर के प्राय: माध्यमिक समय में दिति पुत्र हिरण्यकशिपु और हिरण्याक्ष बड़े प्रतापी हुए। हिरण्याक्ष की सहायता से विशेष बल प्राप्त करके बड़े भाई हिरण्यकशिपु ने अपना राज्य बहुत विस्तीर्ण किया। कहा जाता है कि इसका आतङ्क आर्य्य देश में भी पड़ा और इसने बहुत से

आर्य्यों को पदच्युत कर दिया। पुराणों में इसके द्वारा तीनों लोकों का जीता जाना कहा गया है, किन्तु बलि के समयवाले देवासुर संग्राम की भाँति कोई युद्ध इसके समय में नहीं कथित है। इससे समझ पड़ता है कि आर्य्यों पर हिरण्यकशिपु का कुछ आतङ्क अवश्य पड़ा, किन्तु वे पूर्णतया पराजित नहीं हो पाये। इसका प्रभाव दिनों दिन बढ़ रहा था कि इतने ही में अद्वितीय वीर हिरण्याक्ष का वन में किसी वराह से सामना हो पड़ा, जिसके द्वारा वह मारा गया। इस बात से हिरण्यकशिपु का राज्य कुछ बलहीन होकर डगमगाने लगा और आर्य्यों का प्रभाव बढ़ा। कुछ पण्डितों का विचार है कि वेद तथा ज़ेंदावस्ता के विवरणों से समझ पड़ता है कि देवासुर झगड़ा फ़ारस और अफ़ग़ानिस्तान में हुआ होगा। सम्भवतः हिरण्यकशिपु और बलि उत्तर पश्चिमी फ़ारस या अफ़ग़ानिस्तान के शासक हों। ऐसी दशा में समुद्र मन्थन भी उसी ओर की घटना निकलेगी और नागों का भी उस ओर संसर्ग बैठेगा। योग वाशिष्ठ में आया है कि विष्णु ने प्रह्लाद नामक किसी दैत्य को अन्तिम राजा बनाकर कहा कि उस दिन से दैत्य रुधिर पृथ्वी पर नहीं गिरने को था। बलि के बाबा प्रह्लाद राजा न थे, सो ये प्रह्लाद कोई दूसरे भी हो सकते हैं। जान पड़ता है कि विष्णु द्वारा इस सन्धि के पीछे आर्य्य भारत में चले आये। आगे कथा का डोर फिर से उठाया जाता है। इन्द्र इस काल एक आर्य्य सम्राट्-वंश की उपाधि समझ पड़ती है। भविष्य में प्रह्लाद भी इन्द्र होंगे। इनसे उनकी उन्नति की झलक मिलती है। पद्म, सृष्टि खण्ड ७३ में उनको सुरत्व प्राप्ति भी लिखी है। ये बलि के ही बाबा थे, सो इन्हीं की उन्नति बाद्य है।

श्री भागवत में लिखा है कि हिरण्यकशिपु का पुत्र प्रह्लाद बड़ा ही विष्णुभक्त था और इसी बात पर पिता पुत्रों में विरोध हुआ, जिससे नृसिंह भगवान् द्वारा हिरण्यकशिपु मारा गया। इस कथा में दो प्रधान आपत्तियाँ हैं। एक तो यह कि एक थोड़े से मतभेद पर इतना भारी राजा अपने पुत्र को मारने ही को क्यों उद्यत होता? दूसरे जिस काल का यह वर्णन है तब तक विष्णु भक्ति का विचार ही भारत में भली-भाँति नहीं उठा था। यह विचार वैदिक समय से पीछे का है और

प्रह्लाद वैदिक समय के आरम्भ में हुये। श्री भागवत पुराण की अपेक्षा हरिवंश बहुत पुराना और अधिक माननीय है। उसमें प्रह्लाद भक्त अवश्य कहे गये हैं, किन्तु पिता पुत्र का कोई विरोध नहीं लिखा है। जान पड़ता है कि जब हिरण्याक्ष के निधन से हिरण्यकशिपु का बल कुछ मन्द पड़ गया, तब अपने विविध नेताओं में ऐक्य उत्पन्न करके आर्य्यों ने दल बल समेत इस पर आक्रमण किया। भारी युद्ध हुआ जिसमें दैत्यों की पराजय हो गयी और स्वयं हिरण्यकशिपु नृसिंह नामक एक वीर आर्य्य पुरुष के हाथ से मारा गया। अब दैत्यों का हत शेष दल पूर्व की ओर भाग गया।

दैत्यों में प्रह्लाद और तत्पुत्र विरोचन ने कोई राजनैतिक महत्ता प्राप्त नहीं कर पाई, किन्तु विरोचन का पुत्र बलि बड़ा पुरुषार्थी हुआ। इसने अपने पिता और पितामह के जीवनकाल में भी प्रबन्ध करना आरम्भ करके दैत्यों के बल को बहुत बढ़ाया और इनके नए निवास स्थान में एक राज्य सा स्थापित कर लिया। बलि ने इस उत्तमता से प्रबन्ध किया और दैत्यों के मुरझाये हुये बल को ऐसा जागृत किया कि इन सभों ने सर्वसम्मति से उसको राजपद अर्पित किया। विरोचन और प्रह्लाद की भी अनुमति बलि के राजा बनने ही में थी। बलि ने राजपद पाने के पीछे और भी उत्साह से प्रजापालन तथा दैत्य बल वर्द्धन में मन लगाया। उसने इस कौशल से काम किया कि दैत्यों तथा दानवों का महत्व दिनों दिन बढ़ते और साम्राज्य संगठित होते हुये भी इन लोगों का नागों तथा आर्य्यों से कुछ भी वैमनस्य न होने पाया। इसका पुत्र युवराज बाणासुर भी बड़ा प्रतापी युद्धकर्त्ता था। स्वयं राजा बलि राजनीतिज्ञता, पुरुषार्थ, न्यायप्रियता, धर्म, दान आदि गुणों में एक ही था।

जब तक हिरण्यकशिपु के समय में पराजित होकर दैत्यों ने बलि के काल में फिर से उन्नति प्रारम्भ की, तब तक उधर आर्य्यों ने बहुत बड़ी महत्ता प्राप्त कर ली। नागों से अब तक इनका साधारण मेल था, किन्तु अब यातायात के बहुत अधिक बढ़ जाने से वे इनके प्रगाढ़ मित्र हो गए। नाग लोग शायद बाहर के निवासी थे और वहीं से आकर बंगाल में बसे। अपने लोक में समुद्र मार्ग द्वारा प्राय:

जाते आते रहने तथा व्यापार पटु होने के कारण यह लोग समुद्र यात्राओं में विशेष अभ्यस्त होंगे।

जब आर्यों का समुद्र पर आना जाना बढ़ा तब नागों की सहायता से इन्होंने दूर देशों में यात्रा करने के विचार किये। इस विचार में दैत्य लोग भी सम्मिलित हुये और आर्यों, दैत्यों एवं नागों ने मिलकर समुद्र मन्थन का कार्य प्रारम्भ किया। इसका वर्णन पुराणों में दार्ष्टान्तिक है। उनमें लिखा है कि शेषनाग ने मन्दराचल उखाड़ कर समुद्र के किनारे रक्खा, वासुकी नाग रस्सी बने, मन्दराचल मथानी और देव दैत्य मथने वाले। इस प्रकार प्रचुर परिश्रम से समुद्र से चौदह रत्न प्राप्त हुये, अर्थात् लक्ष्मी, कौस्तुभमणि, रम्भा, वारुणी, अमृत, पांचजन्य शंख, ऐरावत हाथी, कल्पवृक्ष, चन्द्रमा, कामधेनु, शार्ङ्ग धनुष, धन्वन्तरि वैद्य, विष, और उच्चैः श्रवस घोड़ा। इसी वर्णन को साधारण गद्य में लिखने से समझ पड़ता है कि आर्यों, दैत्यों और नागों ने मिलकर समुद्र द्वारा संसार यात्रा का विचार किया। इस पर शेषनाग ने जहाज बनाने के लिये मन्दराचल की इतनी लकड़ी समुद्र के किनारे मँगाई कि मानो पहाड़ का पहाड़ ही समुद्र तट पर आ गया। नागों के दूसरे सरदार वासुकि ने रस्सी मस्तूल आदि लगा कर जहाजों को सजाया, और तब नागों की सहायता से दैत्यों और आर्यों ने सारे संसार में समुद्र यात्राएँ कीं। इन यात्राओं में उन्हें भाँति-भाँति के पदार्थ प्राप्त हुए जिनमें चौदह रत्न प्रधान थे। इन रत्नों में चन्द्रमा भी एक था। इससे जान पड़ता है कि इन्हें चन्द्रमा के समान चमकनेवाला कोई रत्न मिला जिसका नाम चन्द्रमा रक्खा गया, अथवा समुद्र पर चन्द्रोदय देख इन्होंने चन्द्र को समुद्र से ही उत्पन्न मानकर उसे भी यात्रा द्वारा प्राप्त एक रत्न समझा। समुद्र यात्रा द्वारा प्राप्त पदार्थों के बटवारे में आर्यों का दैत्य, दानवों से झगड़ा हो गया यहाँ तक कि युद्ध भी हो पड़ा। राजा बलि को इस युद्ध में पराजित होकर अपने देश में भाग आना पड़ा। फल यह हुआ कि समुद्र मंथन द्वारा दैत्यों को केवल सुरा प्राप्त हुई और शेष मुख्य मुख्य वस्तुएँ आर्यों को मिलीं। नागों को भी इन लोगों ने प्रसन्न रक्खा। जान पड़ता है कि यद्यपि नागों ने

समुद्र मन्थन में आर्य्यों तथा दैत्यों को सहायता दी, तथापि प्रधानता उन्हीं लोगों की थी और उन्हीं में झगड़ा भी हुआ, अथच नाग लोग एक भी रत्न न पाकर केवल अन्य सम्मान से प्रसन्न रहे।

राजा बलि ने अपने प्रपितामह के निधन का वैर छोड़कर आर्य्यों का साथ दिया था, किन्तु फल कुछ भी न निकला और पूरा परिश्रम करके समुद्र मन्थन में दैत्य लोग खाली हाथ रहे। आर्य्यों की इस धींगाधींगी तथा स्वजात्यपमान से रुष्ट होकर बलि ने युद्ध की ठानी। इस विचार में सारे दैत्य दानवादि सहमत हुए और प्रह्लाद तक ने न केवल इसका अनुमोदन किया, वरन् प्रगाढ़ भक्ति को भी किनारे रखकर अपनी जाति का अपमान मिटाने के विचार से रण स्थल में स्वयं युद्ध करने की सन्नद्धता दिखलायी। राजा बलि ने अब दूना उत्साह पा रणोन्मत्त होकर रणस्थल में रणचण्डी को तृप्त करने के लिए सेना सजने की आज्ञा दी। दैत्य दल में प्रधान लोग निम्नानुसार थे:—महापद्मिनी, पद्म, कुम्भ, कुम्भकरण, कांचनाक्ष, कपिकन्ध, क्षिति कम्पन, मैनाक, ऊर्ध्वचक्र, सितकेश, विकच, सुबाहु, सहस्रबाहु, व्याघ्राक्ष, वज्रनाभि, एकाक्ष, गजस्कन्ध, गजशीर्ष, कालजिह्वा, कपिलाक्ष, धेनुक, युवराजबाण, अनायुषा-पुत्रबलि, नमुचि, यम, पुलोमा, हयग्रीव, प्रह्लाद, शम्बर, अनुह्लाद, (प्रह्लाद का भाई), विरोचन (बलि का पिता), विपपर्वा, त्रित्र, कनकबिन्दु, कुजंभ, असिलोमा, एकचक्र, राहु, विप्रचित्ति दानव, केशी दानव, हेममाली, मय, वृत्रासुर आदि। जो ब्राह्मण लोग इनके पुरोहित थे वे भी युद्ध में गए। इन्द्र के सहायक निम्नानुसार थे:—विद्याधर, गन्धर्व, यक्ष, डम्बर, तुम्बर, किन्नर, नाग, आदि। बड़ा भारी युद्ध हुआ और देव (आर्य) पराजित होकर पूर्व दिशा को भाग गए। इसी युद्ध को देवासुर संग्राम कहते हैं। इसमें मय, शम्बर, प्रह्लाद और बलि की प्रधानता रही। मय और शम्बर विशेषतया मायावी कहे गए हैं। यह शम्बर दिवोदास के समय के शम्बर से इतर मालूम पड़ता है। देवताओं के पूर्व दिशा में भागने से विदित होता है कि वे अपने देश में न जाकर नाग लोक में या अफ़ग़ानिस्तान की ओर गए। इस प्रकार बलि ने आर्य्यों और नागों को पराजित करके तीनों लोकों को धर्म सहित

सहारे समाज का कुछ वर्णन करके क्रमबद्ध इतिहास को फिर से उठावेंगे। इसी स्थान पर भारत में आने वाली पहली आर्य्य धारा का इतिहास समाप्त होता है, ऐसा हमारा विचार है। अब तक के छवों मनु एक ही घराने के थे। वैवस्वतमनु से इनका वैवाहिक आदि कोई सम्बन्ध नहीं मिलता। वैवस्वत के पिता सूर्य दक्ष के दौहित्र अवश्य थे, किन्तु ये दक्ष चाक्षुष वंशी अन्तिम राजा ही थे सा अनिश्चित है। पहली धारा ने भारत में बस कर तथा आदिम निवासियों को जीत कर यहाँ अपना प्रभुत्व फैलाया। अन्तिम मन्वन्तर के मनु स्वयं वैदिक ऋषि थे और उनके वंशधरों में पृथुवैन्य अवश्य ही ऋषि थे तथा वेन और ध्रुव भी हो सकते हैं। पहले पांच मन्वन्तरों में कोई वैदिक ऋषि न था। अतएव हम देखते हैं कि छवा मन्वन्तरों में अन्तिम चाक्षुष न केवल राजनीतिक विस्तार में गरिमापूर्ण था, वरन् उसमें वैदिक गान भी होने लगा। इस काल प्रथम आर्य्यधारा के साथ कुछ दैत्य दानव भी शायद इधर आये हों, किन्तु चाक्षुष मन्वन्तर का देवासुर युद्ध शायद फारस और अफ़ग़ानिस्तान से ही सम्बद्ध हो। उपर्युक्त अन्तिम सन्धि के पीछे दूसरी आर्य्य धारा का भारत में आना समझ पड़ता है।

छठवां अध्याय

प्रायः २००० बी० सी० से ६५० बी० सी० तक

ऋग्वेद (प्रथम मण्डल) एवं वेदांग

भारत का आदिम इतिहास वेदों के सहारे ही लिखा जा सकता है। इसलिये स्थालीपुलाकन्यायेन इनका कुछ दिग्दर्शन पाठकों को कराना उचित समझ पड़ता है। इसमें कठिनता यह है कि वेद-मन्त्रों के अनुवादों में पृथक मत वाले मनुष्य अपने अपने मतानुसार अर्थों में खींचतान करते हैं, सो असली अर्थ जानना सुगम नहीं है। हमने विशेपतया सायणाचार्य्य का प्रमाण माना है और यथासाध्य मतभेद वाले स्थानों पर किसी भी मत की ओर न झुक कर निर्विवाद मन्त्रों आदि का अधिक सहारा लिया है। हमारा तात्पर्य किसी भी मत को पुष्ट अथवा अपुष्ट प्रमाणित करने का नहीं है, वरन् हम पाठकों को निर्विवादात्मक मर्म्म बतलाने की इच्छा रखते हैं कि जिसमें लोग यह जान जावें कि इन पुनीत ग्रन्थों का आशय क्या है अथच इनके वर्णन और विषय कैसे हैं?

जैसा कि सभी लोग जानते हैं, वेद चार हैं अर्थात् ऋक, यजुष, साम और अथर्व। पंडितों ने सब से अधिक उपयोगी ऋग्वेद को समझा है और इस पर अधिक परिश्रम भी हुआ है।

चारों वेदों के अतिरिक्त सारे ब्राह्मण ग्रन्थ भी वेदों के अंग हैं। ये गणना में अब प्रायः ७० रह गये हैं। पंडितों का मत है कि बहुत से ब्राह्मण ग्रन्थ लुप्त हो गये हैं। वेदों के प्रसिद्ध भाष्यकार सायणाचार्य्य १४ वीं शताब्दी में थे। यद्यपि इनको हुये प्रायः ६०० वर्ष ही हुये हैं, तथापि इनके समय में भी एक वह ब्राह्मण ग्रन्थ प्राप्त था जो अब अप्राप्य हो गया है। ब्राह्मणों ही के अन्तर्गत उपनिषत् ग्रन्थ हैं। इनके विषय ब्राह्मण ग्रन्थों के शेष भागों से बिलकुल पृथक् हैं

क्योंकि इनमें ज्ञान कथन है और ब्राह्मणों के शेष भागों में कर्मकांड की प्रधानता है। उपनिषत् लगभग ११९४ हैं, जिनमें १३५ के लगभग अथर्ववेद से सम्बन्ध रखते हैं। प्रायः १५० उपनिषत् प्राचीन और महत्वपूर्ण हैं। इनमें भी १० की प्रधानता है। इन सब के वेदांश होने पर भी सुगमता के लिये हम केवल संहिता भाग को वेद कहते हैं और ऐसा ही आगे भी करेंगे।

हिन्दू धर्मानुसार वेद अनादि हैं, अर्थात् किसी ने इन्हें कभी बनाया नहीं। ये ऋषियों को आप से आप भासित हुये। इसलिये इनका किसी समय में बनाया जाना कहना हिन्दू धर्म के प्रतिकूल है। पहले तीन ही वेद प्रधान थे और अथर्व की गणना वेदों में न थी। इसीलिए वेदत्रयी आदि के कथन हिन्दू ग्रन्थों में प्रायः पाये जाते हैं। धीरे-धीरे अथर्व की भी गणना वेदों में होने लगी। ऐतरेय ब्राह्मण, ऐतरेयारण्यक, बृहदारण्यक तथा शतपथ ब्राह्मण में केवल तीन ही वेद कहे गये हैं। छान्दोग्य में भी ऐसा ही है और अथर्व को इतिहास माना गया है। साम और अथर्व के आरण्यक नहीं हैं। वेद वर्तमान रूप में सदा से न थे, वरन वेदव्यास ने इन्हें जनमेजय के समय सम्पादित करके वर्तमान रूप दिया। इसका आधार बारहवें अध्याय के अन्त में है। वेद के विभाग करने ही से उनको व्यास उपाधि मिली। विष्णु पुराण के चौथे खण्ड में लिखा है कि द्वापरयुग में कृष्ण द्वैपायन ने वेद को एक से चार किए और इसी प्रकार पहले के व्यास लोग भी करते आये थे। विष्णु पुराण के अनुसार समय समय पर २८ व्यास हुए। यही मत अन्य प्रकार से भी स्थिर होता है जैसा कि आगे दिखलाया जायगा। भगवान वेदव्यास से पहले भी एक बार अथर्वण ऋषि वेदों का सम्पादन कर चुके थे। वेद के चार विभाग होने पर पैल ने ऋग्वेद सीखा, वैशम्पायन ने यजुर्वेद, जैमिनि ने सामवेद और सुमन्तु ने अथर्ववेद। प्रत्येक ग्रंथ का नाम नाक है। समय पर इन ४ ऋषियों के शिष्यों में कई भेद हो गए जिनसे वेदों की अनेकानेक शाखाएँ स्थिर हुईं। वेदों और ब्राह्मणों से इतर ४ उपवेद, ६ वेदाङ्ग और कई उपाङ्ग हैं। ऋग्वेद का उपवेद आयुर्वेद है, यजुर्वेद का धनुर्वेद, सामवेद का गान्धर्व वेद और अथर्ववेद का अर्थ-

शास्त्र। ६ वेदाङ्गों में शिक्षा, व्याकरण, निरुक्त, कल्प, ज्योतिष और छन्द हैं। पुराण, न्याय, मीमांसा और धर्मशास्त्र नामक चार उपांग हैं। ये विस्तार नवम शताब्दी बी० सी० से पीछे के हैं, किन्तु विषय की पूर्णता दिखलाने को इनका आभास मात्र यहाँ कहा गया है।

आयुर्वेद के विद्वान ब्रह्मा, रुद्र, विवस्वान, दक्ष, अश्विनीकुमार, यम, इन्द्र, धन्वन्तरि, बुद्ध, च्यवन, आत्रेय, अग्निवेश, भेर या भेल, जातुकर्ण, पराशर, शीरपाणि, हारीत, भरद्वाज और सुश्रुत (विश्वामित्र के पुत्र) थे। विदेहराज जनक ने "वैद्य संदेह भंजनम्" ग्रंथ लिखा। इसी प्रकार अगस्त्य ने "द्वैध निर्णयतंत्रम्", जाबाल ने "तन्त्रसारकम्", जाजलि ने "वेदांगसार", पैल ने "निदान", कवथ ने "सर्वधर्मतन्त्रम्", काशिराज ने "चिकित्साकौमुदी" धन्वन्तरि ने "चिकित्सावलविज्ञानम्", बनारस के दिवोदास ने "चिकित्सादर्पण" आदि ग्रन्थ लिखे। विश्वामित्र के पुत्र सुश्रुत ने दिवोदास से वैद्यक सीखी। वे शरीरशास्त्र में निपुण हो गए। गोमांस को सुश्रुत और चरक ने भक्ष्य लिखकर उसको भारतवर्ष की जलवायु के प्रतिकूल बतलाया। नकुल और सहदेव भी अच्छे वैद्य हो गए हैं। धनुर्वेद विश्वामित्र का बनाया हुआ है। उसमें आयुध ४ प्रकार के लिखे हैं, अर्थात् मुक्त, अमुक्त, मुक्तामुक्त और मन्त्रमुक्त। गान्धर्व वेद के अन्तर्गत ही नाट्यशास्त्र है। गायन के आचार्य नारद थे। महेश के कहने से नृत्य का आरम्भ हुआ। नाट्यशास्त्र को भरत मुनि ने लिखा। अर्थशास्त्र की शाखायें नीतिशास्त्र, शालिहोत्र, शिल्पशास्त्र, सूपशास्त्र आदि ६४ कलाएँ हैं। नीतिशास्त्र के रचयिता शुक्र, बिदुर, कामन्दक, चाणक्य आदि हैं।

शिक्षा से उच्चारण की रीति ज्ञात होती है। व्याकरण से शब्दों और वाक्यों के सम्यक प्रयोग की विधि का ज्ञान होता है। पाणिनि ऋषि शिक्षा और व्याकरण के सब से श्रेष्ठ आचार्य हैं। इनकी माता देवल दाक्षी थी। ये शलातुर में रहते थे। कोई इनका जन्मस्थान तुरी बतलाते हैं। ये अफग़ान थे। इनका व्याकरण संसार भर में सब से छोटा एवं सर्वाङ्गपूर्ण है। कात्यायन और पतञ्जलि भी व्याकरणाचार्य थे। कात्यायन गोभिल गोणिका के पुत्र और सौनक के शिष्य नन्द

वंश के मन्त्री थे। ये चौथी शताब्दी बी० सी० में हुए। इन्होंने शुक्ल यजुर्वेद पर एक २६ अध्यायों का श्रौत सूत्र भी लिखा। आरम्भ में इन्द्र, चन्द्र, महेश और ब्रह्मा ने मिलकर अक्षर और व्याकरण बनाये। निरुक्त से वेदों में प्रयुक्त शब्दों की व्युत्पत्ति एवं अर्थ का ज्ञान होता है। यास्क इसके प्रथम आचार्य हैं। कल्प में वेदकर्मों के क्रम का ज्ञान है। कल्प की मुख्य तीन शाखाएँ हैं, अर्थात् श्रौतसूत्र, गृह्यसूत्र, और धर्मसूत्र। श्रौतसूत्र के आचार्य लात्यायन, द्राह्मायन आदि हैं। आश्वलायन, गोभिल, पारस्कर आदि गृह्यसूत्र के आचार्य हैं तथा बोधायन, आपस्तंब, कात्यायन आदि धर्मसूत्र के। ज्योतिषशास्त्र से समय का समुचित ज्ञान होता है। इसमें तिथि, वारादि जानने की रीति निर्दिष्ट है। सूर्य, चन्द्र आदि ग्रहों की गतियाँ गणित द्वारा बतलाई गई हैं। पाराशरी संहिता ज्योतिष का पहला ग्रन्थ है। इन्होंने यवनादि जातक का उल्लेख किया है। गर्ग ने इनसे प्रायः १०० वर्ष पीछे शकों के समय में गर्ग संहिता बनाई। आर्य भट्ट ने सन् ४७६ में जन्म लिया। इनका ग्रन्थ प्रसिद्ध है। ये शाकद्वीपी ब्राह्मण थे। इन्होंने पृथ्वी का घूमना लिखा है और पृथ्वी के विस्तार का प्रायः ठीक ठीक निर्णय करके सूर्य, चन्द्र ग्रहण के उचित कारण भी बतलाये हैं। वराह मिहिर भी शाकद्वीपी थे। ये सन् ५०२ में मालवे में हुये। इन्होंने बृहत्संहिता लिखी। इसमें भूगोल, खगोल, गणित, वनस्पति और प्राणि विद्या का भी वर्णन है। ब्रह्मस्फुट सिद्धान्त के रचयिता कदाचित् ८ वीं शताब्दी के हैं। इन्होंने गणित और फलित दोनों प्रकार का ज्योतिष लिखा। बारहवीं शताब्दी में भास्कराचार्य ने सिद्धांत शिरोमणि, लीलावती और बीजगणित ग्रंथ रचे। उनका कहना है कि जब लंका में प्रातः काल होता है तो रोम में दोपहर। लल्ल, श्रीधर आदि भी अच्छे ज्योतिषकार थे। श्रीधर स्वामी तथा अन्य ज्योतिषियों का कथन है कि महाभारत युद्ध के समय सप्तर्षि मघा नक्षत्र पर थे और नन्द राज्य के समय पूर्वाषाढ़ पर आचुके थे। ये एक नक्षत्र पर १०० वर्ष रहते हैं। सप्तर्षियों से जिस दिशा में ध्रुव पड़ते हैं, उसकी विपरीत दिशा में आकाश में एक सीधी रेखा खींची जाने से वह नक्षत्र राशि में से जिस को काटे उसी

पर सप्तर्षि की स्थिति मानी जाती है। यास्क ने कहा कि चन्द्रमा में सूर्य से प्रकाश पहुँचता है। संजय ने धृतराष्ट्र से कहा कि जब चन्द्र पर पृथ्वी की छाया पड़ती है तब उसकी गोलाई जान पड़ती है। ब्रह्मा, मरीचि, अत्रि, अंगिरस, पुलस्त्य, वशिष्ठ, कश्यप, भर्ग, नारद, बृहस्पति, विवस्वान, सोम, भृगु, मनु, च्यवन आदि भी ज्योतिषी थे। पौराणिक भूगोलों में ७ द्वीप हैं अर्थात् जम्बू, शाक, शाल्मलि, पुष्कर, प्लक्ष, कुश और क्रौंच। छन्द शास्त्र के आचार्य शेषनाग थे। छन्द दो प्रकार के हैं अर्थात् लौकिक और अलौकिक। वेद में अलौकिक छन्द हैं और साधारण ग्रन्थों में लौकिक। इन दोनों का वर्णन पिङ्गल नाग ने 'छन्दो निवृति ग्रन्थ' में किया। इसी से छन्द ग्रन्थों को प्रायः पिङ्गल भी कहते हैं।

पुराण १८ और उपपुराण भी १८ हैं। न्यायशास्त्र के मुख्य आचार्य गौतम और वैशेषिक के कणाद हैं। पुराणों में कणाद को उलूक और गौतम को अक्षपाद लिखा है। गौतमीय न्याय पर वात्स्यायन का न्याय है और वैशेषिक पर प्रशस्तपाद का। न्याय शास्त्र के अन्य आचार्यों में वाचस्पति मिश्र (८ वीं शताब्दी) उदयन (१२ वीं शताब्दी) रघुनाथ, शिरोमणि व पक्षधर मिश्र (१४ वीं शताब्दी) और गणेश, जगदीश, विश्वनाथ तथा शंकर मिश्र (१६ वीं शताब्दी) प्रसिद्ध हैं। मीमांसा निर्णय को कहते हैं। पूर्व मीमांसा जैमिनि की तथा उत्तर मीमांसा व्यास की है। शबर स्वामी पूर्व मीमांसा के भाष्यकार थे। कुमारिल भट्ट और प्रभाकर भी पूर्व मीमांसावादी थे। शंकराचार्य, रामानुजचार्य, मध्वाचार्य, वल्लभाचार्य, विज्ञानभिक्षु, निम्बार्काचार्य उत्तर मीमांसा के भाष्यकार हैं। धर्मशास्त्र के सांख्य और योग उपभेद हैं। कपिल भगवान सांख्य के ऋषि थे और पतंजलि योग के। व्यास ने योग सूत्रों पर भाष्य रचा। श्वेताश्वतरोपनिषत् में कपिल को परमर्षि कहा गया है।

शतपथ ब्राह्मण में लिखा है कि ऋग्वेद की उत्पत्ति अग्नि से हुई, यजुर्वेद की वायु से और सामवेद की सूर्य से। इतिहासों और पुराणों को पांचवाँ वेद कहते हैं। यजुर्वेद के शुक्ल और कृष्ण नामक दो भेद हैं। इनकी उत्पत्ति इस प्रकार हुई कि वैशम्पायन के शिष्य याज्ञवल्क्य

ने अपने गुरु के सामने अहंकार पूर्ण वचन कह दिया। इससे रुष्ट होकर गुरु ने आज्ञा दी, "तू मेरी सब विद्यायें छोड़ दे।" इस पर याज्ञवल्क्य ने अपने पेट से यजुर्वेद उगल दिया। उसमें खून लगा हुआ था। इससे वैशम्पायन के अन्य शिष्यों ने उसे तीतुर बन कर चुन लिया। तब से यह उगला हुआ वेद कृष्ण अथवा तैत्तिरीय कहलाने लगा। फिर सूर्य की आराधना करके याज्ञवल्क्य ने दूसरा यजुर्वेद पाया, जिसमें कुछ ऐसी ऋचायें थीं जो वैशम्पायन भी नहीं जानते थे। यह शुक्ल यजुर्वेद कहलाया। इन दोनों में अन्तर बहुत थोड़ा है।

वेदों के शब्द हजारों वर्षों से हमारे यहाँ जैसे के तैसे चले आते हैं। इनमें एक मात्रा की भी तबदीली नहीं हुई है। इन्हें स्थिर रखने के लिये बहुत बड़े प्रयत्न किये गये, क्योंकि इन शब्दों तक में प्राचीन काल से बड़ी पवित्रता मानी गई है। सब से पहली युक्ति का नाम पद-पाठ है। इसके द्वारा वेदों की प्रत्येक ऋचा का प्रत्येक शब्द अलग अलग लिखा जाकर रक्षित किया गया। दूसरी युक्ति क्रम-पाठ की है। इसमें शब्द के प्रथम और अन्तिम अक्षर को छोड़ कर प्रत्येक अक्षर दो बार लिखा गया; जैसे यदि "अब दल लिखना हुआ तो अब, बद, दल, इस प्रकार लिखा गया। इससे भी बढ़कर जटा-पाठ हुआ जिसमें अबदल यों लिखा जाता है:—अब, बअ, अब, बद, दब, बद; दल, लद, दल। इस पर भी ऋषियों को संतोष नहीं हुआ और उन्होंने जटा-पाठ से भी बढ़ कर घन-पाठ निकाला, जिसका क्रम यों है:—अब, बअ, अबद, दबअ, अबद; बद, दब, बदल इत्यादि। वेद पाठ के भी कई नियम बनाये गए जिनके नाम उदात्त, अनुदात्त और स्वरित हैं। इस प्रकार वेदों के उचित प्रकारेण पाठ करने और उनके एक एक अक्षर को यथाक्रम स्थिर रखने में हमारे ऋषियों ने पूरा परिश्रम किया। पंडितों का विचार है कि वेद का अन्तिम पाठ छठी शताब्दी बी० सी० में हुआ है। धीरे धीरे वेदों की शाखायें बढ़ने लगीं, यहाँ तक कि पुराणों के अनुसार ऋग्वेद की १६ संहिताएँ हो गयीं, यजुर्वेद की १०१, सामवेद की १००० और अथर्ववेद की ९। ऐतिहासिक दृष्टि से ऋग्वेद, अथर्ववेद और शतपथ ब्राह्मण परमोपयोगी हैं।

ऋग्वेद सब से पुराना है और इसकी महिमा सभी वैदिक ग्रंथों से बढ़ी चढ़ी है। इसलिये वेदों का सविस्तार वर्णन अब हम ऋग्वेद से ही उठाते हैं। इसमें दस मुख्य विभाग हैं जिन्हें मण्डल कहते हैं। इनमें पहले और दसवें मण्डल सब से बड़े हैं। प्रत्येक मंडल में बहुत से सूक्त हैं और प्रत्येक सूक्त में बहुत सी ऋचायें। छोटे सूक्तों में चार ही छः ऋचायें हैं, पर एक मंडल के एक सूक्त में ५२ ऋचायें तक हैं। अधिकतर सूक्तों में प्रायः १२ से १५ तक ऋचायें रहती हैं। प्रथम मंडल में १९१ सूक्त हैं जिनका शाब्दिक अनुवाद बिना टीका-टिप्पणियों के यदि लिखा जावे तो साधारण आकार की प्रायः २०० पृष्ठों की एक पुस्तक तैयार हो जायगी। ये सूक्त छन्दों में लिखे गए हैं, जिनमें प्रथम मंडल में गायत्री, अनुष्टप, त्रिष्टुप, जगती, बृहती, सतोबृहती, द्विपदी, विराज और अत्यष्टि छन्द प्रधानतया आये हैं और अप्रधानतया कई अन्य छन्दों का भी प्रयोग हुआ है। इन १९१ सूक्तों के कवि गणना में २५ हैं, परन्तु इनमें से दो केवल एक सूक्त के और पाँच केवल एक अन्य सूक्त के कवि हैं। अतः प्रधानतया प्रथम मंडल के १८ कवि हैं। इन सब कवियों के नाम और सूक्तों का ब्योरा नीचे दिया जाता है:—

नम्बर	कवि का नाम	सूक्त संख्या	किस नम्बर के सूक्त से आरम्भ	किस विषय के कितने सूक्त
१	मधुच्छन्दस विश्वामित्र के पुत्र	१०	१	अग्नि १, वायु आदि १, आश्विन आदि १, इन्द्र ६, इन्द्र आदि १
२	जेता मधुच्छन्दस के पुत्र	१	११	इन्द्र १।

नम्बर	कवि का नाम	सूक्तसंख्या	किस नम्बर के सूक्त से आरम्भ	किस विषय के कितने सूक्त
३	मेधातिथि कण्वके पुत्र	१२	१२	अग्नि २, विश्वे देवस १, ऋतु आदि १, इन्द्र १, वरुण १, ब्रह्मणस्पति आदि १, अग्निमरुत् १, तीन ऋतु १, इन्द्र अग्नि १, अश्विन आदि १, वायु आदि १।
४	शुनःशेपअजीगर्त के पुत्र	७	२४	वरुण अग्नि १, सवितर १, वरुण १, अग्नि २, इन्द्रविश्वेदेवस् १, इन्द्र १।
५	हिरण्यस्तूप अंगिरस के पुत्र	५	३१	अग्नि १, इन्द्र २, अश्विन १, सवितार् आदि १।
६	कण्व घोर के पुत्र अंगिरस वंशी	८	३६	अग्नि ३, मरुत ३, ब्रह्मणस्पति १, पूषन् १, वरुणमित्र अर्यमन् आदित्य १, वस्र आदि १।
७	प्रस्कण्व कण्व के पुत्र	७	४४	अग्नि २, अश्विन २, उषस् २, सूर्य १।
८	सव्य अंगिरस के पुत्र	७	५१	इन्द्र ७।
९	नोधस् गौतम के पुत्र	७	५८	अग्नि ३, इन्द्र ३, मरुत् १।
१०	पराशर शक्तिके पुत्र वशिष्ठ के पौत्र	९	६५	अग्नि ९।

नम्बर	कवि का नाम	सूक्त संख्या	किस नम्बर के सूक्त से आरम्भ	किस विषय के कितने सूक्त
११	गौतम रहूगण के पुत्र	२०	७४	अग्नि ६, इन्द्र ५, मरुत ४, विश्वेदेवस् २, सोम १, उपस् १, अग्नि, सोम १।
१२	कुत्स अंगिरस के पुत्र	५	९४	अग्नि ४, अग्नि आदि १।
१३	कश्यप मरीचि के पुत्र	१	९९	अग्नि १।
१४से १८तक	वर्षागिरि पाँच भाई राजागिरि के पुत्र	१	१००	इन्द्र १।
१९	कुत्स (दूसरे)	१५	१०१	इन्द्र ४, विश्वेदेवस् ३, इन्द्र अग्नि २, ऋभु २, आश्विन आदि १, उपस् १, रुद्र १, सूर्य १।
२०	कक्षीवान् उशिज के पुत्र पज्रवंशी	११	११६	आश्विन ५, इन्द्र १, विश्वेदेवस् १, उपस् २, स्वनय (एक राजा) २।
२१	परुच्छेप दिवोदास वंशी	१३	१२७	अग्नि २, इन्द्र ३, वायु १, वायु इन्द्र १, मित्र वरुण २, पूषन् १, विश्वेदेवस् आदि १, इन्द्र इन्दु इन्द्र पर्वत १।

नम्बर	कवि का नाम	सूक्त संख्या	किस नम्बर के सूक्त से आरम्भ	किस विषय के कितने सूक्त
२२	दीर्घतमस उचथ्य और ममता के पुत्र	२५	१४०	अग्नि १०, आप्री १, मित्र वरुण ३, विष्णु २, विष्णु इन्द्र १, आश्विन २, आकाश पृथ्वी २, ऋभु घोड़ा १, विश्वेदेवस् आदि २।
२३	अगस्त्य (मान के पुत्र)	२६	१६५	इन्द्र मरुत् ३, मरुत् ४, इन्द्र ७, आश्विन ४, आकाश पृथ्वी १, विश्वेदेवस् १, सोम १, आप्री १, अग्नि १, बृहस्पति १, सावमंत्र १।
२४ २५	लोपामुद्रा अगस्त्य और एक शिष्य	१	१७९	रति १।

लोपामुद्रा अगस्त्य ऋषि की स्त्री थीं। पांच वार्षागिरों के नाम ये थे:—रिजिराश्व, अंबरीष, सुराधास, सहदेव और भयमान। इन कवियों में मधुच्छन्दस और जेता विश्वामित्र के पुत्र और पौत्र थे। शुनःशेप अजीगर्त्त के पुत्र थे। राजा हरिश्चन्द्र के यज्ञ में ये बलि दिये जाते थे। इस अवसर पर मंत्र पाठ से बचे। यज्ञ में इनका तीन खम्भों में बांधा जाना इस मण्डल में भी लिखा है। इन उपर्युक्त कवियों में मेधातिथि, हिरण्यस्तूप, कण्व, प्रस्कण्व, सव्य और कुत्स अंगिरसवंशी थे। दीर्घतमस के विषय में महाभारत में लिखा है कि ये अन्धे थे और इनकी स्त्री ने इनके लोक लाज छोड़ कर उसके साथ हर समय रति करने के कारण अप्रसन्न होकर अपने पुत्रों द्वारा बँधवा कर इन्हें एक नदी में बहवा दिया था। इन्हीं दीर्घतमस् ने

(महाभारत) यह मर्य्यादा स्थिर की थी कि यदि स्त्री एक पति से लड़ कर उसे छोड़ दे तो दूसरा न कर सके। इस मंडल में ये स्वयं कहते हैं कि ये अन्धे थे और दासों ने इन्हें बाँध कर नदी में फेंक दिया था। त्रैतन नामक कोई व्यक्ति इनसे लड़ा भी था। महाभारत की पुष्टि इस मंडल से होती है। इनके मन्त्रों में छायावाद विशेष है।

उपर्युक्त ब्योरे से विदित होगा कि इस मंडल के १९१ सूक्तों में पृथक् पृथक् देवताओं आदि के विषय में मन्त्र-संख्या निम्नानुसार है:—अग्नि ४५, आप्री (अग्नि के भेदान्तर) २, वायु १, मरुत् १२, आश्विन १५, इन्द्र ४३, विश्वेदेवस् ८, बृहस्पति या ब्रह्मणस्पति २, ऋभु ४, वरुण १, पूषन् २, रुद्र १, उषस् ६, सूर्य २, सोम (चन्द्र) २, स्वनय राजा २, विष्णु २, घोड़ा २, रति १, इन्द्रवरुण १, अग्नि मरुत् १, इन्द्र अग्नि ३, अग्नि सोम १, वायु इन्द्र १, मित्र वरुण ५, विष्णु इन्द्र १, आकाश पृथ्वी ३, इन्द्र मरुत् ३, इन्द्र विश्वेदेवस् १, इन्द्र इन्दु १, इन्द्र पर्वत १, वरुण अग्नि सविता १, और सूर्य्य १।

तीन से अधिक देवताओं के नाम १४ सूक्तों में आये हैं। इन १४ सूक्तों एवं अन्यों में अमुख्यतया निम्न देवताओं आदि का कथन है:—

अर्य्यमन्, सरस्वती, सरस्वान्, त्वस्व, दक्षिणा, इन्द्राणी, वरुणानी, आग्नेयी, आदित्य, ऋतु, अदिति, सिन्धु, वाक्, काल, साध्यगण, गन्धर्व, भग, जल, ऊखल, मुशल, मातरिश्वम् और तृत।

सब देवता सोम पान के लिये निमन्त्रित किये जाते हैं और सोम से बल प्राप्त करते हैं। उनके बुलाने में प्रायः ये उपमाएँ दी जाती हैं कि घोड़े की भाँति जल्दी आओ और बैल की भाँति प्रसन्नतापूर्वक बहुत सा सोम पान करो। उपमाएँ अधिकतर बैल से ही दी जाती हैं, यहाँ तक कि इन्द्र और विष्णु तक की उपमाएँ बैल से महत्त्व सूचन में दी गई हैं। कहीं कहीं भैंसे और घोड़े से भी उपमाएँ दी गई हैं। मेघों की उपमाएँ प्रायः भैंसे से हुई हैं। मेघों का बहुत स्थानों पर गाय कह कर बोध कराया गया है।

अग्नि—यह इन्द्र के पीछे सब से प्रसिद्ध देवता है। यह होतार, वसीठी, तथा देवताओं को यज्ञों में लानेवाला है। इसकी उत्पत्ति अन्तरिक्ष, आकाश और जल में हुई। यह दो माताओं का पुत्र

है, अर्थात् दो लकड़ियों के संघर्षण से उत्पन्न होता है। यह तनूनपात् भी है अर्थात् अपने से भी उत्पन्न होता है। भृगु ने इसे मनुष्यों में स्थिर किया और मनु ने पुरोहित बनाया। इसकी सात लौ हैं और इसके विविध रूपों में आप्री भी है। होत्रा, भारती, महत् और धिषणा इसकी स्त्रियाँ हैं। धिषणा वाग्देवी है। स्वाहा नाम से अग्नि में यज्ञ होता है। यह एक स्वरूप से यज्ञों में सहायता देता है और दूसरे स्वरूप से सौ नेत्रों द्वारा जंगलों को भस्म करके नये स्थानों में भूमि को मनुष्यों के निवासयोग्य बनाता है।

वायु—यह नाम दो मन्त्रों में प्रधानतया लिया गया है और शेष इस विषय के मन्त्रों में मरुत् का नाम है। वायु के कोई प्रधान गुण नहीं कहे गये हैं। शम्बर को अतिथिग्व दिवोदास ने मारा।

मरुत्—भग के साथ उत्पन्न हुये ये रुद्र पुत्र रथ में चितले मृग जोतते हैं। इनके कन्धे पर बरछा और हाथ में तलवार तथा अँगूठी है। प्रथम ये देवता न थे। इन्द्र इनसे अप्रसन्न थे और इनके यज्ञ भाग पाने से क्रोधित होते थे, परन्तु इन्होंने इन्द्र की युद्ध में सहायता की और बड़ी दीनता दिखलाई. तब वे इनसे प्रसन्न हो गये और ये यज्ञ में भाग पाने लगे। ये परम अजित, सबल, मेघ भेजने वाले, धन देने वाले और राक्षसों के संहारक हैं।

अश्विन—दो हैं। इनके विषय में पण्डितों में कुछ सन्देह है। महात्मा यास्क ने लिखा है कि इन्हें पृथक् पृथक् लोग आकाश पृथ्वी, दिन रात, सूर्य चन्द्र और दो राजा कहते हैं। ये उषस् के प्रथम चलते और दिन रात में तीन तीन बार चक्कर लगाते हैं। इनके रथ में तीन पहिये हैं और उसमें दो गधे जुते हैं। सूर्य की पुत्री इनकी स्त्री है। ये परम सुन्दर हैं और दारिद्र्य नाश करते तथा बहुत अच्छे वैद्य हैं। इन्होंने करबन्धु, वश, वशिष्ठ आदि को प्रसन्न किया और सुदास को उसकी स्त्री सुदेवी ला दी। बाँझ गाय से दूध निकाला, अन्धे तथा लंगड़े परावृज को अच्छा किया, विश्पला की युद्ध में टूटी हुई टाँग अच्छी कर दी, वध्रमती को हिरण्यहस्त पुत्र, ऋज्राश्व को नेत्र, विश्वक को विष्णापु पुत्र एवं घोषा को पति दिया। इन्होंने अन्य प्रकार से निम्नलिखित लोगों की सहायता की:—रेभ और वन्दन

(बँधे थे सो निकाले गये), कण्व (रक्षित हुये), अन्तक, भज्यु, सुचन्ती, पृश्निगु, अत्रि (जलते गढ़े से बचाये गये), श्वेतर्य, कुत्स, नर्य्य, वसु, दीर्घश्रवस्, औसिज, कक्षीवान, रसा, तृशोक, मान्धाता, भरद्वाज, अतिथिग्व दिवोदास, कशोजु, त्रसदस्यु (इन अन्तिम चारों के दुर्ग टूट गये थे तब ये बचाये गये), वम्र, उपस्तुत, कलि, व्यश्व, पृथिराजर्षि, सपु, मनु, सर्यात, विमद (इनको स्त्री दी गई), अध्रिगु, सूभर, ऋतस्तूप, कृशानु (ये युद्ध में बचाये गये), पुरुकुत्स (इनकी घुड़दौड़ में मदद हुई), आरजुनी पुत्र कुत्स, ध्वशान्ति, पुरुपान्ति, अग्राश्व, च्यवन (ये बूढ़े से जवान कर दिये गये) जह्नुपुत्र, जाहुश और औसर। इतने लोगों की सहायता करने के अतिरिक्त इन्होंने दस्युओं को भी हराया।

इन्द्र—वेद के सब से बड़े देवता हैं। ये देवताओं के राजा और विष्णु के मित्र कहे गये हैं। इनको कुशिक के पुत्र कौशिक भी कहा है, जिससे महाभारत की उस कथा का समर्थन होता है जिसमें लिखा है कि कुशिक के पुत्र राजा गाधि इन्द्र के अवतार थे। इनकी कुतिया का नाम सरमा है। त्वष्टार ने दधीचि की अस्थि से इनका वज्र बनाया जिससे इन्होंने ९९ वृत्रों को मारा। आपने वृत्र के अतिरिक्त सुश्न, बल, पिप्रु शम्बर, अहि, रौहिन, कुयव, व्यंस, कुयवाच, अर्बुद, नमुचि, करंज, परनय और वंगृद को मारा। वृत्र सुश्न आदि जल रोके थे सो उन्हें मार कर इन्द्र ने जल खोल दिया। वंगृद के सौ दुर्ग नष्ट किये और दासों के भी दुर्ग मर्दित किये। ये दस्युओं के नष्ट करनेवाले तथा आर्यों का बल बढ़ानेवाले हैं। सुश्रवस, तूर्व्यवान, यतस्, नर्य, तुर्वश, यदु, तुर्वीत, पुरुकुत्स, पुरु और सुदास की रक्षा की और उन्हें युद्धों में जिताया तथा कक्षीवान ऋषि को वृचया स्त्री दी। ये अजित जेता और असीम बलधारी हैं। इन्होंने पृथ्वी स्थिर की और सूर्य को आकाश में उठाया। ये स्वयं मन्त्रों और सोम से बल प्राप्त करते और देवताओं में सर्वोपरि हैं।

विश्वेदेवस्—संख्या में १३ हैं। ये खास देवता भी हैं और यह नाम कुल देवताओं को मिलाकर भी कहा जाता है। ये सर्पों की भांति सूरत बदलने वाले तथा रक्षक हैं।

बृहस्पति उपनाम ब्रह्मणस्पति—मन्त्रों के देवता और मन्त्र पढ़ने में सर्वश्रेष्ठ हैं। ये दुष्टों को दण्ड देते हैं। इन्होंने मनुष्यों को पृथ्वी आकाश दिखाये।

ऋभु—संख्या में तीन हैं। इनके नाम ऋभु, विभवन और वाज हैं, और ये तीनों मिल कर ऋभवः कहलाते हैं। ये अङ्गिरस वंशी सुधन्वा के पुत्र मनुष्य थे, पर इन्द्र की सहायता करने से सवितर द्वारा अमर बनाये गये और ऋतुओं के देवता हो गये। इन्होंने इन्द्र का अश्व और अश्विन का रथ बनाया, तथा अमृत देने वाली एक गाय भी बनाई। इन्होंने अपने माता पिता (पृथ्वी आकाश) को फिर से जवान कर दिया।

वरुण—वरुण और मित्र का वर्णन प्रायः साथ ही साथ होता है और वरुण के वर्णन अलग भी हैं। वरुण रात के देवता हैं और मित्र दिन के। ये आकाश पृथ्वी के स्थिर रखने वाले, (ध्रुव) प्रकृति के शुद्धतापूर्वक संचालक, सत्य और ज्योति के स्वामी, तथा धर्म प्रवर्त्तक हैं। इन्होंने सूर्य का मार्ग बनाया और ये संसार भर को मार्ग पर रखने वाले हैं। अवैदिक समय वाले आर्यों में ये सर्वोपरि देवता थे। यही दशा पार्सियों में भी है। वैदिक समय में इन्द्र इनसे आगे निकल गये और महत्व में इनका दूसरा नम्बर हो गया।

पूषन्—१२ आदित्यों में एक हैं। ये लोगों को प्रह के संकटों से बचाते और उन्हें सीधे सुखप्रद मार्ग पर ले जाते हैं। ये अज के पुत्र हैं और रथ में बकरें ही जोतते हैं। ये युद्धों में आर्यों के सहायक हैं।

रुद्र—बली, बड़े बुद्धिमान्, उदार, बड़ा औषधियों और मन्त्रों के स्वामी, सुवर्णवत् प्रकाशमान, देवताओं में सर्वोत्तम, घोड़ों, भेड़ों, भेड़ियों, गौओं आदि के रक्षक (पशुपति), कपर्दी (कौड़ी की भांति गिठादार बाल वाले), शूरवीरों के स्वामी और मनुष्यों तथा पशुओं को स्वास्थ्यदायक हैं। ये मरुतों के पिता और परम प्रचंड हैं। इनसे इस प्रकार विनतियाँ की जाती हैं कि क्रोधवश हम लोगों को तथा बूढ़े बच्चों आदि को न मारो और हानि न पहुँचाओ; तुम्हारी घातक सांगी हम लोगों से दूर हो, इत्यादि।

उषस्—आकाश की पुत्री और ज्योति पूर्ण है। यह पुष्ट करने

वाली सौ रथों पर चलती है। यह सब को काम में लगाती है और सदा अपने प्रेमी सूर्य्य के आगे ही चलती है। इसका वर्णन प्रायः कविता-पूर्ण है।

सूर्य्य—ज्योतिकारक, प्रकाशक, तुरगच्छक और मित्र वरुण तथा अग्नि की आँख हैं। इनके रथ में सात घोड़े जुते हैं, और ये प्रेमी की भाँति उपस् के पीछे चलते तथा काँवरि रोग का नाश करते हैं।

सोम (चन्द्रमा)—परम बुद्धिमान्, बलदायक नेता, परम पवित्र वीरों के स्वामी, धन देने वाले, रोगशान्तिकारक, पौधों, ओषधियों, गाय, जल के उत्पादक, और वृत्र विनाशक हैं। वरुण वाले प्रकृति के नियम इन्हीं के हैं। इन्होंने आकाश फैलाया और अन्धकार हटाया, तथा नृशाया वंशियों को हरा कर नदी छोड़ा दी। ये अग्नि से मिल कर पणि के पास से गौयें लाये।

सोम (रस)—सोम फल से पानी मिला, खल्ल में पत्थर से पीस, ऊनी छन्ने में छान कर निकाला जाता था और तब मट्ठे में मिलाकर पान करने के योग्य बनाया जाता था। यह परम स्वादिष्ट होता था। देवता इसे बहुत पसन्द करते तथा इससे बल प्राप्त करते थे।

स्वनय—भव के पुत्र, सिन्धु नदी के किनारे रहनेवाले एक राजा थे। बड़े यज्ञकर्त्ता और उदार दानी थे। इन्होंने कक्षीवान् ऋषि को सौ माला, सौ घोड़े, हजार गायें, घोड़ियों से जुते हुए दश रथ, मोतियों के सामान सहित घोड़े, और फिर साठ हजार गायें दीं।

विष्णु—द्युस के पुत्र हैं पर यज्ञ में उनसे प्रथम भाग पाते हैं। ये पृथ्वी, आकाश तथा जीवधारियों के पोषक, कृशानु का वाण हटाने वाले, रक्षक, कष्ट न देने वाले, दयालु और उदार हैं। ये इन्द्र के मित्र हैं और उन्हीं के साथ इन्होंने मेघों को छोड़ाया। ये पुनीत हैं पर इन्द्र इनसे अधिक पुनीत हैं [सूक्त नं० १५६]। विष्णु लोक में अमृत का एक कुआँ और बहुत से तेज बैल हैं। वह लोक चमकता है।

विष्णु तीन पगों में संसार फिर आये। इनके पृथ्वी और आकाश वाले डग देख पड़े पर स्वर्ग का नहीं। इस मंडल में तीन पगों का वर्णन कई बार आया है, सो प्रकट है कि इस से विष्णु के

वामन अवतार का बहुत मेल जोल है, किन्तु वामन का नाम नहीं है। वेदों में विष्णु इन्द्र से कम और एक साधारण देवता थे। पौराणिक समय से इनका प्रताप बहुत बढ़ा यहाँ तक कि अब ये सर्व प्रधान हैं और इनके अवतारों तक का कोई देवता सामना नहीं कर सकता। वामन भी इनके अवतार थे। वामन पहले बौने थे और पीछे से इतने बढ़े कि सारा संसार इनके शरीर से छोटा हो गया। विष्णु सम्बन्धी महत्व की ऐसी ही वृद्धि हुई है जैसे वामन के शरीर की।

घोड़ा—एक पवित्र जानवर माना गया है। इसे यम ने दिया, तृता ने इस पर काठी लगाई, और सब से प्रथम इन्द्र सवार हुए। उस समय गन्धर्व ने इनकी लगाम पकड़ी। इसे सूर्य ने वसुओं से बनाया। यह यम है, आदित्य है, तृता है, यह बिजली है, और देवताओं ने इसके बल की नक़ल की है। यज्ञ में पहले पूषन् के भाग बकरे का बलिदान होता है तब घोड़े का। बलि के पीछे एक मनुष्य मांस काटता और घोड़े की चौंतीसों पसलियों का अलग करता है। इस समय दो मनुष्य इसे काटना बताते जाते हैं। इस को खूब पकाना आवश्यक है। बलिदान में घोड़ा मरता नहीं, न उसे कष्ट होता, वरन् वह सुखपूर्वक देवताओं के पास चला जाता है।

रति—लोपामुद्रा ने अपने पति अगस्त्य से कहा कि बुढ़ापे से हम लोग कुरूप हो गये हैं पर तो भी पुरुष को स्त्री और स्त्री को पुरुष के पास जाना चाहिए। अगस्त्य ने यह बात स्वीकार की। कहते हैं कि इस वर्णन में गूढ़ अर्थ छिपे हैं।

आकाश-पृथ्वी—का विविध प्रकार वर्णन किया गया है। इनकी उत्पत्ति अज्ञात कही गई है और ये कहीं बहिनें और कहीं पिता-माता माने गये हैं। ये स्थित, सबल, सर्वरक्षक, अमृत बनाने वाले, और सब को आनन्द देने वाले हैं।

पर्वत—का नाम इन्द्र के साथ आता है। ये आर्यों के लिए लड़ने और शत्रुओं को भगाने वाले कहे गये हैं।

सविता—सूर्य से मिलते जुलते हैं पर कहीं पृथक् भी ज्ञान पड़ते हैं। इनके हाथ सोने के हैं। ये उत्पादक, औषधदायक, सहायक,

बहुमूल्य पदार्थों के स्वामी और राक्षसों तथा यातुधानों के देखने वाले हैं।

सरस्वती—नदी, गीतों की ओर चित्त ले जाने वाली, उत्तम विचार उत्पन्न करने वाली, विचारों को चमकाने वाली, और यज्ञों की देवी है। इनके पति का नाम सरस्वान है।

भग—धन देनेवाला देवता है। पुराणों में यह एक आदित्य माना गया है पर इस मण्डल में आदित्य कहा नहीं गया है।

त्वष्टार—देवताओं के बढ़ई हैं। एक बार इन्होंने नेष्टार [मुख्य ऋत्विज] का काम किया।

मातरिश्वा—भृगु के पास अग्नि को लाये।

वृत—का वर्णन इन्द्र वायु मरुत् के साथ होता है। इन्होंने इन्द्र के घोड़े को काठी लगाई।

ऋतु—भी इन्द्र मरुत, त्वष्टा आदि के साथ सोम पीने को बुलाये जाते हैं।

जल—की कुछ देवियाँ हैं जो सूर्य के निकट रहती हैं। इनमें अमृत और सब दवायें हैं और ये रोग तथा पापों को दूर करती हैं। ये यज्ञों को जल्दी करानेवाली जीवधारियों की प्यास बुझाती हैं।

ऊखल और मुशल—के देवता सोम बनाने में सहायक हैं।

इनके अतिरिक्त इस मण्डल में निम्नलिखित देवी देवताओं के नाम आये हैं:—

अर्यमन् (परम चतुर), गन्धर्व (आकाशी सोम के रक्षक), दक्षिणा (यज्ञ सम्बन्धिनी देवी), इन्द्राणी, वरुणानी, आग्नेयी, आदित्य (यज्ञों के अगुवा), अदिति, रक्षक, सिन्धु (नदी), वाक्, काल और साध्य (प्राचीन समय के आकाशवासी देवता)।

आर्यों में मन्त्रकार ऋषियों के अतिरिक्त निम्नलिखित महाशयों के नाम इस मण्डल में आये हैं:—

मनु, नहुष, इला, ययाति, पुरूरवस, नवग्वघराना (आर्यों के लिये युद्ध करनेवाले), दिवोदास, कसोजु, रस, तृसोक, मान्धाता, उग्रदेव, यदु, तुर्वश, अनु, पुरु, द्रुह्यु, भृगु, नववास्त्व, बृहद्रथ, तुर्वीति,

अतिथिग्व, सर्यात, सुश्रव, तुर्वयान, नर्य, पुरुवशी, भरद्वाज, पुरुगीर, सवर्षनि, यतस, पुरुकुत्स, रेभा, वन्दन, अथर्वण, दधीच (अस्थि वाले), ऋजिश्वन, अन्तक, भुज्यु, परकन्व के पुत्र, पर्य्य, सुचन्ति, गृत्सिगु, पराशृग, वशिष्ठ, वम्र, श्रुतर्व्य, विश्पला, वसु, कलि, पृथि, सयु, सुदेवा (सुदास की स्त्री), अध्रिगु, सुभर, रितस्तुप, कुत्स (आर्जुनि पुत्र), दधति, ध्वसान्ति, पुरुशान्ति, अपाल्य, च्यवन, हिरण्यहस्त, सेनाराज्य (इनका युद्ध हुआ), जन्हु, ऋचत्क, सर, ऋतु पुत्र विश्वक, विश्नापु, घोशा, नृशपुत्रकण्व, श्याव, श्यनय, कण्व (अन्धे से अच्छे हुये), मसरसार, आयावस, माय, पुरुमीलह, दीर्घतमस और तुग्र स्कन्द। इन मनुष्यों के विषय में इस मंडल में कोई कथायें नहीं हैं वरन् विनतियों में प्रसंगवश इनके नाम आ गये हैं और कहीं कहीं एक आध साधारण घटना इनके विषय में लिखी है जिसका दिग्दर्शन इस नामावली एवं देवताओं के वर्णन में कराया गया है।

निम्नलिखित आर्य्यों के शत्रुओं के नाम इस मंडल में आये हैं:—

वृत्र, दनु (वृत्र की माता), पिप्रु, सुरना, शम्बर, अर्बुद, वस, नमुचि, करंज, परनय, वंगृद (के १०० क़िले इन्द्र ने तोड़े,) बल, पणि, ९२ वृत्र (इन्हें इन्द्र ने दधीचि की अस्थि वाले वज्र से मारा), वृषय, व्यंस, अहि, रौहिनि, कुत्स, तुग्र, वैतन (यह दीर्घतमस् से द्वन्द युद्ध में लड़ा) और कृपवाच।

इस मंडल भर में जितने मंत्र हैं उन सब में केवल विनतियाँ हैं और कोई कथा प्रसंग नहीं कहा गया है। कहीं कहीं प्रसंगवश कुछ बातों में मनुष्यों आदि के कथन आ गये हैं जिनका वर्णन ऊपर हो चुका है और यथास्थान आगे भी होगा। इन मन्त्रों में से दो चार विनतियों के अतिरिक्त अन्य बातों का भी वर्णन हुआ है पर वह भी कथा प्रसंग का नहीं। बहुत से मन्त्रों के अनुवादों में भी अच्छा काव्यानन्द प्राप्त होता है, विशेषतया उषस् के वर्णनों में। फिर भी यह कह देना चाहिए कि अधिकतर स्थानों में अनुवाद मात्र पढ़ने से विशेष काव्यानन्द नहीं मिलता। इस मंडल में थोड़े ही से विषयों पर बहुत बड़ा वर्णन किया गया है, सो वही बातें दोहरा कर सैकड़ों स्थानों पर आई हैं पर फिर भी इस छोटे से विषय पर ऋषि लोग इतने प्रकार

के नये नये कथन करने में समर्थ कैसे हुए, इसी बात पर आश्चर्य होता है, क्योंकि प्राचीन कथनों के साथ प्राय: प्रत्येक मन्त्र में कुछ न कुछ नवीनता भी प्रस्तुत है।

वेदों के रचना-काल के विषय में कुछ मत-भेद है। हमारे यहाँ वे अनादि माने जाते हैं, अर्थात् हम हिन्दुओं का विचार है कि वे सदैव से हैं पर पाश्चात्य विद्वान् उनके निर्माण का कुछ काल बताते हैं। वे कहते हैं कि ऋग्वेद मिश्र एवं असिरिया के कुछ ग्रन्थों के अतिरिक्त शेष ग्रन्थों में प्राचीनतम हैं। हमारे विचार से भगवान वेद का किसी समय में बनना भी इन्हीं के मंत्रों से प्रकट होता है, यथा:—

इस नई विनती से मैं तुझे प्रसन्न करता हूँ (६२वाँ सूक्त)। हे गौतम! बड़े ध्यानपूर्वक बनाये हुये मन्त्र अग्नि को सुनाओ (७९ व सूक्त)।

मेरे पिता ने प्राचीन समय में तुझे बुलाया।

अंतिम मन्त्र में प्राचीन मन्त्रकारों का वर्णन है, जिससे प्रकट है कि वे मन्त्र इससे प्रथम बने थे और यह उनके पीछे। सो दोनों मन्त्रों का बनना ख़ास ख़ास समयों में प्रकट है।

हमारे पूर्व उषस को देखने वाले चले गये, अब हम जीवित लोग इसे देखते हैं और हमारे पीछे के लोग आगे देखेंगे।

इन उपर्युक्त कथनों से इन ऋचाओं का किसी समय में बनना स्पष्ट है। इनके अतिरिक्त हजारों स्थानों में पृथक् पृथक् मनुष्यों एवं घटनाओं का वर्णन है, जिन मनुष्यों और घटनाओं के पीछे उन ऋचाओं का बनना स्पष्ट है। सो यदि वेदों के अनादि होने का अर्थ यह लिया जाय कि वर्त्तमान समय में जो शब्द ऋचाओं में हैं वे ही अनादि काल से चले आते हैं तो साधारण मनुष्यों को इस मत से विरोध होगा। अब पंडितों का मत इस ओर झुकता देख पड़ता है कि वेदों के यही शब्द अनादि नहीं हैं वरन् उनके कथन सत्यता पर अवलम्बित हैं और सत्य के अनादि होने से वेद भी अनादि हैं। इस मत के प्रतिकूल किसी हिन्दू का विचार नहीं हो सकता। इनके कर्त्ताओं के विषय में यह प्रकट है कि जैसे क़ुरानशरीफ़ के कर्त्ता हज़रत

मोहम्मद नहीं हैं वरन् उन्हें यह अनुभूत हुई थी, इसी प्रकार वेदों का कोई कर्त्ता नहीं है, वरन् जिसके नाम में जो मंत्र प्रसिद्ध है उसके द्वारा वह देखा गया और संसार में फैला। वेदों के पूर्वापर क्रम के विषय में महाभारत में लिखा है कि भगवान वेदव्यास ने वेदों को एक में धार किया, अर्थात् वर्त्तमान क्रमानुसार उनको विभाजित किया। इस कथन का कुछ समर्थन प्रथम मंडल से होता है क्योंकि यदि वेदों की रचना का क्रम यही हो जो आजकल प्रचलित है, तो ऋग्वेद के प्रथम मंडल को सब से प्राचीन होना चाहिए, पर इस मंडल के पहले ही मन्त्र में प्राचीन मन्त्रकारों का कथन है, जिससे उन मन्त्रों का इस मन्त्र से प्रथम होना सिद्ध है। फिर इस मंडल के मन्त्रकारों में कई ऋषि विश्वामित्र और वशिष्ठवंशी हैं, पर इन दोनों ऋषियों के मंडल आगे आयेंगे। यह प्रकट है कि विश्वामित्र वाला तीसरा मंडल पहले मण्डल के कई मन्त्रों से प्राचीनतर है। एक स्थान पर इस मंडल में सामवेद के रथन्तर नामक मन्त्र का नाम आया है। वेद मन्त्रों के कई कथनों से उस समय की समाजसम्बन्धी उन्नति का भी कुछ पता लगता है। इस प्रकार के निम्नलिखित कथन इस मंडल में हैं:—

(१) आर्य्यों की पांच मुख्य शाखाएँ थीं, जिनके पूर्व पुरुषों के नाम यदु, तुर्वश, अनु, द्रुह्यु और पुरु थे। महाभारत में लिखा है कि ये पाँचों पुरुष राजा ययाति के पुत्र थे।

(२) आर्य्यों से ऐसे लोगों से युद्ध होते थे, जो वैदिक रीतियों को नहीं मानते थे। ये लोग दास, दस्यु सिम्यु आदि कहे गये हैं। ये धूम्र वर्ण के थे और इनके मुख्य मुख्य नेताओं के बड़े प्रभाव थे यहाँ तक कि उनमें से एक एक तक के सौ सौ किले थे, पर ये लोग आर्य्यों से प्रायः सदैव हारते थे। सुश्न, पिप्रु, वृत्र, कुयव, और शम्बर के दुर्ग थे जिन्हें इन्द्र ने नष्ट किये। कुयव के मरने पर इसकी दोनों स्त्रियों के विलाप समय तक ऋषि को दया नहीं आई और उन्होंने ईश्वर से यही मनाया कि ये सीफा नदी में डूब जायें। ऐसे समय में भी ऋषि के कोप से प्रकट है कि कुयव बड़ा ही दुष्ट और प्रजापदाओं था और बड़ी कठिनता से मारा गया होगा।

(३) जो दामाद बुरे होते थे वे धन खूब देते थे तब विवाह होता था (सूक्त नं० १०९)।

(४) सौ पतवारों तक के जहाज़ होते थे। इससे समुद्र-यात्रा सिद्ध है।

(५) अग्नि द्वारा जंगलों को जला कर रहने योग्य स्थान बनाया जाता था। इससे विदित है कि उस समय देश जंगलों से पूर्ण था और आर्य्यों की बस्ती बढ़ती जाती थी।

(६) आर्य्यों में मत स्थिर करने के लिए सभाएँ होती थीं।

(७) घुड़दौड़ भी होती थी। इसका कई बार वर्णन आया है।

✓(८) इन्द्र दुर्गविमर्दक कहे गये हैं। रथों पर युद्ध होते थे। एक ऋचा में लिखा है कि जब देवता यज्ञों से प्रसन्न होकर राजाओं की सहायता करें और वह लोग युद्ध जीतें तब ऋत्विजों को भी लूट का भाग मिलना चाहिये। राजाओं और सेनाओं का वर्णन भी है।

(९) अश्वमेध प्रायः होता था। इसके विधानों का कुछ कथन घोड़े के वर्णन में मिलेगा।

(१०) साँप से काटे जाने पर अगस्त्य मुनि ने एक बार साबर-मन्त्र बनाया। कहते हैं कि इसके जपने से सर्प-दंशित मनुष्य अच्छा हो सकता है।

✓(११) नदियों का जहाँ कहीं वर्णन हुआ है वहाँ सात संख्या कही गई है, जिससे सतलज, व्यास, रावी, चनाब, झेलम, सिन्धु और सरस्वती नामक पंजाब की नदियों का बोध हो सकता है। विशेष कर के जहाँ नाम लिये गये हैं, वहाँ सिन्धु और सरस्वती के नाम आये हैं। एक स्थान पर मीफा नदी का भी कथन है। गंगा, यमुना, गोमती, गोदावरी, कृष्णा, नर्मदा आदि का कहीं भी नाम इस मंडल में नहीं आया है। किसी किसी का कथन है कि सप्त सिन्धवः में गंगा और यमुना भी सम्मिलित हैं। डाक्टर राय चौधरी भी यही कहते हैं।

(१२) पूरी आयु १०० वर्ष की कही गई है। सूक्त नं० ८९ में लिखा है कि हम पूरी आयु सौ वर्ष जिएँ, इसके बीच न मरें, इतने दिनों में मरें।

(१३) आर्य्य और दस्यु शब्द आये हैं पर इस मंडल में जाति-भेद का कथन नहीं है। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र, आदि इस मंडल में नहीं हैं, केवल एक मन्त्र में बृहस्पति ब्रह्मणस्पति कहे गये हैं। असुर शब्द से सदा देवताओं का बोध कराया गया है।

(१४) इस मंडल में असीमबल के देवताओं का वर्णन नहीं है, क्योंकि सोमपान और मन्त्रों से उनके बल की वृद्धि होती है। ब्रह्मा एवं ईश्वर का नाम इस मंडल में नहीं आया है। जल, नदी एवं नैसर्गिक पदार्थों में यत्र तत्र देवभाव माना गया है।

(१५) एक स्थान पर लिखा है कि मैं क्या हूं सो मैं नहीं जानता। इससे प्रकट है कि लोग उस समय दर्शन-सम्बन्धी विषयों पर भी विचार करने लगे थे। एक स्थान पर यह भी लिखा है कि पृथ्वी आकाश की उत्पत्ति अज्ञात है।

(१६) इस मंडल में उपमाएँ उत्तमता सूचन में प्रायः बैल से दी जाती हैं। इन्द्र एवं विष्णु तक की उपमाएँ बैल से दी गई हैं। मेघों की उपमा गऊ एवं भैंस से भी दी गई है, और सोमपान में शीघ्रता-सूचक उपमा घोड़े से है।

उपर्युक्त कथनों में एक प्रकार से ऋग्वेद के प्रथम मंडल की सूची दे दी गई है। जितनी नई बातों का कथन इस मंडल में है वह सब विशेषतया यहाँ आ गया है, केवल ऊपर लिखे हुए मनुष्यों के विषय में जो छोटी छोटी दो चार बातें यत्र तत्र लिखी हैं उन सब का कथन यहाँ नहीं किया गया है, क्योंकि न तो वे कुछ रोचक ही हैं और न उनका कथन किसी और प्रकार आवश्यक समझ पड़ा। हम एक दो मन्त्रों के अनुवाद उदाहरणार्थ आगे देंगे।

पाठकों को विदित हुआ होगा कि उपर्युक्त वर्णन में कोई विशेष चमत्कार नहीं है, और वेदों पर विशेष श्रद्धा न रखनेवालों के लिए यह बिलकुल साधारण कथन है, क्योंकि किसी प्रकार के गूढ़ अथवा ऊँचे विचार साधारण पाठकों को इसमें न मिलेंगे। इसका मुख्य कारण यह है कि यदि धर्म्म-सम्बन्धी विचार छोड़ दिया जाय, तो वेद साधारण मनुष्यों को अरोचक होंगे। वे केवल विद्वानों को रुचिकर हैं और धर्म्म के अतिरिक्त, इनका मुख्य महत्व प्रायः भाषा

विषयों में ऐतिहासिक ज्ञान-वर्द्धन का है। वेदों के ध्यानपूर्वक पढ़ने से ही विदित हो सकता है कि संसार में मानव शक्तियों का पतनोत्थान कैसे हुआ, और समाज, धर्म्म, विज्ञानादि सम्बन्धी विचारों ने संसार में किस किस प्रकार से धीरे धीरे उन्नति पाई। जो लोग इन विषयों के ऐतिहासिक विस्तारों और आदिम विचारों से भी वेदों के विषयज्ञान का विशेष आदर नहीं करते, उनके लिये वेद भगवान् फीके हैं और यह वर्णन अवर्णनीय है।

उदाहरण

सूक्त नम्बर ४९ उषस् सम्बन्धी—हे उषस्! आकाश के तेजोमय उच्च प्रदेशों के ऊपर से आ। तुझे लाल घोड़े उसके घर को ले आवें जो सोम देता है। हे उषस् सुन्दरी! जिस सहारे से चलने वाले रथ पर तू सवार होती है उससे आज हे आकाश की पुत्री! तू बड़े सुयशी लोगों की सहायता कर। हे चमकीली उषस्! जब तेरे समय आते हैं, तब सब चौपाये और द्विपद चलते फिरते हैं और आकाश की सब दिशाओं से चारों ओर पंखदार पक्षीगण उड़ते हैं। सब जगमगाते प्रदेशों को उदय होते ही तू अपनी ज्योति की किरणों से चमकाती है। ऐसी जो तू है, उसे कण्ववंशियों ने प्रसन्नतापूर्वक धन प्राप्ति के लिये पुनीत गीतों से बुलाया है।

सूक्त नम्बर ७८ अग्नि सम्बन्धी—हे तीव्र और तुरगच्छक जातवेदस्! हम गौतम लोग पवित्र गीतों से तेरे महत्त्व के लिये तेरी महिमा गाते हैं।

ऐसी जो तू है, उसे धन की इच्छा से गौतम अपने गीत से पूजता है। हम तेरे महत्व के लिये तेरी महिमा गाते हैं। ऐसे जात वेदस को जो सर्वोत्कृष्ट लूट जीतने वाला है, हम अङ्गिरस की भाँति बुलाते हैं, हम तेरे महत्व के लिये तेरी महिमा गाते हैं। तू वृत्र विनाशकों में सर्वश्रेष्ठ है और हमारे दस्यु शत्रुओं को भगाता है। हम तेरे महत्व के लिये तेरी महिमा गाते हैं।

हम रहूगण के पुत्रों ने अग्नि के लिये एक सुखद गीत गाया है। हम तेरे महत्व के लिये तेरी महिमा गाते हैं।

इस मण्डल में कुछ और बातें जो विशेषतया ध्यान देने योग्य हैं, उनके कथन पतों समेत यहाँ किए जाते हैं।

सूक्त १०, ऋचा २, इन्द्र को राम कहा है, ५१...१, में भी।

१०...११, इन्द्र कुशिक के पुत्र हैं। पुराणों में कुशिक पुत्र गाधि इन्द्र के अवतार कहे गए हैं।

१४, ९, इला देवी थीं।

२२, १७, विष्णु के तीन डगों का कथन।

२४ नोट, शुनः शेप की कथा ऐतरेय ब्राह्मण में है। हरिश्चन्द्र के यज्ञ से उसे विश्वामित्र बचाते हैं।

२४, १२, १३, शुनः शेप तीन खम्भों में बँधे थे, वरुण से छोड़ने की प्रार्थना है।

३१, ४, पुरूरवस का कथन है।

३१, १७, जैसे पहले मनु के पास आये, वैसे ही हे अग्नि ययाति के पास आइये।

३२, १४, वृत्र को मार कर पाप के डर से इन्द्र भागे। इन्द्र का केवल यही अपमान सूचक वर्णन वेद में है।

३६, १८, सुद्रग और तुर्वीति के कथन कण्व करते हैं। इससे जान पड़ेगा कि ये कण्व दुष्यन्त के समयवालों से पीछे के हैं।

४७, ६, ७ सुदास और तुर्वश के कथन।

५१, ५, ६, ऋजिश्वन ने पिप्रु के दुर्ग नष्ट किए। अतिथिग्व दिवोदास ने शम्बर को जीता। अर्बुद भी जीता गया।

५१, १२, में शर्याति का कथन है।

(५३, ६, १०) १०,००० वृत्र मारे गए। धान्यवाक्य नमुचि मरा। अतिथिग्व ने करंज और पर्णय को मारा। ऋजिश्वन ने वङ्गृद के १०० दुर्ग नष्ट किए। सुश्रवस ने २० राजों तथा उनके ६००९९ अनुगामियों को हराया। तूर्वयाण ने कुत्स, अतिथिग्व तथा आयु को हराया।

५, ४, ६, इन्द्र ने तुर्व, तुर्वश, यदु और (वशन के पुत्र) तुर्वीति की मदद की।

५८, ६, भार्गवों ने अग्नि को मनुष्यों में स्थापित किया।

५९, ६, पुरु के पुत्र अग्नि के अनुगामी हैं।

६३, ७, } पुरुकुत्स ने ७ दुर्ग तोड़े। सुदास विजयी हुए, पुरु का
१७४, १२, } लाभ हुआ। यहाँ पुरुकुत्स, निश्चय पूर्वक सुदास के समकालीन नहीं हैं, केवल दोनों के कथन एक ऋचा में हैं।

८२, १३, दध्यच की हड्डी से इन्द्र ने ९९ वृत्र मारे।

८९,९, हम सौ वर्ष जियें, फिर मरें, इसके बीच न मरें।

९६, २, आयु मनु का भी नाम है।

१०८, ८, यदु, तुर्वश, द्रुह्यु, अनु और पुरु के कथन।

१०९, २, बुरे दामाद और साले धन खूब देते थे।

११२, ७, १३, १४, पुरुकुत्स. मान्धातृ,...शम्बर, अतिथिग्व दिवोदास, त्रसदस्यु, उदार विजयी और भरद्वाज के कथन।

११२, १७, १९, शर्यात मनु के पुत्र, सुदेवी पिजवन पुत्र सुदास की स्त्री (नोट में)।

११६, ५, १०, सौ पतवारों का जहाज, च्यवन बूढ़े से जवान हुए, झुर्रियाँ निकल गई, स्त्रियाँ विवाहीं।

११९, १९, २३, जह्न तथा कृष्ण पुत्र विश्वक के कथन।

१४७, ३, अन्धे मामतेय को अग्नि ने विपत्ति से बचाया।

१५८, दीर्घतमस औचथ्य मामतेय को बाँध कर दासों ने नदी में डाल दिया, तथा उनको त्रैतन से लड़ना पड़ा। वे मनुष्यों की दसवीं उमर (दहाई) को पहुँचे।

१६४, कूट या छायावाद।

१६६, १५, अगस्त्य मानपुत्र मान्दार्य थे। १८०, ८, वे वीरों में प्रसिद्ध थे। पुराणों में उन्होंने समुद्री लुटेरों का दमन किया, तथा रामचन्द्र को शस्त्रास्त्र दिये।

ऋग्वेद के समय पर विद्वानों के निम्न विचार हैं :—

नाम विद्वान,	ऋग्वेद संहिता बी० सी० में; कब से।	कब तक।	विवरण
मैकडानल्ड	१५००	५००	वर्तमान रूप पाँच छै सौ बी० सी० में दृढ़ हुआ।

नाम विद्वान,	ऋग्वेद संहिता बी० सी० में, कम से ।	कम तक ।	विवरण
मैक्स मुलर	१५००	१२००	मैक्समुलर ने पहले यही काल १२०० से ८०० बी० सी० तक माना था।
आर० सी० दत्त०	२०००	१४००	मैक्समुलर का पहला काल कथन यों था:— छन्दस १२००-१००० बी० सी० मन्त्र १०००-८०० " " ब्राह्मण ८००-६०० " " सूत्र ६००-२०० " " पाणिनि ३०० बी० सी० से पीछे के नहीं हैं।
हर्बर्ट यच गौवेन			छठी शताब्दी बी० सी० में पाठ रद्द।
वेबर	१४००		सिन्ध नदी के देश में आर्य १६ वीं शताब्दी बी० सी० में आये।
हिटनी वैनफे	१८३०	८६०	२००० बी० सी० से १५०० बी० सी० तक भी माना है।
यन्साइक्लो पीडिया ब्रिटेनिका	२०००	१५००	
जकोबी	४०००		इसे कई लोग सन्दिग्ध कहते हैं।
राथ	२०००		
मक्स मुलर	२०००	१५००	
हाग	२५००	१४००	
विल्सन	३५००		
लोकमान्य तिलक	४०००	२५००	

कीथ महाशय का मत:—जे० हर्टेल (J. Hertel) के अनुसार जरदुश्त का समय ५५९ से ५२२ बी० सी० है, जो सिद्ध नहीं हुआ है। ६६०-५८३ बी० सी० तक का भी कथन असिद्ध है। हर्टेल इरान का कथन

नहीं मानते हैं कि ईरानी तथा भारतीय आर्यों का साथ प्रायः २००० बी० सी० तक रहा। यह कथन भी असिद्ध है। पीक यही समय १७६० बी० सी० कहते हैं, किन्तु यह भी अनिश्चित समझा गया है। वैदिक ऋषियों में सबसे प्राचीन ध्रुव, पृथु वैन्य, चाक्षुप मनु, वेन, पुरूरवस, ययाति आदि हैं, और सब से नये खांडव दाह से बचे हुए जरितर, द्रोणादि चार ऋषि तथा युधिष्ठिर के समकालीन नारायण ऋषि। यदि वेन पृथु के पिता हों, तो वे पुराने निकलेंगे। यदि वेदर्षि ध्रुव उत्तानपादात्मज पुराने ध्रुव हों, तो यही प्राचीनतम वैदिक ऋषि निकलेंगे, किन्तु इनका यही ध्रुव होना अनिश्चित है। चाक्षुप मनु और पृथु वैन्य अवश्य प्राचीनतम प्राप्त वैदिक ऋषि हैं। यदि महाभारत का युद्ध ९५० बी० सी० के निकट पड़े, जैसा कि पार्जिटर का विचार है, तो ऋग्वेद का अन्ततम समय उसी काल पर आ जावेगा। रामचन्द्र के समय के बहुत से ऋषि हैं। यदि आर्य्यागमन का प्राचीनतम काल २६०० बी० सी० के लगभग माना जावे, जैसा कि कुछ का विचार है, तो स्वायम्भुव मनु के प्रियव्रत वंश का भोगकाल ६०० वर्षों का मानने से प्रायः २००० बी० सी० तक बैठेगा। चाक्षुप मन्वन्तर का भोगकाल क्या था, सो अज्ञात है, किन्तु चाक्षुप मनु वेदर्षि हैं ही, और वैदिक समयारम्भ २००० बी० सी० के निकट मानने से यही समय चाक्षुप मनु का होगा, क्योंकि वे प्राचीनतम ऋषियों में हैं।

प्रायः चौदहवीं शताब्दी बी० सी० का जो सन्धिपत्र मेसोपोटैमिया में मिला है, और जिसमें कुछ वैदिक देवताओं को नमस्कार लिखा है, उससे इतने प्राचीन समय में उस दूरस्थ प्रान्त में वैदिक विचारों की स्थापना मिलती है। यह सन्धि हिटीशिया तथा मितानी के बादशाहों में हुई, और भारत से असम्बद्ध थी। फिर भी उसमें मित्र, वरुण, इन्द्र और नासत्य को नमस्कार और उनकी वन्दना है। इससे वैदिक सभ्यता की प्राचीनता प्रकट है।

पंडितों का मत है कि अथर्ववेद चला ऋग्वेद के ही समय से, किन्तु बनता बहुत पीछे तक रहा। यजुर्वेद ऋग्वेद के पीछे प्रारम्भ

होकर उसके बहुत पीछे तक बनता रहा। सामवेद में केवल ७२ मंत्र नये हैं, और शेष प्रायः १५०० ऋग्वेद से आये हैं। यजुर्वेद बुद्ध के पूर्व समाप्त हो चुका था, ऐसा सिद्ध है। गौतम बुद्ध के समय चारों वेद प्रस्तुत थे, तथा प्राचीन उपनिषदों के समय भी। जनमेजय को पुराण सुनाने वाले वैशंपायन के भागिनेय और शिष्य याज्ञवल्क्य के समय ही यजुर्वेद पूर्ण होकर उसकी तैत्तिरीय और शुक्ल शाखाएँ भी स्थापित हुई।

— —

सातवाँ अध्याय

प्राय: २०००—७०० बी० सी०

ऋग्वेद (शेष मंडल) तथा अन्य वेद ।

ऋग्वेद का पहला मंडल ऊपर कुछ विस्तार के साथ दिखलाया जा चुका है। अब शेष नवों मंडलों का कुछ दिग्दर्शन कराना है। जिस विस्तार के साथ पहले मंडल का हाल कहा गया है वैसा अन्यों के विषय में कहने को इस ऐतिहासिक ग्रंथ मे हमारे पास स्थान नहीं है। धार्मिक एवं अन्य विवरण इनके भी प्राय: वैसे ही हैं जैसे कि पहले के। इसलिए इन मंडलों से जितनी ऐतिहासिक सहायता मिलती है उसी का हाल संक्षेप रीति से हम यहाँ कहेंगे।

ऋग्वेद—दूसरा मंडल

इसमें कुल मिलाकर केवल ४३ सूक्त हैं, जिनके ऋषि गृत्समद, सोमाहुत और कूर्म हैं। कूर्म गृत्समद के पुत्र थे। इनके केवल ३ सूक्त हैं और सोमाहुत के ४। शेष सभी सूक्त गृत्समद के हैं। इस मंडल में अग्नि की प्रधानता है और जगती तथा त्रिष्टुप् छन्द हैं। गृत्समद के नाम पर यह गार्त्समद मंडल कहलाता है। आप हैहय वंशी (नं० ३७) राजा वीति होत्र के दत्तक पुत्र थे। इसमें उपमाएँ प्रथम मंडल की अपेक्षा कुछ नयी आयी हैं। इस मंडल की मुख्य मुख्य घटनाएँ ये हैं—इन्द्र ने और्णवाभ, अर्बुद, नार्मल और बल को मारा, शम्बर को पहाड़ से निकाल कर उसका बध किया और रोहिन को आसमान पर चढ़ते देखकर मार डाला। इन्द्र ने दभीक, उरन शुष्मा, वेंस, क्रवी, अशन, अहि, वृकद्वार और सन्धिकों के स्वामी को भी मारा। उर्जयन्ती एक राक्षसी थी। जातूष्ठिर आर्य्यों का सहायक था। इन्द्र ने दिवोदास के कारण शम्बरासुर के ९९ क़िलों को नष्ट किया तथा दस्यों के लौह क़िलों का भी तहस नहस कर दिया। उन्होंने बल

के पहाड़ी क़िलों को ध्वस्त तथा चुमुरि और धुनि को चूर किया और वर्चिन को पुत्रों और सहायकों सहित मारा। शम्बर के १०० क़िलों का भी ध्वस्त होना लिखा है। पणि का ख़ज़ाना कन्दराओं में छिपा हुआ था। उसे भी इन्द्र ने लूट लिया। इस मंडल में उपमाएँ बहुत हैं। नयी उपमाओं के उदाहरण में एक यह है कि दो चकवों की तरह आओ। सरस्वती उत्तम माता, उत्तम देवी और उत्तम नदी कही गयी है। गृत्समद महोत्र घराने के कहे गए हैं। ऊपर के वर्णन से विदित हुआ होगा कि दूसरा मंडल विशेषतया विजयों का वर्णन करता है। शम्बर के सम्बन्ध में (१९-६) दिवोदास का कथन है। गृत्समद (४१-१४,१७) शुनहोत्र वंश में उपजे थे।

ऋग्वेद—तीसरा मंडल

यह मंडल मुख्यतया विश्वामित्र का है। इनके अतिरिक्त ऋषभ (दो सूक्त), उत्कील (दो सूक्त), कत (दो सूक्त), गाथिन् (चार सूक्त), देवश्रवस् और देववात (१ सूक्त), और प्रजापति (४ सूक्त) भी १५ सूक्तों के ऋषि हैं। ये लोग विश्वामित्र के ही पिता, पुत्र और पौत्रों में थे। कुल मिलाकर ६२ सूक्त इस मंडल में हैं। वर्णन विशेषतया अग्नि और इन्द्र के हैं और जगती, गायत्री, तथा त्रिष्टुप्छन्दों की प्रधानता है। इस में प्रथम दो मंडलों की अपेक्षा कुछ कुछ नयी उपमाएँ हैं और संख्या में भी बहुत हैं। इसमें वेदवाटियों का एक देवता कहा गया है। देवताओं की संख्या प्रायः ३३ कही जाती है, किन्तु यहां नवें सूक्त में वह बढ़कर ३३३९ हो गयी है। शायद इसी लिए यह किंवदन्ती प्रसिद्ध है कि विश्वामित्र ने नए देवता बनाए। ५४-८ में तो मा आपने एकेश्वरवाद चलाया। ५५-१७ में कहा गया कि हे देवगणो! तुम सब भारत में निवास करो। सरस्वती और दृषद्वती का वर्णन अधिक आया है। विश्वामित्र ने (५३-९) अपने को कुशिक कहा और अग्नि को इला का पुत्र माना। सिंह की भांति गरजने की उपमा इस मंडल में आती है। इस में शतद्रु (सतलज) और विपाशा (ब्यास) नदियों का वर्णन साथ ही साथ आया है और कहा गया है कि ये दो माताओं की भांति बहती हैं।

विश्वामित्र का वशिष्ठ से वैमनस्य था। एक बार वशिष्ठ के पुत्र शक्ति ने इन्हें अवाक् कर दिया। ऐसी दशा में जमदग्नि ऋषि ने इन्हें ससरपरी अर्थात् भाषण देवी की शक्ति दी। (५३-१४,१५) इस प्रकार इन्होंने विश्वामित्र को वाक्ययुक्त करके साहस प्रदान किया। इस स्थान पर विश्वामित्र ने जमदग्नि की प्रशंसा और वशिष्ठ की निन्दा की है। (५३-२१) जो हमें घृणा करता है, वह सर के बल नीचे गिरे, तथा जिससे हम घृणा करते हैं उसके प्राण जावें। यह मंडल बड़ा ही मनोरंजक और इतिहास के लिए सहायक है। जगत-प्रसिद्ध गायत्री मन्त्र विश्वामित्र ने इसी मण्डल में कहा। आप राजा सुदास के साथ थे। इन्होंने भरतों का बहुत वर्णन किया (५३-११,१२) और शर्यात का भी नाम कहा है। जहाँ पर कहा गया है कि विश्वामित्र वाले मन्त्रों के गान से भरतों का वश प्रसन्न रहेगा, वहीं पर सुदास का भी नाम आया है। भोज लोग सुदास के खानदानी थे। कीकट लोग अवध और दक्षिण विहार के निवासी अपूजक (५३-१४) थे। प्रमदगंद उनका राजा था। विश्वामित्र ने यह भी कहा है कि तुम्हारा धन जह्नु घराने के साथ (५८-३) है। पुराणों से ज्ञात होता है कि विश्वामित्र जह्नु के वंशधर थे। प्रथम मण्डल के (११६-१९) में आया है कि जह्नु वंशी आश्विनों के पूजक थे।

इन्द्र के बल-प्रकाश में इस मंडल में विशेषतया कुनार और अहि का वध लिखा है। कहा गया है "हे इन्द्र! तुम राक्षसों के वंश को निर्मूल कर दो।" कुनार राक्षस के हाथ न थे। वह वृत्रासुर की माता दनु के साथ रहता था। इन्द्र ने जब अहि को मारा तब वह पानी के पास छिपा था। (३३-११, १२) भारत लोग पंजाबी नदियों के पार गये। विश्वामित्र ने नदी रोकी। जब वे सुदास के साथ थे (५३-९) तब कौशिक द्वारा इन्द्र प्रसन्न हुये। (५३-११, १२) सुदास पूर्व, पश्चिम और उत्तर जीतें तथा अच्छी जगहों पर पूजा करें। विश्वामित्र की यह विनती भारत वंश को बचाती है।

पुराणों द्वारा विदित होता है कि परशुराम के पिता जमदग्नि ऋषि विश्वामित्र के भाँजे थे। इस मण्डल में जमदग्नि का नाम कई बार आने और उनके द्वारा विश्वामित्र की मदद होने से इस पौराणिक

गाथा की सहायता मिलती है। पुराणों में यह भी लिखा है कि सुदास के पुत्र कल्माषपाद द्वारा विश्वामित्र ने वशिष्ठ के पुत्र शक्ति को मरवा डाला। शक्ति से विश्वामित्र की घोर शत्रुता इस मण्डल में लिखी है।

ऋग्वेद—चौथा मंडल

इस मण्डल में ५८ सूक्त हैं जिनके ऋषि विशेषतया गौतम पुत्र वामदेव हैं। इनके अतिरिक्त त्रसदस्यु (१), पुरमीह्ळ और अजमीह्ळ (२) ने केवल तीन सूक्त बनाए। देवताओं में इन्द्र और अग्नि की प्रधानता है। छन्द विशेषतया गायत्री, त्रिष्टुप् और जगती आए हैं। इस मण्डल में कद्रू मनुष्य पालक कहे गए हैं और लिखा है कि अग्नि ने अन्धे मामतेय (४-११, १३) के दुःख दूर किए। इन्द्र ने मृगय और पिप्रु के ५०,००० सहायकों, वेश, तथा सरयू के किनारे आर्ण और चित्ररथ को मारा। ये दोनों आर्य्य राजे थे और सरयू नदी पार रहते थे। इन्द्र ने अहि को मार कर सातों नदियाँ खोल दीं। शम्बर कुलीतर का लड़का था। इस मण्डल में महादेव, सोमक, पुरस, पहशानी (रावी नदी) और कवष के वर्णन आए हैं। राजा पुरु और त्रसदस्यु के वर्णन हैं और सीता की पूजा (५७-६) लिखी है। त्रसदस्यु ने पौरवों का कुछ दिया (३८-१)। (४२-१८, ९) दुर्गह का पुत्र पुरुकुत्स कैद में था, तब उसका पुत्र त्रसदस्यु उत्पन्न हुआ। त्रसदस्यु अपने को आर्य राजा कहता है। यह शत्रुओं का जेता अर्द्ध देव था।

१५, ४, ८, ९, सृंजय देववात के पुत्र थे। सहदेव के पुत्र सोमक ने वामदेव को दो घोड़े दिए।

१६, १३, विदथिन के पुत्र ऋजिश्वन ने मृगय और पिप्रु को जीता।

निरुक्त के नोट, २९...५, में है कि वामदेव आरण थे।

२६, ३, दिवोदास अतिथिग्व ने शम्बर के ९९ दुर्ग तोड़े। ३०, १४, १५, शम्बर कुलीतर का पुत्र था। वर्चिन के एक लाख वीर भी मार मारे गए।

३०, १७ से २१ तक, तुर्वश और यदु दुइओं से बचाये गए, तथा आर्ण अर्ण और चित्ररथ सरयू के किनारे मारे गए। दिवोदास ने

पत्थर के सौ क़िले तोड़े, तथा ३०००० दासों को मारा। यह कार्य दभीति ऋषि की सहायता से हुआ।

५४, १, मनु के वंशधरों ने सवितार से धन पाया।

ऋग्वेद—पाँचवाँ मंडल

इसमें ८७ सूक्त हैं। इसके ऋषि कई अत्रिवंशी हैं, जिन में से कुछ के नाम निम्नानुसार हैं:— बुध और गविष्ठिर (१), गय (२), सुतंभर, (४), पुरु (२), वव्रि (१), त्र्यरुण, त्रसदस्यु और अश्वमेध या अत्रि (१), सम्वरण (२), अत्रि भौम (८), श्यावाश्व (१३), अर्चनानस (२), रातहव्य (२), बाहवृक्त (२), पौर (२), सत्यश्रवस् (२), और यवयामरुत (१)। इस मण्डल में विशेपतया अग्नि, इन्द्र, विश्वेदेवस्, मरुत, मित्रावरुण और अश्विन के वर्णन हैं। अग्नि ने शुनःशेप को बचाया। अग्नि उत्पत्ति के समय वरुण है, जब जलाई जाती है तब मित्र होती है और आहुति के समय इन्द्र। रोदसी मरुत् की माता और रुद्र की स्त्री और कहीं कहीं मरुत् की भी स्त्री कही गई है। इस मंडल में पृथ्वी का घूमना (८४-२) लिखा है। पुरुमीढ़ एक अच्छे ऋषि थे। सुचद्रथ के पुत्र सुनीथ थे। भरतों का वर्णन इस में आया है। इन्द्र ने नमुचि को मारा। अत्रि उसिज के पुत्र कक्षीवान के पुरोहित थे। मनु ने विससिप्र को जीता। परुष्णी (रावी नदी) का नाम इस मण्डल में आया है। परावत लोग परुष्णी नदी के किनारे रहते थे। ये आर्य्य समझ पड़ते हैं, क्योंकि इन्होंने ऋषियों को बहुत दान दिया। (देखिये आठवां मंडल)। कहा गया है कि यमुना नदी (५२-१७) के किनारे मुझे बहुत सी गाएँ मिलीं। इस बात से आर्यों का उस काल उस नदी तक पहुँचना सिद्ध है। काबुल नदी को उस काल कुभा कहते थे। सरजू (५३-९) नदी का भी नाम आया है। यह अवध में है, किन्तु पंजाब में भी इस नाम की एक नदी थी। इस मण्डल में यह विदित नहीं होता कि कवि पंजाब के विषय में कहता है या अवध के। इसमें छन्द विशेपतया त्रिष्टुप, गायत्री, अनुष्टुप, जगती और अतिजगती हैं। (२-३०) १००० गौवों के कारण शुनःशेप बँधे थे जिन्हें अग्नि ने छोड़ाया।

(११-१) भारत पवित्र हैं तथा (१२-६) नाहुप भले। (२७) त्रियरुण त्रिविपन के पुत्र थे। त्रसदस्यु अच्छे राजा थे। (२९-११) विदथिन के पुत्र रिजिश्वन ने पिप्रु को जीता। पुरकुत्स के पुत्र त्रसदस्यु (३२-८) ने संवरण ऋषि को १० घोड़े दिये। (३३-३९, १०) लक्ष्मण के पुत्र ध्वन्य तथा मारुताश्व ने भी संवरण ऋषि को घोड़े दिये। (४०-५) स्वर्भानु ने सूर्य को अन्धकार से भेद दिया। यही पीछे राहु हुआ। (४५-६) मनु ने विशिशिपु को जीता। (१४-५) च्यवन बूढ़े से जवान हुये।

ऋग्वेद—छठवाँ मण्डल

इसमें ७५ सूक्त हैं जो मुख्यतया भरद्वाज कृत हैं। कवियों का लेखा निम्नानुसार है :—भरद्वाज (४३), भरद्वाज या वीत हव्य (१६), सुहोत्र (२), शुनहोत्र(२), नर (२), शम्य (४), गर्ग (१), रिजिश्वन (४), और पायु (१)। इसमें छन्द मुख्यतया त्रिष्टुप, अनुष्टुप, जगती और गायत्री हैं। इस मंडल में विशेषतया अग्नि, इन्द्र, विश्वेदेवस, पूषन, उषस् और मरुत् के वर्णन हैं। एक सूक्त में गौओं का कथन है किन्तु पूजनात्मक नहीं। केवल इतना कहा गया है कि वे वध स्थान को कभी नहीं ले जायी जातीं और कवि ने यह भी कहा है कि मुझको वे भग, सोम और इन्द्र समझ पड़ती हैं। इससे प्रकट है कि सब लोग उन्हें पूजते नहीं थे, किन्तु यह कवि पूज्य दृष्टि से देखना चाहता था। अतः इस काल तक गो-पूजन स्थापित नहीं हुआ था, किन्तु अथर्ववेद के समय वह स्थापित था। इस मण्डल में मुख्य घटनाएँ निम्नानुसार हैं :—अरुन एक राक्षस था। भरत और देवदास के नाम आए हैं। अथर्वण ने अग्नि को बाहर निकाला और उनके पुत्र दधीच ने आग जलायी। चुमुरी, धुनि, शम्बर, पिप्र और शुरनु के दुर्ग थे जिन्हें इन्द्र ने नष्ट किए। दिवोदास को तूर्वशान भी कहते हैं। कुत्स, आयु और अतिथिग्व को इन्द्र ने हराया तथा नमि की रक्षा की। वेतसु, दशोनी और तुग हराए जाकर देवगाथों के पास लाए गए। इन्द्र ने पुरुकुत्स की सहायता की और मनु को दस्युं से श्रेष्ठतर बनाया तथा राजा नहुष को वश दिया। इन्द्र ने दमन

की सहायता की तथा राजा तुज और देवदास को बल प्रदान किया और प्रथीनस को कन्यारत्न दी। देववाढ के पुत्र अभ्यावर्तिन् चायमान को इन्द्र ने जिताया तथा वार्षिक को हराया और वृचनों को मारा। अभ्यावर्तिन् चायमान पृथु के वंशज थे। इन्द्र यदु और तुर्वश को दूर से ले आए। इस मण्डल में गंगा तट का वर्णन आया है और राजा त्रक्षी, द्रुह्यु, द्रुह्यु और पुरु के नाम हैं। शम्बर के क़िले पहाड़ पर थे। नहुष वंशी पराक्रमी कहे गए हैं। इस मण्डल में भी सरस्वती और पंजाब की अन्य नदियों के नाम आये हैं। इस मण्डल से कई महत्वपूर्ण ऐतिहासिक घटनायें मिलती हैं। १५...२, वीतहव्य अग्नि की प्रशंसा करते हैं (१५-३) वीतहव्य और भरद्वाज को धन दो। इससे इन दोनों का समकालीन होना प्रकट है। वीतहव्य हैहयवंशी नरेश, ३७, थे जो पीछे भरद्वाज के साथी ऋषि हो गए। १६,४,५,१९,४,५, भारतों की अग्नि का कथन है। अग्नि ने दिवोदास को वर दिए। दिवोदास भरद्वाज को दान करते थे। भारतों की खोज की गई, १७,८,१४, भरद्वाज को वीर आश्रयदाता दो। प्रतर्दन का कथन २२,१०, नाहुषों के अस्त्र प्रबल हों, २६,५ शम्बर को मार कर देवता ने दिवोदास की सहायता की।

२७,५ से ८ तक दैववात अभ्यावर्तिन चायमान ने यव्यावती नदी पर वृचीवनों को हराया तथा सृंजय को तुर्वश (देश) दिया। चायमान ने २० घोड़े तथा दासियाँ भरद्वाज को दीं। चायमान पृथु वंशी थे।

३१,४, इन्द्र ने दिवोदास को सहायता करते हुए शम्बर के १०० (४३,१) क़िले तोड़े। दिवोदास ने भरद्वाज को अमीर किया।

४५,१, गंगानदी का कथन।

४८,२१ से २५ तक, पानी के निकट दिवोदास ने वर्चिन और शम्बर नामक दासों को मारा। प्रस्तोक ने दान दिया। दिवोदास अतिथिग्व ने शम्बर के धन से भरद्वाज को दान दिया। अशाथ ने पायु को दिया। सृंजय के पुत्रों ने भरद्वाजों का मान किया।

५०,१५, भरद्वाज के पुत्र वेदर्षि थे।

६३,३, वध्रश्व दिवोदास के पिता थे।

को एक घोड़ा दिया। इन्द्र अनुवंशियों, तुर्वश तथा राजा रुम पर भी कृपा करते थे। तुर्वश और यदु की प्रशंसा योग्य है। पज्र और कण्व से शत्रुता थी। राजा कुरंग का नाम आया है। सुदेव एक बड़े भक्त थे। तुग्रपुत्र भुज्यु को अश्विनीकुमारों ने बचाया। चेद पुत्र कसु ने कवि को १०० भैंसे और दस हजार गाएँ दीं। चेदि लोग बड़े उदार थे। नहुषवंशियों के अच्छे अच्छे घोड़े थे। सरयानीवान कुरुक्षेत्र में एक झील थी। पर्श और तिरिन्दिर के पास के नाम आये हैं। कुकुर लोग यादवों के समान थे। उन्होंने भैंसे दान दिये। यश और दशव्रज को त्रसदस्यु ने सहायता दी। अथर्वण एक ऋषि थे। कक्षीवान और दीर्घतमा नामक ऋषियों के नाम आए हैं। वेन पुत्र पृथु का वर्णन है। आयु पुरुरवा के पुत्र थे। प्रदाकु साम यज्ञ करने वाला था। कवि पक्षाव के युद्धकर्ता थे। पांचालों में भी इनका होना कहा गया है। चिनाब नदी के चन्द्रभागा और असिक्नी भी नाम थे। पक्थ, अभिव, बभ्रु और चित्र राजा थे। व्यास एक ऋषि थे। गोमती नदी का नाम आया है (२५, ३०)। दक्ष के पुत्रों का कथन है। उक्षतयान, हरयान, और सुषामन को एक एक घोड़ा मिला।

इस मण्डल में ३३ देवताओं के नाम आए हैं। इन्द्र ने अनर्सनि, श्रीविन्दु, पिप्रु और ओर्णवाभ को मारा। पारावत एक यश था जिसने ऋषियों को खूब दान दिया। युवनाश्व पुत्र मान्धाता का (३९-८) नाम दस्युओं के मारने में आया है। एक मान्धाता राजा थे और दूसरे ऋषि। ४२ वें सूक्त की तीसरी ऋचा में रूपक द्वारा जहाज का कथन हुआ है। दास बलबूथ एक दानी और आर्य पृथुश्रवा के साथी थे। मनु का वर्णन पितामह कर के हुआ है। सूक्त ५६ की पहली ऋचा में राजपुत्रों का स्वर्ग कहा है। अश्विनों के विषय में लिखा है कि वे बाज की तरह उड़ गए। श्रुतर्वण ने रावी नदी के किनारे यज्ञ किया। इस मण्डल में जहाज का वर्णन कई बार आया है। एक स्थान पर लिखा है कि जैसे समुद्र की लहरें जहाज को थपेड़े लगाती हैं, इस प्रकार हम को कोई थपेड़े न लगावे। कृदम और उनके पुत्र विरवक ऋचाओं के ऋषि थे। अत्रिवंशी अपाला भी वेद की ऋषि थीं। इन्द्र को कई स्थानों पर राम कहा है। पृथ्वी के

दस देश कहे गए हैं। शिष्ट लोगों का वर्णन आया है। सूक्त नं० २७ से ३२ तक वैवस्वत मनु के रचे हुए हैं। इन में कोई ऐसा वर्णन नहीं है कि जो मनुओं के विषय में पौराणिक कथनों के प्रतिकूल हो। (४-१) इन्द्र मुख्यतया आनवों और तुर्वशों के साथ हैं। (९-१०) कण्व वंशी दीर्घतमस पूर्व कालीन कहे गये हैं। (१०-५) द्रुह्यु, अनु, यदु और तुर्वश के नाम इन्हीं वंशों के लिये आये हैं। (१९-३६, २७-७; ३६-७) पुरुकुत्सात्मज त्रसदस्यु ने सोभरि ऋषि को ५० दासियां दीं। त्रसदस्यु के पुत्र तृक्षि थे। त्रसदस्यु विजयी तथा दानी थे।

ऋग्वेद—नवाँ मण्डल

इसमें ११४ सूक्त हैं जिनके ऋषियों में मुख्य निम्नानुसार हैं:—मधुच्छन्दा. मेधातिथि, शुनःशेप, हिरण्यस्तूप, असित, कुत्स, देवल, विन्दु, गोतम, रहूगण, कवि, उचथ्य, अवत्सार, काश्यप, भृगु, भरद्वाज, कश्यप, गौतम, अत्रि, विश्वामित्र, जमदग्नि, पवित्र, रेणु, ऋषभ, हरिमन्त, कक्षीवान, वसु, प्रजापति, वेन, उशना, कण्व, प्रस्कण्व, उपमन्यु, व्याघ्रपाद, वशिष्ठ-शक्ति, पराशर, अम्बरीष, ऋजिश्वन, ययाति, नहुष, मनु, नारद, शिखण्डी, अग्नि, चाक्षुषमनु, प्रतर्दन, और शिशु। इन सब में रहूगण, वेन, उपमन्यु, अम्बरीष, ययाति, नहुष और चाक्षुषमनु की कई कारणों से मुख्यता समझनी चाहिये। इस मंडल भर में प्राय: सब ऋचाएँ सोम पवमान ही के विषय में हैं, केवल एक में आप्रिय का वर्णन है और दो में सोम पवमान के साथ कुछ और देवताओं का भी कथन है। ६७ वें सूक्त में विद्यार्थियों की भी प्रशंसा की गयी है। छन्दों में ६७ सूक्त पर्यन्त गायत्री ही चलती है। इसके पीछे जगती, त्रिष्टुप् और उष्णिक् भी आए हैं। नई उपमाएँ ५० वें सूक्त में बहुत हैं। इस मंडल की मुख्य घटनाओं का हाल संक्षेपतया नीचे लिखा जाता है:—ध्वस्र और पुरुषान्ति दानी राजा थे। सोम पवमान ने दिवोदास के कारण यदु, तुर्वश और शम्बर को (६१-२) मारा। जैसा कि आठवें मण्डल में यदु, तुर्वश आदि के नाम उन के वंशधरों के लिये आये हैं, वही हाल यहां

भी समझ पड़ता है, क्योंकि ये दोनों दिवोदास से बहुत पहले हुये थे। इस मंडल में जमदग्नि वंशियों का वर्णन बहुत है और च्यवन ऋषि का नाम बहुतायत से आया है। उत्तर पश्चिम में आर्जीक नाम्नी एक अनार्य्य जाति रहती थी। उशना बड़े बुद्धिमान कहे गये हैं। पेदू के घोड़े ने बहुत से नागों को मारा। इस मंडल में सिंह, धनुष और सप्तर्षि के वर्णन आये हैं। मग्र एक राक्षस था। दधीचि अथर्वण के पुत्र थे। अथर्वण ने सब से पहले अग्नि पायी और उसे सोमपान कराया। ब्राह्मण पूजा करने वालों को ढूंढ़ता है। चाक्षुप मनु के वेदर्षि होने से प्रकट है कि चाक्षुप मन्वंतर में वैदिक ऋचायें बन चली थीं।

ऋग्वेद—दसवाँ मण्डल

इसमें १९१ सूक्त हैं जिनके प्रधान ऋषियों का ब्योरा निम्नानुसार है:–त्रित, त्रिशिरा, सिन्धुद्वीप, यम, यमी, बृहदुक्थ, हविर्धान, विवस्वान्, शंख, दमन, देवश्रवा, च्यवन, विमद्, वसुकृत, वसुक्र, कवष, अक्ष, लुश, घोषा, कृष्ण, इन्द्र, वैकुण्ठ, गौपायन लोग और उनकी माता, गय, अयास्य, सुमित्र, बृहस्पति, अदिति, गौरिवीति, जरत्कर्ण, विश्वकर्मा, मन्यु, सूर्या, इन्द्र, इन्द्राणी, वृषाकपि, वायु, रेणु, नारायण, अरुण, शार्यात, तान्व, अर्बुद, पुरूरवा, उर्वशी, देवापि, वम्र, बुध, मुद्गल, अप्रतिरथ, अष्टक, दक्षिणा, दिव्य, सरमा, पणि, जुहू, जमदग्नि या राम, भिक्षु, लव, हिरण्यगर्भ, वरुण, सोम, वाक, कुशिक या रात्रि, प्रजापति, परमेष्ठी, यज्ञ, सुकीर्ति, शकपूत, सुदा, मान्धातार, गोधा, कुमार, सप्तमुनि (जूति, वात जूति, विप्रजूति, वृषाणक, एतश, करिक्रत, ऋष्य शृंग) सप्तर्षि, ध्रुव, विश्वावसु, अग्नि पावक, अग्नि तापस, जरितर, द्रोण, सारीसृक, स्तंबमित्र, अत्रि, सुपर्ण, ऊर्ध्वकृशन, पृथु वैन्य, शास, इन्द्र की माताएँ, केतु, भुवन, शची पौलोमी, पूरण, प्रचेतस, कपोत, ऋषभ, विश्वामित्र-जमदग्नि, अनिल, शवर, विभ्राट्, इट, संवर्त, ध्रुव, सुतु, पतंग, अरिष्टनेमि, शिबि, प्रतर्दन, वसुमनस, जय, प्रजावान, त्वष्टा, विष्णु, सत्यधृति, बल, अघमर्षण और सम्वनन। इन वेदर्षियों में राम उनके पुत्र लव, और बहनोई ऋष्यशृंग के नाम आए हैं। सम्भवतः राम से परशुराम

का प्रयोजन हो, क्योंकि यहाँ जमदग्नि या राम लिखा है। वेदर्षि जरितर, द्रोण, सारीसृक और स्तम्बमित्र शार्ङ्गी शूद्रा से उत्पन्न मन्दपाल ब्राह्मण के वे पुत्र थे जो अर्जुन के खाण्डव दाह से बचे थे। पुरुष सूक्त (नं० ९०) के ऋषि नारायण ने नारद को वासुदेव का ऐश्वर भाव बतलाया। उसे नारद से जान कर व्यास ने युधिष्ठिर से कहा (शान्ति पर्व)। इस प्रकार वेद के ये भाग महाभारत काल के पड़ते हैं। इन ऋषियों में कई प्रसिद्ध राजा अथवा महापुरुष हैं, यथा विवस्वान्, गय, अदिति, पुरुरवा, देवापि, राम, लव, कुशिक, सुदास, मान्धाता, पृथु, केतु, ऋषभ, चाक्षुष मनु, ध्रुव, शिवि आदि। ऋषियों में कई देवताओं के भी नाम आये हैं जैसे इन्द्र, अग्नि आदि। अग्नि, प्रजापति विश्वकर्मा आदि देवताओं के नाम अवश्य हैं, किन्तु समझ पड़ता है कि इन्हीं नामों के मनुष्य भी थे। ध्रुव भी एक वेदर्षि जान पड़ता है। यह ध्रुव नाम के प्रसिद्ध राजा हो सकते हैं। कई स्त्रियाँ भी वेदर्षि हैं। प्राचीनतम वेदर्षियों में वेन, ध्रुव और पृथु-वैन्य हैं।

इस मंडल के देवताओं में अग्नि, इन्द्र, यम, पितर, जल, गय, विश्वेदेवस्, बृहस्पति, विश्वकर्मा, सूर्य्य आदि की प्रधानता है। देवताओं के अतिरिक्त इसमें कई अन्य विषयों पर भी सूक्त हैं, यथा जल, पितृ, मृत्यु, गाय, पांसा, खेती, जीवात्मा, सुबन्धु का पुनर्जीवन, हाथ, सावर्ण्य की उदारता, ज्ञान, देवता लोग, नदियाँ, दबाने का पत्थर, सूर्या के विवाह पर आशीर्वाद, पुरुष, उर्वशी-पुरुरवा, इन्द्र के घोड़े, वनौषधि, गदा, सरमा, पनिस, उदारता, वेन, वायु, रात्रि, जगदुत्पत्ति, केशी, प्रतिद्वन्द्वी (हाड़ करने वाले) का हराना, सपत्नीबाधन, अरण्य, श्रद्धा, नवजीवन, दुर्भाग्य निराकरण, पौलोमी, क्षयीरोग निराकरण, गर्भपात से बचाव, दुःस्वप्नों से बचाव, गोगण, उषा, राजा, माया भेद, तार्क्ष्य, यज्ञकर्त्ता और उसकी स्त्री के गर्भ को आशीर्वाद, अदिति और मेल। इतने विषयों का वर्णन होने से प्रकट होता है कि यह मंडल बहुत ही गम्भीर और सांसारिक सभ्यता की ऐतिहासिक [illegible]। इस एक मंडल के पढ़ने से विविध [illegible] अच्छा ज्ञान प्राप्त हो सकता है।

इस में व्यवहृत मुख्य छन्द निम्नानुसार हैं:—त्रिष्टुप्, गायत्री, जगती, अनुष्टुप्, आस्तार पंक्ति, प्रस्तार पंक्ति, उष्णिक्, महापंक्ति, बृहती और द्विपदीविराट्।

यम यमी भाई बहन थीं। कुछ योरोपीय पण्डितों का विचार है कि स्त्री पुरुष का यह पहला जोड़ा था, किन्तु इनकी बातचीत ही से प्रकट होता है कि संसार में अन्य पुरुष भी थे। यमी ने यम के साथ विवाह करने का प्रस्ताव किया। इस पर यम ने उत्तर दिया कि वह बहिन के साथ विवाह करना उचित नहीं समझता और इसलिये यमी को उचित है कि वह किसी और को अपना हृदय प्रदान करे और प्रीति भाजन बनावे। जान पड़ता है कि यह उस काल का वर्णन है कि जब तक भाई बहनों में विवाह का निषेध तो नहीं हुआ था किन्तु निषेधात्मक विचार उठने लगे थे। यम ने यमी के विचारों को लोकलाजहीन न कहकर उनसे केवल अपनी असम्मति प्रकट की और कहा कि लोग इसे पातक समझते हैं। किसी सूर्या का विवाह इस मंडल में लिखा है। यमी भी सूर्य्य की कन्या होने से सूर्य्या कही जा सकती थी।

इस मंडल में घटनाओं का वर्णन बहुतायत से आया है। पिता एवं मृत्यु के कथन आये हैं और कहा गया है कि मरने के पीछे मनुष्य यम के यहाँ जाता है। कहा गया है कि हमारे चारों ओर दस्यु लोग रहते हैं जो यज्ञादिक नहीं करते और पृथक धर्मों पर चलते हैं। इस मंडल में सिंह का वर्णन कई बार आया है। दुहश्शासु एक शत्रु राजा था जिसने त्रसदस्यु के पौत्र कुरुश्रवन को हराया। दिवोदास के मुकाबले में गांगव लोग मारे गये। साप्य ने दिवोदास की सहायता की। श्रुतर्वण ने मृगय और साख्य को हराया। ३३३९ देवताओं ने अग्नि की पूजा की। उशीनर लोग मध्यदेश में रहते थे। इक्ष्वाकु एक राजा और मनु बड़े दानी थे। यदु और तुर्वश ने दो दास दान किये। ययाति नहुष के पुत्र थे। गङ्गा, जमुना का वर्णन आया है और पञ्जाब की नदियों का भी। बैल मधा में मारे जाते थे और अर्जुनी में बछना पैदा करते थे। ९० वें सूक्त में ईश्वर के मुख, बाहु, जंघा और पैर से ब्राह्मण, क्षत्री, वैश्य और शूद्र की उत्पत्ति कही गयी है।

चन्द्रमा ईश्वर के मन से निकला। समझ पड़ता है कि ऋग्वेद के समय में जाति भेद कर्म से था, किन्तु यजुर्वेद के समय वह जन्म से माना जाने लगा। पुरुषसूक्त नारायण ऋषि का है। यह अच्छे कवि समझ पड़ते हैं। दुःसीम, प्राथिवान्, वेन, राम और तान्वापार्थ्य यज्ञकर्त्ता कहे गये हैं। सम्भव है कि यह राम वही दशरथ पुत्र प्रसिद्ध राम हों। पुरूरवा की स्त्री उर्वशी थी। राजा उसको अधिक प्यार करते थे किन्तु उसे परवाह न थी। यह मनुष्य थे और वह अप्सरा। उर्वशी ने कहा कि स्त्री पूरा प्रेम नहीं कर सकती और अपने विषय में कहा, "मैं हवा के समान उड़ती हूँ सो मेरा पकड़ना कठिन है।" उर्वशी की ये बातें स्त्री जाति के विषय में वैदिक सम्मति प्रकट नहीं करतीं। उर्वशी स्वयं प्रेमहीना थी और इसीलिये सभी स्त्रियों को ऐसी समझती थी। पुरूरवा इला के पुत्र थे। इस मंडल में स्वर्ग का वर्णन आया है। शान्तनु को देवापि ने यज्ञ कराया। भारत वाले शान्तनु के देवापि भाई थे और इन दोनों के पिता प्रतीप थे, किन्तु वैदिक देवापि के पिता ऋष्टिषेण लिखे हैं। जान पड़ता है कि थोड़े ही काल राज्य करने अथवा पिता के आगे मरने से इनका नाम महाभारत से छूट गया। यह भी सम्भव है कि देवापि के ब्राह्मण होने में ऋष्टिषेण उनके दत्तक पिता बने हों।

इस मंडल में जल के विषय में एक अच्छा सूक्त है। उसमें जल को शक्तिप्रदायक, पुत्रोत्पादक, बलप्रदायक, स्वास्थ्यकर और पातक-निराकरण करने वाला कहा गया है और यह भी लिखा है कि पानी में सभी दवाएँ रहती हैं। पितरों के वर्णन में लिखा है कि वे यमलोक में रहते हैं। वहाँ यम ने उनके लिए ऐसा स्थान नियत किया है जो जल और ज्योति से शोभित है और पितृ लोग यम के साथ प्रसन्न रहते हैं। ५८ वें सूक्त में जीवात्मा का कथन किया गया है और मृत अथवा मूर्छित मनुष्य से कहा गया है कि जो तेरा जीवात्मा बहुत दूर विवस्वान् के पुत्र यम के यहाँ चला गया था, उसे हम फिर तेरे पास लाते हैं कि तू जीवित रह कर यहीं रह। इस प्रकार शेष ११ मन्त्रों में पृथ्वी और स्वर्ग, चार कोने की पृथ्वी, संसार के चारों स्थानों, तरंगित समुद्र, चमकने और बहने वाली ज्योति,

जलों, पौधों, सूर्य्य और उषा, ऊँचे पहाड़ों, सब जीवधारी और चलने वाले पदार्थों, हमारे दृष्टिक्षेत्र से बाहर दूर देशों और अन्त में सब वर्तमान और भूत जीवधारियों में जीवात्मा का जाना लिखा है।

उशीनरानी, ५९, १०, और ६०, ४, इक्ष्वाकु के कथन। ६०, ६ अगस्त्य के कई भागिनेय थे। ६०, ७, में सुबन्धु का कथन है। ६१ वाँ सूक्त नाभानेदिष्ठ का है। ६२ में सावर्ण्य मनु के यज्ञों की प्रशंसा तथा चिरायु होने का आशीर्वाद है। ६३, गय का सूक्त है। ६३,१,६,७, १७, विवस्वान के वंशधर मनुष्यों को बहुत प्रिय हैं, तथा दूर तक राज्य फैलाते हैं। ययाति नहुष के पुत्र थे। नाहुषों तथा वैवस्वतों की साथ ही प्रशंसा है। मनु ने सात पुरोहितों द्वारा सब से पहले यज्ञ किया। गय प्रति के पुत्र थे। यही बात, ६४, १७ में भी है। ६४,९, सरयू नदी तथा ६५, १४ मनु के देवतों के कथन हैं। ५९, १ तथा VI ६१,१, वध्र्यूश्व सरस्वती और अग्नि के पूजक थे। सूक्त, ६९ का ऋषि सुमित्र अपने को बराबर उनका सगोत्री कहता और उनसे प्रसन्नता प्रकट करता है। ये प्राचीन समय में थे। ७२, २,३, देवताओं के प्राचीन समय में असत्ता से सत्ता हुई। ७५, ३,५,९, सिन्धु, गङ्गा, यमुना, शतद्रू, परुष्णी, सरस्वती, असिक्नी, वितस्ता, कुभा और गोमती नदियों के नाम आये हैं। ८१, में जगदुत्पत्ति और एक ईश्वर के कथन हैं। ८२, ईश्वर पिता है, उसी ने सब कुछ बनाया है। एक ही विश्वकर्मन कर्ता है। यह देवताओं तथा असुरों से पहले का तथा अज है। ९० में पुरुष सूक्त है। यह सूक्त यजुर्वेद में भी है। ९३, १४, दुःसाम पृथवान, वेन और राम सब यज्ञ कर्ता थे। ९५, पुरूरवस उर्वशी का है। ९८, आर्ष्टिषेण का पुत्र देवापी अपने भाई शान्तनु के लिए पानी बरसाने की प्रार्थना इन्द्र से करता है।

१०२, मुद्गल का सूक्त है। इन्द्र सेना मुद्गलानी ने रथ हाँक कर पति को विजय दिलाई। पहले वह उनको छोड़े हुए था, किन्तु पीछे प्रसन्न हो गया। १२१, हिरण्यगर्भ सारे संसार के स्वामी थे। वे सब से पहले हुए। १२३, में वेन अपनी भारी प्रशंसा करते हैं, शायद ये ही पृथु के पिता हों। १२९, १३०, में जगदुत्पत्ति वर्णन है। १७१,३, में वैन्य का कथन है।

इसी स्थान पर ऋग्वेद का संक्षिप्त ऐतिहासिक विवरण समाप्त होता है। जो ऐतिहासिक घटनाएँ इसमें कही गयीं हैं उन सब का पूर्वापर क्रम केवल वेदों के सहारे से स्थिर नहीं हो सकता। इसीलिए ऐसा करने का प्रयत्न न करके हमने यहाँ पर ऋग्वेद के संहिताविभाग से जितना कुछ मुख्य ऐतिहासिक मसाला प्राप्त हो सकता है उसका संक्षिप्त विवरण ऊपर लिख दिया है। यों तो भगवान वेद से हजारों प्रकार के ऐतिहासिक एवं अन्य बहुमूल्य भाव प्राप्त होते हैं, किन्तु हमने उन पर ध्यान न देकर केवल राजनैतिक इतिहास का जो मुख्य मूल ऋग्वेद संहिता से प्राप्य है उसे यहाँ पर कहा है। इन ऐतिहासिक घटनाओं का पूर्वापर क्रम जो ब्राह्मणों, इतिहासों, पुराणों आदि के सहारे कहा जा सकता है, उसे दिखलाने का प्रयत्न आगे किया जायगा। यहाँ पर केवल संहिता का सहारा लेकर जो ऐतिहासिक ज्ञान प्राप्त हो सकता है उसका विवरण किया गया है। इसी प्रकार शेष तीनों वेदों के संहिता विभाग का सहारा लेकर हम अपना ऐतिहासिक वर्णन लिखेंगे। इसके पीछे अन्य ग्रन्थों के सहारे इतिहास का क्रम बाँधा जायगा।

सामवेद

यह वेद गणना में तीसरा किन्तु महिमा में नम्बर २ समझा जाता है। सामवेद में कुल १५४९ मन्त्र हैं। इनमें से केवल ७२ इसके और शेष सब ऋग्वेद के हैं। इसके दो भाग हैं, जिनमें से पहले में ६ काण्ड हैं और दूसरे में ९। एक एक काण्ड की भी कई कई कण्डिकायें हैं जिन्हें सूक्त कह सकते हैं। सामवेद में कुल मिलाकर ४५९ सूक्त हैं। ये प्रायः सब ऋग्वेद से लिए गये हैं, किन्तु कुछ नये भी हैं। कुल मिलाकर सामवेद का प्रायः २० वाँ भाग नया होगा, शेष सब ऋग्वेद से लिया हुआ है। इसके जो पाठ हैं उसमें ऋग्वेद से कहीं कहीं थोड़ा बहुत अन्तर है। कई स्थानों पर अन्तर अर्थ समझाने के लिये किया गया है, किन्तु अधिकतर दशाओं में यह बात घटित नहीं होती। कुछ पाश्चात्य पंडितों का मत है कि सामवेद में लिखित मन्त्र बहुत स्थानों पर वर्तमान ऋग्वेद के प्राचीन पाठों पर अवलम्बित हैं, अर्थात् जिस

काल वे ऋचाएँ सामवेद में रक्खी गयीं तब ऋग्वेद में भी उनका यही पाठ चलन में था, किन्तु पीछे से बदल गया। जान पड़ता है कि ऋग्वेद की ऋचाएँ सदा से इतनी ही नहीं थीं, वरन् संख्या में वर्तमान ऋचाओं से कुछ अधिक थीं। उन्हीं में से वर्तमान ऋचाएँ सामवेद में रक्खी गयीं। पीछे से ऋग्वेद के सम्पादक व्यास भगवान ने ऋग्वेद वाली वर्त्तमान ऋचाओं को चुन लिया और शेष को छोड़ दिया। उन्हीं छोड़ी हुई ऋचाओं में से, जो सामवेद में आगयी थीं वे तो रक्षित रहीं और शेष नष्ट हो गयीं।

सामवेद को किसने संकलित किया इसका पता नहीं है, केवल इतना ज्ञात है कि चारों वेदों के सम्पादक व्यास भगवान थे। सामवेद के आदि में लिखा है कि "ओं सामवेद की जय, गणेश की जय।" यह असली सामवेद का भाग नहीं है वरन् हाल के लेखकों ने लगा दिया होगा। सामवेद में विशेषतया सोम पवमान का वर्णन है। इनके अतिरिक्त अग्नि, इन्द्र, उषा, आश्विन आदि पर भी कुछ कथन आए हैं। जल, वात और वेन के भी कुछ वर्णन हैं। इसमें कुछ ऋचाएँ मनु वैवस्वत की भी हैं। जिन दधीचि की हड्डी से वज्र बना था वे अथर्वण के पुत्र एक ऋषि थे। पुराणों में राजा दधीचि के विषय में यही बात कही गयी है। इन्द्र को राम कहा है। बभ्रु के पुत्र सत्यश्रव ऋषि का नाम आया है। नहुष की एक ऋचा है जो ऋग्वेद में नहीं है। कुछ ऋचाएँ नहुष, ययाति, मनु, अम्बरीष तथा ऋजिश्वा की भी हैं तथा कुछ आप्सव मनु की। रसा नामक एक नदी है जो पृथ्वी के चारों ओर बहती है। सोम पवमान ने दिवोदास के लिए शम्बर, यदु और तुर्वश को हराया। यही विजय वर्णन कई देवताओं के विषय में किये गए हैं, जैसे शम्बर का मारना इन्द्र, अग्नि और सोम पवमान के विषय में कहा गया है। श्यावक, ऋजिश्वा और अम्बरीष इन्द्र के कृपापात्रों में से थे। क्रवि एक असुर था। ईश्वर का वर्णन विश्वकर्मा, स्कम्भ, प्रजापति और पुरुष के नाम से आया है। कहीं कहीं अग्नि, इन्द्र और सूर्य में भी ईश्वर का भाव प्रकट किया गया, है। पर्वाह कमर्गों के राजा थे। सुनीथ सुपद्रथ के पुत्र थे। मनुष्य जीवन अधिकतर १०० वर्षों का

कहा गया है किन्तु कहीं कहीं ११६ और १२० वर्षों का भी वर्णन है।

यजुर्वेद

यजुर्वेद का शाब्दिक अर्थ यज्ञ सम्बन्धी ज्ञान का है। इसमें जाति भेद की उन्नति देख पड़ती है, मिलित जातियों का भी वर्णन है तथा दस्तकारी, विज्ञान, व्यापार आदि का कुछ बढ़ा-चढ़ा कथन है। इन बातों से ग्रिफ़िथ महाशय का विचार है कि यह वेद अथर्ववेद से भी नया है। इसके शुक्ल और कृष्ण नामक दो विभाग हैं जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है। कुल मिलाकर इसमें ४० अध्याय और प्रायः २००० छन्द हैं और बहुत कुछ भाग गद्य में भी है। इसका बहुत सा भाग ऋग्वेद से लिया गया है और कुछ अथर्व से मिलता है। यज्ञ आर्यों में सदैव से होते रहे थे, सो उनके विधानों का वर्णन भी बहुत पुराना होना निश्चित है। इसीसे यजुर्वेद का प्रारम्भकाल पुराना समझ पड़ता है। बलि के यज्ञ में वामन भगवान् ने प्रचलित यज्ञ रीतियों में कुछ विशेषता दिखलायी। इससे रीतियों पर विचार उस काल से ही चले थे ऐसा निश्चित है।

पहले और दूसरे अध्यायों में नवेन्दु और पूर्णेन्दु सम्बन्धी यज्ञों के वर्णन हैं और तीसरे में अग्निहोत्र का कथन आया है। अध्याय नम्बर ४ से ८ तक सोमयज्ञ का विधान है और नवम एवं दशम में वाजिपेय और राजसूय यज्ञों का कथन हुआ है। ११वें से १८वें अध्याय पर्य्यन्त वेदी आदि बनाने के विधान कहे गये हैं। १६वें में शतरुद्रीय का विधान है। १९वें से २१वें तक सौत्रामणि यज्ञ का कथन है और २२वें से २५वें तक अश्वमेध का। २६वें से २९वें अध्याय पर्य्यन्त चान्द्रयज्ञों का विधान है और ३०वें तथा ३१वें में नरमेध का। शतपथ ब्राह्मण के देखने से प्रकट होता है कि नरमेध में मनुष्य का बलिदान नहीं दिया जाता था, वरन् एक पुतले का। ३२वें से ३४ वें अध्याय पर्य्यन्त सर्वमेध का वर्णन है और ३५वें में पितृ यज्ञ का। ३६वें अध्याय में दीर्घजीवी आदि होने की विनतियाँ हैं और ३७वें से ३९वें अध्याय तक प्रवर्ग का विधान है। ४० वाँ अध्याय एक उपनिषत् है, जिसमें ईश्वर का वर्णन है। शुक्ल यजुर्वेद के अध्याय

१६ और ३० में व्यवसायों के ये नाम दिये हुए हैं:—(१) चोर,(२) सवार, (३) पदाती, (४) नर्तक,(५) कानति,(६) रथवाहक ,(७) रथबनानेवाले,(८) बढ़ई,(९) कुम्हार,(१०) सुनार, (११) कृषक, (१२) जाल बनानेवाला, (१३) धनुष बनाने वाले, (१४) बौने, (१५) कुबड़े, (१६) अंधे,(१७) गूँगे,(१८)वैद्य,(१९) ज्योतिर्विद्, (२०) हाथीवान, (२१) लकड़ी काटनेवाले,(२२) घोड़ा और जानवर रखने वाले,(२३) नौकर, (२४) बावर्ची, (२५) फाटक बरदार, (२६) चित्रकार,(२७) नक्काश,(२८) धोबी,(२९) रंगरेज, (३०) नाऊ,(३१) विद्वान,(३२) विविध प्रकार की स्त्रियाँ, (३३) चमड़ा कमाने वाले, (३४) मछुआ, (३५) शिकारी, (३६)चिड़ीमार, (३७) जेवर बनाने वाले, (३८) ताजिर, (३९) चक्रवाले, (४०) कवि,(४१) अंगूठी बनाने वाले, (४२) वाद्य शास्त्री, (४३) कामी, (४४) और भाषण करनेवाले । इससे तत्कालीन समाज विकसित समझ पड़ता है ।

यजुर्वेद की कुछ ऋचाएँ ऋग्वेद से ली गयी हैं और कुछ अथर्ववेद से मिलती हैं । ऋग्वेद वाली ऋचाओं के ऋषियों के नाम तो ज्ञात हैं, किन्तु शेष यजुर्वेद के ऋषि ज्ञात नहीं। केवल अन्तिम ५ अध्याय दधीचि कृत हैं । शेष ३५ अध्यायों के रचयिता प्रजापति, परमेष्ठी, नारायण, पुरुष, स्वयम्भू ब्रह्म, बृहस्पति, इन्द्र, वरुण, अश्विनी, वशिष्ठ, विश्वामित्र, वामदेव, मधुच्छन्दा, मेधातिथि, सूर्य्य, याज्ञवल्क्य आदि कहे गए हैं । अधिकांश ऋचाएँ देवताओं की कही गयी हैं, जिससे प्रकट है कि यजुर्वेद की महिमा शेष वेदों से बड़ी बढ़ी समझाये जाने का प्रयोजन था और इसलिए केवल मानव ऋषि यथेष्ट नहीं समझे गये । इस वेद में एक दो स्थानों पर मंत्रों का प्रभाव ऋग्वेद की अपेक्षा कुछ बढ़ा हुआ दिखलाया गया है । यजमान को कुल पापों से रहित करने की विनती मात्र नहीं है, वरन् यह कथित है कि उन से वह रहित हो गया । इसी प्रकार यह कहा गया है कि प्रेत, सब दुष्ट जीव, सब राक्षस, सब कष्टप्रद औषधियाँ, मंत्रों से जला दिये गये । एक स्थान पर मुर्गे से उपमा दी गयी है । उत्तर पश्चिम के पहाड़ निवासी मूजवन लोग दुष्ट कहे गये हैं । इस वेद में

ऋक और सामवेदों के नाम आये तथा आयु और पुरुरवा के वर्णन हुये हैं। इस में ऋग्वेद की अपेक्षा विष्णु का वर्णन बहुत आया है। रुद्र की यहां महिमा बहुत कुछ बढ़ी है और वे शिव, शङ्कर, महादेव आदि नामों से पुकारे जाकर ईश्वर हो गये हैं। सन्द और मर्क शुक्राचार्य्य के लड़के थे। यह मर्क राक्षसों के पुरोहित कहे गये हैं। एक स्थान पर तो यह भी कहा है कि सन्द हराये और मर्क भगाये गये। राजा शर्याति का नाम आया है। यह कहा गया है कि आज मुझे ऐसा ब्राह्मण मिले जो पुनीत बाप दादों से उत्पन्न हुआ हो। अच्छा पुरोहित वह है जो स्वयं ऋषि हो और ऋषियों की सन्तान भी। इन बातों से बपौती की विचार-वृद्धि का पता चलता है। सिन्धु नदी का वर्णन इस वेद में हुआ है और क्षत्रियों को बल मिलने की प्रार्थना की गयी है। भारतीय क्षत्रियों का भी कथन और जहाज चलने के वर्णन हैं। पुरु एक राक्षस था जिसे भरत ने हराया। उनके लिए १०० वर्षों का जीवन माँगा गया। विश्वकर्म्मा का कथन प्रायः आया और सिंह का भी वर्णन है। कहते हैं कि पुरोहितों की जाति पैदा हुई तथा शूद्र और आर्य्य एवं तार्क्ष्य और अरिष्टनेमि उत्पन्न हुए। इस वेद में प्रासंगिक छोड़ अप्रासंगिक बातें कम आई हैं। कहा गया है कि ब्राह्मण, क्षत्री, वैश्य और शूद्र इन चारों को ज्योति प्रदान हो। बिना हाथों का कुनार नामक एक दैत्य दानवों के साथ रहता था। भेड़िया और चीते के कथन कई जगह पर आये हैं। एक अध्याय में महादेव की बहुत दूर तक प्रशंसा है। सुभद्रा कम्पिला के एक राजा की स्त्री थी। अम्बा, अम्बिका, अम्बालिका के नाम हैं, किन्तु महाभारत वाले नहीं। अग्नि को तनूनपात् असुर कहा गया है। मागध नाम है जिससे प्रकट है कि मगध देश उस काल तक बस चुका था। लिखा है कि ईश्वर का जाननेवाला ब्राह्मण अपने देवता को स्ववश में रक्खेगा। ईश्वर का वर्णन बहुत साफ़ है। व्यन्स को इन्द्र ने मारा। कहते हैं कि आर्य्य और दास दोनों ईश्वर ही के हैं। पवीरु एक अच्छा राजा था। सातों नदियों तथा दधिक्रवन और सप्त ऋषियों के कथन हैं। शतानीक और सुरभि के नाम आए हैं।

अथर्ववेद

अथर्व ऋग्वेद के साथ ही अथवा कुछ पूर्व प्रारम्भ हुआ और पीछे तक बनता रहा। इसको अथर्वाङ्गिरस और भृग्वाङ्गिरस भी कहते हैं। अथर्वण पहले ऋषि थे जिन्होंने लकड़ियों को रगड़ कर आग पैदा की। अङ्गिरस और भृगु भी प्राचीन ऋषि थे। इन तीनों ऋषियों और इनके वंशधरों का वर्णन ऋग्वेद में कई बार आया है। कहा जाता है कि इन्हीं तीनों ऋषियों के वंशधरों को यह वेद भाषित हुआ। ऋग्वेद अन्य वेदों की सहायता लेकर नहीं चलता, वरन् स्वावलम्बी और ऐतिहासिक दृष्टि से बड़ा लाभकारी है। यही दोनों गुण अथर्ववेद में भी पाये जाते हैं। ऋक् और अथर्ववेदों में प्रधान अन्तर यह है कि पहले में ब्राह्मणत्व की महिमा स्थापित नहीं हुई थी, किन्तु दूसरे के समय में ऐसा भली भाँति हो चुका था। ऋग्वेद में प्राकृतिक वर्णनों की प्रधानता है। उस काल हमारे ऋषिगण प्रकृति देवी ही पर मुग्ध थे। अथर्ववेद में वे टोना टनमनों आदि पर भी बहुतायत से विश्वास करते थे और भूत प्रेतों आदि का भी भय मानते थे। भारतीय आयुर्वेद शास्त्र का भी पहला प्रादुर्भाव अथर्व ही में हुआ। ऐसे अन्तरों को छोड़ देने से ये दोनों वेद प्रायः सम हैं। कुछ विद्वानों का मत है कि अथर्ववेद के बहुत से अंश हैं तो ऋग्वेद के समकालिक, किन्तु ऋक् की अपेक्षा वे कुछ नीचे दर्जेवालों में प्रचलित थे। ऋग्वेद में भी लिखा है कि अङ्गिरसवंशी मायावी थे। इस वंश से घनिष्ठ सम्बन्ध रखने के कारण भी अथर्ववेद में यन्त्र मन्त्रों का बाहुल्य हुआ होगा, ऐसा सम्भव है। मोटे प्रकार से ऋग्वेद में आदिम हिन्दूमत का चित्र खिंचा हुआ है, किन्तु अथर्व में समय के साथ धर्म का कुछ विकसित रूप देख पड़ता है। अतः प्राचीन हिन्दू मत में नवीन सिद्धान्तों का विकास धीरे धीरे किस प्रकार से हुआ, सो इन दोनों अमूल्य वेदों को मिलाकर पढ़ने से प्रकट हो सकता है। कुछ पाश्चात्य पण्डितों का मत है कि आधुनिक विकासों का मूल दिखलाने एवं अन्य कारणों से विद्वानों के लिए अथर्व ऋग्वेद से भी अधिक रोचक है। यह बात हर प्रकार से निर्विवाद है कि वैदिक साहित्य में ऋग्वेद, अथर्ववेद और शतपथ ब्राह्मण विद्वानों के लिए सर्वप्रधान हैं।

✓ अथर्ववेद में २० काण्ड, प्राय: ७६० सूक्त और ६०१५ छन्द हैं। इनमें से १२०० ऋचायें ऋग्वेद से ली गई हैं। अथर्ववेद के ऋषियों के नाम पृथक् पृथक् नहीं दिये गये हैं। इसके प्रत्येक मण्डल में कई अनुवाक हैं और प्रत्येक अनुवाक में कई सूक्त तथा प्रत्येक सूक्त में कई ऋचाएँ हैं। ऋग्वेद आदिम हिन्दूसमाज का वर्णन करता है किन्तु अथर्ववेद में वर्द्धमान समाज देख पड़ता है। स्त्रियों का वर्णन इसमें कम है तथा झाड़ने फूँकने के मन्त्र बहुत से हैं। उस काल हम लोगों में द्यूतक्रीड़ा का बहुत प्रचार था। अथर्व में जुए में जीतने के लिए सूक्त कहे गए हैं। जगत के रचयिता के विषय में विश्वकर्मा का नाम आया है। काण्ड ३ सूक्त २२ में गाय और बैल के मांस खाने का कथन हुआ है। लड़का पैदा होना अच्छा माना जाता था और लड़की की उत्पत्ति कम माँगी जाती थी। कुटुम्ब में सुमति रहने और सब के कुशलपूर्वक निर्वाह होने के विषय में सूक्त हैं। भेड़िया, बाघ आदि दुष्ट जीवों के हटाने के विषय में ऋचाएँ हैं। ब्राह्मण जब पैदा हुआ तब उसके दस हाथ और दस पैर थे। इस कथन से प्रकट है कि उस काल से ही पोपलीला का आरम्भ हो चला था। ऐसे वर्णन ऋग्वेद में नहीं आए हैं। स्वर्ग का वर्णन सब वेदों में है, किन्तु इस वेद में उसकी बहुत प्रचुरता है, यहाँ तक कि एक पूरे सूक्त में विशेषतया स्वर्ग का ही कथन है। लिखा गया है कि तेरहवाँ महीना अर्थात् लौंद इन्द्र का पैदा किया हुआ है। वभ्रु एक राजा थे। अरात का वर्णन एक सूक्त में आया है। सूमों की निन्दा और उदार लोगों की प्रशंसा है। ब्रह्मचारी और सप्तर्षि के वर्णन हैं। लिखा है कि शूद्र अपनी गुरुता से आर्य्य का अपमान न करे। यदि १० अब्राह्मण किसी स्त्री को चाहते हों और एक ब्राह्मण उसे चाहे तो वह उसी की होगी। जो कोई ब्राह्मण का निरादर करता अथवा उसे लूटता या दुःख पहुँचाता है उसकी दुर्गति होती है।

✓ मूजवन, महावृष और वाल्हीक जातियाँ उत्तर-पश्चिम में रहती थीं। कहा गया है कि हे ज्वर, तू मूजवन, वाल्हीक, महावृष, आंगों (वर्तमान भागलपुर) और मागधों की ओर जा। इससे प्रकट है कि उस काल अङ्ग और मगध में भी अनार्य्यों का निवास था। यह

भी लिखा है कि हे ज्वर तुम लम्पट शूद्र बालिका के पास जाओ। चीता और सर्प के वर्णन हैं। गाय और बछड़े को आशीर्वाद दिया गया है। गाय और ब्राह्मण की बड़ी प्रशंसा है। प्रजापति, स्कंभ, पुरुष और विश्वकर्मा के नामों से ईश्वर का वर्णन है। चीते को शक्ति का प्रतिरूप समझते थे। मरणप्राय मनुष्यों के बचाने के लिए एक सूक्त है। विराज के वर्णन में भी ईश्वरांश का कथन है। अंगिरस वंशी जादूगर कहे गए हैं। किमिदिन, अलिन्स और वत्सप राक्षस थे। कहते हैं कि किलिम्प बच्चे को बचावे और गर्भ में उसे लड़की न होने दे। नेवला दवा जानने वाला बताया गया है। स्वराज विराज से पहले माना गया है। विराज भक्ति का पिता कहा गया है। एक स्थान पर विराज का वर्णन स्त्रीलिङ्ग में भी है। असुरों को राक्षस कहा है। राक्षसों की माया का वर्णन है। लिखा है कि प्रह्लाद के पुत्र विरोचन थे। असुर माया पर ही भरोसा करते थे। द्विमूर्धा और आर्त्तव राक्षस थे। चित्ररथ और वसुरुचि गन्धर्व थे। वेन के पुत्र पृथु ने पृथ्वी को दुहा। वैश्रवण और कुबेर के नाम आए हैं। धृतराष्ट्र नामक एक नाग सरदार था। जो ब्राह्मण यज्ञ में बैल की बलि देता है, उसकी सब देवता सहायता करते हैं। गाय की पूजा विशेष रूप से होने लगी थी। उसके खुर और पूँछ के बाल भी पूजे जाते थे। गाय यज्ञ से निकली है। रुद्रों की माता गाय है तथा विष्णु, पृथ्वी और ब्रह्मा गाय हैं। जो ब्राह्मण गाय देता है उसको बड़ा पुण्य होता है। कृत्या से जादूगरों के मारने की प्रार्थना की गई है। मरुत् दुनिया के मालिक कहे गये हैं और उनसे आग निकालने की प्रार्थना है। ऋषिसन्तानों की बड़ी प्रशंसा है।

अर्भक को रुद्र ने मारा। शायद यह नाम अन्धक का हो। ब्रह्मचारी के लिये कहा गया है कि काला मृगचर्म ओढ़े। तैत्तिरीय उपनिषत् में लिखा है कि भरद्वाज ने तीन जन्म तक ब्रह्मचर्य व्रत पालन किया। तीसरे जन्म के अन्त में उनसे इन्द्र ने पूछा कि तुम्हें यदि चौथा जन्म मिले तो क्या करो? उत्तर मिला कि ब्रह्मचर्य व्रत पालन करूँ। कहते हैं कि मानवि असुर को जानते हैं। जो क्षत्री जान-बूझकर गाय छीन लेता है उसे बड़ा पातक लगता

है। लिखा है कि हे गाय ! तू ब्राह्मणों को दुख देनेवालों का सिर फोड़ दे। अग्नि को क्रव्याद कहा है। सविता ने अपनी पुत्री सूर्य्या को उसके पति को दान में दिया। स्त्री से कहते हैं कि तुम अपने घर जाओ और सबसे अच्छी तरह बातचीत करो, अपने लड़कों से प्रसन्न रहो और सब के ऊपर आज्ञा चलाओ, अपने पति से अलग न हो और हँस खेल कर रहो, पति के साथ पूरा प्रेम करो, अपने पति के बाप, भाई और माता को वश में रक्खो। सब वस्तुओं की मालकिन बनो। हे स्त्री तुम्हें मैंने अपने घर का मालिक बनाया है, सबके ऊपर दया करो और सबसे मृदुता का व्यवहार रक्खे। पति के बाप से स्नेह रक्खो और सास ससुर से मृदुता का बर्ताव करो, गाय बैलों से ख़ुश रहो, घर की सब चीजों को ढङ्ग से रक्खो, घर के सब जीवधारियों को प्रसन्न रक्खो, प्रातःकाल पति के साथ एक ही पलंग पर हँसी ख़ुशी से जागो; और पुत्र उत्पन्न करो। इन आज्ञाओं से प्रकट है कि उस काल स्त्रियों का पद बहुत ऊँचा था। उनके अधिकार और भार भी बहुत गम्भीर थे।

व्रात्य लोग अनार्य्य थे। वे व्रात्य स्तोम के द्वारा हिन्दू बनाए गए। १०० पतवारों के जहाज़ों का वर्णन है। एक स्थान पर हज़ार वर्ष जीने की इच्छा प्रकट की गई है (काण्ड १७ सूक्त १)। यम यमी की बातचीत इस वेद में भी है। प्रार्थना की गयी है कि हे दर्भ! तू मुझको ब्राह्मण, आजन्म शूद्र, और आर्य्य सब का प्यारा बना। मत्स्यदेशियों का कथन आया है। मत्स्य देश पूर्वीय राजपूताना को कहते हैं। इक्ष्वाकु और व्यास नामक दो राजा थे। समय को सात लगाम वाला घोड़ा कहा है। कदाचित् इसी से सूर्य्य के रथ में ७ घोड़े माने गये। सफ़ेद किरण ७ रङ्गों से बनती हैं। इसी से ७ लगामों और ७ घोड़ों के विचार उठे हुए जान पड़ते हैं। समझ पड़ता है कि उस काल के आर्य्य तत्वसम्बन्धी यह ज्ञान रखते थे। कहा गया है कि हम १०० वर्ष जीएँ, बरन् इससे कुछ अधिक हमारा जीवन हो (काण्ड १९ सूक्त ६७)। करञ्ज और परञ्ज के नाम आये हैं। इन्द्र ने २० राजाओं को हराया। रोहिण राक्षस मारा गया। इन्द्र ने सुश्रव और तूर्व्वयान को बचाया, तथा दधीच की हड्डी से

हथियार बना कर सरयानीवान झील के निकट ९९ एवं ७ दनुओं को मारा। उशाना इन्द्र के मित्र थे। कम, कशाम और श्यावक के नाम आये हैं। रुशमों के राजा कौरम और ऋणञ्जय थे। इन दोनों की प्रशंसा हुई है जिससे जान पड़ता है कि ये दोनों आर्य थे। राजा परीक्षित का नाम आया है और लिखा है कि कौरव्य लोग इनकी प्रशंसा करते हैं। रज नामक एक राक्षस था। उच्चैश्रवा इन्द्र का घोड़ा था। प्रतीप प्रातसुत्यन का नाम आया है। लिखा है कि दधिक्रयन घोड़ा विजयकर्ता है। कृष्ण दस हजार साथियों के साथ अंशुमती के किनारे रहता था। वहाँ बृहस्पति, इन्द्र और मरुत् ने उसे मारा। कृष्ण, नमुचि और शम्बर भारी राक्षस थे। इनका सामना कोई नहीं कर सकता था। तब इन्द्र ने इन्हें मारा। राजा पृथु के साथ उनके पिता वेन का नाम प्रायः आता है यहाँ तक कि ये वैन्य पृथु लिखे जाते हैं। आदि पुरुष का वर्णन आया है। सूर्य, इन्द्र, अग्नि आदि में भी ईश्वर का भाव कहा गया है। कुत्स अर्जुन के पौत्र थे। दैत्य, दानव आदि शब्द कई बार आये हैं तथा अगस्त्य का नाम भी कई बार है। वीतहव्य लोगों का कथन है। सोभरि ऋषि का नाम आया है। इनका वर्णन विष्णु पुराण में बहुत है। अथर्ववेद में रोग-शान्ति, मृत्यु से बचना, सर्पविष निवारण आदि के विषय में बहुत से मन्त्र हैं। यह वेद कहता है कि मगध और अंग आर्य्य सभ्यता के किनारों पर थे (Rapson)। अंग वर्तमान मुंगेर और भागलपूर जिलों पर था।

आठवाँ अध्याय

चारों वेद (प्रायः २००० से ७०० बी० सी० तक)।

छठवें अध्याय में हम वेदों का कुछ विस्तृत वर्णन कर आये हैं और सातवें में उनका सूक्ष्म ऐतिहासिक ज्ञान कहा जा चुका है। अब चारों वेदों को मिलाकर जो मुख्य निष्कर्ष निकलते हैं उनका कथन होगा। योग्य समझ पड़ता है कि अपने विचार लिखने के पूर्व कुछ योरोपीय पंडितों के भी सिद्धान्तों का थोड़ा-सा विवरण कर दिया जावे। रैप्सन कृत कैम्ब्रिज इतिहास (सन् १९२२ वाले संस्करण) के प्रथम अध्याय में यह विषय कथित है। उसके अनुसार ब्राह्मी भाषा द्वारा द्राविड़ बलूचिस्तान से सम्बद्ध हैं। ब्राह्मण पुस्तकों के मनन करने वालों का विचार है कि यजुर्वेद में जाति बहुत कर के वर्तमान थी। यह कथन कुरु पांचाल से सम्बद्ध है। बौद्ध पुस्तकों के पंडित कहते हैं कि बुद्ध के समय तक पीछे वाले दृढ़ जाति भेद का पता नहीं है। यह कथन कोशल और विदेह से सम्बद्ध है। ब्राह्मण और बौद्ध धर्मों का मुख्य अन्तर सामाजिक और धार्मिक विचारों के सम्बन्ध में है। उत्तरी भारत में पाषाण और लौह युगों के बीच में ताम्र युग था, किन्तु दक्षिणी भारत में ऐसा न था।

पन्द्रहवीं शताब्दी बी० सी० में आर्य्य जातियों वाले लोगों का प्रभाव उत्तरी लघु एशिया से उत्तर पश्चिमी बैबिलोनिया तथा मीडिया तक भारी देश में था। डाक्टर पी० कीथ के अनुसार ऋग्वेद दूसरे से सातवें मण्डलों तक से प्रारम्भ हुआ, अनन्तर प्रथम मण्डल का द्वितीय भाग बना, फिर उसका प्रथम भाग और आठवाँ मण्डल बना। तब प्रथम आठों मण्डलों से सोम पवमान सम्बन्धी ऋचायें निकाल कर नवाँ मण्डल बनाया गया और तब दसवें मण्डल का गान हुआ। बालखिल्य मुख्य संहिता का अंश नहीं है। दान-स्तुति भी पीछे जुड़ी। आर्य्यों ने समय पर अफ़ग़ानिस्तान पर अधिकार जमाया। वे कुभा

(काबुल नदी), सुवस्तु (स्वात), क्रमु (कुरेंम), गोमती (गुमल) और परुष्णी (रावी) के किनारे बसे। ऋग्वेद में विन्ध्य, नर्मदा, चीता और चावल के कथन नहीं हैं यद्यपि सिंह तथा मृगहस्तिन (हाथी) के हैं। पीछे के समय साम का प्रचार कम हो गया। सुदास तृत्सु भारत थे। उनके युद्ध में कम ज्ञात पाँच वंश थे: अलिन (उत्तर पूर्वी काफिरिस्तान), पक्थ (अफ़ग़ान पख़्तून से मिलता है), भलान (शायद बोलन घाटी से सम्बद्ध हो), शिव और विशाति (इन सब के कथन महाभारतीय युद्ध में हैं)। इनसे इतर पाँच वंशों में निम्न हैं:—अनु (परुष्णी पर), द्रुह्यु, तुर्वश, यदु और पुरु। युद्ध में जीत कर पूरब की ओर पलट कर सुदास भेद का सामना करता है। भेद के साथ अज, शिग्रु और यक्ष लोग भी थे। ये सब यमुना के निकट विकराल युद्ध के साथ पराजित हुये। दिवोदास अतिथिग्व के भी युद्ध तौर्वश, यादव और पौरव लोगों से हुये थे। वे शम्बर से भी लड़ते रहे थे अथच पणि, पारावत और बृसयों से भी। भरद्वाज इनके पुरोहित थे। कुरु और क्रिवि मिले हुये लोग थे तथा भारत और सृंजय मिले थे।

ऋग्वेद में लिङ्ग पूजा की दो बार निन्दा है। दास अनार्य कहे गये हैं। शूद्र शब्द का पहला कथन पुरुष सूक्त में है। दासों के पास ढोरों के समूह और पुर (क़िले) थे। बलबूथ की उदारता की प्रशंसा है। सुदास के युद्ध में आर्यों की कुछ दासों ने भी सहायता दी अथच दासों की कुछ आर्यों ने। पनि का नाम है। ईरान (फ़ारस) से कोई सम्बन्ध सिद्ध नहीं है। कुटुम्ब पैत्रिक था मात्रिक नहीं। स्त्री चरित्र ऊँचा था। उसके बहु विवाह अज्ञात थे। भाई, बहन तथा पिता पुत्री के विवाह अनुचित थे। पिता के पीछे पुत्री भाई की संरक्षता में जाती थी। तलाक़ न थी। कभी कभी विधवा आपस में देवर विवाह करता था। पिता सदैव कृपालु लिखा है। उसके अधिकार अनिश्चित किन्तु भारी थे। ऋज्राश्व को पिता ने नेत्रहीन कर दिया। पिता सम्पत्ति का स्वामी था। ढोर डंगर, घोड़े, सोना, अलङ्कार, वस्त्र, दास आदि उसी की सम्पत्ति थे। कभी कभी तीन पुश्तें तक एक में रहती थीं। जुदा हुये भाई भी निकट रहते थे। इसीसे ग्राम

की उत्पत्ति है। इससे बढ़कर विश है तथा उससे भी बढ़कर जन। ग्रामणि ग्राम का अफ़सर था। सब समूह आर्य्य थे और एक दूसरे से सौहार्द्र रखते थे। वेद में पुरुष सूक्त से इतर जाति भेद नहीं है। यद्यपि ऋग्वेद में जाति-भेद बनता हुआ ही देख पड़ता है, तथापि उसका पूर्व रूप प्रस्तुत है।

समूहों का अधिपति राजा था। राजपद साधारणतया वंश परम्परागत था, किन्तु कभी कभी निर्वाचन भी होता था। प्रजा की रक्षा करना उसका कर्तव्य था। ग्रामणि, व्रजपति और पुरोहित एक दूसरे से बड़े थे। समय पर पुरोहित से ही ब्राह्मण राजनीतिज्ञ का पद निकला। इस काल तक भूमिदान अज्ञात था, यद्यपि उसका होना सम्भव है। राजा के यहाँ समिति और सभा थीं। समिति शायद असेम्बली को कहते हों। सभा उसके एवं सामाजिक समूहों के जुड़ने के स्थान को कहते थे। समिति में राजा भी जाता था। चोरी, सेंध का लगना और मार्ग की लूटों के कथन हैं। ऋग्वेद में चोर को प्राणदण्ड नहीं लिखा है। चोर से चोरी की हुई वस्तु मँगा ली जाती थी। कुछ व्यभिचार के होते हुए भी आचार ऊँचा था। वृद्धों या कन्याओं का वध नहीं होता था।

व्यापार में अदला-बदली थी और गाय का व्यवहार सिक्के की भाँति भी होता था। कोई और सिक्का न था। निश्क शायद अलंकार हो। पीछे सोने का सिक्का चला। दायज तथा शुल्क के कथन हैं। ठहराव केवल धन ऋण के रूप में था। जुवे का प्रचार था। मध्यमशी सरपंच या राजा था। रथी सारथी के बायें रहता था। पदाती भी थे। धनुष, बरछे, भाले और तलवार के कथन हैं। कवच और शिरस्त्राण भी हैं। घोड़ा दधिक्रवण था। निशित बाण कभी कभी चलते थे। आर्य्यों में नागरिक जीवन का अभाव था। ग्राम में कई घर होते थे। पुर मिट्टी का धुस था। गृहाग्नि प्रज्वलित रहती थी। घुड़दौड़ होती थी। भेड़ी, बकरे, गधे, कुत्ते और बिल्ली तब तक पाली न गई थीं। खेती और सिंचाई का प्रचार था। यव बोये जाते थे। धनुष बाण, फन्दों आदि से शिकार खेलते थे। कारीगरी में बढ़ई, लोहार आदि के काम अलग हो रहे थे। लोहार आयस से बर्तन

बनाता था। नावें पतवार से भी चलाई जाती थीं। लंगड़, डाँड़, पाद-वान और मस्तूल के नाम नहीं हैं।

पोशाक में दो या तीन कपड़े पहनते थे। भेड़ के ऊन और खालों का भी चलन था। घी का बहुत व्यवहार था। गो-मांस खाते थे। गाय अध्न्य कहलाती थी। सोम का चलन था। नशे की आधिक्य के कारण सुरा कम पीते थे। रथदौड़, नाच, बाजा, नगाड़ा, सारंगी और बाँसुरी के चलन थे।

कीथ का मत—सामवेद ऋक पर बहुत कुछ आश्रित एवं ऐतिहासिक दृष्टि से सारहीन है। यजुर्वेद का गद्य प्राचीनतम वैदिक गद्य है। शायद पंचविंश ब्राह्मण का गद्य इससे भी प्राचीन हो। यह सामवेद का ब्राह्मण है। ऋग्वेद के ब्राह्मण पीछे के हैं। गोपथ ब्राह्मण कौशिक और वैतान सूत्रों से पीछे का है। अब आगे से इतर विचारानुसार कथन होते हैं।

वेद हम लोगों के सबसे पवित्र ग्रन्थ हैं। इनकी प्राचीनता और यथार्थभाषिता के कारण इनमें कथित ऐतिहासिक घटनाएँ प्रामाणिक मानी गई हैं। इसीलिए भारत के साधारण इतिहास में भी इनका इतना भारी वर्णन करना उचित समझा गया। इनके धार्मिक ग्रन्थ होने पर भी ऐतिहासिक मूल्य बहुत है। वेदों में बहुत से देवताओं का वर्णन होते हुए भी इनमें ईश्वर का विचार मुख्य रक्खा गया है। सूर्य, मेघों का राजा इन्द्र और अग्नि की प्रधानता होते हुए भी यह प्रकट है कि आर्यों ने इनकी पूजा नहीं की, वरन् इन सबके अन्तर्गत जो एक शक्ति है उसीको प्रधान माना। बहुतों का विचार है कि वेदों ने अग्नि, सूर्य, इन्द्रादि को एक ईश्वर के अधीन उपदेवता माना है, किन्तु वास्तव में ऐसा नहीं है और वेद भगवान् इन सबको एक ईश्वर की शक्तिमात्र मानते हैं। पुरुषसूक्त में इस विचार का पुष्टीकरण मिलता है और यत्र तत्र भी इसको पुष्ट करनेवाली ऋचाएँ बहुतायत से प्रस्तुत हैं। वैदिक ऋषि लोग बहुतायत से उस देश में रहते थे जो सप्त-सिन्धु कहलाता था। इन्होंने समुद्र पर जलयान चलाये। ये छोटे छोटे गाँवों में रहते थे जिनमें एक मुखिया भी होता था। उनकी सभ्यता बहुत बढ़ी चढ़ी थी। सड़कों के किनारे इन्होंने विश्रामगृह बनवाये,

जिनमें भोज्य पदार्थ प्रस्तुत रक्खे जाते थे। सोने का भी सिक्का चलता था जिसे निष्क कहते थे। इनमें सुरापान और जुए की भी कुछ कुछ लत थी। विनष्ट जुआरी की स्त्री अन्य पुरुषों का लक्ष्य हो जाती थी। पीछे से सुरा के विषय में लिखा है कि उसे न पीना चाहिए, न लेना चाहिए और न देना चाहिए।

संसार भर का साहित्य जोड़ने से भी आर्य जाति का सबसे पुराना गद्य यजुर्वेद ही में मिलता है। उसके पीछे का गद्य ब्राह्मण ग्रन्थों में पाया जायगा। सबसे पहला पद्य ऋग्वेद में मिलेगा। ऋग्वेद की सब से पुरानी प्रति शाकल शाखा की मिलती है जिसमें कुल मिलाकर १०२८ सूक्त हैं। मैकडानल महाशय का मत है कि ऋग्वेद के दसों मण्डलों में से दूसरे से सातवें तक पहले बने और शेष चारों मण्डल धीरे धीरे बढ़े। कहते हैं कि जब आठ मण्डल पूरे बन चुके थे तब नवाँ मण्डल बना। फिर भी अब तक वैज्ञानिक खोज ने इन मण्डलों का पूर्वापर क्रम दृढ़ नहीं कर पाया है। पाश्चात्य पण्डितों का मत है कि जब पहले नौ मण्डल पूरे हो चुके थे, तब दसवें मण्डल के सूक्त बने। इस मण्डल में प्रथम नौ मण्डलों के उषा आदि देवता छूट गये हैं और इन्द्र, अग्नि आदि बड़े बड़े देवता मात्र रह गये हैं। उधर विश्वेदेवस् का प्रभाव बढ़ा हुआ है, जिनमें संसार के सारे देवताओं का विचार आ जाता है। क्रोध, भक्ति आदि विचारों का देवताओं के स्वरूप में इसी मण्डल में व्यक्तीकरण भी हुआ है। संसार, विवाह, अन्त्येष्टि, यन्त्र, मन्त्र, दार्शनिक विचारों आदि के विषय में सूक्त होने से भी यह मण्डल नया समझा गया है।

दूसरे से सातवें मण्डल पर्य्यन्त ऋषियों में एक एक घरानों का प्राधान्य अवश्य है, और इनमें से प्रत्येक मण्डल का थोड़े ही थोड़े समय में बनना निश्चित है, किन्तु पूरे दसवें मण्डल का इनके पीछे बनना समझ में नहीं आता। दसवें मण्डल में बहुत से बड़े पुराने पुराने ऋषि हैं जैसे चाक्षुषमनु, वैवस्वत मनु आदि। तीसरे और सातवें मण्डल में राजा सुदास का वर्णन आया है जो पुरु के वंशधरों में ४० वीं पीढ़ी पर थे। चाक्षुषमनु वैवस्वत मनु से भी पहले के हैं। सुदास का तीसरे और सातवें मण्डलों के अनुसार ययाति के

वंशधरों से युद्ध हुआ था। इधर दसवें मण्डल में स्वयं ययाति की रचनाएँ प्रस्तुत हैं। अतः पौराणिक साक्षी पर न विचार करने से भी वेदों ही के आधार पर सिद्ध होता है कि दसवें मण्डल की कम से कम कुछ ऋचाएँ तीसरे और सातवें मण्डलों से भी पुरानी हैं। पहले आठवें नवें और दसवें मण्डलों की वर्तमान स्थिति भगवान् वेद-व्यास के सम्पादकत्व से हुई। अतः इनमें बहुतेरी नयी और पुरानी ऋचाएँ सभी कहीं मिली हुई हैं। अतः केवल थोड़ी ऋचाओं के सहारे इन पूरे चारों मण्डलों का समय निर्धारित करना भूल है। सम्भव है कि भगवान वेदव्यास ने व्यक्तीकरण, दर्शनशास्त्र, रस्म-रिवाजों आदि से सम्बन्ध रखनेवाली ऋचाओं को एक ही मण्डल में रखना उचित समझा हो, जैसा कि सम्पादकों के लिए ठीक भी है। इसलिए पाश्चात्य पण्डितों के उपर्युक्त विचार हमें ग्राह्य नहीं समझ पड़ते। इन चार मण्डलों का पूर्वापर क्रम स्थिर करना ठीक नहीं है, क्योंकि इनमें सम्पादक का भी हाथ बहुतायत से लगा हुआ है। इनकी ऋचाएँ नयी और पुरानी सब प्रकार की हैं। राजा सुदास के समय में आर्यों का समाज भारत में बहुत बढ़ चुका था। इस काल में आर्यों का केवल अनार्यों से युद्ध नहीं होता था, वरन् आर्यों के आपस में भी घोर समर होने लगे थे।

इन छहों मंडलों के ऋषियों में से बहुतों ने संख्या में बहुत से सूक्त बनाए, किन्तु शेष चारों मंडलों के ऋषियों की रचनाएँ थोड़ी ही थोड़ी हैं। उन ऋषियों में कई बहुत पुराने और कुछ नये भी हैं। इन बातों से जान पड़ता है कि जब वे मंडल बने, तब हमारे ऋषि-गण सूक्त-रचना में बहुत सिद्धहस्त नहीं हुए थे। पीछे से दूसरे से सातवें मंडल तक के रचनाकाल में एक एक ऋषि ने बहुत से सूक्त बना डाले, जिनमें विशेष रचना-पटुता पायी जाती है। इन कारणों से ऐसा समझ पड़ता है कि ३१वीं तथा २०वीं शताब्दी बी० सी० से ही सूत्रपात होकर स्फुट सूक्तों का निर्माण होता रहा। समय पर सम्पादक ने इन नए और पुराने सूक्तों को पहले, आठवें, नवें और दसवें मंडलों में विभाजित कर दिया। शेष मण्डल मुख्य मुख्य वेदर्षि घरानों के हैं।

रामचन्द्र काल के इधर उधर सूक्त मात्रा में बहुत बने। दसवें मण्डल का बृहदंश नवीन है।

अब यह प्रश्न उठता है कि संहिता को उसका वर्तमान रूप कब मिला, अर्थात् चारों वेदों का सम्पादन कब हुआ ? वेदों के व्याकरण और उनके विषय में उच्चारण सम्बन्धी नियमों पर विचार करके पाश्चात्य पण्डितों ने स्थिर किया है कि ब्राह्मण ग्रन्थों के निर्माणोपरान्त संहिता को वर्तमान रूप मिला। यही बात हमारे शास्त्रों के अनुसार भी समझ पड़ती है। वेदों के सम्पादक भगवान् वेदव्यास युधिष्ठिर के पितामह थे। वेदों का पहला सम्पादन अथर्वण ऋषि ने किया। अन्तिम सम्पादन व्यास ने जनमेजय के समय किया। विष्णु पुराण में २८ व्यास लिखे हैं जिनमें स्वयं पराशर और द्रोण पुत्र अश्वत्थामा के भी नाम हैं। सम्पादन चला व्यास का ही। पदपाठ, क्रमपाठ, जटापाठ और घनपाठ के द्वारा जैसे हमारे ऋषियों ने वेदों का शुद्ध रूप स्थिर रक्खा, उसका वर्णन पिछले एक अध्याय में हो चुका है।

अब हम इस प्रश्न पर विचार करेंगे कि संहिता का शुद्ध अर्थ किस प्रकार लगाया गया है। हमारे यहाँ सुधारकों ने अपने नव-विचारों को नये न कहकर प्राचीन ग्रन्थों के नवीन अर्थों से पुष्ट करने का बहुधा प्रयत्न किया। इसी लिए संहिता का शुद्ध अर्थ लगाना बहुत स्थानों पर कठिन कार्य्य हो गया है। यास्क एक बहुत बड़े प्राचीन वेदार्थकार हैं। इन्होंने निरुक्त शास्त्र की रचना करके संसार में विशुद्धार्थ-प्रचार का प्रयत्न किया। आपका समय मैकडानल महाशय के अनुसार चौथी शताब्दी बी० सी० है। यास्क ने अपने पूर्व के १७ वैदिक टीकाकारों के नाम लिखे हैं। उस काल भी वैदिक टीकाकारों में इतना गड़बड़ था कि कौत्स ने, जो इन १७ टीकाकारों में से एक थे, लिखा कि वैदिक अर्थ सम्बन्धी विज्ञान वृथा है क्योंकि वैदिक सूक्त एवं ऋचाएँ अर्थहीन, गूढ़ और एक दूसरे के प्रतिकूल हैं। पाश्चात्य विद्वान् भी तैत्तिरीय को परम प्राचीन उपनिषदों में मानते हैं। उसमें प्रत्येक वैदिक ऋचा के पाँच पाँच प्रकार के अर्थों का होना कहा गया है। यास्क ने कहीं कहीं ऋचाओं के एकाधिक अर्थ लिखे हैं। यद्यपि रावण, उव्वट, महीधर आदि अनेक वैदिक टीकाकार हैं, तथापि

पाश्चात्य पंडितों ने यास्क और सायण की ही प्रधानता रक्खी है। सायण चौदहवीं शताब्दी में हुए। यह महाराजा विजयनगर के दीवान थे। इन्होंने ऋग्वेद का बड़ा ही उत्कृष्ट अर्थ किया जिसमें किसी शब्द का अर्थ नहीं छूटा। कहा जाता है कि असंख्य गुणगण रखते हुए सायण में इतना दोष भी है कि उन्होंने प्रत्येक ऋचा के अर्थ लगाने में औरों पर ध्यान नहीं रक्खा। अतः उनकी पूरी टीका पढ़ने में कहीं कहीं प्रतिकूलता देख पड़ती है। पाश्चात्य पंडित राथ महाशय ने टीकाकारों का आँख बन्द करके प्रमाण नहीं माना। आपका विचार है कि वेदों को अपनी ज्योति से चमकना चाहिए, अर्थात् हमें टीकाकारों के पीछे न चल कर स्वयं वैदिक ऋषियों का शुद्ध भाव खोज निकालना उचित है। इसलिए उन्होंने वह टीका विधान चलाया जिसे ऐतिहासिक कहते हैं। तुलनात्मक शब्दार्थ शास्त्र एवं अवस्ता से आपने सहायता ली। अवस्ता पार्सियों का धर्मग्रन्थ है। इनके पूर्व पुरुष आर्य्यों के प्राचीन स्थान में हमारे पूर्व पुरुषों के साथ रहते थे। इसलिये अवस्ता के शब्द और अर्थ ऋग्वेद से बहुत कुछ मिलते हैं। सब भारतीय पंडितगण पाश्चात्य टीकाओं का प्रमाण नहीं मानते। फिर भी इनका सायणाचार्य्य से बहुत थोड़ा मतभेद है। इसलिये हमारे ऐतिहासिक प्रयोजनार्थ वेदार्थ जानने में विशेष गड़-बड़ नहीं समझ पड़ता।

वेदों का साहित्य भद्दा अथवा साधारण नहीं है, वरन् हमारे ऋषियों ने सूक्तनिर्माण में बहुत बड़ा चातुर्य्य दिखलाया है। उनके विचार बहुत स्थानों में सुन्दर और महत्त्वपूर्ण हैं, ऐसा पाश्चात्य पंडितों ने भी माना है।

✓ वैदिक देवता बहुत करके [illegible] हैं। हमारे यम और मित्र वाले भाव प[illegible] विचारों से मिलते हैं। वेदों में एक [illegible] दिक उसी की शक्ति प्रकट करते हैं जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है। वैदिक देवताओं में इन्द्र, अग्नि, सूर्य्य और वरुण की प्रधानता है। विष्णु और शिव साधारण वैदिक देवता हैं जिन्होंने पीछे भारी ख्याति पाई। ऋग्वेद में बहुत करके ३३ देवताओं का कथन है, किन्तु महर्षि

विश्वामित्र ने यह संख्या बढ़ा कर ३३३९ कही। पौराणिक समय में यही संख्या बढ़ कर कहीं कहीं तैंतीस करोड़ हो गयी है। प्रतिमाओं का वर्णन वेदों में नहीं पाया जाता और विशेषतया सूत्र काल से चलता है। प्राचीन काल में वरुण की महत्ता इन्द्र से बढ़ी हुई थी, किन्तु वैदिक समय में कुछ काल सम रह कर वह पीछे से बहुत गिर गयी। देवियों की महिमा वेदों में बहुत कम है। सरस्वती नदियों में सबसे पुनीत मानी गयी है। समय पर ब्राह्मण काल में सरस्वती वाग्देवी हो गयों। पीछे से पौराणिक समय में वह बुद्धि विद्या आदि की अधिष्ठात्री देवी हुई और ब्रह्मा की स्त्री मानी गयीं। सोम पहले एक प्रकार का रस मात्र था जो एक पहाड़ी पौधे से निकाला जाता था। चन्द्रमा के सुधाकर होने से धीरे-धीरे सोम सम्बन्धी विचार चन्द्रमा से मिल गए, यहां तक कि समय पर सोम चन्द्रमा का ही नाम हो गया। पार्सियों की अवस्ता में लिखित सोम-सम्बन्धी भाव वैदिक विचारों से बहुत अधिक मिलते हैं। पौराणिक समय में सप्तर्षि का कथन बहुत अधिकता से आता है, यहाँ तक कि नक्षत्रों में भी सप्तर्षि हैं। ऋग्वेद में भी सप्तर्षि सम्बन्धी थोड़ा सा कथन है। नागों का वर्णन वेदों में थोड़ा सा हुआ है और सूत्रों में उनकी महिमा कुछ बढ़ी है। पुराणों में इनका वर्णन अधिकता से है। इनके विषय में अपने विचार हम ऊपर लिख आए हैं। ऋग्वेद में सिंह, वृक, व्याघ्र, भल्लुक, हस्ती, अश्व, गौ, भेड़, अजा, श्वान, गर्दभ, महिषी, हंस, शुक, मयूर, काक, सर्प आदि के उल्लेख हैं।

आजकल पौराणिक आधार पर हिन्दुओं में यह विश्वास है कि युद्ध में मर कर वीरगण स्वर्ग प्राप्त करते हैं। यह विचार वेदों में भी पाया जाता है। गङ्गा यमुना के नाम ऋग्वेद में कुछ बार आये हैं। इनमें यह भी लिखा है कि यमुना के किनारे वैदिक आर्य्य रहते थे। ऋग्वेद में मछलियों का वर्णन एक ही बार, किन्तु यजुर्वेद में अधिकता से है। कहते हैं कि पंजाब की नदियों में मछलियाँ कम हैं, इसी से ऐसा है। पाश्चात्य पंडितों का मत है कि ऋग्वेदकार समुद्र नहीं जानते थे किन्तु यजुर्वेद के रचयिता उससे अभिज्ञ थे। हाप्किन्स महाशय का मत है कि वरुण, उषा आदि से सम्बन्ध रखनेवाले

प्राचीन सूक्त मात्र उस काल बने थे जब ऋषि लोग सिन्धु और सतलज नदियों के बीच बसते थे। इनके अनुसार शेष सूक्त उस काल के हैं जब आर्य्य लोग वर्तमान अम्बाला के दक्षिण सरस्वती के किनारे बस चुके थे। ऋग्वेद में अश्वत्थ वृक्ष की महिमा है, जिसे अब पीपल कहते हैं। बरगद का वर्णन अथर्ववेद में केवल दो बार आया है और ऋग्वेद में कहीं भी नहीं। ऋग्वेद में सिंह का वर्णन कई बार है, विशेषतया उसकी गरज का। ऋग्वेद में चीते का बिलकुल वर्णन नहीं किन्तु अन्य वेदों में कई बार है। चीता विशेषतया पूर्वी जानवर है और सिंह पश्चिमी, इसलिए सोचा जाता है कि आर्य्य लोग ऋग्वेद के काल से अथर्ववेद के समय पर्यन्त धीरे-धीरे पूर्व की ओर बढ़ते आए। हाथी का वर्णन ऋग्वेद में दो बार आया है। इनमें से एक वर्णन से यह भी जान पड़ता है कि आर्य्य लोग हाथी पकड़ते थे। जंगली हाथी हिमालय की तराई में पाये जाते हैं। इनकी बहुतायत बंगाल में है, किन्तु गोंडा और हरदोई के उत्तरी भागों तक इनका निवास है। कुछ हाथी जिला पीलीभीत तक के जंगलों में हैं। गऊ आर्य्यों की मुख्य सम्पत्ति थी। उसकी कुछ महिमा अवस्ता में भी पायी जाती है। ऊपर के अध्याय में हम दिखला आये हैं कि ऋग्वेद के समय से अथर्ववेद पर्यन्त आर्य्यों में गऊ की महिमा धीरे-धीरे किस प्रकार बढ़ती गयी। ऋग्वेद में यह कृपापात्र थी, किन्तु विवाहादि के समयों में उसका वध भी हो सकता था और बैलों का बहुतायत से होता था। यजुर्वेद के समय गोहिंसक को प्राण-दण्ड देने का विधान हो गया, किन्तु फिर भी कुछ यज्ञों में यह बलि दी जाती थी। अथर्ववेद में उसकी पूजा होने लगी। कविवर भवभूति के ग्रन्थ में भी गोभक्षण लिखा है। अब किसी हिन्दू के लिए गोभक्षक कहे जाने से बढ़ कर कोई गाली नहीं है। आर्य्यों का अनार्य्यों से मुख्य भेद वर्ण का था और जाति भेद का पहला रूप वर्णभेद ही हुआ। आर्य्यों की कई शाखाएँ वेदों में लिखी हैं। राजा ययाति के पाँचों पुत्र यदु, तुर्वश, अनु, द्रुह्यु और पुरु के नामों पर आर्य्यों की पाँच शाखाएँ वेदों में बीसों बार लिखी हैं। इनके अतिरिक्त गांधार, मूजवन्त, मत्स्य, सृञ्जय, भरत, भृगु, उशीनर, चेदि, क्रिवि इत्या-

नाम पांचाल, कुरु, सृंजय, कट, पारावत आदि शाखाएँ भी प्रधान हैं। तृत्सु रावी नदी के पूर्व रहते थे। भरत स्वायम्भुव मनु के वंशधर थे और पुरुवंश में भी दुष्यन्त पुत्र विख्यात भरत हो गए हैं। इन्हीं के वंशधर भारत कहे गये। द्वितीय भरत के वंशधर कौरव भी थे। उशीनर, सृंजय, मत्स्य और चेदि नाम पुराणों के समय में भी जैसे के तैसे बने रहे। यही चेदिवंश समय पर कलचुरि भी कहलाया। इसके कुछ और नाम भी हुए जिनका वर्णन वर्त्तमान इतिहास में होगा। पौराणिक समय में चेदिवंशियों का राज्य मध्य भारत में था। मत्स्य लोग पूर्वी राजपूताना में राज्य करते थे और इसी देश को मत्स्य देश कहा भी गया है। ऐतरेय ब्राह्मण के समय उशीनर लोग उत्तरीय भारत में रहते थे। सृंजय तृत्सु लोगों के मित्र थे। इससे जान पड़ता है कि वे भी रावी नदी के इधर उधर रहते थे, परन्तु यह बात निश्चित नहीं है। कट लोग सिकन्दर के समय में पञ्जाब में रहते थे और पीछे से कश्मीर भी गए। अब वे कश्मीर ही में हैं। पारावत लोग पञ्जाब में रहते थे। गान्धार और मूजवन्त उत्तर पश्चिम के निवासी थे। शतपथ ब्राह्मण में लिखा है कि पाञ्चालों का पुराना नाम क्रिवि था। मैकडा-नल महाशय ने अथर्ववेद के आधार पर लिखा है कि आङ्ग और मागध लोग आर्य थे। पुराणों के अनुसार पाञ्चाल राजा पुरुवंशी थे। पुराणों के अनुसार कौरव, कौशिक, पौरव आदि सब पुरुवंशी थे। वेदों में पौरवों और यादवों का ययातिवंशी होना बहुत बार लिखा है किन्तु कौरवों और कौशिकों की यादवों आदि से एकता नहीं प्रकट होती है। पुराणों के अनुसार ययाति के पांचों वंशधरों में पौरवों की प्रधानता थी। यही बात ऋग्वेद से भी सिद्ध होती है, क्योंकि अन्यों का विजेता सुदास स्वयं पौरव था। यादवों का वंश बहुत बड़ा था। इसकी दो प्रधान शाखाएँ थीं जिनमें से एक में हैहय वंश है और दूसरे में भगवान् श्रीकृष्ण का जन्म हुआ। ऋग्वेद में मनुवंशी प्रसिद्ध राजा इक्ष्वाकु का नाम लिखा है किन्तु वेदों में इनका वंश नहीं कहा गया है।

वैदिक समय में घर बहुधा लकड़ी के बनते थे। राजा का पद प्रायः पैतृक होता था किन्तु कभी कभी प्रजाओं द्वारा राजा निर्वाचित हुआ

है। वेदों से यह नहीं प्रकट होता कि प्रजा किन घरानों से राजा का निर्वाचन करती थी। राजा को कर अवश्य नहीं देना पड़ता था, वरन् प्रजा स्वेच्छा से सामर्थ्यानुसार कर देती थी। राजा की इच्छा पर सब कुछ न था, क्योंकि समितियों द्वारा निश्चित किये हुए प्रजाओं के मन्तव्य उस पर बाध्य थे। प्रत्येक जनसमुदाय में वेदज्ञ लोग भी होते थे। जो वेदज्ञ किसी राजा के लिए यज्ञादि करने पर नियुक्त होते वही पुरोहित थे। इन लोगों को दान में प्रचुर धन मिलता था। पहले प्रत्येक मनुष्य युद्धकर्त्ता था और शान्ति के साधारण काम भी चलाता था। समय के साथ धार्मिक क्रियाओं, जनसंख्या, युद्धविद्या, व्यापार आदि सभी की वृद्धि होती गई। इसी हेतु प्रत्येक कार्य के लिए पृथक् पृथक् समुदाय नियत हो गये। यही जातिभेद की पहली जड़ थी। आर्य अपने को आर्य तथा काले आदिम निवासियों को दस्यु कहते थे। ऋग्वेद में जातिभेद का कथन केवल पुरुष-सूक्त में है, किन्तु वहाँ यह नहीं कहा गया है कि यह भेद जन्मज था या कर्मज। यजुर्वेद में ऐसी ऋचाएँ मिलती हैं जिनमें प्रकट होता है कि उस काल इसके जन्मज होने की ओर झुकाव था। वहाँ ऐसे ऋषि की श्रेष्ठता कही गई है जिसके पूर्व पुरुष भी ऋषि हों। यजुर्वेद में जन्मज जातिभेद बढ़ते बढ़ते दृढ़ हो चुका था। अथर्ववेद में ब्राह्मणों की महिमा बहुत बढ़ गई। ब्राह्मण, क्षत्री और वैश्य नामक आर्यों की तीन जातियाँ हुईं और अनार्य लोग तथा कुछ आर्य्य शूद्र कहलाए जिनका काम सेवा करना था।

प्रत्येक कुटुम्ब का नेता पिता था। उसी की आज्ञा लेकर भावी जामाता उसकी पुत्री से विवाह करता था। पुत्री का विवाह पिता के घर पर होता था। ऋग्वेद में बहुत सी ऐसी कन्याओं का भी कथन है जिन्होंने कभी विवाह नहीं किया और जो पिता के घर में बूढ़ी हो गईं। स्त्रियों की महिमा ऋग्वेद के समय में बहुत थी। ऋग्वेद के वर्णन में हम ऊपर दिखला चुके हैं कि स्त्रियों का कैसा मान था। जार-कर्म बहुत कम था। ऐसा करने वाले घोर दंड के भागी होते थे और जारज के सन्तान छिपाए जाते थे। चोरी प्रायः गउओं की होती थी। स्त्री खोजने के लिए नदगों का भी वर्णन है। यजुर्वेद के

समय में हाथीवानों का कथन आया है। इससे जान पड़ता है कि हाथियों का उस काल में अच्छा चलन हो चुका था। रथों की दौड़ होती थी। नृत्य और गान की स्त्री और पुरुष दोनों में प्रधानता थी। परदा इत्यादि की चाल स्त्रियों में उन दिनों न थी और पति के चुनने में उन्हें बहुत कुछ स्वच्छन्दता रहती थी।

वैदिक आर्य्यों का विवरण देखने से सब से बड़ा गुण जो उनमें दृष्टिगत होता है वह स्वच्छन्दता है। प्रत्येक ऋषि अपना ही निश्चय लिखता है और उसी निश्चय के अनुसार कार्य्य करता है। उसके लेखों से यह कहीं नहीं भासित होता है कि वह प्राचीन प्रथा, कुलाचार, देशाचार आदि के कारण स्वनिश्चय पर गमन न कर रहा हो। प्रत्येक ऋषि अपने ही विचारानुसार कार्य करने में स्वच्छन्द सा देख पड़ता है। ऋषिगण जङ्गलों में बैठ कर शिष्यों को विद्यादान मात्र नहीं करते थे, वरन् युद्धकर्त्ताओं के साथ रणस्थल में भी भाग लेते थे। जातिभेद के अभाव से प्रत्येक मनुष्य अपनी ही इच्छा के अनुसार ऋषि, युद्धकर्त्ता अथवा व्यापारी हो सकता था। ऋषियों की कन्याएँ युद्धकर्त्ताओं और व्यापारियों को भी व्याही जाती थीं। सम्पूर्ण आर्य्यसमाज में विवाह, भोजन, व्यापार आदि के विषय में पूर्ण स्वच्छन्दता थी। माँस-भक्षण यज्ञों के ही सम्बन्ध में होता था, सदैव नहीं। आचार-शास्त्र के लिए नियमों का बाहुल्य न था और प्रत्येक भद्र पुरुष उचित रीति से जीवन निर्वाह कर सकता था।

उस समय युद्ध नियम इस प्रकार थे कि पराजित देश को तत्काल अभय प्रदान किया जाता था, देश के धार्मिक-नियमों का मान होता था तथा विश्वास होने पर पूर्व राजवंश का पुरुष ही राजा बना दिया जाता था। धनुषबाण, तलवार, ढाल, शरीर त्राण, शिला प्रक्षेपक, अन्यस्त्र आदि से युद्ध होता था।

कचहरी का कर स्वीकृत ऋण के लिए ५ प्रतिशत एवं अस्वीकृत तथा अन्य ऋण पर १० प्रतिशत लिया जाता था। व्यभिचार महापाप माना जाता था। घूस लेने वाले मन्त्री की सब सम्पत्ति जब्त की जाती थी। आत्मघात करनेवाले के लिए दाह कर्म आदि वर्ज्य थे। भ्रातृहीना कन्या का प्रायःपुरुषों के समान नाम रक्खा जाता था।

घोड़ों से भी हल जोता जाता था। सती बहुत कम होती थीं। महाराज पृथु की रानी अरुचि सती हुई। ऋग्वेद के १० वें मंत्र में संकुसुक ऋषि एक स्त्री को सती होने से रोकते हैं। मृत पुरुष की भस्म, अथवा हड्डी या समस्त शरीर गाड़ दिया जाता था। बहुत लोग राजाओं से अधिक धनवान थे।

वेद भगवान् सैकड़ों विषयों के लिए प्राचीनतम इतिहास के भाण्डार हैं। हमें केवल सामाजिक तथा राजनैतिक इतिहास पर विशेषतया ध्यान देना है। इस लिए उपर्युक्त वैदिक विवरण में इन्हीं दो विषयों की प्रधानता रक्खी गई है। अब वेदों में लिखित राजनैतिक इतिहास को यथासाध्य संक्षिप्त प्रकारेण क्रमबद्ध कर हम इस अध्याय को समाप्त करेंगे। ऊपर कहा जा चुका है कि वेदों में ऐतिहासिक घटनाएँ अप्रासंगिक रीति से आई हैं। अतएव उनमें से अधिकांश का वेदों ही के सहारे पर क्रमबद्ध करना कठिन है। इसलिए हम यहाँ पर मुख्य-मुख्य घटनाओं को मोटे प्रकार से सक्रम कहेंगे। आर्यों और अनार्यों के सैकड़ों नाम वेद में आये हैं। अनार्यों में वृत्र, दनु, पिप्र, सुरन, शम्बर, वंगृद, पुलि, नमुचि, मृगय, अर्बुद प्रधान समझ पड़ते हैं। दनु के वंशधर दानव थे जिनका कई स्थानों पर वर्णन है। यह दनु वृत्रासुर की माता थी। वृत्र के ९९ क़िले इन्द्र ने तोड़े। ९९ और १०० पुरों का कई स्थानों पर वर्णन आया है। शम्बर और वंगृद के सौ-सौ क़िले ध्वस्त किए गए। शम्बर के क़िले पहाड़ों पे और दिवोदास के कारण इन्द्र ने उसे मारा। दिवोदास सुदास के पिता थे। सुरन का चलनेवाला क़िला ध्वस्त हुआ। चलने वाले क़िले से जहाज़ का प्रयोजन समझ पड़ता है। पिप्र के ५०००० सहायक मारे गये। पलि के ९९ पहाड़ी क़िले थे। ये सब जीते गये। सिवा शम्बर के और सब का पूर्वापर क्रम ज्ञात नहीं है। आर्यों में ऋषियों के अतिरिक्त मनु, नहुष, ययाति, इला, पुरूरवा, दिवोदास, मान्धाता, दधीचि, सुदास, त्रसदस्यु, ययाति के यदु आदि पाँचों पुत्र और पृथु की प्रधानता है। ययाति के यदु आदि पाँचों पुत्रों के वर्णन कई स्थानों पर आये हैं। दिवोदास और सुदास के सब से अच्छे क्रमबद्ध वर्णन हैं। इस विषय में वशिष्ठ का सातवाँ मंडल

बहुत उपयोगी है। इस के पीछे विश्वामित्र का तीसरा मंडल भी अच्छी घटनाओं से पूर्ण है। दिवोदास तृत्सु लोगों के स्वामी थे। वैदिक समय में कुछ पौरवों की संज्ञा तृत्सु थी, ऐसा समझ पड़ता है।

राजा दिवोदास बहुत बड़े विजयी थे। इन्होंने कुछ तुर्वश वंशियों, द्रुह्यु वंशियों और शम्बर को मारा तथा गंगु लोगों को भी पराजित किया। कुछ नहुषवंशी इनको कर देने लगे थे। इनके पुत्र सुदास ने इनके विजयों को और भी बढ़ाया। सुदास का युद्ध वैदिक युद्धों में सबसे बड़ा है। नहुषवंशी यदु, तुर्वश, अनु और द्रुह्यु के सन्तानों ने भारतों से मिलकर तथा बहुत से अनार्य्य राजाओं की सहायता लेकर सुदास को हराना चाहा। नहुष वंशियों की सहायतार्थ भार्गव लोग, परादास, पक्थ, भलान, अलिन, शिव, विशात, कवष, युध्यामधि, अज, सिगरु, और चक्षु आये तथा २१ जाति के वैकर्ण लोग भी पहुँचे। दस्यु राजा वर्चिन एक बहुत बड़ी सेना लेकर इनका नेता हुआ। कितने ही भिम्यु लोग भी नाहुषों की सहायतार्थ आए। पुरु-वंशी इस युद्ध में सम्मिलित न हुए। नाहुषों ने रावी नदी के दो टुकड़े करके एक नहर निकाल कर नदी को पार करना चाहा, किन्तु सुदास ने तत्काल धावा बोल दिया जिससे गड़बड़ में नाहुषों की बहुत सी सेना नदी में डूब मरी। कवष और बहुत से द्रुह्यु वंशी डूब गये। महा विकराल युद्ध हुआ, जिसमें सुदास ने अपने सारे शत्रुओं को पूर्ण पराजय दी। अनु और द्रुह्यु वंशियों के ६६ वीर पुरुष और ६००० सैनिक मारे गये तथा आनवों का सारा सामान लूट लिया गया, जो सुदास ने तृत्सुओं को दे दिया। सात क़िले भी सुदास के हाथ लगे और उन्होंने युध्यामधि को अपने हाथ से मारा। राजा वर्चिन के एक लाख सैनिक इस युद्ध में मारे गये। अज, सिगरु और चक्षु ने सुदास को कर दिया। इस प्रकार रावी नदी पर यह विकराल युद्ध समाप्त हुआ। इसके पीछे सुदास ने यमुना नदी के किनारे भेद को पराजित कर के उसका देश छीन लिया था। इस प्रकार भेद सुदास का प्रजा हो गया। आर्य्यों का नागों से वेद में कोई युद्ध नहीं लिखा गया है, केवल एक बार इतना लिखा हुआ है कि पेदु नामक एक वीर पुरुष के घोड़े ने बहुत से नागों को मारा। इससे जान पड़ता है कि आर्य्यों का नागों

से कोई छोटा युद्ध हुआ होगा। विश्वामित्र ने अपने मण्डल में भारतों का बहुत सा वर्णन किया है। इन लोगों की जातियों से एकता भी समझ पड़ती है। वेदों के आधार पर यह संक्षिप्त राजनैतिक इतिहास इसी स्थान पर समाप्त होता है। आगे के अध्यायों में पुराणों का भी सहारा ले कर वैदिक समय का क्रमबद्ध इतिहास लिखा जायगा।

कालों में विवाह का प्रचार न था। द्रविड़ों में स्त्रियों के सहारे कुटुम्ब की स्थिति थी। आर्यों में दो प्रकार की प्रथा देख पड़ती है। कुछ लोग मुख्य-मुख्य स्थानों पर बस गये। उन्हें विश और फिर वैश्य कहने लगे। कुछ अन्य लाग घूमा करते थे। वे एक एक ग्राम की टुकड़ियों में थे। एक ग्राम के स्त्री पुरुष आपस में पुत्रोत्पादन न करके भिन्न ग्राम वालों से ऐसा करते थे। जब उत्सवों के समय भिन्न ग्राम मिल कर नाचने आदि में प्रवृत्त होते थे तब ऐसा होता था। समय पर जब ये ग्राम एक एक स्थान पर बस गये, तब ये स्थान ही ग्राम कहलाने लगे। विश लोगों में विवाहादि की चाल थी ही, समय पर ग्रामों में भी यही प्रथा चली। आर्य कुटुम्ब पिता के सहारे पर चलता था।

नवां अध्याय

समय निरूपण

२६०० से ६०० बी० सी० तक

इस स्थान पर पौराणिक राजवंशों का समय निरूपण करके आगे बढ़ना होगा। योरोपियन विद्वानों का विचार है कि आर्य लोग भारत में दो धाराओं में आये। पहली धारा स्वायम्भुव मन्वन्तर से चाक्षुप मन्वन्तर तक मानी जा सकती है और दूसरी का प्रारम्भ वैवस्वत मन्वन्तर से समझा जा सकता है। स्वायम्भुव मनु का पहला वंश २७ पीढ़ियों तक चला। स्वारोचिप, उत्तम, तामस और रैवत मनु विष्णु पुराण के अनुसार स्वायम्भुव के पहले पुत्र प्रियव्रत के वंशज थे, तथा चाक्षुप मनु स्वायम्भुव के दूसरे पुत्र उत्तानपाद के वंशधर हमारे राजवंशों ही में लिखे हैं। अतएव पहले छवों मनु एक ही वंश के थे। पहले वंश में पीछे के चारों मनु मिला कर ३५ पीढ़ियाँ आती हैं और दूसरे में दस। इस प्रकार मन्वन्तरों का समय प्रायः ४५ पीढ़ियों का बैठता है (देखिए चौथा अध्याय)। पहले वंश में २७ पीढ़ियाँ तो हैं ही और यह भी लिखा है कि स्वायम्भुव और चाक्षुप के बीच वाले चारों मनु भी प्रियव्रत वंशी थे। इन चारों मन्वन्तरों में कम से कम आठ राजाओं का होना समझ पड़ता है। यह वंश वृक्ष बहुत पुराना होने से इसकी दो चार पीढ़ियों में जो उत्तराधिकार पुत्रों का लिखा है, वह भाइयों आदि का भी हो सकता है। प्रायः योरोपियन पंडित एक शताब्दी में ऐसे छ राजाओं का भोग काल मानते हैं। इस पते से प्रथम छवों मन्वन्तरों का समय प्रायः साढ़े सात सौ वर्षों का बैठेगा। वेद में कुछ ऋचायें स्वायम्भुव वंशी पृथुवैन्य कृत हैं और कुछ किसी वेन और ध्रुव कृत। सम्भव है कि वेन और ध्रुव नामक और कोई व्यक्ति हों, किन्तु पृथुवैन्य बहुधा स्वायम्भुव वंशी प्रसिद्ध

महाराज ही थे। चाक्षुष मनु भी वेदर्षि थे। चाक्षुष मन्वन्तर में घटनायें बहुत सी लिखी हैं, जिससे इस वंश के कई राजाओं का होना इस मन्वन्तर में समझा जाता है। वैवस्वत मनु भी वेदर्षि थे। इन बातों से प्रकट है कि यद्यपि ऋग्वेद निर्माण काल २००० से १८०० या १५०० बी० सी० से चला, किन्तु कुछ वैदिक ऋचायें चाक्षुष मन्वन्तर से ही बनने लगी थीं। प्रधान पार्जिटर तथा रायचौधरी ने पौराणिक समय पर विशाल श्रम कर के अच्छे अच्छे ग्रन्थ लिखे हैं, किन्तु इन छवों मन्वन्तरों को उन्होंने बिलकुल छोड़ दिया है, यद्यपि पुराणों में इनका बराबर कथन आता है और कुछ योरोपीय विद्वानों के अनुसार भी भारत में आर्यों का आगमन प्रायः २५०० बी० सी० से आरम्भ हुआ अथच वैदिक समय बहुत पीछे चला। प्रधान तथा राय चौधरी के विषय वैवस्वत मनु से भी बहुत पीछे से चलते हैं, सो उनका वैवस्वत मनु से पहलेवाले मन्वन्तरों का कथन न करना योग्य ही है। पार्जिटर महाशय ने शायद यह समय बहुत अनिश्चित माना हो, किन्तु प्रायः सभी पुराणों में इसका कथन बराबर मिलता है। वैदिक साहित्य में भी इसके कथन हैं। हम इन छवों मन्वन्तरों का निःकारण छोड़ देना उचित नहीं समझते। यही हमारा पहला युग है। पहले पाँचों मन्वन्तरों में ४५ पीढ़ी होने से उनका भोगकाल ७५० वर्षों के निकट आता है। पार्जिटर और प्रधान दोनों पंडितों ने राजवंशों पर अच्छा श्रम किया है। प्रधान का विषय रामचन्द्र से महाभारत पर्यन्त है। उन्होंने इस काल के राजवंशों को बहुत पक्का कर दिया है। महाभारत के ही पीछे परीक्षित का समय आरम्भ होता है। उसका इतिहास रायचौधरी महाशय ने बहुत दृढ़ किया है। अतएव रामचन्द्र से पहले का ही इतिहास संदिग्ध रह जाता है। महाभारत के पीछे भी प्रधान ने तीन मुख्य घरानों के राजवंश दृढ़ कर दिए हैं। मनु वैवस्वत से रामचन्द्र तक का वंशवृक्ष पुराणों, पार्जिटर तथा प्रधान के कथनों को मिला कर हमने ऊपर दे दिया है। इतना मानना ही चाहिए कि जो दृढ़ता प्रधान के राम से कृष्ण तक के समय के राजवंशों में है, वह अभी राम के पूर्व वालों में नहीं आई है। फिर भी यथासाध्य दृढ़ वंश दिए गए हैं।

इस काल के मुख्य घराने सूर्य और चन्द्रवंश हैं। दोनों चलते मनु वैवस्वत से ही हैं, पहला उनके पुत्र इक्ष्वाकु से और दूसरा कन्या इला से।

मनु-राम के समय इन वंशों में निम्न शाखायें थीं :—

मनु-राम (त्रेतायुग) का चक्र

नाम वंश	नाम शाखा	नाम राम के समकालीन का	मनु से कितनी पीढ़ी नीचे	विवरण
सूर्य	अयोध्या,	रामचन्द्र,	३१	सब पीढ़ियाँ मिलती हैं।
,,	मिथिला,	भानुमन्त जनक,	३१	१२ पीढ़ियों के नाम अज्ञात। ये जनक राम के साले थे। इनके पिता सीरध्वज और चचा कुशध्वज थे।
चन्द्र	(हस्तिनापुर) मुख्य पौरव,	कुरु या सार्वभौम,	३९	सब पीढ़ियाँ मिलती हैं।
पौरव	उत्तर पांचाल,	सुदास,	३१	,, ,,
,,	दक्षिण पांचाल,	रुचिराश्व,	३१	,, ,,
,,	मागध,	सुहोत्र,	४०	,, ,,
,,	काशी,	अलर्क,	४०	,, ,,
,,	कान्यकुब्ज,	विश्वामित्र के पौत्र का पौत्र,	३१	इस काल विश्वामित्र भी वर्तमान थे।
चन्द्र यादव	माथुर,	सत्वन्त,	४२	सब पीढ़ियां प्राप्त। ,, ,,

नाम वंश	नाम शाखा	नाम राम के समकालीन का	मनु से कितनी पीढ़ी नीचे	विवरण
यादव	हैहय,	वीतहव्य का पौत्र,	६६	१२ पीढ़ियों के नाम अज्ञात।
चन्द्र आनव	अंग,	चतुरंग,	४१	१४ पीढ़ियों के नाम अज्ञात। चतुरंग दशरथ के मित्र लोमपाद के पुत्र थे।
"	उत्तर पश्चिम,	केकय के दौहित्र भरत,	६६	२० पीढ़ियों के नाम अज्ञात, कैकेयी राम की सौतेली तथा भरत की सगी माँ थी।

उपरोक्त शाखाओं में राम के वंशवृक्ष से २६ नाम उन तीन घरानों के निकाल डाले गए हैं, जो थे तो सूर्यवंशी किन्तु राम के सीधे पूर्वपुरुष नहीं प्रकट होते, वरन् इसी वंश के होने से इस शाखा के पूर्व पुरुषों में गुप्तकालीन सम्पादकों के अज्ञानभाव से आ गए। ये शाखायें दक्षिण कोशल, हरिश्चन्द्र और सगर की हैं। यदि सम्पादकों के इन कथनों को अक्षरशः सत्य मानें तो अन्य की बढ़ी हुई अन्य समकालीनतायें ठीक नहीं बैठतीं। इन २६ नामों के जुड़े रहने से उतने ही काल में इन ऐल राजघरानों में प्रायः ३९, ७० पीढ़ियाँ आती हैं, तथा अयोध्या में ६६। फल यह निकलता है कि चाहे एक वंश को अशुद्ध मानें, चाहे इन वंशों को। फिर जहाँ अयोध्या की शाखा में २६ नाम बढ़ा दिए गए, वहाँ मिथिला में १२ छूट रहे हैं। यही दशा हैहयों, आनवों और उनकी पश्चिमी आनवों की है। माथुर यादवों में कुछ पीढ़ियाँ बढ़ी हुई समझ पड़ीं। उनके नं० २५ दशरथ के आगे कोरव

में रथवर और एकादशरथ जो इन्हीं के नाम माने गए हैं, वे कहीं-कहीं इनके वंशधरों के लिखे हैं। नाम एक से होने से एक ही के माने गए हैं। यही दशा नं० ३८ देवराट की है। उनके आगे देवक्षेत्र और देवन के भी नाम कहीं कहीं वंशधरों के लिखे हैं। यदि इन चार नामों को भी पीढ़ियों में जोड़ लें, तो अर्जुन, पौरव नं० ५३, के पिता पांडु का समकालीन कंस ५४ वीं से ५८ वीं पीढ़ी पर पहुँचेगा और यह मानना पड़ेगा कि यदु के बड़े पुत्र होने तथा इस वंश में छोटे भाइयों के राजा प्रायः न होने से उतने ही काल में इसकी पुश्तें छ बढ़ गईं। ऐसी कल्पना कुछ अयुक्त भी न होगी। फिर भी कोष्टकों वाले चार नाम हमें स्वतन्त्र नहीं समझ पड़े। दोनों दशाओं में अधिक मतभेद का प्रश्न नहीं है।

उपरोक्त १२ वंशों में से चार की पुश्तें पूरी नहीं मिलतीं, किन्तु शेष आठ दृढ़ बैठते हैं। उनमें सारी पुश्तें मिलती हैं, तथा उनके अनुसार पौराणिक कथनों की समकालीनतायें भी ठीक बैठ जाती हैं। जिनमें पुश्तें बढ़ाई गई हैं, उनमें बिना ऐसा किए पौराणिक अन्य कथनों के तारतम्य नहीं बैठते। प्रधान ने भी दक्षिण कोशलों को अलग माना है। सगर और हरिश्चन्द्र के वंश वंशावली में दिए हुए कारणों से अलग हो गए हैं। पार्जिटर महाशय ने ये २६ नाम अलग नहीं किए, जिससे उनको रामवाले को छोड़ कर सारे पौराणिक वंशों से प्रायः २४, २५ पुश्तों के छूट रहने की कल्पना करनी पड़ी है, जो प्रकट ही अनुचित है, क्योंकि वह सारे पौराणिक वंश वृत्तों को केवल एक के कारण अधूरा बतलाता है।

उपर्युक्त वंशावलियों को दृढ़ मानने से सारे पौराणिक कथनों का सामञ्जस्य बैठता है, जैसा कि इसी अध्याय में आगे दिखलाया जावेगा। वहाँ समकालीनताओं का विवरण कुछ विस्तार से होगा। यहाँ काल निरूपण के लिए हम आगे बढ़ते हैं। वैवस्वत मनु से रामचन्द्र तक यह दूसरा समय प्रायः ३९ पीढ़ियों का मिलता है। यदि मन्वन्तर काल को सत्ययुग कहें, तो इसे त्रेता कह सकते हैं। ये सतयुग और त्रेता नाम पौराणिक विचारों से असम्बद्ध हैं, अर्थात् जो जो घटनायें पुराणों में जिन जिन युगों में लिखी हैं, उनके

अनुसार ये हमारे युग नहीं चलते। हैं चार युगों के समान चार समय हमारे भी, जो उन्हीं नामों से पुकारे जा सकते हैं, किन्तु हमारे राज-काल उनके अनुसार चलते नहीं, सो पाठकों या समालोचकों के चित्त में भ्रम पड़ सकता है। अतएव युगों ही के नाम न लेकर हम पहले को सतयुग या मन्वन्तर काल, दूसरे को त्रेतायुग अर्थात् गनुराम काल, तीसरे को द्वापर युग और चौथे को आदिम कलिकाल कहेंगे। दूसरा समय २९ पीढ़ियों का होने से प्रायः ६५० वर्षों का माना जा सकता है, क्योंकि इसमें राजकाल है। अब हम तीसरा काल उठाते हैं, जिसका रूप भी एक चक्र द्वारा दिखलाया जावेगा।

द्वापर का चक्र

शाखाओं के नाम	किस से प्रारम्भ		किस तक		कितनी पीढ़ियाँ	विवरण
	नाम	नं०	नाम	नं०		
श्रीवस्ती का लव (सूर्य) वंश	लव	४०	बृहद्बल	५३	१४	ये दोनों राम के पुत्र हैं। वंश पूर्ण मिलते हैं।
अयोध्या का कुश ,,	कुश	४०	श्रुतायुस	५४	१५	
विदेह ,,	शत्रघुम्न	४०	बहुलाश्व	५३	१५	सब पुरतें मिलती हैं।
,, दूसरी शाखा	शत्रघुम्न	४०	उपगुप्त	५५	१६	उपगुप्त पर राज्य समाप्त। पूर्ण वंश प्राप्त है।
युधिष्ठिर पौरव	जयत्सेन	४०	अर्जुन	५३	१४	पूर्ण प्राप्त। वंश युधिष्ठिर का न चल कर अर्जुन का चला।
द्विमीढ़ विदर्भ ,,	द्युतिमन्त	४०	नृपंजय	५५	१६	पूर्ण प्राप्त। नृपजय के पुत्र बहुरथ पर समाप्त।
उत्तर पांचाल ,,	सोमक	३१	धृष्टकेतु	५२	१४	७ पुरतें अज्ञात, शेष ज्ञात।
दक्षिण पांचाल ,,	पृथुषेण	४०	जनमेजय का पौत्र	५३	१४+२	महाभारत युद्ध से दो पुरत पूर्व जनमेजय पर समाप्त।

शाखाओं के नाम	किस से प्रारम्भ		किस तक		कितनी पीढ़ियाँ	विवरण
	नाम	नं०	नाम	नं०		
मागध पौरव	[illegible]	४१	सोमाधि	२४	१४	पूर्ण प्राप्त ।
चेदि "	सुहोत्र	४०	शिशुपाल	२२	१३	३ पुश्तें अज्ञात हैं ।
काशी "	[illegible]	४१	भद्रसेन	२५	१५	इन्हीं पर वंश समाप्त है, पूर्ण प्राप्त ।
मथुरा यादव	भीम	४३	श्रीकृष्ण	२५	१३	नं० २५ कंस के भागिनेय थे । पूर्णवंश प्राप्त ।
[illegible]	पृथुलाक्ष	४२	कर्ण	२२	११	पूर्ण वंश प्राप्त, शायद दो तीन पुश्तें छूट रही हों ।
१३ वंश	१३	१३	१३	१३	१८५	१३ वंशों में से २ अधूरे मिलते हैं और शेष पूर्ण ।

इन तेरह वंशों में से इस काल कुल १८५ पीढ़ियाँ हुईं, अर्थात् प्रति वंश प्रायः १४ पुश्तों का पर्ता बैठता है। ये सब पुत्रों के अनुसार हैं। जहाँ कहीं भाई उत्तराधिकारी हुए हैं, वहां पीढ़ी जोड़ से निकाल दी गई है। होती तो हैं शताब्दी में ५ से कम पुश्तें, किन्तु ५ ही जोड़ने से इस युग का भाग काल २८० वर्ष आता है। कई वंश त्रेता वाले चक्र में हैं, किन्तु द्वापर वाले में नहीं। उनका राज्य बीच ही में समाप्त होकर उनके वंश वृत्त बन्द हो गए। अब आदिम कलिकाल पर विचार होता है।

आदिम कलिकाल का समय

इस विषय पर श्रीयुत पार्जिटर, डाक्टर प्रधान और डा० रायचौधरी ने विचार किये हैं, सो अपने को कुछ अधिक कहने की आवश्यकता न पड़ेगी।

श्रीयुत पार्जिटर का तर्क

चन्द्रगुप्त मौर्य ३२२ बी० सी० में गद्दी पर बैठे। उनसे पूर्व महापद्मनन्द और उसके पुत्रों ने ८० वर्ष राज्य किया। अतएव महापद्म ४०२ बी० सी० में गद्दी पर बैठा। उसने तत्कालीन सारे क्षत्रियों के राज्य नष्ट कर दिए; अपने समय का परशुराम ही कहा जाता है। यह कार्य यदि २० वर्षों में समाप्त मानें, तो इसका समय ३८२ बी० सी० में आता है। प्राचीन भूपालों में पुराणों के अनुसार पौरव (नं०, ५९) अधिसीम कृष्ण, ऐक्ष्वाकु (नं० ५८) दिवाकर, और बार्हद्रथ (नं० ६०) सेनजित समकालीन थे। अतएव महाभारतीय युद्ध के पीछे अधिसीम कृष्ण के समय तक ४ ऐक्ष्वाकु, ५ पौरव और ६ मागध नरेश पड़ते हैं। इस काल को १०० वर्षों का मान सकते हैं। इससे महापद्म द्वारा भूपाल विनाश पर्यन्त निम्न संख्या में राजे लिखे हैं:— २४ ऐक्ष्वाकु, २७ पाँचाल, २४ काशी, २८ हैहय, ३२ कलिंग, २५ अशमक, २६ कौरव-पौरव, २८ मैथिल, २३ सूरसेन, और २० वीतिहोत्र। इस प्रकार दस राज्यों में कुल २५७ राजे आते हैं, अर्थात् प्रति राज पर्ते से २६ भूपाल। प्रति राजा का समय १८ वर्ष मानने से हमें ३८२ बी० सी० से ४६८ वर्ष मिलते हैं, अर्थात्

महाभारत युद्ध का समय आता है ३८९+४६८+१०० = ९५७ बी० सी० । इसी काल मगध में १६ बार्हद्रथ राजे हुए, ५ प्रद्योत और १० शिशुनाग, जोड़ ३१ ।

इस तर्क में विचार योग्य भी कुछ बातें हैं । पुराणों में केवल मागध, पौरव, तथा ऐक्ष्वाकु वंश तो दिए हैं, किन्तु शेष सातों की पुश्त संख्या मात्र दी हुई है । इन तीनों के विषय में भी जो पीढ़ियों के विवरण पार्जिटर महाशय ने दिए हैं, वे प्रधान से कुछ भिन्न हैं, किन्तु यह अन्तर थोड़ा ही सा है । मुख्य मतभेद प्रति पीढ़ी के मान्य समय का है ।

डाक्टर राय चौधरी का कथन

आपने इस काल का निर्णय नहीं किया है, वरन इस विषय पर एक प्रमाण मात्र उद्धृत कर दिया है । पुराणों का कथन है कि परीक्षित का जन्म महापद्म नंद से १०५० वर्ष पूर्व हुआ । उधर कौशीतकि, सांख्यायन आरण्यक, अध्याय १५ वें में लिखा है कि सांख्यायन उद्दालक आरुणि से दो पीढ़ी नीचे थे, तथा शतपथ ब्राह्मण, XIII,५,४,१ में इन्द्रोत दैवापि या दैवापि शौनक जनमेजय के समकालीन थे । इनके शिष्य थे दृति ऐन्द्रोत जिनके शिष्य पुलश प्राचीन योग्य बने, जिनके चेले पौलुशि सत्ययज्ञ हुए । छान्दोग्य इन्हें बुडिल आश्वतराश्वि तथा उपर्युक्त उद्दालक आरुणि का समकालीन मानता है । अतएव (उद्दालक आरुणि के समकालीन) पौलुशि के (जनमेजय के समकालीन) शौनक प्रपितामह गुरु मात्र थे । सांख्यायन आरुणि से केवल दो पीढ़ी नीचे होने से ६ पीढ़ियाँ मिलीं । कौशीतकि सांख्यायन आरण्यक में गौतम बुद्ध के समकालीन पौष्कर सादि तथा लौहित्य के नाम हैं, जो सांख्यायन से दो ही तीन पीढ़ी नीचे थे । अतएव गौतम बुद्ध से जनमेजय तक आठ ही नौ पीढ़ियाँ बैठती हैं, जिनमें गुरु शिष्य की भी कई पुश्त शामिल हैं ।

(अपना विचार) इन गुरु शिष्यों वाली पीढ़ियों के समय बहुत कुछ भी हो सकते हैं, सो इस तर्कों से कोई निश्चित फल नहीं निकलता । ब्राह्मणों की पीढ़ियाँ लिखने में ध्यान लोग कुछ भी बहुत

जाते थे, अर्थात् पुश्तें छोड़ जाते थे। राम के समय वाले गौतम पुत्र शरद्वन्त और अहल्या के पुत्र शतानन्द के आत्मज सत्य धृति हरिवंश में लिखे हैं। उन्हीं के पुत्र शन्तनु के समकालीन कृपाचार्य आ जाते हैं, यद्यपि अहल्या से कृप तक १०,१२ पीढ़ियां होंगी।

डाक्टर सीतानाथ प्रधान आदि के विचार

प्रधानजी ने अपने कलकत्ता विश्वविद्यालय द्वारा मुद्रित और सत्कारित ग्रंथ में चन्द्रगुप्त मौर्य से बिम्बिसार तक का समय ३२५ बी० सी० से ५२७ बी० सी० तक माना है। इन दस राजाओं में प्रत्येक का समय उन्होंने दिया है, जो इस ग्रंथ में यथास्थान आवेगा। आपने मागध (नं० १४) सोमाधि से रिपुंजय,(नं० ७५ तक) २१ पीढ़ियों का भोगकाल प्रति पीढ़ी २८ वर्ष के हिसाब से ५८८ वर्ष माना है। रिपुजय ५६३ बी० सी० में गद्दी पर बैठे और ५१३ में मारे गए। अतएव सोमाधि का समय ५८८+५६३=११५१ बी० सी० आता है, जो महाभारत युद्ध का समय है। इसी प्रकार पौरव परीक्षित, (नं० ५५) से उदयन न० ७७ तक २२ पीढ़ियों का समय २२×२८=६१६ वर्ष हैं। उदयन ५०० बी० सी० में राजा हुए, तथा परीक्षित से ३६ वर्ष पूर्व महाभारतीय युद्ध हुआ, जिसका समय ५००+६१६+३६=११५२ बी० सी० आता है। इसी प्रकार ऐक्ष्वाकु उरुक्षय, (नं० ५५) से प्रसेनजित, (नं० ७६ तक) २२ पीढ़ियों का भोगकाल ६१६ वर्ष है, तथा ५३३ बी० सी० में प्रसेनजित गद्दी पर थे, सो उपर्युक्त महाभारतीय युद्ध का समय ५३३+६१६=११४९ बी० सी० आता है। प्रति पीढ़ी २८ साल जोड़ने के कारण आपने एक अध्याय भर में दिए हैं, जो गड़बड़ नहीं है, अतएव महाभारत काल आप बी० सी० १२ वी शताब्दी में मानते हैं और यह भी कहते हैं कि तिलक महाशय की ज्योतिषीय गणना भी इस निष्कर्ष से टक्कर खा जाती है। श्रीयुत काशी प्रसादजी जायसवाल पुरातत्व विभाग के भारी पंडित थे। आपने पुराणों के कथनानुसार महाभारतीय युद्ध का समय १४२४ बी० सी० माना है। यही समय लखनऊ विश्वविद्यालय के इतिहासज्ञ डाक्टर राधा कुमुद मुकुर्जी मानते हैं।

अपने को इस विषय में मत प्रकाशन की आवश्यकता नहीं। प्राचीन भारतीय इतिहास के समय विभाग पर पाश्चात्य पण्डितों का हमलोगों से बहुत मतभेद है, परन्तु यह गहन प्रश्न न तो अपने निर्णय के योग्य है, न अधीन। अतएव निर्णय करना भी निरर्थक है। अतः बिना मत प्रकाशन के ही हम यहाँ दिखलाये देते हैं कि यदि महा-भारतीय युद्ध १० वीं शताब्दी बी० सी० का हो, तो वही द्वापर का अन्त होगा। त्रेताकालारम्भ प्रायः २८० वर्ष पुराना होने से तेरहवीं शताब्दी बी० सी० में पड़ेगा, तथा त्रेताकालान्त उससे प्रायः ३९ पीढ़ी ऊपर होने से इससे साढ़े छः सौ वर्ष पुराना अर्थात् १९वीं या २०वीं शताब्दी बी० सी० का है और सत्ययुग या मन्वन्तर कालारम्भ प्रायः साढ़े सात सौ वर्ष और पुराना होने से २७ वीं शताब्दी बी० सी० तक पड़ेगा। यदि यह भारतीय युद्ध काल १२ वीं या १५वीं शताब्दी बी० सी० का मानें, तो ये तीनों समय भी आगे बढ़ जायेंगे। इन कथनों से न हटते हुये भी हम एक समय देने के विचार से अपने अध्यायों आदि में महाभारतीय युद्ध दसवीं शताब्दी बी० सी० का मान कर चलेंगे, जिसमें समय बढ़ाने की ओर अनुचित रुचि न मानी जाय।

अब सम सामयिक महानुभावों और घटनाओं पर विचार किया जाता है, जिससे अपनी वंशावलियों की दृढ़ता पर प्रकाश पड़े।

१—मनु वैवस्वत की पुत्री इला चन्द्रपुत्र बुध को ब्याही थी। इन्हीं इला और मनु से दोनों वंश चले हैं (महाभारत)।

२—ययाति नं० ६ के भाई यति सूर्यवंशी, (नं० ४) ककुत्स्थ की पुत्री गौ से ब्याहे थे।

ह० वं० ३०, १६०१, वायु० पु० ९३, १४

३—पौरव, (नं० २०,) मतिनार की पुत्री गौरी ऐक्ष्वाकु, (नं० २१) मान्धाता की मुख्य पुराणों के अनुसार माता (हरिवंश के अनुसार नानी) थी। ब्रह्माण्ड पु० ६३, ६६, ८, वायु पु० ८८, ६४, ७, ब्रह्म ७, ९०, २, ह० वं० १२, ७०९, ११ शि० पु० ६०, ७४।

४—यादव, (नं० २०) शशिबिन्दु की पुत्री बिन्दुमती चित्ररथी उपर्युक्त मान्धाता को ब्याही थी। वायु ८८, ७२, ब्रह्माण्ड ६३, ७०,

इनका द्रुह्यु वंशी अंगार (नं० २१) से युद्ध हुआ। ह० वं० ३२, १८३७, म० भा० १२६, १०४६५।

५—कान्यकुब्ज (नं० ३०) जह्नु ने मान्धातृ की पौत्री से विवाह किया। अतः जह्नु त्रसदस्यु सूर्य वंश (नं० २३) के समकालीन अर्थात् बहनोई थे। त्रसदस्यु मान्धातृ के पौत्र थे। सम्भवतः जह्नु अपनी वंशावली में चार पाँच नम्बर ऊँचे थे।

६—ऋचीक ऋषि ने गाधि पुत्री सत्यवती से विवाह किया, जिससे परशुराम के पिता जमदग्नि पुत्र हुए। गाधि पुत्र प्रसिद्ध विश्वामित्र जमदग्नि के समवयस्क और प्रगाढ़ मित्र थे। जमदग्नि का विवाह किसी सूर्यवंशी प्रसेनजित की कन्या रेणुका कामली से हुआ। इसी की बहिन का विवाह हैहयार्जुन (नं० ३५) से हुआ था, हरिवंश, (म० भा०)। प्रसेनजित राजा ऐक्ष्वाकु नं: १९ थे। वे इस सम्बन्ध के लिए बहुत प्राचीन थे। अतएव कोई अन्य प्रसेनजित सूर्य-वंशी की ये कन्यायें होंगी, अथवा इन्हीं का स्थान वंशावली में नीचा होगा। विश्वामित्र कान्यकुब्ज (नं० ३५) हैहयार्जुन, सुदास [उत्तर पांचाल (३९)], त्रिशंकु (सूर्यवंश ३६), हरिश्चन्द्र (सूर्यवंश ३७) मित्रसह कल्माषपाद (दक्षिण कौशल, ३९) और राम (सूर्यवंश ३९) समकालीन थे। वशिष्ठ भी इन्हीं सभों के समय में थे। जान पड़ता है कि ये दोनों ऋषि दीर्घजीवी थे। इन नामों के कई ऋषि मानने से काम नहीं चलता, क्योंकि हरिश्चन्द्र के यज्ञ में विश्वामित्र, जमदग्नि शुनःशेप और वशिष्ठ ये चारों ऐतरेय ब्राह्मण के अनुसार मौजूद थे। उधर वैदिक ऋचाओं में शुनःशेप की उपर्युक्त घटनाओं के अनेक विवरण हैं। वही शुनःशेप वैदिक विश्वामित्र के दत्तक पुत्र थे। इन्हीं वशिष्ठ और विश्वामित्र ने ऋग्वेद मण्डल सात और तीन में सुदास को अपना समकालीन होना कहा है। रामायण में भी ये दोनों हैं। वशिष्ठ के म्लेच्छ दल से हार कर ही विश्वामित्र हरिश्चन्द्र के पिता त्रिशंकु के मित्र और पुरोहित बने (म० भा०)। अतएव इन ऋषियों का दीर्घजीवी होना ही मानना पड़ेगा। प्रायः सवा सौ वर्षों के होंगे। आजकल भी एक व्यक्ति जारो आगा १६० वर्ष के थे, सो इन ऋषियों

की ऐसी अवस्थायें असम्भव नहीं हैं। इनके विशेष आधार कान्यकुब्ज के वंश विवरण में मिलेंगे।

७—भद्रश्रेण्य हैहय, (नं० ३०) ने काशीपति दिवोदास प्रथम (नं० ३४) को हराया। तालजंघ हैहय (नं० ३६) ने बाहु, सूर्यवंशी (नं० ३८) को हराया। काशी के प्रतर्दन (नं० ३८) ने वीतिहोत्र हैहय (नं० ३७) को हराया तथा बाहु पुत्र सगर ने वीतिहोत्र के वंशजों को नष्ट किया। सगर ने विदर्भ के किसी वैदर्भ राजा की कन्या केशिनी से विवाह किया। पहले धावे में हैहयों ने काशी का राज्य गिराया था। अनन्तर परशुराम द्वारा अर्जुन मारे गए। तब अर्जुन के पौत्र तालजंघ ने म्लेच्छों की सहायता से पौरव (नं० ३४ से ३७ तक किसी) का सूर्यवंशी बाहु का तथा विश्वामित्री (३६, ३७) कान्यकुब्ज राज्य नष्ट किए। समझ पड़ता है कि जैसे वशिष्ठ ने म्लेच्छों की सहायता से कान्यकुब्ज राज्य को हराया था, वैसे ही तालजंघ ने काम निकाला। अनन्तर प्रतर्दन और सगर द्वारा हैहय और म्लेच्छ दोनों नष्ट हुए, तथा पौरव राज्य भी स्थापित हो गया, किन्तु कान्यकुब्ज उस काल फिर न पनपा। महाभारत शान्ति पर्व में लिखा है कि सगर भी तालजंघ से हारे। अनन्तर बहुत काल बीतने पर सगर ने अश्वमेध किया। इससे जान पड़ता है कि वे दीर्घजीवी थे। उपर्युक्त कथनों के अधिक प्रमाण काशी, हैहयों और सगर के विवरणों में मिलेंगे।

८—उत्तरी विहार के तुर्वशवंशी (नं० २२) मरुत्त ने राज्यच्युत पौरव वंश के राजकुमार दुष्यन्त, पौरव (नं० २३) को गोद लिया (महाभारत)। मरुत्त भारी सम्राट थे, सो दुष्यन्त, पौरव राज्य भी प्राप्त करके, दोनों के शासक हुए। इसी लिए वे वंशकर कहलाये। अंगिरस के तीन पुत्र थे, अर्थात् उचथ्य (महाभारत के उतथ्य) बृहस्पति और संवर्त। मरुत्त ने सवर्त को ऋत्विज करके यज्ञ किया और उन्हें अपनी पुत्री भी ब्याह दी। उचथ्य के ममता से अन्धे दीर्घतमस हुए। उसी ममता में बृहस्पति द्वारा विदथिन भरद्वाज हुए। दीर्घतमस ने आनव बलि (नं० २४) की रानी में नियोग द्वारा अंग, बंग, कलिंग, सुम्ह और प नामक पाँच पुत्र पैदा किए (म० भा०)।

अनन्तर नेत्रवान होकर वे गोतम या गौतम कहलाये। वायु ९९, ९२, मत्स्य ४८, ८३, बृहद्देवता, IV १५। पीछे दीर्घतमस ने दुष्यंत पुत्र भरत (नं० २४) का ऐतरेय ब्राह्मण के अनुसार ऐन्द्र महाभिषेक किया। इन्हीं के कहने से भरत ने विदथिन भरद्वाज को गोद लिया होगा। ये विदथिन भरद्वाज वैदिक ऋषि भरद्वाज से भिन्न थे, क्योंकि वे विदथिन के वंशधरों का वर्णन अपनी कुछ ऋचाओं में करते हैं।

९—रामायण के अनुसार राम के पिता दशरथ (नं० ३८) मैथिल सीरध्वज (नं० ३८) और लोमपाद (नं० ४०) वैशाली के ऋष्य शृंग प्रमति (जो दशरथ के दामाद थे) उत्तर पश्चिमी आनव केकय (नं० ३७) उत्तर पांचल दिवोदास (नं० ३८) तथा वैदिक तिमिध्वज शम्बर के समकालीन थे। रामचन्द्र के समकालीन ऊपर चक्र में दिये हुए हैं। राम और दशरथ अयोध्या नरेश थे। इस राज्य को कालिदास ने उत्तर कोशल कहा है; यथा,

नमे ह्रिया शंसति किंचि दीप्सितं स्पृहावतो वस्तुषु केषु मागधी।
इतिस्मृ पृच्छत्यनुवेलमाद्रतः प्रियाः सखीरुत्तर कोशलेश्वरः॥ रघुवंशे॥

उधर महाभारत बनपर्व में दक्षिण कोशल में ऋतुपर्ण (नं० ३६) राजा नल (नं० ३५ उत्तर पांचाल भृम्यश्व के समधी तथा नं० ३४ यादव भीमरथ के दामाद) के मित्र थे। इनके प्रपौत्र मित्रसह-कल्मापपाद राम के समकालीन पड़ते हैं।

१०—दक्षिण पांचाल नरेश (नं० ४८) अणूह के पुत्र पितृवर्तिन, पौरव (नं० ४८) प्रतीप के मित्र थे। (म० भा०)

११—ह० वं० २०, १०८३, ११११, २, द्विमीढ़ वंशी वैदर्भ उग्रायुध (नं० ५२) ने उत्तर पांचाल नरेश (नं० ४९) प्रषत को राज्यच्युत किया, तथा दक्षिण पांचाल राजा (नं० ५३) जनमेजय को मारकर वह वंश समाप्त कर दिया। उग्रायुध को पौरव (नं० ५१) भीष्म ने युद्ध में मारा।

१२—काशीपति अलर्क (नं० ४०) को अगस्त्य ऋषि की स्त्री लोपामुद्रा ने आशीर्वाद दिया (वायु पु० ९२, ६७) तथा स्वयं अगस्त्य ने राम से भेंट की (रामायण)।

१३—यादव भजमान (नं० ४५) ने उत्तर पांचाल सृंजय (न०३७) की दो कन्याओं से विवाह किया आधार यादव वंशावली में कथित है। भजमान के पितामह सत्वत राम के समय में थे, तथा सृंजय के पौत्र सुदास भी राम ही के समकालीन थे। अतएव यहां दो पुरतों का बीच पड़ता है। सम्भवतः सृंजय की पुत्रियाँ वृद्धावस्था की हों और भजमान भीमसात्वत की प्रथमा युवावस्था के पुत्र हों।

१४—उत्तर पांचाल नरेश सुदास (नं० ३९) ने पौरव (नं० ३७) संवर्ण को राज्यच्युत किया। अनन्तर संवर्ण ने सुदास को हरा कर अपना राज्य फिर प्राप्त किया (आधार इन राज्यां के विवरण में हैं)।

१५—कैम्बे की खाड़ी के निकट इक्ष्वाकु के भाई शर्याति का आनर्त राज्य था। उनकी पुत्री सुकन्या के साथ च्यवन का विवाह हुआ (महाभारत)। अनन्तर आनर्तों के पतन पर च्यवन या उनके वंशधर भार्गव ऋषि हैहयों के गुरु हुए। वेद में आया है कि च्यवन इन्द्र से हारे, किन्तु महाभारत में उनका इन्द्र से जीतना लिखा हुआ है।

१६—भार्गवों का हैहय ने मान किया। पीछे झगड़ा हो गया। भार्गव और्व के पुत्र ऋचीक शस्त्री हुए। उन्हीं के पुत्र जमदग्नि और पौत्र परशुराम हुए।

विश्वामित्र और जमदग्नि ने हरिश्चन्द्र के यज्ञ से शुनःशेप को बचाया और वह देवराट होकर विश्वामित्र के भागिनेय पद से उठ कर पुत्रत्व में आया। अनन्तर परशुराम द्वारा हैहयार्जुन मरा। उसने वशिष्ठ की भी तपोभूमि जलाई थी। फिर पाँचाल सुदास, पौरव संवर्ण, दक्षिण कोशल नरेश कल्माषपाद और तब दशरथ एवं राम के यहाँ वशिष्ठ जमे (आधार इन राज्यों के विवरणों में हैं)। पहले वशिष्ठ सुदास के पुरोहित हुए और पीछे उन्हें हटा कर विश्वामित्र उनके पुरोहित बने। तृतीय और सप्तम मंडल इन्हों दोनों के हैं। वशिष्ठ, तत्पुत्र शक्ति और शक्ति पुत्र पराशर भी वेदर्षि हैं। इन तीनों ने मिल कर एक ही ऋचा भी बनाई। उधर महाभारत में लिखा है कि पराशर गर्भ ही में थे जब शक्ति का निधन हुआ। सुदास के यज्ञ में वशिष्ठ पुत्र शक्ति ने एक बार विश्वामित्र को वाणी रहित कर दिया था और जमदग्नि की सहायता से ही इन्हें भाषणशक्ति आई। अनुक्रमणी

और ऋग्वेद पर वेदार्थ में लिखा है कि इस पर जब शक्ति जंगल में गए, तब विश्वामित्र के कहने से राजसेवकों ने इन्हें आग में जला डाला। पाँचवीं शताब्दी बी० सी० का शौनक कृत ग्रन्थ बृहद्देवता कहता है कि वशिष्ठ वारुणि के सौ पुत्रों को शाप के कारण राक्षस होने से सुदास या सौदासों ने मारा। उधर महाभारत में आया है कि सूर्यवंशी कल्मापपाद ने ऐसा किया। वहाँ यह कथन है कि इन्हें दो शाप राक्षस हो जाने के मिले, तथा विश्वामित्र ने किंकर नामक एक राक्षस इनके हृदय में बसा दिया, अर्थात् अन्तरंग मित्र बना दिया। यह कल्मापपाद दक्षिण कौशल नरेश (नं० ३९) था, जो सुदास और रामही के समय में पड़ता है। वहां के राजा सुदास का पुत्र होने से यह भी सौदास था। इसी लिए सौदास शब्द के कारण वशिष्ठात्मजों के निधनकर्ता में भ्रम पड़ गया है। शक्ति के वैदिक मंत्रों में मुख्य घटनायें नहीं हैं। महाभारत में आया है कि शक्ति एक उद्धत पुरुष थे और मुख्यतया यही उनके बध का कारण हुआ।

जान पड़ता है कि किसी कारण से पाँचाल सुदास शक्ति से अप्रसन्न होकर विश्वामित्र पर कृपालु हुए। अनन्तर विश्वामित्र के समझाने से राजसेवकों ने शक्ति का बध कर डाला और वशिष्ठ दक्षिण कोशलेश कल्मापपाद के यहाँ चले गए। वहाँ राक्षसों के संग से वह राजा नरमांस भक्षी हो गया था। अतएव वाशिष्ठों से उसका बिगाड़ हो गया। विश्वामित्र उसके यहाँ रहे तो नहीं, किन्तु उन्होंने किंकर राक्षस को उसका मित्र बना दिया, तथा वाशिष्ठों के प्रतिकूल उसे उत्तेजना दी, जिसमें उसने सारे वशिष्ठात्मजों को नरमांस के लिए मरवा डाला। अनन्तर वशिष्ठ का उससे मेल हो गया। इसके पीछे वशिष्ठ कहाँ रहे, सो पता नहीं है। एक वशिष्ठ दशरथ के यहाँ थे और राम के भी पुरोहित रहे। जब विश्वामित्र राम को मांगने दशरथ की सभा में गए, तब वशिष्ठ का उनसे कोई विरोध न था, वरन् पूरा मेल था (रामायण)। इससे प्रकट है कि या तो यह कोई दूसरे वशिष्ठ थे, या दक्षिण कोशल से कभी कभी उत्तर कोशल भी आते थे, और उस काल तक वहीं रहने लगे थे, तथा विश्वामित्र का उनसे मेल हो चुका था। राम और कल्माषपाद के समकालीन होने से दूसरा

ही विचार ठीक समझ पड़ता है और दो वशिष्ठों की कल्पना अनावश्यक प्रतीत होती है। सगर के पुरोहित भी वशिष्ठ ही हुए। (सगर का विवरण देखिये)। ऊपर के वर्णनों से प्रकट है कि हरिश्चन्द्र सगर और कल्मापपाद राम के थोड़े ही इधर उधर हुये। पार्जिटर महाशय ने पौराणिक वंशावलियों का समकालीनेताओं से मिलान कम किया और कई सामञ्जस्यपूर्ण कथाओं को ब्राह्मणों की कल्पना बतला कर इन लोगों में शताब्दियों का अन्तर माना, अथच सभी चन्द्रवंशी वंशावलियों को अधूरा कहा। इसी लिए उन्हें कई वशिष्ठों की निराधार कल्पना करनी पड़ी। पुराणों में केवल दो वशिष्ठ हैं, अर्थात् एक मैथिल निमि द्वारा मरने वाले और दूसरे उपर्युक्त व्यक्ति। हरिश्चन्द्र के देवराज और सवर्ण के सुवर्चस वशिष्ठ चाहे दो हों, किन्तु समझ एक ही पड़ते हैं। पराशर अवश्य एकाधिक हैं। एक पराशर राम के समय वाले शक्ति पुत्र हैं, और दूसरे परीक्षित (पौरव नं० ५५) को भागवत सुनाने वाले शुकदेव के पितामह तथा कृष्ण द्वयपायन व्यास के पिता। दक्षिण पांचाल (नं० ४८) अणुह (मत्स्य ४९, ५६) के श्वसुर कोई दूसरे शुकदेव थे, क्योंकि उनका समय परीक्षित से बहुत पूर्व है और इस काल भी शुकदेवजी लड़के ही थे।

१७—अब भार्गवों का वंश उठाया जाता है। भृगु ब्रह्मा के दस मानस पुत्रों में से एक और बड़े मान्य प्राचीन ऋषि थे। आपने ब्रह्मा, विष्णु, महेश, तीनों का अपमान परीक्षा लेने को किया, किन्तु इनको इससे क्षति न पहुँची। कथा दार्ष्टान्तिक मात्र है। प्रयोजन इनकी प्राचीन महत्ता से है। इनके पुत्र च्यवन ऊपर आ चुके हैं। एक शुक्राचार्य (हरिवंश) हिरण्यकशिपु तथा बलि के पुरोहित थे, जिनके पुत्र सन्द और मर्क प्रह्लाद के शिक्षक थे। इन दोनों का कथन ऋग्वेद में भी है। दूसरे शुक्राचार्य भृगु के दूसरे पुत्र थे जो ययाति, (पौरव नं० ६) के समकालीन (म० भा०) वृषपर्वा के पुरोहित थे। इन दोनों की कन्यायें देवजानी तथा शर्मिष्ठा ययाति को ब्याही थीं। पहली के यदु और तुर्वश नामक शुक्र के दौहित्र हुए और दूसरी के अनु, द्रुह्यु और पुरु नामक वृषपर्वा के दौहित्र। इन पाँचों वंशों के

कथन वेद में बहुत अधिकता से हैं। शुक्राचार्य ययाति (नं० ६) के श्वसुर थे, तथा इनके बड़े भाई च्यवन (नं० २) आनव नरेश शर्याति के दामाद जान पड़ते हैं। शायद भृगु दीर्घजीवी और शुक्र वृद्धवय के पुत्र थे। सुकन्या ने च्यवन की सेवा तो अच्छी की, किन्तु बिना राजसी ठाटबाट के स्त्री की भाँति रहने से इनकार किया, अथवा अनिच्छा प्रकट की। अनन्तर किन्हीं दो वैद्यों (म० भा० में आश्विनों) ने इस नियम पर वृद्ध च्यवन को युवा करने का वचन दिया कि उनके युवा होने पर सुकन्या उन तीनों में से जिसे पसन्द करे वही उसका पति हो। च्यवन युवा हो गये और सुकन्या के पसन्द करने पर राजसी ठाट से उसके साथ रहने लगे। च्यवन की भी महत्ता कम न थी। आपने इन्द्र तक का सामना किया, जिसमें वेदानुसार पराजय तथा महाभारतानुसार विजय पाई। वेद में आपका वृद्ध से युवा होना कई बार लिखा है। पार्जिटर महाशय ने साधार कथन किया है कि आनर्त राज्य के पतन पर च्यवन हैहयों के यहाँ रहने लगे। हैहय का नं० २५ है, तथा शर्याति स्वयं वैवस्वत मनु के पुत्र लिखे हैं। हरिवंश में आया है कि सूर्यवंशी युवनाश्व के भाई हर्यश्व को उनके श्वसुर मधु दैत्य ने आनर्त का राज्य दिया, जहाँ उनके पीछे उनका दत्तक पुत्र यदु राजा हुआ। हर्यश्व की बहिन अग्निवर्ण नामक नागराज को ब्याही थी, जिसकी पाँच पुत्रियों के साथ यदु का विवाह हुआ। इन्हीं यदु के वंशधरों ने गिरि गोमन्त (गोवा) की ओर करवीरपुर तथा क्रौंचपुर बसाये थे, जिनके तत्कालीन स्वामियों के समय श्रीकृष्णचन्द्र उधर गये। यह सूर्यवंश शर्याति ही का समझ पड़ता है, अथवा सम्भव है कि उनके पीछे का हो। शायद कथित मधु दैत्य वास्तव में यदुवंशी (नं० ३९) मधु नरेश थे। यही बात ठीक समझ पड़ती है, क्योंकि लवणासुर को मार कर जब रामानुज शत्रुघ्न ने मथुरा में अपना राज्य जमाया और फिर स्वपुत्र को वहाँ का शासक बनाया, तब हरिवंश के अनुसार मथुरा को अपनी समझ कर यदुवंशी नरेश (नं० ४३) भीमसात्वत ने उस पर अधिकार कर लिया। यदि वह मधु दैत्य की होती, तो उसे वे अपनी कैसे समझते ? यह प्रकट है कि शार्यातों के पीछे पुण्यजन

राक्षसों ने आनर्त पर अधिकार किया, तथा भार्गव हैहयों के पुरोहित हुए, एवं शार्यात क्षत्रिय हैहयों में मिल गए। भार्गवों का खास मान हुआ और उन्हें धन भी अच्छा प्राप्त हुआ। कुछ दिनों में धनाभाव से हैहयों ने भार्गवों से द्रव्य माँगा। उन्होंने भी अपने पास धनाभाव बतलाया, किन्तु खोदने से उनके यहाँ प्रचुर द्रव्य निकला (म० भा०)। इस पर क्रुद्ध होकर हैहयों ने गर्भ तक फाड़ फाड़ कर उनके वंश का नाश किया, केवल और्व नामक एक भार्गव बच रहे। उन्हीं के पुत्र ऋचीक ऋषि प्रकट कारणों से शस्त्री हुए। महाभारत शान्ति पच दान धर्म में ऋचीक का और्वात्मज होना लिखा है। उनका विवाह विश्वामित्र की बहिन सत्यवती से हुआ। सत्यवती पुत्र जमदग्नि और विश्वामित्र के जन्म प्रायः साथ ही हुए। जमदग्नि के पाँचवें पुत्र परशुराम ने पुराना और पिता का नया वैर निकाल कर हैहयवंशी (नं० ३४) अर्जुन का युद्ध में वध किया। अर्जुन और उनके पिता कृतवीर्य दोनों बड़े प्रतापी और विजयी थे। समझ पड़ता है कि वृद्धावस्था में अर्जुन मारे गए। यदि यादव (३९) मधु के दौहित्र यदु के एक ही पुश्त पीछे आनर्त राज्य राक्षसों ने जीता हो, तो भी यह समय दशरथ के समकालीन सत्वन्त का पड़ता है। उधर भार्गवों की कम से कम चौथी पीढ़ी वाले परशुधर अर्जुन (३४) के समकालीन थे, सो भार्गववंश का यदु से कुछ पहले ही साहंज या महिष्मन्त के समय हैहयों का पुरोहित होना समझ पड़ता है। इस सम्बन्ध में निकट ऊपर का नोट १५, भी देखिए।

१८--द्रुपद के पिता पृषत् (उत्तर पाँचाल नं० ४९) गंगा द्वार-वासी, द्रोण के पिता, आंगिरस भरद्वाज के मित्र थे। भरद्वाज ही ने अग्निवेश को आग्नेयास्त्र सिखलाया और उन्होंने द्रोण को (म० भा०)।

१९--दत्तात्रेय ने हैहयार्जुन ३४, पर कृपा की जिससे उसका प्रताप बढ़ा। उनके पुत्र निमि ने पहला श्राद्ध किया। जमदग्नि ने भी यही किया।

२०--नरनारायण और बादरायण विश्वामित्र के पुत्र कहे गए

हैं। नरनारायण युधिष्ठिर के समकालीन तथा बादरायण बुद्ध के पीछे वाले होने से विश्वामित्र के वंशधर मात्र हो सकते हैं।

२१—वैशाली के (नं० २२) मरुत्त का पुत्र दम हुआ। उसका आठवाँ वंशधर त्रिणविन्दु त्रेता में राजा था। उसकी पुत्री इलविला के पुत्र पुलस्त्य ऋषि के पुत्र वैश्रवण हुए। (वायु ७०, २९, ५६, ब्रह्माण्ड, III ८, ३४, ६२, म० भा०, लिंग ६३, ५५, ६६, कूर्म I ९, ७, १५, पद्म २६९, १५, १९, भागवत IX २, ३२ रामायण, VII २, ५, ९, III २२,) इनकी कुलीनास्त्री के पुत्र कुवेर नर्मदा पर हुए (शतपथ ब्राह्मण XIII ४, ३, १०) और पौत्र नलकूवर। कुवेर ने सुमाली राक्षस से लंका जीती। माल्यवन्त और माली उसके भाई तथा पुष्पोत्कटा, मालिनी और राका नाम्नी तीन कन्यायें थीं। यही तीनों वैश्रवण को मिलीं। इनमें पहली के पुत्र रावण तथा कुम्भकरण हुए, दूसरी के विभीषण और तीसरी के खर तथा शूर्पणखा (कन्या)। इसके पति को रावण ने वे जाने हुए थोड़ी ही अवस्था में मार डाला। इसी से शूर्पणखा का वह बहुत मान करता था (म० भा०)। रावण ने दक्षिण पाँचाल नरेश (नं० ४१) अनरण्य को युद्ध में मारा (रामायण)। पौलस्त्यों की तीन शाखायें प्रसिद्ध हैं, अर्थात आगस्त्य, कौशिक या वैश्वामित्र तथा अन्य पौलस्त्य। पौलह और ऋतु भी आगस्त्य थे। पुलस्त्य ने पुत्रवान होकर भी अगस्त्य वंशी एक बेटे को गोद लिया था, जिससे उनकी आगस्त्य शाखा चली। अगस्त्य का वंश बहुत बड़ा था।

२२—युधिष्ठिरी राजसूय के सम्बन्ध में भीम ने उत्तर कौशलेश श्रावस्ती नरेश बृहद्बल तथा अयोध्या नरेश पुण्यात्मा दीर्घयज्ञ को हराया (म० भा० सभा पर्व)।

२३—विदेह वंशी धृति (नं० ५२) और बहुलाश्व, नं० ५३, यादव श्रीकृष्ण, (नं० ५५) के समकालीन थे (भागवत)।

२४—निषद, विदर्भ, दक्षिण कोशल, चेदि और दशार्ण मिली हुई रियासतें थीं (प्रधान)। निषदराज वीरसेन के पुत्र नल वैदर्भ भीमरथ (३४) के दामाद थे। भीम रथ और चेदि राज सुबाहु दोनों दशार्ण नाथ सुद्युम्न के दामाद थे (म० भा० वन पर्व)। दमयन्ती-

भैमी नल की रानी थीं। उत्तर पांचाल नरेश भृम्यश्व (नं० ३५) के पुत्र वेदर्षि तथा राजा मुद्गल को नलायनी इन्द्रसेना ब्याही गई (ऋग्वेद तथा म० भा०।)

२५—अर्जुन पौरव नं० ५३ के भाई सहदेव ने विदर्भनरेश भीष्मक तथा दक्षिण कौशलेश को हराया (सभापर्व म० भा०।)

महाभारत आदि में और भी बहुतेरी समकालीनतायें मिलेंगी। इन सब की टक्कर उपर्युक्त वंशावलियों से बैठ जाने से उनकी दृढ़ता प्रमाणित होती है। आगे के वर्णनों में और भी सम सामयिक विवरण आवेंगे। यहाँ मुख्य कह दिए गए हैं।

दसवाँ अध्याय

मनु-रामचन्द्र काल (त्रेतायुग)

प्रायः १९००--१२५० बी० सी० सूर्य्यवंश

त्रेतायुग के विषय में दसवें से १३ वें अध्यायों तक जितने कथन हैं, उनके आधार बहुधा वहीं हैं, तथा शेष १२ वें अध्याय के अन्त में और छठवें से आठवें अध्यायों में हैं। पूर्ववाले तीनों वैदिक अध्यायों से प्रकट है कि वेदों में ऐतिहासिक घटनाओं का कथन प्रचुरता से है, किन्तु सामूहिक क्रमबद्ध वर्णन का अभाव है। इससे केवल वेदों के सहारे सक्रम इतिहास का लिखना कठिन है। ऐसा करने में बहुत करके अनुमानों का ही सहारा लेना पड़ेगा। फिर भी वेदों में घटनाओं के जो कथन हैं वे ऐतिहासिक दृष्टि से बहुत लाभदायक हैं। पुराणों और इतिहासों में कथित घटनाओं को पाश्चात्य लोग कभी-कभी अनिश्चित कथा कहानी मात्र मानते थे। कुछ पौराणिक गाथाएँ अनिश्चित हैं भी किन्तु उनके मुख्य कथनों को ध्यानपूर्वक पढ़ने और उनमें से साहित्य तथा माहात्म्य सम्बन्धी अत्युक्तियाँ निकाल डालने से निश्चित इतिहास ज्ञात हो सकता है। पुराणों के सब से अधिक निश्चित भाग वंश वृत्त हैं। प्रत्येक राजकुटुम्ब अपनी वंशावली को बड़ी युक्ति के साथ रक्षित रखता था। राजपुरोहितादि भी राजकुल के वंशवृत्त का बड़ी सावधानी से रक्षण करते थे। पुराणों में वंशावलियों के विवरण बहुत स्वल्प अन्तर के साथ एक दूसरे से मिलान भी खा जाते हैं। इन कारणों से वंशावलियाँ दृढ़ समझ पड़ती हैं। केवल इन्हीं को दृढ़ मान लेने में हम वैदिक घटनाओं के आधार पर क्रमबद्ध इतिहास लिख सकते हैं। पुराणों के अनिश्चित भागों का सहारा न लेने से भी यह इतिहास अच्छा बन सकता है। इसलिए वैदिक समय का इतिहास लिखने में हम पुराणों में लिखित वंशवृत्तों

का सहारा लेकर अन्य घटनाओं में वेदों ही को प्रधानता देंगे और पुराणों की दृढ़ तथा लोकमान्य बातों को ही मिला कर ऐतिहासिक शुद्धता का पूरा ध्यान रक्खेंगे। चौथे अध्याय में पौराणिक राजवंशों का कथन हो चुका है और ५ वें में पहले वंश का भी सहारा लेकर इतिहास कहा जा चुका है। अब वंश नं० २ व ३ के सहारे पर यहाँ वैदिक समय का इतिहास लिखा जावेगा। नं० २ सूर्यवंश है और नं० ३ चन्द्रवंश।

ऊपर कहा जा चुका है कि चाक्षुष मन्वन्तर की मुख्य घटनाएँ समुद्रमन्थन और बलिबन्धन हैं, जिनका वर्णन ५वें अध्याय में हो चुका है। बलिबन्धन के पीछे मगध पर्य्यन्त देशों में आर्य्यों की राजधानियाँ स्थिर होने लगीं। चाक्षुष मनु के पीछे पहला राजघराना जो महत्ता को प्राप्त हुआ वह सूर्य्यवंश ही था। स्वायम्भुव और वैवस्वत मन्वन्तरों के बीच में कुछ राजघरानों के नाम अवश्य मिल सकते हैं, किन्तु उनके विजयों, वंशवृक्षों आदि का पूरा पता नहीं चलता। आर्य्यों के शत्रुओं में दैत्य दानवों आदि का हाल कुछ विस्तार से लिखा है। आर्य्य नेताओं में पाँचों मनु, नृसिंह और वामन के नाम मिलते हैं। स्वायम्भुव मनु के वंशधरों के पीछे हमको सब से बड़ा राजकुल सूर्य्यवंश का मिलता है, जिसके पहले स्वामी वैवस्वत मनु स्वयं किसी सूर्य्य नामक व्यक्ति के पुत्र कहे गये हैं।

आर्यों की दूसरी भारतीय धारा—मनुवंश—उत्तर कोशल महाजनपद। फ़ारस के उत्तर पूर्व से अफ़ग़ानिस्तान और पामीर तक किसी स्थानमें आर्य सम्राट्, इन्द्र का राज्य था। उनके युद्ध दैत्य दानवों आदि से हुआ करते थे। बृहस्पति उनके पुरोहित थे तथा चन्द्र ओषधियों और वनस्पतियों के स्वामी। एक बार चन्द्र गुरु पत्नी तारा को भगा लेगए। वे दोनों एक दूसरे को चाहते थे। बृहस्पति के प्रयत्नों से इन्द्र ने चन्द्र से तारा फेर देने को बहुत कहा सुनी की और उनके न मानने पर संग्राम भी कर दिया। चन्द्र ने दैत्य-दानवों की सहायता से इन्हें हरा दिया। अनन्तर सन्धि होकर तारा गुरु को मिल गई, तथा बृहस्पति के यहाँ कुछ ही पीछे उत्पन्न तारा पुत्र बुध, चन्द्र की वास्तविक पितृत्व

के कारण इन्हें मिला। वैवस्वत मनु नामक एक दूसरे प्रधान आर्य थे, जिनकी पुत्री इला का समय पर बुध से विवाह हुआ। जो इन्द्र चन्द्र की मन मैली हुई थी, वही शायद मनु और बुध के भारत आने की कारण हुई, अथवा यह भी सम्भव है कि उनका इधर आना अन्य कारणों पर अवलंबित हो (हरिवंश और महाभारत)। हमारे पाँचवें अध्याय में इसका कुछ कथन हो चुका है। दलाल के कथनों तथा मन्वन्तरों में आया है कि आर्य लोग किन दशाओं में भारत में आये। यहाँ दूसरी विजयिनी आर्य धारा का विवरण हो रहा है। पार्जिटर महाशय का मत है कि यह धारा तिब्बत की ओर से आई। जो हो, हम वैवस्वत मनु को अयोध्या तथा बुध को प्रतिष्ठानपुर (भूँसी प्रयाग के इस पार) में स्थापित होते देखते हैं। सम्भवतः इनके इलाव्रत से आने से चन्द्रशाखा ऐल कहलाई। बुध की स्त्री इला थी, जिस के वंशधर भी सारे ऐल थे।

इला के कारण भी ऐल नाम हो सकता था, अथवा इस नामकरण की इला और इलाव्रत दोनों कारण हों। मनु के एक पुत्र सुद्युम्न भी किम्पुरुष कहे गए हैं। वे इलाव्रत चले गए। उनके तीन पुत्र उत्कल, विनताश्व और गय थे। उत्कल को उत्कल देश (गया के दक्षिण पच्छिमी बंगाल) मिला, विनताश्व उपनाम हरिताश्व को कोई पच्छिमी देश तथा गय को गया और पूर्वी प्रान्त (मत्स्य १२,१८ पद्म V ८, १२३)। कहीं कहीं यह भी लिखा है कि हरिताश्व ने उत्तरी कुरु तथा पूर्वी देश पाये (म० भा० ७५.३१,४२,३)। सुद्युम्न के ५० और पुत्र थे जो आपसी युद्ध में कट मरे। अयोध्या का बसाना बाल्मीकि ने मनु द्वारा लिखा, तथा कहीं कहीं उनके पुत्र इक्ष्वाकु द्वारा इस पुरी का बसाया जाना भी कथित है। जान पड़ता है कि यह कार्य मनु ने प्रारम्भ किया और इक्ष्वाकु ने पूरा। मनु के मुख्य उत्तराधिकारी इक्ष्वाकु अयोध्या के राजा हुए। उनके अन्य पुत्रों में नाभाग या नृग, धृष्ट, नरिष्यन्त, प्रांशु, नाभानेदिष्ठ, करूष, शर्याति, प्रपध्र आदि थे। नाभाग नृग को कहा है। इधर इसी वंश के राजा नं० २८ का नाम भी नाभाग था। नृग का महादानी होना प्रसिद्ध है। इसी गड़बड़ में उन्हें एक बार शाप भी मिला। शर्याति ने कैम्बे की खाड़ी के पास

राज्य स्थापित किया, जो कई पीढ़ी चला। इसका कथन आगे होगा। धृष्टि के विषय में कुछ विशेष कथन नहीं है। शिवपुराण का कथन है कि धार्ष्टों को बाह्लीक देश मिला। कारूषों का आधिपत्य रीवाँ तथा पूर्वी सोन पर हुआ। कारूष क्षत्रियों की वीरता प्रसिद्ध है। श्रीकृष्ण बलराम से युद्ध करने वाले मुष्टिक, चाणूर कारूष थे। नरिश्यन्त अनिश्चित हैं। प्रषध्र शाप वश शूद्र होगए। नाभाग और तत्पुत्र अम्बरीष का अधिकार उत्तरी यमुना पर भी लिखा है। इसका विवरण यथा समय होगा। नाभानेदिष्ठ से वैशाली राज्य और वंश चले। इसका भी विशेष कथन यथास्थान आवेगा।

इक्ष्वाकु और तद्वंश

इनके सौ पुत्र कहे गए हैं, जिनमें शकुनि, वशाति, निमि और विकुक्षि की मुख्यता है। विकुक्षि अयोध्या के राजा हुए। कहते हैं कि निमि ने मिथिला प्राप्त करके जयन्त में राजधानी बनाई। पहले जयन्त राजधानी बनी और बहुत काल पीछे मिथिला (वायु पु० ८९,१,२,६ ब्रह्माण्ड iii ६, ४, १, ६)। यह ठीक है किन्तु निमि इन्हीं इक्ष्वाकु के पुत्र थे, सो अनिश्चित है। कारण यथास्थान आवेगा। शकुनि के नेतृत्व में ४९ ऐक्ष्वाकु उत्तरापथ पंजाब में राज्य करने लगे तथा वशाति के नेतृत्व में ४८ भाई दक्षिणापथ में स्थापित हुए। इनमें दंडक भी एक थे। इन्हीं के नाम पर महाकान्तार दंडक वन कहलाया। समझ पड़ता है कि उधर जाने पर याती वशाति के स्थान पर या उनके मरने पर दंडक की प्रधानता हुई होगी। इनके पुरोहित शुक्राचार्य थे। इनकी अनुपस्थिति में राजा ने इनकी कन्या से व्यभिचार कर डाला। पलटने पर जब शुक्र ने हाल सुना तो शाप दिया कि प्रजा समेत राजा नष्ट हो जावे। अनन्तर वे तो अन्य ऋषियों सहित जनस्थान चले गए और इधर यह उपनिवेश नष्ट होकर जैसा का तैसा जंगल होगया। सम्भवतः शुक्र के प्रयत्नों से ऐसा हुआ होगा।

मुख्य ऐक्ष्वाकु विकुक्षि ने यज्ञार्थ शिकार खेलने जाकर मारे हुए पशुओं में से मार्ग में खाना मना कर एक शशक का भक्षण कर लिया, जिससे वे शशाद शशाद कहलाये। इस उपाधि से उस काल यज्ञ का

गौरव समझ पड़ता है। ये राजर्षि भी कहलाये थे। इनके पुत्र पुरंजय ने इन्द्र की सहायता करके ककुत्स्थ की उपाधि पाई, जिससे इनका वंश ऐक्ष्वाकु के साथ काकुत्स्थ भी कहलाया। विश्वगश्व का हयदल किसी युद्ध से पराजित होकर न पलटा। इन राजाओं के समय उधर चन्द्रवंशी भारी उन्नति कर गये। इनमें नहुष, ययाति, यदु, पुरु, आदि सम्राट हुए, जिनके कथन आगे आवेंगे। सूर्यवंशी (नं० १०) श्रावस्त ने श्रावस्ती पुरी बसाई। कुवलयाश्व ने पराक्रमी धुन्ध राक्षस को मार कर धुन्धमार की उपाधि पाई। इस युद्ध में राजा के कई पुत्र काम आये। इस काल अश्व नाम पर कई राजे हुए। इनमें हयदल की मुख्यता समझ पड़ती है। दृढ़ाश्ववीर, लोकप्रिय और शान्तिरक्षक हुआ। निकुम्भाश्व ने युद्धों तथा यज्ञों के बाहुल्य से अपना कोष बिगाड़ा। इनके पुत्र दूसरे युवनाश्व, धार्मिक, वीर और यज्ञकर्ता थे। वे घर में शशकवत सीधे किन्तु युद्ध में सिंहवत् प्रचण्ड थे। प्रसिद्ध मांधातृ इन्हीं के पुत्र थे।

मान्धातृ और वंशज

इस काल तक यादवों का प्रभाव बढ़ चुका था और यादव नरेश शशिबिन्दु ने पौरवों को राज्यच्युत किया; तथा द्रुह्यु वंशियों को भी दबाया। अनन्तर उनके वंशज छोटे-छोटे राजा होकर बलहीन हो गए। मान्धाता का विवाह शशिबिन्दु की पुत्री बिन्दुमती से हुआ। आप केवल १६ वर्ष की अवस्था में गद्दी पर बैठे। यह गौरवर्ण, अच्छे डील-डौल युक्त और बलवान थे। बिन्दुमती और गौरी के मान्धाता से सम्बन्ध के आधार नवें अध्याय में आ चुके हैं। मान्धाता की कथा महाभारत III १२६, १०४, ६२ VII ६२, २२८१, २ में है। अन्य आधार आगे के एक अध्याय में हैं। कहते हैं कि मान्धाता की सेना दस लाख थी, जिससे आपने सारा भारत, लंका तथा महासागर के टापुओं को जीत कर सम्राट् की उपाधि पाई। इनका सम्राट् होना सिद्ध है किन्तु इतनी सेना तथा विजयों के कथन असिद्ध। आपके द्वारा आनव जनमेजय (नं० १९), द्रुह्यु वंशी (नं० २१) आंगार, तुर्वश वशी (नं० २२) मरुत्त, सुधन्वा, गय, आंग (नं० ४६)

बृहद्रथ, पुरु, राम आदि का जीता जाना लिखा है। जनमेजय अंगार और मरुत्त इनके समय में पड़ते भी हैं। एक सुधन्वन (नं० ३९) मागध थे, जिनका समय इनके पीछे पड़ता है। गय स्वयं मनु-वैवस्वत के पौत्र (न० २ सुद्युम्न पुत्र) तथा पुरु (नं० ७) दोनों मान्धाता से बहुत पहले के हैं। ऊपर दिखलाया गया है कि ऋग्वेद में हारे हुए वंशजों के स्थान पर स्वयं यदु, अनु, द्रुह्यु, आदि का हारना (मारा जाना तक) लिखा है। वैसे ही यहाँ गय वंशियों तथा पुरुवंशियों के हराने के स्थान पर स्वयं गय और पुरु के नाम लिखे हैं। प्रयोजन इनके वंशधरों के हारने का है। आंग बृहद्रथ मान्धाता से प्रायः २५ पीढ़ी नीचे हुए हैं। इनका यहाँ नाम लिखा जाना पौराणिक सम्पादकों की भूल है। राम इस काल कोई प्रसिद्ध राजा न थे। सम्भव है कि वैदिक यज्ञकर्ता राम से प्रयोजन हो। सुधन्वन, अमित और बृहद्रथ कोई अज्ञात साधारण राजे हो सकते हैं, जो मान्धाता से हारे हों। किसी पश्चिमी नरेश अरुद्ध को जीत कर आपने गान्धार प्राप्त किया, यह भी कथन है। अनन्तर मान्धाता द्वारा पराजित द्रुह्यु वंशी अंगार के पुत्र गन्धार गान्धार में स्थापित हो गए। अयोध्या नरेश को इस दूरस्थ प्रान्त को स्ववश रखने में मान्धाता के पीछे बड़ा कष्ट उठाना पड़ा। मान्धाता न्यायी और सबल शासक थे, जिन्होंने चोरों की लूट मार बन्द कर दी। उत्तर पश्चिमी भारत में घोर अकाल का भी आपने अच्छा प्रबन्ध किया, तथा कुरुक्षेत्र में अनेक यज्ञ किए। प्रसिद्ध सौभरि ऋषि आपके दामाद थे। सौभरि पुत्र गौर ने पूर्व में एक राज्य स्थापित करके अपने नाम पर बसाये हुए गौर नगर को उसकी राजधानी बनाया। शायद इसी नाम पर उत्तरी बंगाल गौड़ देश कहलाता हो। मथुरा में इस काल एक प्रतापी राक्षस राज्य करता था। एक बार वृद्धावस्था में थोड़े ही से साथियों सहित मान्धाता उस ओर होकर निकले। राक्षस राज प्राचीन पराजय से इनसे रुष्ट था, सो उसने बड़े भारी दल की सहायता से युद्ध में इनका वध कर डाला।

तदनन्तर अयोध्या में इनका पुत्र पुरुकुत्स राजा हुआ। गान्धारों का एक बार तो आप दमन कर सके, किन्तु दूसरे बार पराजित होकर

बन्दी होगए। इसी से आपका नाम पुरुकुत्स (बहुत बदनाम) पड़ा। तब आपके भाई मुचकुन्द ने ससैन जाकर गन्धर्वों (अफ़ग़ानों) को पराजित करके इनका मोचन किया। पलटने पर बन्दी होने के कारण प्रजा ने इन्हें न माना और इनका पुत्र दुधमुहां बच्चा त्रसदस्यु राजा हुआ, तथा उसके चचा अम्बरीष और मुचकुन्द वली हुए। तरुण होने पर त्रसदस्यु ने गन्धर्वों पर कई आक्रमण किए और उनका बल चूर्ण कर दिया। उसके प्राय: ७० वर्षों के राजत्व काल में उत्तर कौशल की दशा बहुत अच्छी रही। पुरुकुत्स और तत्पुत्र त्रसदस्यु वैदिक नरेश भी हैं। वहाँ भी पुरुकुत्स के बंदी होने की दशा में त्रसदस्यु का जन्म लिखा है, तथा उनकी बड़ी प्रशंसा है। फिर भी कुछ पंडित लोग वैदिक त्रसदस्यु को इस कारण पौरव मानते हैं कि उनके द्वारा पौरवों को कुछ मिलना लिखा है। इनका पौरव होना असिद्ध है। पौराणिक पौरव वंश में कोई पुरुकुत्स और त्रसदस्यु नहीं हैं। शतपथ ब्राह्मण उन्हें ऐक्ष्वाकु कहता है (XIII ५,४५)। अतएव इस नाम के एक नरेश सूर्य्यवंशी अवश्य हैं। पुरुकुत्स राज्यच्युत होने पर नर्मदा नदी की ओर चले गए। मुचकुन्द ने माहिष्मती (वर्तमान मांधाता) पुरी बसाई। इन्होंने मान्धाता ही नाम रक्खा होगा, किन्तु पीछे हैहय महिष्मन्त ने इसे माहिष्मती कहा होगा।

त्रसदस्यु के पीछे नं० २४ सम्भूत (वेद में तृत्त) से नं० २७ श्रुत पर्यंत कोई मुख्यता न हुई; केवल रुरुक शान्तिप्रिय कहे गए हैं और वृक भयानक। तालजंघ हैहय ने अपनी म्लेच्छ सेना के बल से जब उत्तरी भारत के नरेशों पर आक्रमण किया, तब उत्तर कोशल राज्य रक्षित रहा। वृक का समय तालजंघ से पहले का था। जान पड़ता है कि उन्होंने कभी हैहय दल को हराया होगा जिससे ताल जंघ ने इधर कोशल के प्रतिकूल प्रयत्न न किया।

अनन्तर (नं० २८) नाभाग एक बड़े राजा हुए। नाभाग ने एक वैश्या स्त्री से विवाह किया, जिससे पहले तो इनके पिता अप्रसन्न हुए, किन्तु पीछे उन्होंने क्षमा करके इन्हें युवराज के पद पर प्रतिष्ठित किया। इससे जान पड़ता है कि ऐसा जाति सम्बन्धी प्रश्न इस काल गौरवपूर्ण न था। नाभाग और अम्बरीष के राज्य यमुना तट पर भी

लिखे हैं। अम्बरीप विकराल युद्धकर्ता थे। जीवन में उनका एक मात्र कार्य युद्ध था। ये विष्णु भक्त भी थे। इन्हीं के एकादशी व्रत में बाधा डालने से ऋषि दुर्वासा पर वैष्णव चक्र छूटा था। (नं० ३०) सिन्धु द्वीप से दिलीप खट्वांग (नं० ३४) तक कोई मुख्यता न थी। कालिदास ने इन्हीं के पुत्र को रघु माना है, किन्तु पार्जिटर ने कई पुराणों को मिला कर इनका पुत्र दीर्घबाहु एवं पौत्र रघु कहा है। रघु की सहायता से दिलीप ने अश्वमेध यज्ञ किया। रघु एक प्रतापी राजा थे, जिनसे पीछे वाले नरेश रघुवंशी कहलाये। दिलीप के अश्वमेध में रघु ने कालिदास के अनुसार सुम्ह, बंग, कलिंग, उड़ीसा पति महेन्द्रनाथ, दाक्षिणात्य पांड्य, केरल, मलाबार, पच्छिमी घाट, कोंकण, पाश्चात्य भारत, फ़ारस के यवनों, उत्तर के हूँणों, काम्बोजों, सात पार्वतीय राजाओं, प्राग्ज्योतिष तथा कामरूप को हराया। अनन्तर दिलीप ने अयोध्या ही में रह कर वानप्रस्थ आश्रम का पालन किया।

रघु पुत्र अज का विवाह वैदर्भी इन्दुमती से हुआ। उस स्वयंवर में कालिदास ने निम्न नरेशों की उपस्थिति लिखी है; मगधेश्वर परन्तप, अंगनाथ, अवन्तिनाथ, कार्तवीर्य प्रतीप, नीपवंशज, उत्तर पांचाल, सूर सेनाधिपति सुषेण, कलिंगनाथ, हेमांगनाथ, हेमांगद, पांड्य देशान्तर्गत उरग पुर पति, तथा अयोध्या के युवराज अज। मार्ग में प्रियंवद गन्धर्व से अज ने सम्मोहनास्त्र प्राप्त किया। कालिदास ने इस काल सूर सेनों को मथुरा का राजा कहा है। उपरोक्त सब राजे युद्ध में अज से पराजित हुए। इन्दुमती से अज का परम प्रगाढ़ प्रेम था। इन्हीं दम्पति के पुत्र रामचन्द्र के पिता राजा दशरथ हुए। इन्दुमती के यौवनावस्था ही में मर जाने से अज सात वर्ष तक शोकित रहे और एक दिन इनका शव सरयू नदी में बहता हुआ मिला। किसी ने डूबने का हाल न जाना। आत्म-हत्या का सन्देह रहा। महाराज दशरथ ने नीति-पूर्वक राज्य किया। कौशल्या, सुमित्रा और कैकेयी आपकी मुख्य रानियाँ थीं। राजमहिषी कौशल्या दक्षिण कोशल नरेश भानुमान की पुत्री थीं। यह नाम अपनी वंशावली में नहीं है। सम्भवः यह सुदास का दूसरा नाम हो। सुमित्रा मगधपति की कन्या थीं और याबाता कैकेयी उत्तरी पच्छिमी आनव नरेश केकय की पुत्री। दशरथ

ने सिन्धु, सौवीर, सौराष्ट्र, मत्स्य, काशी, दक्षिण कोशल, मगध, अंग, वंग, और द्रविड़ नरेशों को जीता तथा अश्वमेध किया। गिरिव्रज के प्रसिद्ध युद्ध में आपने उत्तर पांचाली दिवोदास की सहायता की। कुलीतर के वंशधर तिमिध्वज शम्बर की पराजय में आपका भी विशेष भाग था। शम्बर की स्त्री मायावती रावण की महिषी मन्दोदरी की बहिन थी। उससे व्यभिचार करने के प्रयत्न के कारण शम्बर ने रावण को बन्दी कर लिया था और श्वसुर मय के कहने पर ही छोड़ा था (शिवपुराण)। इसकी राजधानी वैजयन्त थी। गिरिव्रज के युद्ध में एक बार कैकेयी ने दशरथ के प्राण बचाये, जिसके कारण उनके दो वरदान इनके पास थाती की भांति रहे। अंग नरेश लोमपाद इनके मित्र भी थे। उन्होंने कौशल्या से उत्पन्न इनकी पुत्री शान्ता को गोद लेकर उसका विवाह ऋषि शृंग से किया। इन्हीं ऋषि ने दशरथ को पुत्रेष्टि यज्ञ कराई, जिससे इनके चार बेटे हुए, अर्थात् कौशल्या से ज्येष्ठ राम, कैकेयी से भरत और सुमित्रा से यमज लक्ष्मण, शत्रुघ्न। दशरथ ने कैकेयी के वर मांगने पर राम को छोड़ कर सत्य का पालन किया, और वियोग में शरीर छोड़ कर पुत्र प्रेम निवाहा। अतएव दशरथ केवल राम के पिता होने से प्रसिद्ध नहीं हैं, वरन् स्वयं भी परम पूज्य थे। रामचन्द्र का वर्णन एक पृथक अध्याय में आगे होगा।

दक्षिण

दक्षिण वाले सूर्य्यवंशी राजाओं का वर्णन हम ऊपर कर आये हैं। अब दक्षिण का भी कुछ हाल कह कर तब आगे चलना होगा। हम ऊपर कह आये हैं कि दक्षिण में सब से पहले जाने वाले महापुरुष अगस्त्य ऋषि थे। इनके अतिरिक्त पुलस्त्य ऋषि के वंशधरों ने भी कुछ आतङ्क जमाया था। पुलस्त्य के पुत्र वैश्रवण हुए जिनके पुत्र कुवेर थे। ये यक्षों के राजा हुए और इनको धनाधीश की उपाधि मिली। आप पिता और पितामह के साथ गन्धमादन पर्वत पर रहते थे। यह हिमालय पर्वत के उस भाग का नाम है जो बदरीनाथ से आरम्भ होता है। कुबेर ने दक्षिण जाकर लङ्का नामक टापू जीता और वहाँ अपना

राज्य जमाया। कहते हैं कि लङ्का में उस काल भी राक्षस लोग रहते थे। इन्हीं को जीत कर कुबेर ने वहाँ का राज्य प्राप्त किया। इसमें माल्यवान् और सुमाली नामक दो भाई प्रधान थे। सुमाली की पुष्योत्कटा, मालिनी तथा राका नाम्नी तीन परम सुन्दरी कन्यायें थीं। कुबेर ने अपने पिता से उतना व्यवहार नहीं रक्खा जितना पितामह से। इस बात से वैश्रवण उनसे अप्रसन्न हुए। इनको प्रसन्न करने के विचार से कुबेर ने सुमाली की तीनों कन्यायें इन्हें ला दीं। इनमें वैश्रवण ने पुत्र उत्पन्न किये। पुष्योत्कटा के पुत्र रावण और कुम्भकर्ण हुए, मालिनी के विभीषण और राका के खर पुत्र तथा शूर्पणखा कन्या। जब ये बालक समर्थ हुए, तब इन्होंने नाना से मिल कर भाई कुबेर से लङ्का छीन ली तथा पुष्पक नामक व्योमचारी विमान भी ले लिया। इस प्रकार राक्षसों का राज्य लङ्का में फिर स्थापित हो गया।

रावण को होनहार समझ कर मय दानव ने अपनी कन्या मन्दोदरी उसको व्याह दी। रावण ने अपने तीनों भाइयों तथा बहिन के भी उचित रीति से विवाह किये। रावण के मेघनाद नामक बड़ा प्रतापी पुत्र उत्पन्न हुआ। इसके अतिरिक्त अक्षयकुमार, नरान्तक सुबाहु आदि कई अन्य प्रतापी रावणात्मज हुए। सुबाहु गन्धर्व-कन्या चित्राङ्गदा से हुआ था। कुम्भकर्ण के पुत्रों का नाम कुम्भ और निकुम्भ था। विभीषण का पुत्र तरणीसेन था और खर का मकराक्ष। रावण के पुत्रों और भतीजों में मेघनाद और मकराक्ष प्रतापी और प्रसिद्ध थे। मेघनाद ने इन्द्र को पराजित करके इन्द्रजीत की पदवी पाई। रावण के आधिपत्य में राक्षसों का प्रताप बहुत बढ़ा। इन लोगों का वंश-विस्तार भी खूब हुआ। रावण ने दिग्विजय के विचार से सारे भारतवर्ष को पराजित करके समग्र देश में अपना आतङ्क जमाया। दक्षिण में किष्किन्धा नामक स्थान में वानरराज बालि राज्य करता था। उससे द्वन्द्व युद्ध में स्वयं रावण पराजित हो गया। इस बात से वह बालि के शौर्य पर इतना मोहित हुआ कि सेना लेकर उसे जीतने का प्रयत्न छोड़ आजीवन उसका मित्र बन गया। बालि ने भी यह मित्रता का सम्बन्ध सदैव पुष्ट रक्खा। बालि के भाई सुग्रीव से

उसका विरोध हो गया था। इसलिये सुग्रीव हनुमान् आदि पाँच मन्त्रियों सहित ऋष्यमूक पर्वत पर रहता था। रावण ने एक युद्ध में बिना जाने अपनी बहिन शूर्पणखा के पति को मार डाला। इस बात का उसे आजीवन पश्चात्ताप रहा और वह शूर्पणखा का सदैव मान करता रहा। दक्षिण में उस काल दण्डकारण्य नामक बड़ा भारी जंगल था। उसी को महाकान्तार भी कहते हैं। रावण ने खर को एक छोटी सी सेना समेत दण्डकारण्य में स्थापित किया और अपने नाना के भाई माल्यवान को वहाँ का प्रबन्ध सौंपा। ताड़का नाम्नी एक यक्षिणी भी इन्हीं राक्षसों में मिल गई। उसके पुत्र मारीच और सुबाहु थे। इन दोनों को ताड़का समेत रावण ने विश्वामित्राश्रम (बक्सर, जिला शाहाबाद, बिहार) के समीप स्थापित किया। इस प्रकार लङ्का के बाहर की भारत में रावण की दो सेनायें रहा करती थीं अर्थात् दण्डकारण्य और विश्वामित्राश्रम में। ये लोग ब्राह्मण धर्म के पूर्ण विद्वेषी थे और यज्ञादिक का सदैव विरोध किया करते थे। रावण का भी वास्तविक नाम राम ही जान पड़ता है। राम को आज भी मद्रास की ओर "रामन" कहते हैं और इसी को संस्कृतज्ञों ने "रावण" कर लिया होगा।

सूर्यवंश, रावण और अगस्त्य के कथन रामायण, महाभारत और अन्य पुराणों में बहुतायत से मिलते हैं। बारहवें अध्याय के अन्त में भी आधारों का कुछ कथन किया जायगा।

सूर्यवंशी, शार्यातशाखा, आनर्त राज्य।

शार्याति मनु के एक पुत्र थे। इन्होंने कैम्बे खाड़ी के पास उस देश में अपना राज्य स्थापित किया जो पीछे से आनर्त कहलाया। भृगुपुत्र च्यवन इनके दामाद थे और पुरोहित भी। इनके वर्णन ऋग्वेद, महाभारत और पुराणों में बहुतायत से मिलते हैं। शार्याति के भारी सम्राट् होने से इनका या किसी वंशधर का ऐन्द्र महाभिषेक हुआ। च्यवन, इनके भाई उशना कवि उपनाम शुक्राचार्य और शार्यातिवंशी कोई शार्यात सत्र वेदर्षि थे। इस वंश के विवरण मत्स्य ६९,९ पद्म V २३,१० विष्णु VI १,३४, म० भा० II १३,३१३, ४० III XII २५

XIV और XV में हैं। शर्याति के पुत्र आनर्त एवं कन्या सुकन्या हुई। सुकन्या च्यवन ऋषि को ब्याही गई। आनर्त के नाम पर वंश आनर्त कहलाया। आनर्त के पुत्र रोचमान, पौत्र रेव और प्रपौत्र रैवत हुए, जिनके पुत्र ककुमिन थे। इनका वंश आनर्त पर २४ या २५ पुश्तों तक प्रतिष्ठित रहा और तब पुण्यजन राक्षसों से पराजित होकर हैहयों में मिल गया। हैहय का पुश्त नं० २५ है। वायु पुराण ८८,१,४ ब्रह्मांड III ६३, १, ४७, ३७, ४१ ह० वं० ११,६५३,७ में यह कथा वर्णित है। हैहयों के साथ भार्गव लोग भी जाकर उनके द्वारा सम्मानित हुए तथा उनको धन भी खूब मिला। हैहयों की पाँच मुख्य शाखायें हुईं, जिनमें एक शार्यात भी थे। समय पर बाहरी प्रान्तों पर विजय के कारण हैहयों को धन की आवश्यकता विशेष हुई, किन्तु माँगने पर भी भार्गवों ने अपने पास द्रव्याभाव बतलाकर कुछ न दिया। इससे भार्गवों का हैहयों से बिगाड़ हो गया और समय पर हैहयों के साथ शार्यात वंश भी पुनर्वार हतप्रभ होकर पहाड़ियों में मिल गया। हैहय पतन का कथन यथास्थान होगा। यह रामचन्द्र से कुछ आगे पीछे का घटनाचक्र है। हैहय वंश प्रतर्दन, अलर्क और सगर के प्रयत्नों से गिरा। इसमें भार्गव वंशी परशुराम और अग्नि और्व तथा दूसरे वंश के भरद्वाज के भी प्रयत्न हैहयों के प्रतिकूल सम्मिलित थे।

पुण्यजन आनर्त देश पर कितने दिन प्रतिष्ठित रहे सो पता नहीं, किन्तु रामचन्द्र से कुछ ही पूर्ववाले मधु यादव (नं ३९) को हम यहाँ का शासक पाते हैं। हरिवंश में यह कुन्त राज्य कहा गया है। किसी सूर्यवंशी राजा युवनाश्व का भाई हर्यश्व मधु का दामाद था। इन दोनों भाइयों में बिगाड़ होने से अपनी पत्नी की सलाह से हर्यश्व उसके पिता मधु के यहाँ चले गए। सूर्यवंशी नरेशों में नं० ९ व २०, के नाम युवनाश्व थे, किन्तु वे मधु से बहुत पहले के थे। ये युवनाश्व कोई साधारण सूर्यवंशी नरेश समझ पड़ते हैं। मधु ने जामाता हर्यश्व को आनर्त का राज्य दे दिया तथा पुत्र लवण को मधुपुरी (मथुरा) का राज्य दिया। इन्होंने अपने राज्य में आनर्तपुर बसाया। इस प्रान्त को अब कच्छ कहते हैं। मधु द्वारा स्थापित यह सूर्यवंश शायद शार्यात ही हो और उन्होंने अपने दामाद का पुराना वंशाधिकार समझ कर

ही उसे यह राज्य दिया हो। यह सूर्यवंशी शर्याति से पृथक भी हो सकता है। हर्यश्व ने किसी यदु को अपना दत्तकपुत्र बनाया। हरिवंश में ये यदु ययाति के पुत्र ही कहे गए हैं, यद्यपि समय का भारी अंतर होने से ये कोई दूसरे सूर्यवंशी यदु होंगे। जान पड़ता है कि मधुपुरी इसी मधु की बसाई हुई होगी। यदु के सन्तानों का बहुत शीघ्र वह प्रान्त छोड़ना नहीं समझ पड़ता। उधर मधु के पीछे भार्गवों का भी हैहयों में मिलना नहीं ठीक बैठता; क्योंकि इस घटना की कई पीढ़ियों के पीछे परशुराम का जन्म हुआ। अतएव हर्यश्व चाहे शार्यात हों या न हों, शार्यातों का हैहयों में मिलना यदु और मधु से पूर्व की घटना बैठेगी।

सूर्यवंशी, हरिश्चन्द्र वंश, उत्तर कोशल राज्य।

मुख्य सूर्यवंशी नं० ३० सिन्धु द्वीप के समय अथवा पीछे अनरण्य या उनके वंशियों का एक और सूर्यवंशी राज्य स्थापित हुआ। अनरण्य नं० ३० थे। हम नं० ३५ त्रैयारुण को राजा पाते हैं। इनके सूर्यवंशी होने से राजस्थान पुराणों में अयोध्या ही कहा गया है, यद्यपि उस काल वहां दीर्घबाहु, रघु आदि का राज्य था। समझ पड़ता है कि त्रैयारुण का राज्य कान्यकुब्ज के निकट कहीं पर था।

सत्यव्रत, विश्वामित्र, देवराज और वशिष्ठ की कथा निम्न पुराणों में है:

वायु ८८,७८,११६, हरिवंश १२,७१७, से १३,३५३ तक—विष्णु ३,१३,१४। त्रैयारुण राजा बड़ा वेदज्ञ और प्रतापी हुआ। सत्यायन ब्राह्मण में लिखा है कि सूर्यवंशी राजा त्रैयारुण एक बार अपने पुरोहित वृष के साथ रथारोही होकर कहीं जा रहा था कि एक नवयुवक ब्राह्मण उसके नीचे दब गया। राज-वंश के वृद्धों ने निश्चित किया कि इसका अपराधी पुरोहित ही था, सो वृष ने उस ब्राह्मण की चिकित्सा करके उसे आराम कर दिया पर अपने पद से भी त्याग-पत्र दे दिया। इस पर राजा क्षमा मांगकर उसके पैरों पर गिर पड़ा, तब पुरोहित ने उसका अपराध क्षमा किया।

त्रैयारुण का पुत्र सत्यव्रत उपनाम त्रिशंकु युवराज था। इन्होंने

एक ब्राह्मण की नवविवाहिता स्त्री का अपहरण किया, चांडालों का साथ किया तथा कुल गुरु देवराज वशिष्ठ की धेनु का वध कर डाला। इन्हीं तीनों पापों के कारण ये त्रिशंकु कहलाए और वशिष्ठ की सलाह से पिता द्वारा अधिकारच्युत किए गए। पिता के मरने पर भी त्रिशंकु को अधिकार न मिला और वशिष्ठ ही राज्य चलाते रहे। अनन्तर द्वादश वार्षिक अकाल पड़ा और प्रजा की श्रद्धा इन पर शायद कम हुई, जिस पर इन्होंने म्लेच्छ दल रखकर प्रबन्ध किया। किन्हीं राजनीतिक कारणों से कान्यकुब्ज नरेश विश्वामित्र का वशिष्ठ से बिगाड़ हुआ और म० भा० के अनुसार वशिष्ठ के सतगुने शबर और म्लेच्छ-दल ने विश्वामित्री सेना को हराया। इस पर पुत्र को राज्य देकर विश्वामित्र तप करने लगे। वशिष्ठ ने इनका आतिथ्य तो अच्छा किया था, किन्तु शायद मामले में नाहीं कर दी। जंगल में त्रिशंकु ने मृगया द्वारा विश्वामित्र के कुटुम्ब का पालन किया, जिस उपकार के उपलक्ष में महर्षि ने भविष्य में नेक चलन रहने का वचन लेकर इन्हें पिछले पापों से मुक्त कर दिया और सिंहासन पर बिठलाया। अब त्रिशंकु ने यज्ञ करना चाहा, किंतु वशिष्ठ ने यज्ञ कराने से इनकार कर दिया जिस पर इन्होंने विश्वामित्र द्वारा यज्ञ प्रारम्भ किया। कहते हैं कि त्रिशंकु-कृत पापों के कारण देवताओं ने मख भाग न ग्रहण किया जिस पर विश्वामित्र ने नए देवता बना देने की धमकी दी और तब देवताओं ने विवश होकर भाग स्वीकार किया। यह वर्णन दार्ष्टान्तिक है। वशिष्ठ १०,००० विद्यार्थियों को पढ़ानेवाले कुलपति भी थे और उनके प्रभाव से त्रिशंकु के यज्ञ में शायद ब्राह्मण लोग नहीं आते थे, जिससे उसमें त्रुटि रही जाती थी, पर विश्वामित्र ने आत्म-प्रभाव से उसे पूर्ण किया। अब इस राज्य से वशिष्ठ की पुरोहिताई उठ गई और विश्वामित्र अपनी प्राचीन इच्छानुसार पुरोहित हुये।

त्रिशंकु के पुत्र सुप्रसिद्ध महाराज हरिश्चन्द्र हुए जो बड़े ही रूपवान और युद्ध-प्रिय थे। इन्होंने सारे भारतवर्ष का विजय करके अश्वमेध किया। आप बड़े ही प्रसिद्ध दानी थे। कहते हैं कि कोई याचक आपके दरबार से विमुख नहीं लौटा। वास्तव में वैवस्वत मनु और मान्धाता के पीछे इस कुल में ऐसा प्रतापी और सुयशी राजा और

कोई नहीं हुआ था। सत्यप्रियता और दानशीलता को अतः पर सीमा तक पहुँचाने के लिए हरिश्चन्द्र का नाम संसार में सदा अटल रहेगा। इन्होंने सौभपुर उपनाम हरिश्चन्द्र पुर बसाया। हरिश्चन्द्र ने विश्वामित्र की पुरोहिताई में राजसूय करनी चाही, किन्तु वशिष्ठ ने उन्हें राजर्षि ही माना। यह आपत्ति शायद हरिश्चन्द्र ने भी मान ली। इस पर विश्वामित्र तप करने पुष्कर चले गये और वशिष्ठ फिर पुरोहित हुए। हरिश्चन्द्र के बहुत काल पर्यन्त कोई पुत्र उत्पन्न न हुआ। अतः आपने प्रतिज्ञा की कि यदि मेरे वंश होगा तो प्रथम पुत्र को मैं वरुण पर बलिदान चढ़ा दूँगा। कुछ काल में इनके पुत्र उत्पन्न हुआ जिसका नाम रोहिताश्व पड़ा। राजा सत्यप्रियता के कारण बलिदान वाले संकल्प से विमुख न हो सकता था एवं पुत्र-प्रेम वश उसे पूरा भी न कर सकता था। कुछ सयाना होने पर राजकुमार उक्त प्रतिज्ञा के विमोचनार्थ देवराज वशिष्ठ की सलाह से जंगल को चला गया और थोड़े दिनों में लौट आकर उन्हीं के समझाने पर फिर वहीं वापस गया। इसी प्रकार सात बार राजकुमार जंगल से घर आया और हर बार देवराज वशिष्ठ के हठ द्वारा वहीं वापस किया गया। बाईस वर्ष पीछे हरिश्चन्द्र मांस वृद्धि (जलोदर) रोग से पीड़ित हुआ और कुछ लोगों को भ्रम हुआ कि यह संकल्प छेदन का ही परिणाम था। अन्त में रोहित की युक्ति से यह स्थिर हुआ कि राजकुमार के स्थान में कोई ब्राह्मण बालक बलिदान दिया जाय, पर बहुत खोजने पर भी कोई ब्राह्मण अपना पुत्र बेचने को प्रस्तुत न हुआ। होते करते अजीगर्त भार्गव नामक एक वेदर्षि ने अपना मँझला लड़का शुनःशेप १००० गौवों के बदले रोहित के हाथ बेच डाला। इसी गर्हित कर्म के कारण उनकी अजीगर्त (सर्वभक्षी) उपाधि हुई और उनके असली नाम का अब कहीं पता भी नहीं लगता।

यह बालक विश्वामित्र का भागिनेय था और उसे मार्ग में वे मिल गए। शुनःशेप उनके पैरों पड़ा जिस पर उन्होंने उसे चिरजीवी होने का आशीर्वाद दिया। अभागा बालक बोला कि मैं तो बलिदान दिए जाने के लिए बेचा गया हूँ जिस पर विश्वामित्र ने अपना वचन पूरा करने के लिए अपने पचास पुत्रों को आज्ञा दी कि उन में से एक

उसके बदले बलिदान हो जावे, पर कोई भी इस पर राजी न हुआ, जिससे क्रुद्ध होकर विश्वामित्र ने उन्हें देश निकाला का दण्ड देकर आर्य्यसभ्यता ग्रहीत देश की सीमा पर बसने को विवश किया। तब ये बेचारे दण्डकारण्य में जा बसे। वहाँ इनकी शबर, पुलिन्द आदि जातियाँ स्थिर हुईं, अर्थात् ये लोग आर्य्यों से पृथक् हो गये।

जब पुत्रों ने शुनःशेप को बचाने से इनकार किया तब विश्वामित्र हरिश्चन्द्र के यज्ञ में पधारे। अयास्य अंगिरस की प्रधानता में यह यज्ञ हो रहा था। शायद बदनामी से बचने को वशिष्ठ प्रधान न बने हों। वहाँ इस ब्राह्मण कुमार को यज्ञ स्तूप में बाँधने पर कोई राजी न हुआ जिससे सौ गौवें और लेकर अजीगर्त ही ने उसे बाँधा। अनन्तर कोई उसकी बलि करने पर भी तैयार न हुआ। अन्त में अजीगर्त ने १०० गौवें और लेकर पुत्र के मारने का भी काम अंगीकार किया, किन्तु विश्वामित्र के प्रभाव से सभों ने बिना बलि के ही यज्ञ की पूर्णता मान ली और शुनःशेप बच गया। अब इसने अजीगर्त को पिता मानने से इनकार किया होगा और तभी से यह विश्वामित्र का पुत्र माना जाने लगा। यह कथा ऐतरेय ब्राह्मण तथा कई पुराणों में वर्णित है। नर बलि का कोई उदाहरण प्राचीन भारत में नहीं मिलता, केवल यही एक उदाहरण उसके प्रयत्न का लिखा है। शतपथ ब्राह्मण में आया है कि नरबलि कभी नहीं होती थी, केवल मनुष्य का पुतला बलिदान में चढ़ाया जाता था। शुनःशेप के बलि दिये जाने में लोगों की भारी अश्रद्धा से इस कथन को पुष्टि मिलती है। कहते हैं कि इस यज्ञ के पीछे हरिश्चन्द्र रोग मुक्त हुए और रोहिताश्व राजधानी में विराजे।

वचन पालन का इतना उत्कट उदाहरण दिखलाने के पीछे महाराज हरिश्चन्द्र को अपने सत्यपालन पर अहंकार हो गया। उदारता और सत्यप्रियता इनके पुनीत जीवन में योंही परम प्रचुरता से मिली हुई थीं, अतः राजा का अभिमान और भी दिनों दिन बढ़ता ही गया, यहाँ तक कि आपके साधारण व्यवहार में धृष्टता और दर्प की मात्रायें विशेष हो गईं अथच आप ब्राह्मणों, ऋषियों एवं भविष्य-भाषियों का भी अपमान करने लगे। नरबलि करने की

सत्परता से इनकी लोक में कुछ पहले ही से अपकीर्ति फैल चुकी होगी, सो उपर्युक्त कारणों से लोगों को इनके प्रति और भी अश्रद्धा और कुछ रुष्टता पैदा होने लगी। महर्षि विश्वामित्र शुनःशेप के कारण इनसे रुष्ट थे ही, सो इनकी दर्पोक्ति से तंग आकर उन्होंने राजा की सत्यप्रियता की कड़ी परीक्षा लेने का निश्चय किया। विश्वामित्र परीक्षा लेने को आ ही रहे थे कि राजा ने दैववश ऐसा स्वप्न देखा कि अपना राज्य उन्हें दान दे दिया है। स्वप्न में दिये हुए राज्य को भी फिर ग्रहण करने की इच्छा न करके इन्होंने प्रतिग्रह ग्रहीता के नाम पर राज्य का स्वत्व स्थिर किया। इसी बीच में विश्वामित्र ने आकर राजा की इच्छा से राज्य-भार अपने हाथ में लिया और साङ्गता में हरिश्चन्द्र से प्रचुर धन मांगा। उन्होंने यह भी कहा कि राज्य के साथ राज्यकोप भी उनका हो चुका था, सो राजा को यह धन बाहर से देना चाहिये। इस पर राजा हरिश्चन्द्र ने काशी जी में जाकर वहाँ स्त्री, पुत्र और स्वयं अपने को बेच कर यह ऋण चुकाया। इनको शव-दहन की चुङ्गी वसूल करने का काम मिला।

थोड़े दिनों में इनका पुत्र रोहिताश्व सर्पदंश से मूर्छित हो गया और मृत समझ कर इनकी रानी उसे शवागार ले गई। वहाँ पर कर में कुछ न मिलता देख इन्होंने अपने पुत्र का कफन कर स्वरूप लेना चाहा। यह दशा विश्वामित्र से भी न देखी गई। वे हरिश्चन्द्र का राज्य वास्तव में नहीं चाहते थे वरन् राजा को सत्यभ्रष्ट करना मात्र उनको अभीष्ट था। जब इस कड़ी जाँच में भी राजा का सत्य न डिगा तब विश्वामित्र ने हार मान कर अयोध्या का राज्य हरिश्चन्द्र को लौटा दिया। दैववश उसी समय रोहिताश्व की मूर्छा भंग हो गई और जब हरिश्चन्द्र ने दान किया हुआ राज्य स्वयं लेना न चाहा, तब विवश होकर विश्वामित्र ने रोहिताश्व को राजा बनाया। इस कड़ी जाँच में पूरे उतरने के कारण राजा का यश फिर से जाज्वल्यमान हो गया और लोक श्रद्धा इनमें बढ़ी। इस प्रकार उदारता और सत्य का परमोज्वल उदाहरण दिखाकर महाराज हरिश्चन्द्र ने अपना नाम अमर कर लिया। इनके पवित्र चरित्रों के नाटक अब तक खेले जाते हैं। यद्यपि पराक्रम तथा विजयों में हरिश्चन्द्र मान्धाता के सम न थे

तथापि चरित्र गौरव के कारण आपका महत्व उनसे बहुत बढ़ गया। संस्कृत के 'चंडकौशिक' नाटक में इस कथा का सविस्तार वर्णन है। यह चण्डकौशिक वाली कथा देवी भागवत, स्कन्द पुराण आदि में आई तथा अनिश्चित है। यह निश्चित रूप से किसी मान्य पुराण में नहीं है।

रोहिताश्व ने रोहतास गढ़ बसाया। इनके पुत्र हरित उपनाम चम्प ने चम्पापुरी (वर्तमान भागलपुर) बसायी, ऐसा कहीं-कहीं कथित है, किन्तु आनव चम्प द्वारा उसके बसाये जाने का पौराणिक विवरण अधिक मान्य है क्योंकि वहाँ उसी वंश का राज्य था। चम्प पुत्र चंचु उपनाम सुदेव एक अच्छा शासक था। चंचु पुत्र विजयनन्दिन वीर पुरुष था। जैन पंडित हेमचन्द्र ने इन्हें प्राचीन भारत के ६३ महापुरुषों में से एक माना है। इसके पीछे इस वंश का विवरण अप्राप्त है। पुराणों में विजयनन्दिन मुख्य शाखा में रख दिये गये हैं, किन्तु इस वंश के अलग माने जाने से इसका पीछे का हाल अप्राप्त हो गया है। शायद सगर इन्हीं के वंशधर हों।

सूर्यवंशी सगर वंश, मध्य भारत में कोई स्थान।

मुख्य सूर्यवंशी शाखा वाले (नं० ३८) दशरथ के समय में या उससे कुछ इधर उधर प्रायः मध्य प्रदेश में या उससे कुछ उत्तर (नं० ३८) बाहु नामक एक सूर्यवंशी राजा हुए। सम्भवतः ये हरिश्चन्द्र के वंशधर हों। पुराणों में ऐसा लिखा भी है। इस काल नं० ३६ हैहय नरेश तालजंघ ने म्लेच्छ सेना बना कर उत्तरी भारत पर आक्रमण किया। उसमें अयोध्या नरेश पर तो आक्रमण न हुआ, किन्तु काशी, पौरव, तथा कान्यकुब्ज राज्य गिरे। इन्हीं के साथ बाहु का भी राज्य गिर गया और वे अग्नि और्व ऋषि के आश्रम में रहने लगे। वहाँ पर यादवी रानी से सगर नामक उनका प्रतापी पुत्र उत्पन्न हुआ। बाहु का शरीर पात उसी आश्रम में हुआ। अग्नि और्व का सगर से सम्बन्ध मत्स्य १२,४०, तथा पद्म V ८.१४४ में कथित है। सगर द्वारा हैहयों का जीता जाना निम्न आधारों पर आलंबित है। ब्रह्माण्ड III ४८,९,१०, म० भा० III १०६,८ ८३१। महाभारत में बाहु और सगर के अन्य विवरण भी हैं।

अग्नि औौर्व-ऋषि शरणागतवत्सल होने के अतिरिक्त हैहयों के वंश-परम्परागत शत्रु भी थे। अतएव उन्होंने सगर का पालन-पोषण किया और उसको अच्छी शिक्षा दी। अनन्तर सगर के युवक होने पर और्व ने यत्न करके उसे एक भारी सेना का स्वामी बनाया। सगर स्वयं भी अच्छा प्रबन्धकर्त्ता एवं शूर था। हैहय वीतिहोत्र को काशी-नरेश प्रतर्दन पराजित कर ही चुके थे। उनके वंशधर अनन्त, दुर्जय और सुप्रतीक थे। इस वंश की एक और शाखा तालजंघ के पीछे स्थापित हुई थी। सगर ने इन दोनों हैहय शाखाओं को युद्ध में नष्ट करके अपना विशाल राज्य स्थापित किया। यह समय राम से कुछ ही पीछे का है। इस प्रकार सगर ने अपने पिता के शत्रुओं को पराजित करके यश फैलाया। इनका विवाह वैदर्भी केशिनी से हुआ। इनके चुने हुये ६०००० योद्धा बड़े ही स्वामिभक्त और प्रचंड युद्धकर्त्ता थे। सगर इनको अपना पुत्र कहते थे। इनकी सहायता से उन्होंने सारे भारतवर्ष पर विजय पाई और कई यज्ञ किये। एक बार अश्वमेध करने में सगर के इन वीर पुत्रों ने ऋषिधर्षण का पातक कर डाला, अर्थात् कपिल ऋषि के आश्रम में यज्ञाश्व देखकर उन्हीं को घोड़े का चोर माना और भारी उपद्रव मचाया। यह देख ऋषि ने उन्हें अपने क्रोधानल में भस्म कर दिया। यह सेन-वध किस प्रकार हुआ सो पुराणों में समस्त प्रकार से कथित नहीं है। ऋषिधर्षण के कारण इन सैनिकों की मरने पर भी भारी अपकीर्ति हुई। सगरात्मज असमंजस एक उपद्रवी बालक था। खेलते खेलते एक बार उसने प्रजा के कुछ बालकों को नदी में डूबो दिया। इस पर न्यायप्रिय सगर ने उसे पदच्युत करके देश निकाले का दंड दिया था। अब उसी के पुत्र अंशुमान् ने कपिलाश्रम में जाकर ऋषि को अपने पितामह की ओर से सन्तुष्ट किया तथा सैनिकों के सुगति की भी प्रार्थना की। सर्व सम्मति से यह स्थिर हुआ कि प्रायश्चित्तार्थ सगरवंशी पृथ्वी पर गंगाजी के लाने का प्रबन्ध करें। इस वर्णन से समझ पड़ता है कि गंगाजी से कोई भारी नहर खोदवाकर कहीं लाने का प्रबन्ध हुआ होगा। अंशुमान्, तत्पुत्र दिलीप और पौत्र भगीरथ तक ने बराबर तीन पुश्तों तक इस प्रयत्न को जारी रक्खा और तब जाकर राजा

भगीरथ इस शुभ कार्य्य में सफल-मनोरथ हुये। अंशुमान् राजर्षि कहे गये हैं। दिलीप का राजत्वकाल छोटा ही था। गंगावतरण से महत्कार्य्य के साधन करने से भगीरथ का बहुत बड़ा यश हुआ।

महाराजा भगीरथ ने राजसूय और अश्वमेध यज्ञ किये। इससे जान पड़ता है कि आपने भी भारतीय राजमंडल को इन यज्ञों के साधन में पराजित किया होगा। भगीरथ के पीछे इस वंश का पता नहीं है। इसका वर्णन वाल्मीकीय रामायण में भी है। महाभारत शान्ति पर्व में आया है कि सगर पहले तालजंघ से हारे और फिर शत्रुओं को जीत कर अश्वमेध कर्त्ता सम्राट् हुये।

सूर्यवंशी, दक्षिण कोशल वंश।

खट्वांग दिलीप के पुत्र महाराजा दीर्घबाहु वाले समय के आस पास हम दक्षिण कोशल में सूर्यवंशी ऋयुतायुस को शासक पाते हैं। प्रधान ने कई पुराणों में खोज करके इन्हीं का नाम भगस्वर लिखा है। उनके पुत्र ऋतुपर्ण प्रसिद्ध निषधनाथ नल के मित्र थे। नल से अश्व ज्ञान लेकर आपने उन्हें संख्या शास्त्र बतलाया। वही समय विदर्भनाथ (नं० ३४) भीमरथ यादव का था। नल उत्तर पांचाल नरेश (नं० ३६) मुद्गल के श्वसुर एवं उनके पिता भृम्यश्व (नं० ३५) के समधी थे। भीमरथ नल के श्वसुर थे। इन्हीं सम्बन्धों से नल के आधार पर ऋतुपर्ण का समय दृढ़ होता है (आधारों का कथन ऋग्वेद X १०२, २, इन्द्र सेना मुद्गलानी ने अपने पति मुद्गल का रथ युद्ध में हाँका। म० भा० III ५७,४६, नल की कन्या इन्द्र सेना मुद्गल की पत्नी थी। म० भा० वनपर्व में नल की कथा है, तथा उनसे ऋतुपर्ण, भीमरथ आदि से सम्बन्ध कथित है)। ऋतुपर्ण के पौत्र सुदास तथा प्रपौत्र कल्माषपाद थे। महाभारत में लिखा है कि राक्षसों के साथ ये नर-भक्षी हो गए थे। वशिष्ठ इनके पुरोहित थे। विश्वामित्र के भड़काने से इन्होंने वशिष्ठ पुत्र शक्ति को खा डाला, तथा उनके ९९ भाई भी मार कर खाये। इधर ऋग्वेद पर वेदार्थ अनुक्रमणी तथा वृहद्देवता में इन पुत्रों का विश्वामित्र के कहने से पांचाल सुदास या सौदासों द्वारा मारा जाना लिखा है। ज्ञान पड़ता है कि जब विश्वामित्र वशिष्ठ के

प्रयत्नों से हरिश्चन्द्र की पुरोहिताई से अलग हुए और पीछे किन्हीं कारणों से वशिष्ठ उत्तर पांचाल नरेश सुदास के पुरोहित हुये, तब अपना बदला चुकाने को इन्हीं (विश्वामित्र) ने सुदास के पुरोहित होकर वशिष्ठ के कुछ पुत्रों का वध करवाया। सम्भवतः वशिष्ठ का सुदास से भी बिगाड़ हो गया हो। अतएव सुदास को छोड़ वे दक्षिण कोशल नरेश कल्माषपाद के यहां पुरोहित हो गए। यहां विश्वामित्र राज्य में अधिकारी तो न हुए, किन्तु किंकर नामक राक्षस को उन्होंने राजा का अन्तरंग मित्र बना दिया, जिससे वशिष्ठ के शेष पुत्र राजा द्वारा मारे गए। ऐसा समझ पड़ता है कि इनके कुछ पुत्र पांचाल में मारे गए और कुछ दक्षिण कोशल में (म० भा० आदि पर्व)। अनन्तर वशिष्ठ ने नियोग से कल्माषपाद की रानी में पुत्र उत्पन्न किया। इसके पीछे वे शायद राम के यहां उत्तर कोशल में चले आये। इसके पूर्व भी दशरथ के यहां शायद आते जाते थे। अयोध्या में वशिष्ठ का विश्वामित्र से शत्रुता शेष न थी। कल्माषपाद के पीछे दक्षिण कोशल में दो शाखायें हो गईं, अर्थात्

(३९) कल्माषपाद { ....अश्मक...उरकाम.. मूलक (४२)
...सर्व कर्मन...अनरण्य...निघ्न...अनमित्र(४३) }

दक्षिण कोशल राज्य का विस्तार चौथे अध्याय में दिया जा चुका है। प्रधान महाशय ने लिखा है कि निषध, विदर्भ, दक्षिण कोशल, चेदि और दशार्ण रियासतों की हदें एक दूसरे से मिली हुई थीं। राजा युधिष्ठिर के यज्ञार्थ सहदेव ने वैदर्भ भीष्मक तथा दक्षिण कोशलेश को हराया। अश्मक ने पौण्डन्य बसाया। बौद्ध काल में अस्मकों की राजधानी यही पोतन थी। मूलक ने अपने नाम पर मूलक नगर बसाया। पोतन के पीछे यही अस्मकों की राजधानी हुई। इन अंतिम कथनों के आधार आदिम कलिकाल वाले अध्याय में हैं।

हरिश्चन्द्र, सगर तथा दक्षिण कोशल वंशों पर विचार।

पुराणों के अनुसार चल कर पार्जिटर महाशय ने हरिश्चन्द्र को वैवस्वत मनु का ३३वां वंशधर माना है, सगर को ४०वां, सगरवंशी

भगीरथ इस शुभ कार्य्य में सफल-मनोरथ हुये। अंशुमान् राजर्षि कहे गये हैं। दिलीप का राजत्वकाल छोटा ही था। गंगावतरण से महत्कार्य्य के साधन करने से भगीरथ का बहुत बड़ा यश हुआ।

महाराजा भगीरथ ने राजसूय और अश्वमेध यज्ञ किये। इससे जान पड़ता है कि आपने भी भारतीय राजमंडल को इन यज्ञों के साधन में पराजित किया होगा। भगीरथ के पीछे इस वंश का पता नहीं है। इसका वर्णन वाल्मीकीय रामायण में भी है। महाभारत शान्ति पर्व में आया है कि सगर पहले तालजंघ से हारे और फिर शत्रुओं को जीत कर अश्वमेध कर्त्ता सम्राट् हुये।

सूर्यवंशी, दक्षिण कोशल वंश।

खट्वांग दिलीप के पुत्र महाराजा दीर्घबाहु वाले समय के आस पास हम दक्षिण कोशल में सूर्यवंशी श्रयुतायुस को शासक पाते हैं। प्रधान ने कई पुराणों में खोज करके इन्हीं का नाम भगस्वर लिखा है। उनके पुत्र ऋतुपर्ण प्रसिद्ध निषधनाथ नल के मित्र थे। नल से अश्व ज्ञान लेकर आपने उन्हें संख्या शास्त्र बतलाया। वही समय विदर्भनाथ (नं० ३४) भीमरथ यादव का था। नल उत्तर पांचाल नरेश (नं० ३६) मुद्गल के श्वसुर एवं उनके पिता भृम्यश्व (नं० ३५) के समधी थे। भीमरथ नल के श्वसुर थे। इन्हीं सम्बन्धों से नल के आधार पर ऋतुपर्ण का समय दृढ़ होता है (आधारों का कथन ऋग्वेद X १०२, २, इन्द्र सेना मुद्गलानी ने अपने पति मुद्गल का रथ युद्ध में हाँका। म० भा० III ५७,४६, नल की कन्या इन्द्र सेना मुद्गल की पत्नी थी। म० भा० वनपर्व में नल की कथा है, तथा उनसे ऋतुपर्ण, भीमरथ आदि से सम्बन्ध कथित हैं)। ऋतुपर्ण के पात्र सुदास तथा प्रपौत्र कल्माषपाद थे। महाभारत में लिखा है कि राक्षसों के साथ ये नरभक्षी हो गए थे। वशिष्ठ इनके पुरोहित थे। विश्वामित्र के भड़काने से इन्होंने वशिष्ठ पुत्र शक्ति को खा डाला, तथा उनके ९९ भाई भी मार कर खाये। इधर ऋग्वेद पर वेदार्थ अनुक्रमणी तथा बृहद्देवता में इन पुत्रों का विश्वामित्र के कहने से पांचाल सुदास या सौदासों द्वारा मारा जाना लिखा है। जान पड़ता है कि जब विश्वामित्र वशिष्ठ से

प्रयत्नों से हरिश्चन्द्र की पुरोहिताई से अलग हुए और पीछे किन्हीं कारणों से वशिष्ठ उत्तर पांचाल नरेश सुदास के पुरोहित हुये, तब अपना बदला चुकाने को इन्हों (विश्वामित्र) ने सुदास के पुरोहित होकर वशिष्ठ के कुछ पुत्रों का वध करवाया। सम्भवतः वशिष्ठ का सुदास से भी बिगाड़ हो गया हो। अतएव सुदास को छोड़ वे दक्षिण कौशल नरेश कल्मापपाद के यहां पुरोहित हो गए। यहां विश्वामित्र राज्य में अधिकारी तो न हुए, किन्तु किंकर नामक राक्षस को उन्होंने राजा का अन्तरंग मित्र बना दिया, जिससे वशिष्ठ के शेष पुत्र राजा द्वारा मारे गए। ऐसा समझ पड़ता है कि इनके कुछ पुत्र पांचाल में मारे गए और कुछ दक्षिण कोशल में (म० भा० आदि पर्व)। अनन्तर वशिष्ठ ने नियोग से कल्मापपाद की रानी में पुत्र उत्पन्न किया। इसके पीछे वे शायद राम के यहां उत्तर कोशल में चले आये। इसके पूर्व भी दशरथ के यहां शायद आते जाते थे। अयोध्या में वशिष्ठ का विश्वामित्र से शत्रुता शेष न थी। कल्मापपाद के पीछे दक्षिण कोशल में दो शाखायें हो गईं, अर्थात्

(३९) कल्मापपाद { ....अश्मक...उरकाम.. मूलक (४२)
...सर्व कर्मन...अनरण्य...निघ्न...अनमित्र(४३)

दक्षिण कोशल राज्य का विस्तार चौथे अध्याय में दिया जा चुका है। प्रधान महाशय ने लिखा है कि निषध, विदर्भ, दक्षिण कोशल, चेदि और दशार्ण रियासतों की हदें एक दूसरे से मिली हुई थीं। राजा युधिष्ठिर के यज्ञार्थ सहदेव ने वैदर्भ भीष्मक तथा दक्षिण कोशलेश को हराया। अश्मक ने पौरडन्य बसाया। बौद्ध काल में अश्मकों की राजधानी यही पोतन थी। मूलक ने अपने नाम पर मूलक नगर बसाया। पोतन के पीछे यही अश्मकों की राजधानी हुई। इन अंतिम कथनों के आधार आदिम कलिकाल वाले अध्याय में हैं।

हरिश्चन्द्र, सगर तथा दक्षिण कोशल वंशों पर विचार।

पुराणों के अनुसार चल कर पार्जिटर महाशय ने हरिश्चन्द्र को वैवस्वत मनु का ३३वां वंशधर माना है, सगर को ४०वां, सगरवंशी

भगीरथ को चौवालीसवां, कल्मापपाद को ५२वाँ, मूलक को ५५वां, तथा राम को ६३ वां। इस प्रकार ये राम के सीधे पूर्व पुरुष हो जाते हैं और इनके समयों में राम से भारी अन्तर पड़ता है। इधर इनके अनुसार उत्तर पांचाल नरेश सुदास मनु से केवल ४३वीं पीढ़ी पर पड़ते हैं। पुराणों के ही कथन मिलाने से इन्हीं सुदास के सगे पितामह सृंजय की दो पुत्रियां राम के समकालीन सात्वन्त यादव के पौत्र भजमान को ब्याही थीं (यादव वंशावली देखिए)। राम के मित्र अलर्क के पितामह प्रतर्दन ने वीतिहोत्र हैयय को जीता तथा सगर ने वीतिहोत्र के पौत्र और प्रपौत्र को (काशी और सगर के वर्णन में देखिए)। यही विश्वामित्र हरिश्चन्द्र के पिता त्रिशंकु को यज्ञ कराते, स्वयं हरिश्चन्द्र के यज्ञ से शुनःशेप को बचाते और ऋग्वेद में सुदास का यश गाते तथा राम को अस्त्र विद्या सिखलाते हैं। ऊपर अनेक प्रसंगों में इस विषय पर अनेकानेक अन्य कारण भी दिए गये हैं। अतएव इन तीन सूर्यवंशी कुटुम्बों का उत्तर कोशल की वंशावली में मिलाना पौराणिक कथनों का तारतम्य बिलकुल बिगाड़ता है। समझ पड़ता है कि गुप्तकालीन पौराणिक सम्पादकों के ज्ञानाभाव से सूर्य की वंशावली बढ़ गई है।

सूर्यवंशी मैथिल शाखा

शतपथ ब्राह्मण में लिखा है कि रावी नदी के किनारे से चल कर माथव नामक राजर्षि अपने पुरोहित रहूगण की सलाह से राप्ती नदी के पूर्व मिथिला प्रान्त में स्थापित हुए। उस काल राजधानी जयन्त हुई (वायु ८९, १,२,६, ब्रह्माण्ड ।।। ६, ४,१,६)। इधर पुराणों के अनुसार इक्ष्वाकु के पुत्र निमि ने ऐसा किया। इन्हीं निमि के पुत्र मिथि थे। इनका नाम माथव से मिलता है। सम्भव है कि मिथिला प्रान्त माथव के नाम पर बना हो, अथवा मिथि के। यह भी हो सकता है कि माथव नाम प्राकृत में मिथि के कारण निकला हो। इधर विदेह के सूर्यवंश से १२ नाम छूट भी रहे हैं। इनको जोड़े बिना राजा दशरथ और सीरध्वज जनक की समकालीनता नहीं मिलती। समझ पड़ता है कि सम्भवतः मिथिला में पहले माथव का वंश शासक

रहा हो और दस बारह पुश्तों के पीछे निमि और मिथि ने वहाँ सूर्यवंशी राज्य जमाया हो। राजा निमि यज्ञ करने लगे। इसमें पुरोहिताई के सम्बन्ध में किसी वशिष्ठ से लड़ाई हो गई, जिसमें दोनों ने एक दूसरे को शरीर त्याग का शाप दिया। प्रयोजन यह निकला कि दोनों ने द्वन्द्व युद्ध में एक दूसरे का वध कर डाला। मिथि ने मिथिलापुरी बसाई। इसके पीछे सीरध्वज के समय तक इस वंश में कोई मुख्यता नहीं कथित है। सीरध्वज ने सांकाश्य राज्य को जीत कर अपने भाई कुशध्वज को वहां का राजा बनाया। सांकाश्य और मैथिलवंशों के कथन रामायण बालकाण्ड में हैं (७० वां अध्याय)। कुशध्वज का राज्य सांकाश्य में चार पीढ़ी चला। इस वंश में खांडिक्य ब्रह्मज्ञानी थे, ऐसा पुराणों में आया है। मितध्वज के पुत्र खाण्डिक्य से कृतध्वज के पुत्र केशिध्वज का युद्ध हुआ और फिर ज्ञान चर्चा हुई (भागवत IX १३, २१)। भागवत के अनुसार सीरध्वज का मुख्यवंश युधिष्ठिर काल तक चलता गया। जो जनक बृहदारण्यकोपनिषत् में सम्राट और याज्ञवल्क्य के शिष्य तथा ब्रह्मज्ञानी कहे गए हैं, वे युधिष्ठर के बहुत पीछे के हैं। उनका कथन यथा स्थान होगा। सीरध्वज का कुछ विवरण १३वें अध्याय में भी आवेगा। आप राम के श्वसुर थे।

सूर्यवंश, वैशाली शाखा।

मनु वैवस्वत के पुत्र नाभानेदिष्ट ने एक वैश्या स्त्री से विवाह किया, जिससे इस वंश की संज्ञा क्षत्रिय वैश्य की है, जैसे पौरव भरत के ब्राह्मण दत्तक पुत्र विदथिन भरद्वाज के कारण उस वंश की बहुत दिनों तक ब्रह्मक्षत्रिय संज्ञा रही। इसी प्रकार पल्लव और वाकाटक नरेश ब्राह्मण से क्षत्रिय होगए, सो उनकी संज्ञा बहुत काल तक ब्रह्मक्षत्रिय थी, तथा गुप्त नरेश जाट क्षत्रिय थे। ये सब थे क्षत्रिय और रहे अन्त में क्षत्रिय ही, किन्तु कुछ दिनों तक दूसरी जाति का भी विचार उनमें लगा रहा। नाभानेदिष्ट काशी के उत्तर पूरब बिहार प्रान्त में स्थापित हुए। नामों के साम्य से अयोध्या शाखा वाले (नं० २८) नाभाग सम्बन्धी कथन नाभानेदिष्ट वालों से मिल से जाते हैं।

इन दोनों के विषय में वैश्या से विवाह के कथन हैं, जो सम्भवत: एक ही के विषय में लागू हों। नाभानेदिष्ठ (नं० २) से खनीनेत्र (नं० ११) तक कोई विशिष्ट घटना नहीं है। इनके पुत्र करन्धम पर कई राजाओं ने असफल चढ़ाई की। इन्होंने विदिशापति को हराया, तथा इनके पुत्र अवीक्षित का उन्हीं विदिशा वालों से युद्ध हुआ। अवीक्षित के पुत्र मरुत्त बड़े प्रतापी सम्राट् हुए। आपका नं० १४ था। मरुत्त ने हिमालय में सोने की खान पाकर भारी यज्ञ किया। जो धन बच रहा, उसे आपने वहीं गाड़ दिया। उसी को पाकर द्वापर में पौरव युधिष्ठिर ने यज्ञ किया। मरुत्त ने बृहस्पति के भाई सम्वर्त के द्वारा यज्ञ कराया था। यह कथा अश्वमेध पर्व महाभारत में लिखी है और द्रोण पर्व में आया है कि युधिष्ठिर के पूर्ववर्ती १६ मुख्य भारतीयों में मरुत्त भी थे। तुर्वश वंशी (नं० २२) मरुत्त के विषय में भी संवर्त द्वारा यज्ञ होना पुराणों में लिखा है। दोनों सम्राट भी लिखे हैं। सम्भवत: एक ही नाम के कारण दोनों के चरित्र एक ही में कह दिए गये हों। तौर्वश मरुत्त का समय भी संवर्त ऋषि से मिलता है, तथा वैशाल मरुत्त का नहीं मिलता। इससे यज्ञ और साम्राज्य के वर्णन वैशाल मरुत्त के विषय में ठीक नहीं समझ पड़ते। इस वंश के २६ वें नरेश विशाल ने विशालपुरी बसाई, जो इस रियासत की राजधानी हुई। काशी नरेश (नं० २५) हर्यश्व के समय में हैहय तालजंघ ने काशी जीती। उस काल के निकट प्रमति अन्तिम वैशाल नरेश थे। शायद इनका राज्य हैहयों ने छीना हो। विशाल और वैशाली के कथन निम्न आधारों में प्राप्त हैं। वायु ८६, १५, १७, विष्णु IV १, १८, रामायण I ४७, १२ भागवत IX २, ३३, ब्रह्माण्ड III ६, १, १२।

सम्मिलित विवरण।

मनु वैवस्वत के समय कई सूर्यवंशी रियासतें स्थापित हुईं। उत्तर कोशल, शर्याति, हरिश्चन्द्र, सगर, दक्षिण कोशल, विशाल तथा मिथिलावाली इन सात रियासतों का ऊपर कुछ विशेष विवरण हो चुका है, तथा दक्षिण में रावण का भी वर्णन आ गया है। यह इति-

हास वाल्मीकीय रामायण, महाभारत, हरिवंश, विष्णु पुराण, श्री भागवत् आदि के आधार पर लिखा गया है। जहाँ वैदिक साहित्य का सहारा लिया गया है, वहाँ मुख्य रूप से ऐसा कह दिया गया है। उपर्युक्त कथायें प्रायः सभी पुराणों में आई हैं और उनके हवाले हम देते भी आये हैं। पौराणिक कथन बहुतों को ज्ञात हैं तथा आगे एक स्थान पर भी उनके हवाले १२ वें अध्याय में दे दिए जावेंगे। अब इन सूर्यवंशों के विषय में वैदिक तथा अन्य ग्रन्थों में क्या विशेष कथन हैं, सो भी यहाँ कहा जाता है। इस निम्न कथन में हमें रायचौधरी से विशेष सहायता मिली है।

ऋग्वेद, ४, ३०, १८, सरयू नदी के निकट आर्य बस्ती बतलाता है। कोशल प्रायः अवध प्रान्त है। विदेह में पहले दलदल था। माथव ने उसे देश बनाया। कोशल के उत्तर हिमालय है, पूर्व सदानीर, दक्षिण स्यन्दिका (सई नदी) और पश्चिम पांचाल देश। शाक्य कोशल में थे (सुत्तनिपात)। अयोध्या साकेत और श्रावस्ती शहर थे। बौद्ध काल में अयोध्या तथा साकेत दोनों थे। श्रावस्ती राप्ती के निकट सहेत माहेत है। शतपथ ब्राह्मण में कोशल राज्य कुरु पांचाल के पीछे किन्तु विदेह के पूर्व महत्ता युक्त है। इक्ष्वाकु वंश के राजे विशाला या वैशाली (रामा० I ४७, ११, १२) मिथिला (वायु पु० ८९, ३) तथा कुसिनारा (जातक नं ५३१) में राज्य करते थे।

ऋग्वेद के ऋषियों में मनु वैवस्वत, शर्याति, त्रसदस्यु, अम्बरीष और मान्धातृ थे। ऋग्वेद X ६०, ४ में इक्ष्वाकु हैं। अथर्ववेद XIV ३९, ९, में वे या कोई इक्ष्वाकु हैं। मान्धातृ यौवनाश्व गोपथ ब्राह्मण I २, १०, में हैं। पुरुकुत्स के कथन ऋग्वेद में बहुत हैं, जैसा कि वैदिक अध्यायों में आ चुका है।

ऋग्वेद I ८३,७,VI २०,१० शतपथ ब्रा० XIII ५,४५ में वे ऐक्ष्वाकु हैं। त्रसदस्यु (ऋग्वेद IV ३८,१, VII १९,३) पुरुकुत्स के पुत्र थे। इनका भी वर्णन ऋग्वेद में बहुत है, जैसा कि ऊपर वैदिक अध्यायों में आया है। त्रैयारुण, ऋग्वेद V २७ पंचविंश ब्रा० XIII ३,१२, ऐक्ष्वाकु थे। त्रिशंकु, तैत्तिरीय उ० I १०,१, हरिश्चन्द्र, ऐतरेय ब्राह्मण VII १३,१६ और रोहित, ऐतरेय ब्राह्मण VII १४, ऐक्ष्वाकु थे। भगीरथ (जैमिनीय

उपब्राह्मण IV २, १२) ऐक्ष्वाकु थे। ऋग्वेद X ६०२ में वे भाजेरथ थे। अम्बरीष ऋग्वेद i १००,१७, ऋतुपर्ण, बोधायन श्रौतसूत्र XX १२, दशरथ (ऋग्वेद, I १२६,४) और राम (ऋग्वेद X ९३,१४) में सराक पुरुष हैं। दोनों अयोध्या से असम्बद्ध हैं। दशरथ जातक में दशरथ और राम वाराणसी नरेश हैं, तथा राम के कथन हैं, किन्तु यह नहीं आया है कि वे कोशलेश या रावणारि थे। राम यज्ञकर्ता हैं और इन्द्र भी कई बार राम कहे गए हैं। त्रसदस्यु ऋग्वेद IV ३८,१, Vii १९,३, ऋतुर्पण शर्कात नरेश, शुद्धोदन कपिलवस्तु के तथा प्रसेनजित श्रावस्ती के विविध देशों के राजा थे। पुरुकुत्स, त्रसदस्यु, हरिश्चन्द्र, रोहित ऋतुर्पण आदि रामायण की अयोध्यावाली वंशावली में नहीं हैं, तथा वैदिक साहित्य कहता है कि इनमें से कई उत्तर कोशल से बाहर अन्य देशों के शासक थे (राय चौधरी)।

कोशल और मिथिला के बीच सदानीर (राप्ती) नदी थी। मिथिला के कथन जातकों तथा पुराणों में हैं। वर्तमान जनकपुर नैपाल में है। वैदिक तालिका, न० i ४३६, में नमीसाप्य मैथिल राजा हैं। शतपथ ब्राह्मण में विदह राज्य विदेध माथव द्वारा स्थापित है। प्रसिद्ध बौद्ध ऐतिहासिक ग्रन्थ मंजुश्री मूल कल्प में दशरथ और दाशरथी राम के नाम प्राचीन महीपों में हैं।

उपरोक्त वर्णन से प्रकट है कि सूर्यवंश में ७ मुख्य राज्य स्थापित हुए, तथा एक धार्ष्ट एवं तीन सौद्युम्न राज्य बने। मुख्य कथन मध्य-देश वाले राज्यों के हुए। इतर कथाओं के सम्बन्ध में दक्षिण कोशल का भी विवरण आ गया है। सूर्यवंशी नरेशों में इस काल मुख्यता निम्नों की हैः—मनु, इक्ष्वाकु, पुरंजय, मान्धाता, त्रसदस्यु (इनकी ऋग्वेद में भी भारी प्रशंसा है), वृक, नाभाग, अम्बरीष, दिलीप, रघु, अज, दशरथ, राम, (मुख्य शाखा के), हरिश्चन्द्र, रोहित, सगर, भगीरथ, ऋतुपर्ण, कल्मापपाद, अश्मक, मूलक, अनरण्य, निमि, मिथि, सीरध्वज, नाभानेदिष्ठ, करन्धम, अर्वीक्षित, मरुत्त, विशाल, शर्याति, और यदु। इनमें बहुत प्रसिद्ध मनु, इक्ष्वाकु, मान्धाता, त्रसदस्यु, दशरथ, राम, हरिश्चन्द्र, सगर, भगीरथ और सीरध्वज थे। इन लोगों ने उत्तरी भारतवर्ष में खासा प्रभाव फैलाया, तथा दक्षिण कोशल

राज्य स्थापित किया, और लङ्का को भी जीत कर रावण द्वारा आर्य सभ्यता पर जो प्रचंड आघात हो रहे थे, उन्हें शान्त किया। रामचन्द्र इन सब में उत्तम थे। इनके बराबर इस काल तक कोई भारतीय न हुआ था। दशरथ ने तिमिध्वज शम्बर के जीतने में दिवोदास की सहायता की, तथा सुदास ने वर्चिन को जीता। शम्बर, वर्चिन और रावण के पराभव से अनार्यों का तत्कालीन बल चूर्ण हो गया। सुदास ने अनार्य भेद को भी हराया। दिवोदास और सुदास पौरव नरेश थे, जिनके कथन आगे आवेंगे। रावण की इन्द्रिय लोलुपता के कारण उनका अपने साढ़ू तिमिध्वज शम्बर से बिगाड़ हो गया, जिससे जब शम्बर दिवोदास और दशरथ द्वारा मारा जा रहा था, तब रावण ने उसकी सहायता न की। फल यह हुआ कि पीछे वह भी जैचन्द के समान मारा गया। नवें अध्याय में (नं० २१) रावण का वंश विवरण आ गया है। वहाँ वंश के हिसाब से उनका (नं० ३५) बैठता है। रावण के द्वारा दक्षिण कोशल नरेश अनरण्य (नं० ४१) का मारा जाना रामायण में है; तथा राम (नं० ३९) द्वारा रावण का निधन है। इससे समझ पड़ता है कि वैशाली का वंश (नं० ३५) मुख्य सूर्यवंश के (नं० ३९) के निकट पड़ता है। इस प्रकार रावण की वंशावली से भी उत्तर और दक्षिण कोशल की वंशावलियों का समर्थन होता है। रावण का वंश नम्बर कुछ ऊँचा होने का यह भी कारण है कि उस शाखा में सभी पूर्व पुरुषों के नाम हैं, राज्यों के उत्तराधिकार के सम्बन्ध में भाइयों आदि के नहीं।

ग्यारहवां अध्याय

मनु-रामचन्द्रकाल (त्रेतायुग)।

१६०० से १२५० बी० सी०

पौरव वंश (पौरवों की कथा मुख्यतया महाभारत में है)

मुख्य शाखा हस्तिनापुर की।

गत अध्याय में कहा जा चुका है कि मनु के साथ बुध भी भारत में आकर प्रतिष्ठानपुर प्रयाग के निकट स्थापित हुए। आप चन्द्रात्मज थे। इन्हीं से प्रसिद्ध चन्द्रवंश चला। मनु पुत्री इला बुध को ब्याही थी। इन्हीं दोनों का पुत्र परम रूपवान प्रसिद्ध राजा पुरूरवस हुआ। कहते हैं कि पुरूरवस ने १३ या १४ द्वीपों पर अधिकार जमाया। उस काल किसी दूर देशस्थ राज्य को भी द्वीप कह देते थे।

राजा पुरुरवस ने ब्राह्मणों से वैर कर के (म० भा० के अनुसार) उनका धन छीन लिया। इस के पीछे समय पर चन्द्रवंशियों का मुख्य राज्य इनके पौत्र नहुष को मिला। नहुष ने प्रायः समस्त भारत को जीत कर सम्राट् की उपाधि पाई। आपने एक भारी यज्ञ किया, किन्तु राज्य सम्बन्धी बातों में इतनी कड़ाई रक्खी कि ऋषियों तक से कर लिया। मध्य एशिया से नाटक खेलने का प्रचार आपने भारत में भी बढ़ाया या स्थापित किया। इस काल शायद मध्य एशिया के सम्राट् इन्द्र के यहाँ राज्य क्रान्ति का समय आया। वृत्र नामक कोई ब्राह्मण सुमार इन्द्र का घोर विरोधी हो पड़ा। इन्द्र ने छल से उसका बध किया। इस ब्राह्मण हिंसा से उनकी इतनी अपकीर्ति हुई कि उन्हें राज्य छोड़ कर निकल जाना पड़ा। वेद में वृत्र बध का कथन दार्ष्टान्तिक है। यहाँ बिजली द्वारा बादलों से पानी निकलने का प्रयोजन था जाता है। यह भी लिखा है कि वृत्र को मार कर इन्द्र भयातुर हो कर भागे। यह देख इन्द्र के सरदारों ने एक मत से महात्मा नहुष को

इन्द्रासन पर बिठलाया। इन्द्र का बड़ा पद पाकर सम्राट् नहुष मदोन्मत्त हो गये। इन्हों ने इन्द्राणी शची से विवाह करने की ठानी। पहले तो वे इनकार करती रहीं किन्तु पीछे से कहने लगीं कि उनके पति की दुर्दशा करनेवाले ब्राह्मणों का यदि नहुष मान मर्दित करें तो वे (शची) उनके साथ विवाह करना स्वीकार करेंगी। नहुष भारत में भी ऋषियों तक से कर वसूल करते थे सो इस बात को इन्होंने सहर्ष मान लिया और प्रसिद्ध-प्रसिद्ध ऋषियों को अपनी सवारी की पालकी में जोत कर आप शची के महल की ओर प्रस्थित हुए। नहुष की इस कार्य्यवाही से इन्द्र के सारे सरदार उनसे अप्रसन्न हो गए। ब्राह्मणों ने नहुष का तत्काल वध किया और राज्यच्युत इन्द्र फिर से बुलाये जाकर गद्दी पर बिठलाये गये।

नहुष के ज्येष्ठ पुत्र यति ब्राह्मण हो गये (म० भा०, ह० वं० ३०, १६०१; वायु पु० ९३, १४) और दूसरे पुत्र प्रसिद्ध महाराजा ययाति सम्राट् हुये। ये नहुष के पुत्र और बड़े भारी धर्मात्मा थे। वेदों में पुरूरवा, नहुष, ययाति और इनके पाँचों पुत्रों के नाम बहुत बार आये हैं। महाराजा ययाति ने कई यज्ञ किये और उचित पात्रों को बहुत दान दिया। ययाति सबल और लोकप्रिय थे। आपने भारी सेना एकत्र करके समस्त भारतवर्ष को जीता और सम्राट् पद को स्थिर रक्खा। पुत्रों के प्रति आपकी ये तीन प्रधान आज्ञाएँ थीं कि किसी से बदला न लो, नीच युक्तियों से शत्रु का दमन मत करो और किसी से कुछ मत मांगो। असंख्य गुणगण रखते हुए ययाति में अभिमान का अवगुण भी था। इन्होंने दो विवाह किये। बड़ी रानी शुक्राचार्य की कन्या देवयानी थी और दूसरी दैत्यराज वृषपर्वा की कन्या शर्मिष्ठा। देवयानी से यदु और तुर्वश नामक दो पुत्र हुए और शर्मिष्ठा से अनु, द्रुह्यु और पुरु उत्पन्न हुए। पुराणों में ययाति का दौहित्रों द्वारा स्वर्गच्युत होने से बचाये जाने का हाल कहा गया है, किन्तु इसका अभिप्राय राज्यच्युत होने से बचाव का समझ पड़ता है। इनका राज्य अभिमानाधिक्य के कारण ही छूटता था। शायद यह दुर्गुण इन्होंने अपने पिता से पाया था। पुरूरवा, नहुष और ययाति वेदर्षि भी थे। सब बातों पर ध्यान देने से प्रकट है कि ययाति एक बहुत बड़े शासक थे। मानसिक दृढ़ता

भी इनमें बहुत थी। चार बड़े पुत्रों द्वारा अपनी आज्ञा भंग होते देख इन्होंने उन सबको राज्यच्युत कर दिया और छोटे बेटे पुरु को सम्राट् बनाया। बड़े पुत्रों में से इन्होंने तुर्वश को प्रजा (पुत्र) नाश का शाप दिया। पुराणों में लिखा है कि तुर्वश वंशी यवन हो गये। द्रुह्यु को यह शाप हुआ कि तुम्हें प्रियकामना न होगी। अनु को यह शाप दिया गया कि तुम्हारे पुत्र जवान हो-हो कर मर जायँगे। पुराणों से विदित होता है कि अनु को म्लेच्छ देश का राज्य मिला। द्रुह्यु के वंशधर भोज कहे गये हैं। पुराणों में ययाति के वंशधरों का सुदास से पराजित होना नहीं लिखा है परन्तु इन शापों से इस दुर्घटना की झलक मिलती है। ऋग्वेद से विदित होता है कि दिवोदास ने ययाति पुत्र अनु और द्रुह्यु के कुछ सन्तानों को मारा और तत्पुत्र सुदास ने आनवों तथा शेष नाहुषों का घोर संहार किया। इस युद्ध में केवल पौरव सम्मिलित न थे। महाराजा ययाति के पीछे उनके मुख्य घराने के शासक पुरु हुये।

राज्य का बटवारा ययाति ने इस प्रकार किया:—(वायु ९३,८८,९० ब्रह्माण्ड III ६८,९०,२, कूर्म I २२,९,११, लिंग I ६७,११,२) पुरु प्रतिष्ठान में रक्खे जाकर गंगा यमुना वाले दक्षिणी द्वाबे के स्वामी बनाये गए; यदु के राज्य में चम्बल, बेतवै और केन के देश मिले; द्रुह्यु को चम्बल के उत्तर यमुना के पश्चिम वाला देश मिला; अनु को गंगा, यमुना के द्वाब का उत्तरी भाग, तथा तुर्वश को रीवाँ। तुर्वश द्वारा सम्भवतः करूष और नाभाग वंशी पराजित किए गए। विष्णु पुराण के अनुसार पुरु को मध्य देश मिला, एवं यदु, तुर्वश, अनु और द्रुह्यु को क्रमशः दक्षिण, दक्षिण पूरब, उत्तर तथा पश्चिम। मुख्य उत्तराधिकारी पुरु के पुत्र जनमेजय लिखे हैं। इन नं० ८, से मतिनार नं० २० तक कोई विशेषता नहीं वर्णित है। इससे भी आगे नं० २३ दुष्यन्त पर्यन्त जो कुछ कथित भी है, वह इसमें से हारने के सम्बन्ध में। यादव नं० २० शशिबिन्दु ने बढ़ कर पौरव राज्य पर भी अधिकार जमाया। उनके वंश की निर्बलता से जब पौरवों ने नाम उठाना चाहा, तो उनके दामाद सूर्यवंशी मान्धाता ने उन्हें हराकर राज्यच्युत कर दिया। उधर तुर्वश वंशी मरुत्त, नं० २२, प्रसिद्ध सम्राट् हुआ।

उस अपुत्र राजाधिराज ने राज्यच्युत किन्तु होनहार पौरव राजकुमार दुष्यन्त को अपना दत्तक पुत्र बनाया।

महाराजा दुष्यन्त और भरत (म० भा० VII ६८, I ७४, XII २९)।

महाराजा दुष्यन्त ने दत्तक पिता मरुत्त की सेना से अपना खोया हुआ पौरव राज्य भी प्राप्त करके दोनों राज्यों का भोग किया। उस काल सूर्यवंशी नरेश त्रसदस्यु बाप का बदला लेने को गान्धार नरेश द्रुह्यों पर धावा करने वाले थे। अतएव उत्तर कोशल के निकटवर्ती प्रतापी मरुत्त के उत्तराधिकारी दुष्यन्त से भी बिगाड़ ठीक न समझ कर उन्होंने जीता हुआ राज्य दुष्यन्तको प्रेमपूर्वक वापस दिया होगा,ऐसा अनुमान है। त्रसदस्यु द्वारा पौरवों को कुछ दिया जाना ऊपर ऋग्वेद के अध्याय में भी आया है। जो हो, दुष्यन्त को खोया हुआ पौरव राज्य मिल गया। वेदों में यह दान करके लिखा हुआ है। म० भा०, दुष्यन्त और भरत को हस्तिनापुर में बतलाता तथा उनका राज्य सरस्वती से गंगा तक मानता है। यद्यपि दुष्यंत तुर्वश वंशी हो गए थे, तथापि कहलाये पुरुवंशी ही, तथा राज्य फिर पाने से वश कर। एक दिन मृगायार्थ जाने में कण्व ऋषि के आश्रम में किसी विश्वामित्र और मेनका की पुत्री रूपराशि शकुन्तला इस सम्राट् को प्राप्त हुई, जिससे भरत नामक प्रसिद्ध पुत्र उत्पन्न हुआ। कालिदास ने शकुन्तला नाटक में इस रुचिर कथा का वर्णन किया है। भारतीय उच्च सभ्यता का पहला प्रमाण योरोप को इसी नाटक द्वारा मिला। इसके अनुवाद अनेक भारतीय और योरोपियन भाषाओं में हुए। भरत ने गंगा और यमुना के निकट अनेक यज्ञ किए। दीर्घतमस ऋषि ने आपका ऐन्द्र महाभिषेक किया (ऐतरेय ब्राह्मण)। इनके छोटे चचा संवर्त ने दुष्यन्त के दत्तक पिता मरुत्त को यज्ञ कराया था। इनकी माता ममता ने इनके चचा बृहस्पति से विदथिन भरद्वाज नामक पुत्र उत्पन्न किया था। भरत अपुत्र थे, सो इन्होने शायद दीर्घतमस के कहने से विदथिन भरद्वाज को गोद लिया। इन बातों से प्रकट है कि यद्यपि दुष्यन्त अपने पौरव राज्य पर आगए थे तथापि उनका व्यवहार दत्तक

पिता मरुत्त के लोगों से जैसे का तैसा बना रहा। दुष्यन्त और भरत के समय में पौरव राज्य सरस्वती से गंगा तक फैल गया था। भरत दौष्यन्त का वर्णन (ऋग्वेद VI १६,४) में, तथा शतपथ XIII ५, ४, ११, एवं ऐतरेय ब्राह्मण VII, २३ अथच कुम्भकोनम महाभारत III ८८, ८, में आया है कि इन्होंने जमुना के किनारे युद्ध जीते तथा ७४ यज्ञ किए।

सुहोत्र, हस्तिन और उनके वंशधर।

भरत पुत्र विदथिन भरद्वाज राजा न हुए वरन् वितथ पुत्र (मत्स्य ४९, २७, ३४, वायु ९९, १५२, ८,) उत्पन्न करके मृत हुए या जङ्गल चले गए। सम्भवतः वह भरत के सामने मर गए और वितथ राजा हुए। इनके प्रपौत्र, (नं० २९) सुहोत्र ऐसे पराक्रमी थे कि द्रोणपर्व में १६ मुख्य भारतीयों में इनका भी नाम है। इनके पुत्र हस्तिन पौरव राज्य पर स्थापित रहे। काशिक ने काशी का राज्य स्थापित किया, तथा बृहत् ने कान्यकुब्ज का। हस्तिन् के समय में इस राज्य वंश का और भी विस्तार हुआ। इनके पुत्र अजमीढ़ और द्विमीढ़ मुख्य थे। अजमीढ़ मुख्य पौरव राज्य पर रहे, तथा नं० ३१, द्विमीढ़ ने विदर्भ में नवीन पौरव राज्य बनाया, जो नं० ५६, वहुरथ पर्य्यन्त स्थापित रहा। अजमीढ़ात्मज ऋक्ष पौरव राज्य पर रहे तथा सुशांति और बृहद्वसु ने उत्तर तथा दक्षिण पांचाल राज्य स्थापित किए। हस्ती ने हस्तिनापुर बसा कर या उन्नत करके उसे अपनी राजधानी बनाया।

हस्तिनापुर वर्तमान मेरठ से २२ मील उत्तर पश्चिम गंगा के किनारे अब खंडहर मात्र है। हस्तिन के चचेरे भाई रंतिदेव सांकृत ने चम्बल पर दशपुर राज्य प्राप्त किया।

उपर्युक्त नवीन राज्यों के साधार विवरण आगे आवेंगे।

ऋक्ष नं० ३२, से नं० ३७, संवर्ण पर्यंत कोई विशेषता कथित नहीं है। उत्तर पांचाल नरेश नं० (३९) सुदास ने इन्हें हरा कर बाहर खेद दिया। संवर्ण के पुरोहित सुवर्चस (म० भा० १९६, ३०३३) वशिष्ठ थे। इन वशिष्ठ का नाम देवराज था और सुवर्चस तथा

अथर्वनिधि इनकी उपाधियां मात्र समझ पड़ती हैं। जान पड़ता है कि सुदास का आश्रय छोड़ने पर वशिष्ठ संवर्ण के यहां गए होंगे और इसी पर इन दोनों में युद्ध हुआ होगा। संवर्ण की पराजय पर गुरु वशिष्ठ दक्षिण कोशल नरेश कल्मापपाद के यहाँ पहुँचे होंगे। अनन्तर संवर्ण ने सुदास को पराजित किया और उत्तर पांचाल का बल गिर गया। संवर्ण तथा तत्पुत्र कुरु ने हस्तिनापुर फिर से उन्नत किया तथा कुरु ने दक्षिण पांचाल पर भी अधिकार जमाया। कुरुक्षेत्र और कुरु जांगल इनके नाम पर थे। इस हार के गड़बड़ में प्रतिष्ठानपुर भी इस वंश से निकल गया था और उस पर काशी नरेश (नं० ३९) वत्स का अधिकार जमा था। वह प्राचीन प्रान्त फिर कुरु को प्राप्त हुआ।

कुरु पुत्र सार्वभौम तो हस्तिनापुर में रहे, किन्तु सुधन्वन (नं० ३९) ने बढ़ कर चेदि प्रान्त में राज्य जमाया। इनके वंशधर (नं० ४२) कृतज्ञ के पुत्र चेदि और उपरिचरवसु थे। चेदि पुत्र वसुचैद्य राजा हुए। उनके चचा वसु चैद्यापरिचर ने उनकी सहायता से मगध प्रान्त छीन कर प्रसिद्ध मागध बार्हद्रथ राज्य की नींव डाली। इस वंश का राजत्व काल आगे भी चलता है, किन्तु राम काल इसी स्थान पर समाप्त होता है। आगे का विवरण द्वापर युग में दिया जावेगा। ऊपर के वर्णन से प्रकट है कि ययाति के पीछे वाली प्रायः १४ पुश्तों तक तो कोई महत्ता न हुई, किन्तु जब से तुर्वश वंश का भी बल इसी में मिल गया, तब से पौरव कुल ने खासी उन्नति की। अब शेष पौरव राज्य कुलों के कथन होते हैं। अन्तिम पौरव नरेश कुरु बड़े प्रतापी थे। इन्हीं के नाम पर यह वंश पौरव से कौरव कहलाने लगा। इनके वंशधरों ने कई अन्य राज्य भी जमाये। संवर्ण से सुदास वाले युद्ध के आधार उत्तर पांचाल के विवरण में मिलेंगे।

विदर्भ का द्विमीढ़वंश।

पौरव कुल के उपर्युक्त हस्तिन के पुत्र द्विमीढ़ ने विदर्भ में एक नवीन पौरव राज्य स्थापित किया। ये मनु से ३१ पीढ़ी नीचे थे। इस वंश ने यादवों से लड़ कर अपना राज्य स्थापित किया होगा। इनके

वंशधर (नं० ४०) धृतिमंत रामचन्द्र के समय में हुये होंगे। द्विमीढ़ से धृतिमंत तक सात राजाओं के नाम अज्ञात हैं। उस काल तक राज्य स्थापन के अतिरिक्त कोई विशेष घटना द्विमीढ़ों की नहीं लिखी है। आगे का हाल द्वापर के विवरण में आवेगा।

उत्तर पांचाल का वैदिक सुदासवंश।

उपर्युक्त द्विमीढ़ के भाई,अजमीढ़ मुख्य पौरव शाखा के भूपाल थे। इन्हीं के पुत्र सुशान्ति ने उत्तर पांचाल राज्य स्थापित किया। सुदास के समय ऋग्वेद में इस वंश का राज्य रावी नदी के दोनों किनारों पर लिखा है तथा यह श्वेतवस्त्रों से भूषित तृत्सु वंश कहा गया है। महाभारत के समय उत्तर पांचाल की राजधानी, अहिछत्र में बरेली के निकट थी और दक्षिण की काम्पिल्य में। सुशान्ति के पौत्र ऋक्ष उपनाम ऋक्ष के पुत्र भरत और भूम्यश्व हुए। भरत पौत्र सृंजय के पुत्र प्रस्तोक, च्यवन, पिजवन और सहदेव हुए। पिजवन प्रचण्ड युद्धकर्ता थे। इनके पुत्र प्रसिद्ध वैदिक नरेश राज्य वर्द्धक सुदास हुए। सहदेवात्मज सोमक के वंश में यह राज्य अन्त में चला। भूम्यश्वात्मज मुद्‌गल और काँपिल्य हुए। मुद्‌गल प्रसिद्ध निषध नरेश नल के दामाद थे और स्वयं भूपाल एवं वेदर्षि भी थे। इसके आधार ऊपर आ चुके हैं। प्रसिद्ध वैदिक विजयी दिवोदास मुद्‌गलात्मज वध्र्यश्व के पुत्र थे। इन्हीं की बहिन वे अहल्या थीं जो गौतमात्मज शरद्वन्त को ब्याही गईं और जिन्हें राम ने पवित्र किया। शरद्वन्त के पुत्र सत्यधृति के वंश में महाभारत काल के कृपाचार्य थे। प्रसिद्ध वैदिक ऋषि भरद्वाज ने अपनी ऋचाओं में दिवोदास, प्रस्तोक, पिजवन तथा अभ्यावर्तिन चायमान से अपना दान पाना लिखा है। वायु और शुनहोत्र भरद्वाज के पुत्र थे। शुनहोत्रात्मज गृत्समद प्रसिद्ध वैदिक ऋषि थे। हरिवंश में आया है कि मुद्‌गल, सृंजय, बृहदिषु, क्रिमिलाश्व और जयीनर का बसाया हुआ देश पांचाल था। समझ पड़ता है कि मुद्‌गल, कांपिल्य, प्रस्तोक, पिजवन और सहदेव में पांचाल राज्य बँट कर बलहीन हो गया। अनन्तर राम के पिता दशरथ की सहायता से प्रसिद्ध वैदिक विजयी दिवोदास ने तिमिध्वज के युद्ध में वैजयन्त के

तिमिध्वज शम्बर को मार कर अपने कुल का यश बढ़ाया। इनका पिजवन पुत्र सुदास से इतना भारी मेल था कि ऋग्वेद में ये दूर के चचा के स्थान पर सुदास के पिता कहे गए हैं। ऋग्वेद में दिवोदास द्वारा शम्बर का मारा जाना लिखा है, तथा रामायण में आया है कि दशरथ ने शम्बर के मारे जाने में किसी भारी नरेश की सहायता की। उत्तर पांचाल के अन्य विवरण हरिवंश और विष्णु पुराण में हैं। अनन्तर सुदास ने दस राजाओं को पराजित करके भारी यश कमाया। इन दोनों के युद्धों के विस्तृत विवरण ऋग्वेद में हैं, और हमारे ऊपर के वैदिक अध्यायों में आ चुके हैं। कोई वैदिक राजा त्रसदस्यु भी सुदास से हारे थे, ऐसा ऋग्वेद (VII १९—३) में आना, कोई-कोई मानते हैं, किन्तु यह बात मन्त्र से समर्थित नहीं है। वहाँ इन्द्र द्वारा सुदास तथा त्रसदस्यु दोनों को विविध समयों में सहायता मिली है। सुदास ने वशिष्ठ तत्पौत्र पराशर और सत्ययात को प्रचुर दान दिया। ये ऋषि लोग वेद में सुदास के नौकर कहे गए हैं। सुदास द्वारा ययाति वंशियों का पराजित होना ऐतरेय ब्राह्मण में भी आया है। पहले इन्होंने संवर्ण को जीता, फिर माथुर यादव, आनवशिवि, गान्धार द्रुह्यु, शूरसेन के मत्स्य, रीवां के तुवशराज्य, अनार्य्य वर्चिन, वैकर्ण, भेद आदि कई नरेश मिल कर पुरुष्णी नदी पर सुदास से लड़ कर हारे। यही प्रसिद्ध दस राजाओं का वैदिक युद्ध है। इसका विशेष विवरण वैदिक अध्यायों में ऊपर आ गया है। अनन्तर संवर्ण ने युद्ध में सुदास को पराजित कर दिया और कुरु संवर्णात्मज ने पौरव राज्य को बर्द्धमान किया। दिवोदास के तीनों वंशधर साधारण थे। सुदास के वंश का वर्णन नहीं है। सोमक के पुत्र अर्कदन्त साधारण थे। इनके पीछे इस वंश में सात पीढ़ियों के नाम पुराणों में अकथित हैं, जिससे उनका साधारण या राज्यहीन होना प्रकट है। इस वंश के वर्णन वेदादि में बहुत हैं। इसलिए उनका कुछ यहाँ भी कथन योग्य है। ऋग्वेद X १०२ में आया है, कि इन्द्रसेना मुद्गलानी ने युद्ध में रथ संचालन करके अपने पति को विजयी बनाया तथा उसका खोया हुआ प्रेम प्राप्त किया। म० भा० III ५७, ४६, में कथित है कि निषधनाथ नल की पुत्री इन्द्रसेना मुद्गल को ब्याही थी।

उपर्युक्तानुसार ये मुद्गल राजा और वेदर्षि दोनों थे। म० भा० वनपर्व में नल का भारी विवरण है, जिसमें उनका भीमरथ यादव का दामाद होना लिखा है। नल दक्षिण कोशल नरेश ऋतुपर्ण के मित्र थे। सुदास के पितामह सृंजय की दो कन्यायें यादव भीमसात्वन्त के पुत्र भजमान को ब्याही थीं। भीमसात्वन्त राम के समकालीन थे। इन कथनों के आधार यादवों के वर्णनों में हैं। दिवोदास के सहायक दशरथ थे ही। दिवोदास की बहिन अहल्या को राम ने पवित्र किया (रामायण)। अहल्या के पुत्र शतानन्द सीरध्वज जनक के पुरोहित थे (रामायण)। वेदर्षि भरद्वाज कहते हैं कि दिवोदास, सुदास, अभ्यावर्तिन चायमान आदि ने उनको दान दिए। इन्हीं भरद्वाज ने काशीपति प्रतर्दन की सहायता की (आधार काशी के कथन में आवेगा) तथा राम और उनके भाई भरत की पहुनाई की (रामायण)। प्रतर्दन से पराजित होकर हैहय नरेश वीतिहव्य इन्हीं के साथ रह कर ऋषि हो गए। यह ध्वनि ऋग्वेद के छठवें मण्डल की भरद्वाज वाली कुछ ऋचाओं से निकलती है। ऋग्वेद Vi २६, ८, में प्रतर्दन के पुत्र क्षत्रश्री भी भरद्वाज के समकालीन लिखे हैं। रामायण में काशीपति प्रतर्दन राम के अभिषेक में आते हैं। प्रतर्दन के पौत्र अलर्क को अगस्त्य की स्त्री लोपामुद्रा आशीर्वाद देती हैं (वायु पुराण ९२, ६७), तथा लंका में अगस्त्य राम की शस्त्रास्त्र से सहायता करते हैं (रामायण)। भरद्वाज, काशी राज (दूसरे) दिवोदास, नं० ३७, के भी पुरोहित थे (म० भा० XIII३०,१९६३)। अहल्या का गौतमात्मज शारद्वन्त से विवाह हुआ, म० भा० I १३०, ५०७२, V १६५, ५७:८, वायु ९९, २०१,५ मत्स्य, ५०, ८, १२, ह० वं० ३२, १७८४, ८, विष्णु IV ११६, ७८। वशिष्ठ ने सुदास को गद्दी पर बिठलाया (ऐतरेय ब्राह्मण, VIII ४, २१)! वशिष्ठ सुदास को छोड़ कर संवर्ण के यहाँ चले गए। (पार्जिटर १९२२, पृष्ठ २३७)। त्रसदस्यु का सुदास का समकालीन होना सिद्ध नहीं है वरन केवल इतना है कि इन्द्र ने सुदास तथा त्रसदस्यु की सहायता की (ऋग्वेद VII १९—३), तो भी एक ही समय में होना अकथित है। दिवोदास ने शम्बी नदी पर पुरुओं तथा दूसरों को हराया। ऋग्वेद १३, ३३, १९, वैदिक अनुक्रमणिका १८२,

४९९, म० भा० ९४, ३७२५, ३९ के अनुसार किसी पांचाल नरेश ने संवर्ण को हस्तिनापुर से निकाल दिया। यह पांचाल नरेश सुदास ही होंगे। अनन्तर संवर्ण ने अपना राज्य फिर से पाकर सब क्षत्रिय नरेशों को पराजित किया। इससे पांचाल सुदास के भी हारने का प्रयोजन निकलता है। मनु ४१ में आया है कि सुदास अवगुण के कारण नष्ट हुए। इससे ध्वनि निकलती है कि दस राजाओं को हराने से सुदास को गर्व विशेष हो गया और संवर्ण द्वारा उनका वध हुआ। संभवतः इस विजय में सुवर्चस वशिष्ठ का भी हाथ हो। उपर्युक्त प्रमाणों से सुदास तथा दिवोदास के विवरण प्राप्त हैं तथा इनका दशरथ और राम का समकालीन होना सिद्ध है।

दक्षिण पांचाल का नीप वंश।

उत्तर पांचाल में कथित अजमीढ़ के पुत्र बृहद्वसु ने दक्षिण पांचाल राज्य स्थापित किया। इनका वंशावली वाला नं० ३२ है। इस काल से नं० ४० पृथुषेण पर्यन्त राजे त्रेतायुग में माने जा सकते हैं। इस काल तक इस वंश के कोई विशेष कथन नहीं मिलते, जिससे इसमें महत्ता का अभाव समझ पड़ता है। वंशावली ऊपर आ चुकी है।

काशी का पौरव वंश।

पौरव कुल के सम्राट्, नं० २४, भरत के पौत्र वितथ का पुत्र सुहोत्र एक प्रसिद्ध बलवान था। उसी ने अथवा उसके पुत्र काशिक ने काशी का पौरव राज्य स्थापित किया। इनके प्रपौत्र धन्वन्तरि (नं० ३१) प्रसिद्ध वैद्य थे। पीछे (नं० ३४) दिवोदास, प्रथम के समय में इस राज्य पर हैहय भद्रशेण्य (नं० ३०) का आक्रमण हुआ। दिवोदास ने पराक्रमी भद्रशेण्य को करारी पराजय देकर युद्ध में उसके कई पुत्र भी मारे, तथा बालक जान कर केवल दुर्दम को छोड़ दिया। सयाने होकर दुर्दम ने हैहयों का आक्रमण फिर से जीवित किया। पूर्वीय राज्यों को जीतते हुये हैहयों ने काशी पर यह दूसरा आक्रमण किया। अब भीमरथ के पुत्र दिवोदास प्रथम काशी छोड़ गोमती के निकट

कुछ पच्छिम हट कर जा बसे। हैहयों ने काशी प्राप्त की किन्तु किसी कारण से वहां क्षेमक राक्षस का राज्य हो गया, परन्तु दुर्दम ने फिर वहां प्रभुत्व प्राप्त किया (वायु ९२,२३,८, ह० वं० २९,१५४,१,८)। कुछ काल में काशी नरेश का वहां फिर से अधिकार हो गया और हैहयों ने फिर आक्रमण करके (नं० ३५) हर्यश्व को मारा, (नं० ३६) सुदेव को हराया और काशी लूटी। अनन्तर सौदेव दिवोदास दूसरे राजा हुए। इनका हैहयों से १०० दिनों तक युद्ध हुआ और ये (सौदेव) हार कर भरद्वाज आश्रम चले गए। इन्हीं के पुत्र प्रतर्दन हुए, जिनका शिक्षण एवं सत्कार भरद्वाज ने किया। समय पाकर प्रसिद्ध पराक्रमी प्रतर्दन ने तालजंघात्मज वीतिहोत्र उपनाम वीतिहव्य को हैहय राजधानी में घुस कर हराया। वीतिहव्य शौनक भार्गव ऋषि हो गए। ऋग्वेद के छठवें मंडल में इनका भरद्वाज के साथ रहना पाया जाता है। म० भा० XIII ३०, ५८, ९ के अनुसार प्रसिद्ध वेदर्षि गृत्समद वीतिहव्य के दत्तक पुत्र थे। उनके पिता आंगिरस शुनहोत्र थे (सर्वानुक्रमणी)। गृत्समद अतिथिग्व-दिवोदास का कथन शम्बर वध में करते हैं। रामचन्द्र के राज्यारोहण में प्रतर्दन अतिथि हो कर अयोध्या गए थे (रामायण)। एक प्रतर्दन वेदर्षि भी थे। उनकी ऋचाओं से यह नहीं प्रकट है कि वे ये ही प्रतर्दन थे या कोई और?

प्रतर्दन के पुत्र वत्स ने प्रतिष्ठानपुर के कौशाम्बी प्रान्त को भी अपने राज्य में मिला लिया। इनके पुत्र अलर्क ने क्षेमक राक्षस को मार कर काशी फिर से प्राप्त की। इस काल से बहुत पूर्व भी काशी में क्षेमक का अधिकार कहा गया है। समझ पड़ता है कि इस वंश के राजों की क्षेमक उपाधि होगी। अलर्क को अगस्त्य की पत्नी लोपामुद्रा ने आशीर्वाद दिया (वायु ९२, ६७, ह०, वं०, २९, १५९०, ३२, १७४८)। प्रतर्दन, वत्स और वत्स देश के कथन निम्न आधारों में भी हैं:— (विष्णु IV ८, ५. ७ भागवत IX १७, ६ वायु ९२, ६५, ७३ ब्रह्माण्ड ११, ५० ६०, १३, ६८, ७८, ह० वं० २९, १५८७, १५९७, ३२, १७४१, १७५२, म० भा० XIII ३०, १९४६)। पार्जिटर का कथन है कि अलर्क का राज्य काल लम्बा था। उपर्युक्त घटनाओं से प्रकट है कि काशी का पौरवराज्य सहायायुक्त था। इसमें धन्वन्तरि श्रेष्ठ वैद्य हुए, गया

दिवोदास, वत्स, प्रतर्दन और अलर्क प्रसिद्ध भूपाल थे, जिन्होंने बढ़ते हुए हैहय बल को ध्वस्त किया। इस वंश के आगे का हाल द्वापर के विवरण में आवेगा (आधार वायु ९२, ६७, ह० वं० २९, १५९०, ३२, १७४८)।

कान्यकुब्ज की पौरव शाखा।

काशी के विवरण में कथित नं० २७, सुहोत्र के अन्य पुत्र बृहत् ने कान्यकुब्ज (कन्नौज) में पौरव राज्य स्थापित किया। इनके पौत्र जह्नु (नं० ३०) बड़े प्रतापी राजा कहे गये हैं। आपको सूर्यवंशी मान्धाता, (नं०, २१) की पौत्री विवाही थी (वायु ९१,५८,९, ह वं० २७,१४२१,३)। सम्भवतः इनका स्थान अपनी वंशावली में ६,७ पीढ़ी ऊँचा हो। जह्नु के प्रपौत्र कुशिक, (नं० ३३) बड़े प्रसिद्ध राजा और वेदर्षि थे। इन्हीं के नाम पर विश्वामित्र कौशिक भी कहलाते थे। उनका विवाह पुरुकुत्स के वंश में उत्पन्न पुरुकुत्सी से हुआ था (वायु ९१,६३,६, ह० वं० २७,१४२६,३०)। पुरुकुत्सी में कुशिक से उत्पन्न पुत्र गाधि (वैदिक गाथिन) पुराणों में इन्द्र के अवतार कहे गए हैं। वेद में भी इन्द्र कौशिक थे। गाधि भी राजा और वेदर्षि दोनों थे। गाधि की ऋचायें विश्वामित्र के तीसरे मण्डल में तथा कुशिक की दसवें मे हैं। गाधि की पुत्री सत्यवती से भार्गव-वंशी और्वात्मज शस्त्री ऋचीक का विवाह हुआ।

गाधि के पुत्र विश्वामित्र और सत्यवती के पुत्र जमदग्नि समवयस्क और एक दूसरे के प्रगाढ़ मित्र, एवं वेदर्षि भी थे। जमदग्नि के पाँचवें पुत्र विख्यात शूर परशुधर राम थे। ऋषि विश्वामित्र का आदिम राज्य पद निरुक्त तथा ऐतरेय और पंचविंश ब्राह्मणों से प्रमाणित है। विश्वामित्र किसी राज काज का निर्णय करने त्रयारुण राज्य के प्रबन्धक वशिष्ठ ऋषि से मिलने गए। आतिथ्य तो इनका अच्छा हुआ, किन्तु मामले पर संतोषप्रद बात न हुई और युद्ध में देवराज वशिष्ठ के म्लेच्छ सैनिकों ने कान्य-कुब्ज की आर्य सेना को पूर्ण पराजय दी। संख्या में म्लेच्छ आर्य सेना से सतगुने थे। (म० भा०) में केवल एक

गाय के कारण युद्ध लिखा है, किन्तु वास्तव में किसी राजकीय प्रश्न पर समझ पड़ता है। अब विश्वामित्र राजकीय बल को तुच्छ मान कर बेटे को राज्य दे, स्वयं तपस्या करने चले गए। यह समय द्वादश वार्षिक अकाल का था। जिस राज्य के प्रबन्धक बन कर देवराज वशिष्ठ ने विश्वामित्र को हराया था, उसका वास्तविक स्वामी सत्यव्रत त्रिशंकु इनके द्वारा अपने अधिकारों से च्युत एवं निर्वासित होकर जंगलों में मृगया से समय काटता था। उसने तपस्या के समय शिकार द्वारा विश्वामित्र के वंश का जंगल में पालन किया। ये दोनों पहले से भी वशिष्ठ के शत्रु थे। अतएव विश्वामित्र ने स्वप्रभाव से उसे राज्य पर प्रतिष्ठित करके स्वयं पुरोहित का उच्च पद लिया और देवराज वशिष्ठ अधिकारच्युत हो गए (वायु ८८,७८,११६, ह० वं० १२, ७१७ से ३, १३, ७२३ तक, विष्णु IV ३,१३,४, भागवत IX ७,५,६ म० भा० XIII १३७,६२५७)। उन्होंने विश्वामित्र को ब्रह्म ऋषि मानने से इन्कार किया, किन्तु फिर भी इनके द्वारा त्रिशंकु का यज्ञ सफल हुआ। अनन्तर उसके पुत्र हरिश्चन्द्र के समय में वशिष्ठ ने फिर इनके प्रतिकूल ब्रह्मर्षित्व का बखेड़ा उठाया और इस बार पराजित होकर उन्हें पुष्कर पर तप करने जाना पड़ा। जान पड़ता है कि हरिश्चन्द्र ने विश्वामित्र के प्रतिकूल निर्णय किया होगा, जिससे ये पराजित हुये होंगे। इधर देवराज वशिष्ठ हरिश्चन्द्र के पुरोहित हो गए। अनन्तर शुनःशेप वाली नरबलि के सम्बन्ध में विश्वामित्र का प्रताप फिर बढ़ा और वशिष्ठ वहां से हट कर उत्तर पांचाल नरेश सुदास के पुरोहित हुए। उनका हरिश्चन्द्र के यहाँ से हटना क्यों हुआ, सो कथित नहीं है। या तो यह राज्य ही निर्बल हो गया होगा, या नरबलि की तत्परता के कारण वशिष्ठ का अपयश हुआ होगा, जिससे उन्हें यहाँ से फिर हटना पड़ा। अनन्तर सुदास के यहाँ भी पहुँच कर विश्वामित्र ने वशिष्ठ को वहाँ से हटाया। वशिष्ठ की शत्रुता सुदास से क्यों हुई सो अज्ञात है, किन्तु हुई अवश्य। इनका तपस्वी पुत्र शक्ति वहाँ मारा गया, विश्वामित्र पुरोहित बने और सुवर्चस वशिष्ठ पौरव नरेश संवर्ण के पुरोहित हुए। सम्भव है कि हरिश्चन्द्र के पुरोहित देवराज वशिष्ठ संवर्ण के

पुरोहित सुवर्चस वशिष्ठ से पृथक हों। वास्तव में समझ पड़ता है कि सुवर्चस देवराज ही की उपाधि मात्र थी। यही विचार पार्जिटर का भी है।

किन्हीं कारणों से सुदास ने संवर्ण का राज्य छीन लिया और वशिष्ठ दक्षिण कोशल नरेश कल्मापपाद के पुरोहित बने। वहाँ राक्षसों का प्रवेश समझ कर विश्वामित्र ने राजा द्वारा वशिष्ठ के शेष पुत्र भी मरवा डाले, केवल पौत्र पराशर बच गया। अब वशिष्ठ राजा दशरथ के यहाँ जमे। उधर संवर्ण ने सुदास को पराजित कर दिया। अनन्तर विश्वामित्र दशरथ के यहाँ यज्ञ रक्षणार्थ राम को माँगने आये। इस बार पुरानी शत्रुता भुला कर वशिष्ठ ने इनका समर्थन किया। या तो इन दोनों की शत्रुता पहले ही कभी मिट चुकी थी, या वशिष्ठ ने भलाई करके इस प्राचीन शत्रु को सीधा करना चाहा। जो हो इस काल से इन दोनों की प्राचीन शत्रुता मिट कर मित्रभाव स्थापित हुआ। ये दोनों ऋषि प्रायः सवा-सवा सौ वर्ष तक जिये होंगे। राम के पीछे यही अथवा दूसरे वशिष्ठ सगर के भी पुरोहित हुए। अवस्था के विचार से यही वशिष्ठ सगर के यहाँ भी हो सकते थे। मेल हो जाने से वहाँ उनसे विश्वामित्र ने कोई विरोध नहीं किया। ऐतरेय ब्राह्मण में नरबलि के प्रयत्न सम्बन्धी यज्ञ में विश्वामित्र, जमदग्नि और वशिष्ठ का होना लिखा है। ऋग्वेद में शुनः शेप की ऋचाओं में उनका यज्ञ में बाँधा जाना आया है। वैदिक साहित्य में शुनः शेप ही के मामा तथा दत्तक पिता विश्वामित्र हैं। त्रिशंकु और हरिश्चन्द्र के यहाँ पौराणिक साक्षी से कान्यकुब्ज नरेश ऋषि विश्वामित्र थे। यह साक्षी ऊपर आ चुकी है। ऐतरेय ब्राह्मण तथा ऋग्वेद दोनों में विश्वामित्र जमदग्नि के मित्र तथा वशिष्ठ के शत्रु हैं। अतएव त्रिशंकु और सुदास के यहाँ वही विश्वामित्र और वशिष्ठ थे। यही सुदास का समय कल्मापपाद, संवर्ण, रामचन्द्र और सगर का बहुत थोड़े अन्तर के साथ था। अतएव इन सब के यहाँ वाले वशिष्ठ और विश्वामित्र वही व्यक्ति माने जा सकते हैं। केवल शकुन्तला के पिता समय के विचार से अन्य व्यक्ति थे।

विश्वामित्र के ब्राह्मण वंशधरों का विवरण ऊपर वंशवृक्ष में आ-

चुका है। इनके भागिनेय के पुत्र परशुधर ने शायद कान्यकुब्ज और सौर राज्यों की सहायता से हैहयार्जुन का युद्ध में वध किया था। इसी अथवा अन्य कारणों से हैहय तालजंघ ने अपने उत्तर के आक्रमण में विश्वामित्र के क्षत्रिय पुत्र लौहि को राज्यच्युत कर दिया। इसके पीछे इनका क्षत्रियवंश वेवता हो गया। इसी स्थान पर पौरवों के राज्यवंशों का पौराणिक विवरण समाप्त होता है।

इस वंश के विषय में पुराणेतर ग्रन्थों में क्या कथित है, इसका भी कुछ दिग्दर्शन कराना उचित है।

मंजु श्री मूल कल्प आठवीं शताब्दी का एक साधार बौद्ध ग्रंथ है, जिसमें नहुष और पार्थिव नामक प्राचीन राजाओं के नाम लिखे हैं।

वैदिक साहित्य में निम्न पौरव नाम हैं :—

परुच्छेप (दिवोदास वंशी), विश्वामित्र (तृतीय मण्डल इनका है), गाथिन, देवश्रवस, शुनःशेप, देवव्रत, ऋषभ, उत्कील, कठ, प्रजापति, मधुच्छन्दस (विश्वामित्र के मण्डल वाले गाथिन उनके पिता हैं, कुशिक पितामह तथा शेष लोग उनके वंशधर) पुरु, सम्वर्ण, नीपातिथि, आयु, ययाति, नहुष, प्रतर्दन, बृहद्रथ, पुरुरवस, उर्वशी, कुशिक (वेदर्षि तथा विश्वामित्र के पितामह), जमदग्नि, परशुराम, सुकीर्ति, सुदास और खाण्डवदाह से उबारे हुए चार ऋषि (जरितर, द्रोण, सारीसृक, स्तम्ब मित्र)। चन्द्रवंशी इतर वेदर्षियों के नाम आगे के अध्याय में आवेंगे।

पुरुरवस ऐल, ऋग्वेद X ९५, शतपथ ब्रा० XI ५,१,१।
आयु, ऋग्वेद I ५३,१०, II १४,७,
ययाति नाहुष्य, ऋग्वेद I ३१,X६३,१,।
पुरु ऋग्वेद VII ८,४,१८,१३।
भरत दौष्यन्ति सौद्युम्नि, शतपथ ब्रा० XIII ५,४, ११,१२।
अजमीढ़, ऋग्वेद IV ४४,६,
जह्नु, ऋग्वेद VII ६८,१५।
कुरु ऋग्वेद X ३३, ब्राह्मण ग्रन्थों में बहुत,।
उच्चैः श्रवस, जैमिनीय उपनिषद् ब्रा० III २९,१,१२।

पुरुरवस ऐल के पिता बुध राजा थे, जो बाहलीक या बैक्ट्रिया से आये थे, रामायण VII १०३,२१, २२। पपद्म सूदनी के अनुसार ऐल लोग उत्तर कुरु से आये हैं। पांचाल देश वर्तमान बरेली, बदायूं, फर्रुखाबाद जिलों तथा अन्य स्थानों पर विस्तृत था। प्राचीन राज काम्पिल्य या कम्पिल बदायूँ फर्रुखाबाद के बीच गङ्गा तट पर थी। शतपथ ब्राह्मण XIII ५,४,७, में परिचक्र या परिचक्रा महाभारत का एक चक्रा है। पांचाल के पांच वंश क्रिवि, तुर्वश, केशिन, सृंजय, और सोमक थे। क्रिवियों का कथन ऋग्वेद में है। शतपथ ब्राह्मण में ये पांचाल कहे गए हैं।

मोटे प्रकार से पांचाल रुहेलखण्ड तथा मध्य द्वाबा का भाग था,। उत्तरी और दक्षिणी पांचाल गङ्गा के आरपार थे। उत्तर पांचाल की राजधानी अहिच्छत्र या छत्रवती (राम नगर जिला बरेली) थी। दक्षिण पांचाल गङ्गा से चम्बल तक था, म० भा० १३८,७३,७४। महाभारत और जातकों में प्रकट है कि उत्तर पांचाल कभी कुरुओं का रहा, और कभी दक्षिण पांचालों का।

Ancient Indian historical tradition

में आया है कि मरुत्त के पीछे तुर्वश की शाखा पौरवों में मिल गई। यही बात मरुत्त द्वारा दुष्यन्त के गोद लिए जाने से पुराणों से भी प्रकट है। महाभारत मे उत्तमौजस तथा सृंजय दोनों पांचाल थे। धृष्टद्युम्न सोमकों में मुख्य थे (म० भा० आदि पर्व १४,३३)। दिवोदास, सुदास और द्रुपद पांचाल थे। उत्तर पांचाल द्रोण को मिला।

चेदि बुंदेलखण्ड तथा निकट का देश था। कभी नर्मदा तक भी फैलता था। राजधानी शुक्तिमती थी। कशु चैद्य ऋग्वेद VIII ५,३७,३९ का कथन दान स्तुति में है। चेतिय जातक यों राजवंश देता है:—१ महा सम्मत—रोज —वरराज—कल्याण ५—वर कल्याण—उपोसथ—मान्धाता—वरमान्धाता—चर—१०, उपचर या अपचर। शायद महाभारतके पौरव चेदिराज उपरिचरवसु यही हों। जातक तथा महाभारत इन दोनों के पांच-पांच पुत्र बतलाते हैं। जातक ४८ कहता है कि काशी से चेदि के मार्ग में डाकू लगते थे।

ऊपर हम पौरव वंश में हस्तिनापुर वालों से इतर विदर्भ के द्विमीढ़ों, उत्तर पांचालों, दक्षिण पांचालों, काशी वालों और कान्यकुब्जों के इतिहास लिख आये हैं। इन वंशों में ययाति, दुष्यंत, भरत, सुहोत्र, हस्तिन, अजमीढ़, सवर्ण, कुरु, द्विमीढ़, मुद्गल, दिवोदास, सुदास, बृहद्वसु, धन्वन्तरि, प्रतर्दन, वत्स, जह्नु और विश्वामित्र प्रधान पुरुष थे। ययाति मनु से छठी पीढ़ी में थे। इनसे २३ वीं पीढ़ी वाले दुष्यन्त के बीच में पौरव कुल में कोई मुख्यता न थी। इसी भांति सूर्य्य वंश में भी नं० ४ पुरंजय के पीछे तथा मान्धाता नं० २१ के पहले जो १६ राजे थे, इनमें विशेष मुख्यता न थी। अतएव प्रकट है कि पुरंजय और ययाति इन दोनों के पीछे सूर्य और पौरव दोनों वंशों में प्रायः तीन सौ वर्षों तक विशेषता न थी। इनके पीछे दोनों वंशों में मुख्यता का फिर प्रारम्भ हुआ। दोनों वंशों में वेदर्षि राजे थे, किन्तु वेदों का गायन विशेषतया पौरव राज्य में हुआ। इसी कुल में वेदर्षि भी अधिक थे। इन्हीं कारणों से वेद में सूर्य वंशियों के सामने चन्द्रवंशियों का बहुत अधिक कथन है। अनार्यों का आर्यों से अन्तिम महायुद्ध राजा वर्चिन की अध्यक्षता में उत्तर पांचाल नरेश सुदास से हुआ। उस काल यह राज्य रावी नदी तक फैला था। उस युद्ध में कई आर्य राजाओं ने भी वर्चिन का साथ दिया, किन्तु अनार्यदल ने करारी पराजय खाई और वर्चिन के एक लाख से ऊपर सैनिक मारे गये। इसके पीछे अनार्यों का आर्यों से प्राचीन काल में कोई भारी युद्ध न हुआ और अनार्य दब गए। उस काल रावण (लंका वाला), तिमिध्वज शम्बर, वर्चिन और भेद प्रधान अनार्य नरेश थे। तिमिध्वज की राजधानी वैजयन्त थी। उसकी स्त्री रावण की स्त्री मन्दोदरी की बहिन थी। अतिथि रूप में वैजयन्त जाकर रावण ने एक बार इन्द्रिय लोलुपता के कारण शंबर की रानी मायावती से व्यभिचार करना चाहा। यह जान कर शम्बर ने उसे वहीं क़ैद कर दिया और मन्दोदरी तथा मायावती के पिता मयदानव के कहने से कठिनता से छोड़ा (शिवपुराण)। इससे इन दोनों में मन मैली होगई और जब पांचालपति दिवोदास तथा अयोध्या नरेश दशरथ ने शम्बर से युद्ध किया, तब उसके नष्ट हो जाने तक भी रावण ने उसकी सहायता न की। फल यह हुआ कि

समय पर दशरथात्मज राम ने रावण का भी सत्यानाश कर डाला। यदि दोनों रावण और शम्बर मिल कर लड़ते, तो शायद दोनों के दोनों बचे रहते। इधर दिवोदास के उत्तराधिकारी सुदास ने वर्चिन को नष्ट किया तथा भेद उनका प्रजा होगया। इस प्रकार राक्षसों और दानवों का बल उस काल चूर्ण हुआ।

बारहवां अध्याय

मनु-रामचन्द्र काल, त्रेतायुग प्रायः १६०० से १२५० बी० सी० तक।

चन्द्रवंश की इतर शाखायें तथा सम्मिलित विवरण। यदुवंश—वैदर्भ, और माथुर शाखायें।

पौरवों के पूर्व पुरुष ययाति के बड़े पुत्र शुक्राचार्य के दौहित्र यदु ही थे, किन्तु आज्ञोलंघन के कारण चारों जेष्ठ बन्धु अधिकारच्युत हुए तथा पंचम पुरु सम्राट बने। तो भी ययाति द्वारा जीता हुआ चम्बल बेतवे और केन वाला देश यदु को मिला। इनके दो पुत्र थे अर्थात क्रोष्टु और सहस्रजित। पहले से मुख्य यादव वंश चला, और दूसरे से हैहयवंश। यदु वाले देश के उत्तरी भाग में सहस्रजित स्थापित हुये और दक्षिणी में क्रोष्टु या क्रोष्टा। ऋग्वेद में यदु के विषय में भले और बुरे दोनों प्रकार के कथन हैं। हरिवंश में जो इनका आनर्त देश में गोद जाना लिखा है वह किसी अन्य यदु से सम्बद्ध है, क्योंकि वह गोद लेने वाला हर्यश्व यदुवंशी ३९ वें नरेश मधु का दामाद था। ऋग्वेद में एक स्थान पर यदुवंशियों के यज्ञादि न करने के कथन हैं तथा अन्यत्र इनके दान की प्रशंसा है। पुराणों में भी इस कुल की प्रशंसा होते हुए यह भी लिखा है कि ये नरेश दुराचारी थे तथा इनके कारण अन्य क्षत्रियों में भी दुराचार फैला। सूर्य और पौरव वंशों की भांति यदु पुत्रों के पीछे इस शाखा में भी (नं० २०) शशिबिन्दु के पूर्व कोई विशेष महत्ता न आई और वंशावली में नरेशों के नाम ही नाम हैं। शशिबिन्दु प्रसिद्ध चक्रवर्ती और सम्राट् थे। इन्होंने पौरवों को राज्यच्युत किया, किन्तु इनके पीछे यदु वंश कुछ पीढ़ियों तक फिर निर्बल हो गया। शशिबिन्दु का वर्णन वायु ९५, १९, मत्स्य ४४, १८, विष्णु IV १२, १, अग्नि २७४,१३, भागवत IX २३, ३२ में आया है।

इनके पौत्र (नं० २२) परावृत के दो पुत्र विदिशा में स्थापित हुए। इनके मुख्य पुत्र ज्यामघ दक्षिण जाकर मृत्तिकावती, ऋक्षपर्वत आदि में राज्य करने लगे। समझ पड़ता है कि कारणवश ज्यामघ का पैत्रिक राज्य शायद हैहयों के फैलने से छूट गया। इनके पुत्र विदर्भ ने इसी नाम का प्रान्त जीत कर यहाँ मुख्य स्थान बनाया। इस राज्य की विदर्भ और कुंडिन राजधानियाँ थीं, (म० भा० ३१, २७७२, V १५७, ५३६, ३, ६, व, ११७, ६५८८, ६६०६, १०४, ५८०४, १०६, ५८५५, ११८, ६६६२, ६६९३)। नं० २५ विदर्भ से नं० ३३ विकृति तक कोई विशेष घटना नहीं मिलती है। (नं० ३५) भीमरथ निषध-नाथ नल के श्वसुर एवं दमयन्ती के पिता थे (म० भा० वन पर्व)। नल दमयन्ती पर अच्छे-अच्छे ग्रन्थ लिखे गए हैं, जो कई योरोपियन भाषाओं तक में अनुवादित हो चुके हैं। भीम वैदर्भ का कथन ऐतरेय ब्राह्मण VII ३४, में है। इनके पीछे (३९) मधु को हम आनर्त और मथुरा का स्वामी पाते हैं। ये आनर्त राज्य अपने जामाता हर्यश्व को देते हैं और मथुरा बेटे लवण को; ऐसा हरिवंश में लिखा है। इनके प्रपौत्र सत्वन्त का पुत्र नं० ४३, भीम सात्वत था। इसके या सत्वन्त के समय में राम के भाई शत्रुघ्न ने मथुरा छीन कर वहाँ राज्य जमाया किन्तु राम और शत्रुघ्न के पीछे भीम सात्वत ने मथुरा (मधुपुरी) फिर से प्राप्त की। सम्भवतः यह पुरी उपर्युक्त मधु की बसाई हुई थी। जान पड़ता है कि मथुरा खोने के पीछे यदुवंश उसी के निकट कहीं कालक्षेप करता रहा होगा। समझ पड़ता है कि विदर्भ में इस वंश की एक शाखा स्थापित रही होगी जिसके प्रतिनिधि श्रीकृष्ण के समय में भीष्मक और रुक्मी थे, तथा उस वंश की एक शाखा मथुरा और आनर्त की अधिकारिणी हो गई होगी। यही शाखा मध्यदेश में आ जाने से वंशावलियों में मुख्य समझी गई तथा विदर्भ की मुख्य शाखा अमुख्य हो गई। यह भी सम्भव है कि (नं० ३१) त्रिगोद ने जब विदर्भ में पौरव राज्य भी स्थापित किया, तब विदर्भ के तत्कालीन वंशधरों का प्रभाव कुछ कम हो गया हो।

विदर्भ नं० २५ के क्रथभीम और [illegible] सात्वत के पुत्र थे।

क्रथभीम के वंश का ऊपर वर्णन हो चुका है। उधर क्रथ कैशिक के वंशधरों में चिदि, वीरबाहु और सुबाहु के नाम लिखे हैं। ये सुबाहु राजा नल की रानी के मौसिया थे (म० भा०)। नल का नं० ३५ बैठता है, सो सुबाहु का ३४ होना चाहिए। फिर भी वंशावली में वह नं० २८ है। इससे जान पड़ता है कि इस वंश के केवल मुख्य नाम लिखे हैं। सम्भवतः क्रथभीम की शाखा मथुरा चली आई हो और क्रथ कैशिक की विदर्भ में रह गई हो तथा उसी वंश में उपर्युक्त भीष्मक (श्रीकृष्ण के ससुर) हों। माथुर तथा अन्य हैहयतर यादवों का वर्णन द्वापर युग में होगा। ऊपर के विवरण से प्रकट है कि यदु वंश की यह शाखा पहले अपने पैत्रिक देश में रही। फिर ज्यामघ के काल मृत्तिकावती में आकर विदर्भ के आधिपत्य से विदर्भ में स्थापित हुई और इन्हीं के पीछे देश का नाम पड़ा। अनन्तर कुछ काल में एक शाखा वहीं रह गई तथा वहां डिमीढ़ का पौरव राज्य भी जमा (पार्जिटर) और दूसरी यादव शाखा मथुरा चली आई। इस शाखा का आनर्त प्रान्त वाला अधिकार प्रसन्नतापूर्वक सूर्य्य वंशियों में चला गया। जिस काल हैहयों का अधिकार सगर के प्रभाव से गिरा और उनका वैदर्भों से वैवाहिक संबंध हुआ, तब से इन्हीं वैदर्भों ने उत्तर की ओर बढ़कर कुछ हैहय राज्य पर भी अधिकार कर लिया। यह भूभाग शायद इन लोगों के पूर्व पुरुषों का वह देश होगा जो हैहयों ने इन से छीना होगा। पार्जिटर का विचार है कि वैदर्भ चिदि ने यमुना तट का चेदि राज्य चलाया। वास्तव में वह चेदि राज्य पौरव वंशी सुधन्वन या सुहोत्र का कमाया था तथा सुहोत्र के प्रपौत्र पौरव चिदि के कारण चेदि कहाया। यादव चिदि का उस राज्य से सम्बन्ध नहीं समझ पड़ता। पार्जिटर का यह भी कथन है कि विदर्भ के तीसरे पुत्र लोमपाद ने भी एक अज्ञात राज्य जमाया। वह कहते हैं कि कुछ कैशिक क्रथों के साथ विदर्भ में भी रहे। वास्तव में क्रथ कैशिक राज्य विदर्भ ही में समझ पड़ता है और चेदि में पौरव राज्य था। श्रीकृष्ण एक क्रथ कैशिक के विदर्भ ही में अतिथि हुये थे (उनका विवरण आगे आवेगा)।

यादवों की हैहय शाखा।

उपर्युक्त यदु नं० ७ की चौथी पीढ़ी पर हैहय का नाम लिखा है, किन्तु इस वंश की प्राय: १६ पुश्तें पौराणिक वंशावलियों से छूट गई हैं। ऐसा निष्कर्ष पौराणिक विवरणों की समकालीनतायें मिलाने से निकलता है। इस प्रकार हैहय का नम्बर २५ वां पड़ता है। उनके समय इस वंश की इतनी उन्नति हुई कि यादव छोड़ कर ये लोग हैहय कहलाने लगे। समझ पड़ता है कि हैहय से ही हार कर ज्यामघ यादव नं० २३, ने अपना पैत्रिक प्रान्त छोड़ कर मृत्तिकावती में, विदर्भ के निकट, शरण ली और तब उन के पुत्र विदर्भ ने अपने नाम पर प्रान्त स्थापित किया, जिसे अब बरार (विदर्भ) कहते हैं। उधर यादवों का पैत्रिक देश हैहय को मिल गया जिससे इनका प्रभाव और भी बढ़ा। इनके प्रपौत्र साहंज (नं० २८) ने साहंजनी पुरी बसाई तथा इनके पुत्र महिष्मान ने माहिष्मती। सूर्यवंशी मुचकुन्द ने भी एक माहिष्मती बसाई थी। सम्भवत: दोनों एक ही थीं। हैहय के पीछे किसी समय सूर्यवंशी शार्यात् क्षत्रिय भी आनर्त खोकर हैहयों में आ मिले, जिससे दोनों का प्रभाव बढ़ा। महिष्मानात्मज नं० ३०, भद्रश्रेण्य ने पूर्वी राज्यों को जीतते हुए काशी पर भी आक्रमण किया। काशी नरेश नं० ३४ दिवोदास (प्रथम) ने भद्रश्रेण्य के कई पुत्रों को मारा। सम्भवत: भद्रश्रेण्य भी इसी युद्ध में काम आये। काशी राज्य ने इनके एक मात्र पुत्र दुर्दम को बालक समझ कर छोड़ दिया। अनन्तर कुछ दिनों में बल बढ़ा कर दुर्दम ने फिर काशी पर आक्रमण किया, और काशी नरेश, पहले दिवोदास (नं० ३४) को हराया। वे काशी छोड़ कर पच्छिम की ओर भागे। यहाँ उन्होंने गोमती के तट पर राजधानी बनाई। उधर काशी को लूट कर दुर्दम तो चल दिए और वहां क्षेमक राक्षस का अधिकार होगया। कुछ दिनों में उसे भी हरा कर दुर्दम ने काशी हैहय राज्य में मिला ली। इन कथनों के आधार ऊपर काशी के राज्य-कथनों में आगये हैं जहां यह कथा भी कथित है। शायद भद्रश्रेण्य के समय आक्रमणों के कारण हैहयों को धन की बहुत आवश्यकता हुई। किसी हैहय नरेश ने अपने अथच पूर्व पुरुषों द्वारा सम्मानित उस भार्गव

वंश से धन माँगा, जो शार्यातों का पुराना पुरोहित था और नर्मदा के दक्षिण रहता था, अथच शार्यातों के सम्बन्ध से हैहयों द्वारा भी पूजित था। उन्होंने धनाभाव बतलाया किन्तु खोदाई होने से उनके पास प्रचुर द्रव्य निकला। तब क्रोध करके हैहयों ने गर्भ तक फाड़-फाड़ कर उस वंश का नाश किया, केवल और्व नामक एक बच्चा किसी प्रकार बच गया। अनन्तर सयाने होने पर और्व नर्मदा को छोड़कर मध्यभारत में रहने लगे। इनके पुत्र ऋचीक प्रकट कारणों से शस्त्री हुए। ऋचीक का विवाह कान्यकुब्ज नरेश गाधि (वैदिक गाथिन) की पुत्री सत्यवती से हुआ, जिससे जमदग्नि का जन्म हुआ। उधर प्रायः उसी समय गाधि पुत्र विश्वामित्र उत्पन्न हुए। जमदग्नि के रेणुका से पाँच पुत्र हुए, जिनमें सब से छोटे परशुराम थे। रेणुका सूर्यवंशी किसी प्रसेनजित की पुत्री थी। अतएव कान्यकुब्ज तथा सूर्यवंशों की जमदग्नि से सहानुभूति थी। उधर हैहय नरेश दुर्दम का पौत्र कृतवीर्य प्रतापी राजा हुआ (महाभारत)। हैहयों का वर्णन निम्न अन्य पुराणों में भी है—ब्रह्माण्ड, वायु, ब्रह्म, हरिवंश, मत्स्य, पद्म, लिंग, कूर्म, विष्णु, अग्नि, गरुड़, और भागवत्। वीतिहोत्र, अवन्ति, भोज, शार्यात और तुण्डिकेर नामक इनकी पाँच शाखायें आगे चलकर हुईं।

शान्ति पर्व में यह लिखा है कि भार्गवों द्वारा जब हैहयों का पराभव हुआ, तब वैश्य और शूद्र ब्राह्मणों तक पर अत्याचार करने लगे जिस पर इन्हीं (भार्गवों) ने फिर हैहयों को राजा बना कर उनका दमन कराया। इससे जान पड़ता है कि पहले भार्गवों ने इनसे मिल कर हैहयों को पछाड़ा, और जब अपने पुरुषार्थ से मदोन्मत्त होकर वे अनीति करने लगे, तब हैहयों के द्वारा भार्गवों ने उनका दमन कराया। पण्डित लोग यह भी कहते हैं कि हैहयों के विरोध में कान्यकुब्जों तथा सूर्यवंशियों ने भी भार्गवों की सहायता की होगी।

हैहयार्जुन की जमदग्नि की स्त्री रेणुका की बहिन ब्याही थी। कई साधारण कारणों से इन साढ़ुओं में मन मैली होगई, और अर्जुन ने जमदग्नि के आश्रम पर आक्रमण किया। इस पर पिता की आज्ञा मान कर राम ने विद्रोही प्रजा के नेता बन कर युद्ध में अपने मौसिया एवं प्रसिद्ध सम्राट् अर्जुन का अपने हाथ से वध किया। अनन्तर

अर्जुनात्मजों ने राम की अनुपस्थिति में निरस्त्र जमदग्नि को मार डाला। कहते हैं कि इस पर क्रोध करके राम ने २१ बार भारत में सभी युद्धोत्साही क्षत्रियों का वध किया। यह कथन पुराणों में कथित है किन्तु तत्कालीन राजमंडल की स्थिति के देखने से अनैतिहासिक समझ पड़ता है। स्वयं राम की माता तथा पितामही क्षत्रियात्मजा थीं। एक क्षत्रिय वंश के कारण वे सारे क्षत्रिय वंशों पर क्रोध कर भी नहीं सकते थे। जान पड़ता है कि इन्होंने अर्जुन के दोषी पुत्रों का वध किया होगा। परशुधर राजा होना तो चाहते न थे, सो विजय प्राप्त करके पहले तो आप कुछ दिन कोंकण में बसे और फिर पूर्वी घाट के महेन्द्र पर्वत पर रहने लगे। विचार किया जाता है कि उनके प्रतोत्साहन से दक्षिण में ब्राह्मणों की बस्ती बहुत स्थापित हुई। पीछे रामचन्द्र के समकालीन अगस्त्य ने भी उधर बहु-संख्या में ब्राह्मण जनता बढ़ाई। मध्यदेश में परशुधर के भाई चारे में पीछे अग्नि और्व महत्ता युक्त हुए। इन्हीं की सहायता से सगर का प्रताप बढ़ा। हैहयों के विषय में कुछ और आधारों का कथन करके हम कथा के डार को आगे चलावेंगे। इनके तथा भार्गव ब्राह्मणों के कथन पुराणों में बहुतायत से हैं। सहस्रार्जुन का कर्कोटक नागों से माहिष्मती लेना (म० भा० VIII ४४,-२०६६, III ६६, २३११ VIII ३४, १४८३, ह० वं० १६८, ९५०२, पद्म VI २४२,२) में लिखित है। कर्कोटक नागराज था। अर्जुन का नर्मदा से हिमालय तक जीतना (म० भा० III ११६, ११०८९, ११७,-१०२०९) तथा हैहयों का शकों, यवनों, काम्बजों, पारदों और पह्लवों की सहायता से मध्य देश जीतना (वायु ८८, १२२,४३ ब्रह्माण्ड III ६३,१२०,४१ VIII २९, ५१, ह० वं० १३,७६०, विष्णु IV ३, १५,७२) में कथित हैं।

इसी स्थान पर वीतिहव्यादि हैहय तथा भार्गवों के सम्बन्ध में भी आधार लिख दिए जाते हैं जिसमें आगे के कथनों में स्थान-स्थान पर विवरण छोड़ कर वे न लिखने पड़ें।

काशी की शाखा वाले प्रतर्दन ने हैहय राजधानी जीतकर वीतिहव्य (तालजंघ हैहय के पुत्र) को हराया। वीतिहव्य शौनक भार्गव ऋषि होगए। इन्होंने आंगिरस शुनहोत्र के पुत्र गृत्समद वेदर्षि को गोद

लिया। यही गृत्समद शंबर वध में अतिथिग्व दिवोदास का कथन करते हैं। वीतिहव्य भरद्वाज ऋषि के साथ भी रहे। गृत्समद का दूसरा ऋग्वेद वाला मंडल है, और भरद्वाज का छठवां। इस छठे मण्डल में वीतिहव्य का कथन ऋषि की भांति है। वीतिहव्य वीतिहोत्र भी कहलाते थे (म० भा० XIII ३०,५८,९,३०,१९८३, ९६. सर्वानुक्रमणी) वीतिहव्य को महाभारत के अनुसार एक भार्गव ऋषि ने बचाया। इसी से ये भार्गव ऋषि बने। म्लेच्छों की सहायता से वीतिहव्य के पिता तालजंघ हैहय ने राजा बाहु को पराजित किया था। अनन्तर बाहु के पुत्र सगर ने हैहयों का बल नष्ट किया। (आधार वायु ८८, १२१, ४३, ८० सं०, ६३, ७६० से १४, ७८४ तक, विष्णु IV ३, १५, २१ महाभारत में कई जगह।)

भार्गवों के विषय में आधार।

ऊपर कहे हुए हैहयों के पौराणिक विवरणों में भार्गवों का भी हाल मिलेगा। सगर की पालना अग्नि और्व ने की (वायु ८८, १२७, मत्स्य १२, ४०, ३)।

पुराणों में कहीं-कहीं कृतवीर्य का भार्गवों को अमीर करना लिखा है और फिर उनके पीछे हैहयों द्वारा भार्गव संहार कथित है। इसी संहार से और्व का बचना तथा उनके प्रपौत्र परशुराम का कार्तवीर्य अर्जुन को मारना लिखा है। इससे जान पड़ता है कि भार्गव संहार कार्तवीर्य के पहले हुआ होगा। सम्भव है कि कार्तवीर्य ने भार्गवों का मान किया हो, किन्तु यह संहार के पीछे की बात भी।

ऋचीक और्व धनुर्धर एवं शास्त्री थे (म० भा० XIII ५६, २९१८, XII २३७, ८६०७, रामायण I ७५, २२, २)।

जमदग्नि भी भी शास्त्रों तथा धनुष विद्या में शिक्षा हुई, किन्तु इन्होंने शान्त स्वभाव के कारण युद्ध छोड़ दिया। यह गंगाजी के किनारे रहते थे, (म० भा० III ११५, ११०६९-७०,XIII ५६, २९१०, १२, III ११६, ११०७१, XII ४९, १७५५, रामायण I ७०, २२, ३, पद्म VI २६८, २१)। अग्नि और्व ने सगर की सहायता की (मत्स्य १२, ४०, पद्म V ८, १४४), जामदग्नि राम ने हैहयार्जुन को मारा,

उसके पुत्रों का भी ध्वंस किया तथा २१ बार पृथ्वी निक्षत्र की। अब हैहयों का इतिहास फिर से उठाया जाता है।

अर्जुन के पीछे तत्पुत्र जयध्वज राजा हुये। शूर और शूरसेन इनके भाई थे। जयध्वज का कोई प्रभाव न बढ़ा, किन्तु इनके पराक्रमी पुत्र तालजंघ (राजा नं० ३६) ने फिर हैहय बल को बढ़ाया। शार्यात इनमें मिल ही चुके थे, अब आवन्ति, तुण्डिकेर और भोज भी मिल गये। हैहयों की एक शाखा तालजंघात्मज के नाम पर वीतिहोत्र भी कहलाती थी। तालजंघ ने विश्वामित्र को म्लेच्छों द्वारा हरानेवाली वशिष्ठ की युक्ति को ठीक समझ स्वदेशाभिमान छोड़ कर म्लेच्छों से भी सहायता ली। इधर प्रजा का विद्रोह भार्गवों से मेल हो जाने से टूट ही चुका था, सो पराक्रमी भूपाल तालजंघ ने हैहय राज्य के बढ़ाने में मन लगाया। ये पुराणों में बृहद्बाहु (बड़ी भुजावाला) कहे गए हैं। इनका राज्य आनर्त (कैम्बे की खाड़ी के निकट) से बनारस तक फैला। इनके आक्रमणों से पराजित हो कर सूर्यवंशी राजा बाहु उपर्युक्त अग्नि और्व ऋषि के आश्रम में गए, तथा काशी नरेश दूसरे दिवोदास (नं० ३७) भरद्वाजाश्रम में जा छिपे। विश्वामित्र के पुत्र लौहि का कान्यकुब्ज राज्य नष्ट हुआ और केवल अयोध्या का सूर्यवंशी राज्य इस ओर बच रहा। पौरवों, पांचालों आदि से हैहयों का बिगाड़ न हुआ। जान पड़ता है कि परशुधर के नाना प्रसेनजित सगर के पूर्वपुरुषों में कोई थे और इस वंश ने तथा कान्यकुब्जों ने भार्गवों की अवश्य सहायता की होगी, जिससे हैहयों ने अपने पुराने शत्रु काशी नरेश के अतिरिक्त इन्हीं दो मुख्य राज्यों से वैर निकाला। तालजंघ ने काशी के पूर्व वाले राजाओं को भी जीता होगा, किन्तु पुराणों में उनके नाम नहीं हैं, केवल वैशाल नरेशों में नं० ३५ प्रगति अन्तिम नरेश लिखे हैं। उनका राज्य तालजंघ ही ने छीना होगा, ऐसा समझ पड़ता है। इनके युद्धों में क्षत्रियों का संहार बहुत हुआ तथा इनके द्वारा म्लेच्छ सेना के भी प्रयोग से अथच हैहयों के भार्गवों से अनुचित विरोध करने से, इन क्षत्रियों का भारी विजेता होने पर भी भारतीय ग्रन्थों में अधिक समादर नहीं है।

तालजंघ के समय तो कोई हैहयों से आँख मिला न सका, किन्तु

इनके पीछे इस वंश पर विपत्ति आई। इनके पुत्र वीतिहोत्र (नं० ३७) तथा उनके एक भाई में यह राज्य बट गया। वीतिहोत्र के प्रपौत्र, (नं० ४०) सुप्रतीक इस शाखा के अन्तिम नरेश थे। इसी काल दूसरी शाखा के अन्तिम राजा वीतिहोत्र के पौत्र पृ दण थे। दिवोदास के पुत्र राजा (नं० ३८) प्रतर्दन ने वीतिहोत्र को यह करारी पराजय दी कि ये राज्य छोड़ कर भार्गव वंशी वेदर्षि हो गए। इन्हीं वीतिहोत्र ने उत्तर पांचाल नरेश दिवोदास द्वारा पूजित वेदर्षि भरद्वाज के साथ वैदिक ऋचाओं का गान किया। इनके पुत्र और पौत्र दुर्जय फिर भी किसी न किसी रूप में हैहयराज्य चलाते रहे। काठक संहिता में आया है कि भरद्वाज ने प्रतर्दन को राज्य दिया। ये वही भरद्वाज थे, जिनका वीतिहव्य से भी सम्बन्ध हुआ, सो यही निष्कर्ष निकलेगा कि प्रतर्दन ने वीतिहव्य को पकड़ कर अपने गुरु भरद्वाज के हवाले किया तथा उसका पुत्र हैहयराजा हो गया। अनन्तर और्व के आश्रित बाहु के पुत्र प्रसिद्ध नरेश सगर ने हैहयों की दोनों शाखाओं को नष्ट करके इस वंश का पूर्णतया राज्यच्युत कर दिया। हैहयों ने अपना राज्य बढ़ाने में दूसरों के अधिकारों का उचित मान नहीं किया, जिससे भार्गवों पर विपत्ति आई, वैशाल और कान्यकुब्ज राज्य नष्ट हो गए, तथा काशी और बाहु के राज्य डगमगाये, किन्तु अन्त में भार्गवों तथा इन्हीं दोनों द्वारा हैहयराज्य अशेष हुआ। कालिदास ने राम की पितामही इन्दुमती के स्वयंवर में हैहयवंशी प्रतीप की उपस्थिति लिख कर उन्हें वृद्ध सेवी बतलाया है। सम्भवतः प्रतीप उपर्युक्त दुर्जय के पिता या पितामह हों। उज्जयिनी हैहयों के ही राज्य में थी। त्रेतायुग में अयोध्या वंश के अतिरिक्त हैहयों के वंशी ही सर्वोत्कृष्ट थे, किन्तु रामचन्द्र के समय में अथवा उनके कुछ ही पीछे निर्मूल हो गये।

तुर्वश वंश, उत्तरी विहार।

द्रुह्यु के सगे भाई तुर्वश को ययाति द्वारा किये हुये बटवारे में प्रायः रीवाँ प्रान्त मिला। इस प्रान्त से यह वंश उत्तरी विहार में कब आया, सो पता नहीं, किन्तु मरुत्त (नं० ३३) को हम वहीं पाते हैं। वैशाल

मरुत्त को तोर्वंश मरुत्त का बहुत कुछ यश पुराणों में मिला है, यहाँ तक कि इनके पिता करन्धम का नाम भी वैशाल मरुत्त के पितामह का है। करन्धम भी प्रतापी लिखे हुए हैं। मरुत्त चक्रवर्ती सम्राट हुए। (अश्वमेध पर्व महाभारत) आपने दीर्घतमस के चचा संवर्त से यज्ञ कराई। इन्हें भारी खजाना भी हिमालय में मिला। संवर्त के भाई वृहस्पति का वही नाम था, जो देव पुरोहित का। शायद इसी से संवर्त का सम्बन्ध महाभारत के अश्वमेध पर्व में देव पुरोहित वृहस्पति से जुड़ा है और इन्द्र की मरुत्त पर ईर्ष्या कही गई है। देव पुरोहित वृहस्पति इस काल से बहुत पूर्व के थे। उनका संवर्त और उचथ्य के भाई वृहस्पति से सम्बन्ध नहीं समझ पड़ता है। दैत्य दानवों के शत्रु इन्द्र का ऐतिहासिक वर्णन मनु और चन्द्र के समय में होकर (सूर्यवंशी नं० ४) पुरंजय के समय तक चलता है, जहाँ यह नाम किसी सम्राट् वंश की पदवी है। वृत्र को मार कर जब इन्द्र भागते हैं, तब (चन्द्रवंशी नं० ५) नहुष इन्द्र बनते हैं। अनन्तर उनके पतन पर शायद पुरंजय की सहायता से, पुराने इन्द्र फिर गद्दी पर बैठ जाते हैं। इसके पीछे, (योग वाशिष्ठ के अनुसार) किसी दैत्य सरदार प्रह्लाद को विष्णु इन्द्र बनाते हैं। यह प्रह्लाद बलि के पितामह से इतर कोई अन्य दैत्य सरदार भी हो सकते हैं, किन्तु समझ बलि के ही पितामह पड़ते हैं। योग वाशिष्ठ में विष्णु कहते हैं कि आज से दैत्यों का रुधिर पात युद्ध में न होगा। पुराणों में लिखा है कि प्रह्लाद भविष्य में इन्द्र होंगे। इन कथनों से फ़ारस में अन्त में दैत्य साम्राज्य के स्थापित होने की ध्वनि मिलती है। इसके पीछे सब से पहले जब इन्द्र का ऐतिहासिक विवरण आता है तब वे युधिष्ठर के अनुज अर्जुन के स्नेही पिता के रूप में हिमालय के किसी प्रान्त के सम्राट् देख पड़ते हैं, जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है। बलि को वामन की सहायता से जीतनेवाले इन्द्र शायद फ़ारसी सम्राट् थे। यश वंश नहुष के समय में डगमगा कर अन्त में अधिकारच्युत हुआ और प्रह्लाद नामक किसी दैत्य की अध्यक्षता में उस वंश में फ़ारसी इन्द्र पद स्थापित हुआ। दूसरा इन्द्र घराना युधिष्ठिर के समय हिमाचल में था। रावण के समय में भी एक इन्द्र थे। इन तीनों वंशों के अतिरिक्त कोई चौथा ऐतिहासिक

करके अपने दो पुत्रों में नाना का राज्य बाँट दिया। तक्ष को तक्षशिला मिली और पुष्कर को पुष्करावती (आधार वायु ८८, १८९, ९०, विष्णु IV ४, ४७, अग्नि ११, ७, ८, रघुवंश XV ८८, ९, पद्म V ३५, २३. ४, VI २७१, १०)।

इसके आगे पुराणों में यह वंश वर्णित नहीं है। या तो यह लोग उसी ओर के क्षत्रियों में मिल गए होंगे, या समय पर शत्रुओं द्वारा जीते जाकर इनके वंशधर राज्यच्युत हुए होंगे। पहला अनुमान सुसंगत समझ पड़ता है क्योंकि इनकी दोनों राजधानियों (तक्षशिला और पुष्करावती) के नाम बहुत काल तक चले। कहीं-कहीं यह भी लिखा है कि कुछ आनव म्लेच्छ देशों में जा बसे। महाभारत आदि पर्व म्लेच्छों को अनुवंशी कहता है।

आनववंश, पूर्वी आंग शाखा।

उपर्युक्त नरेश नं० २२, तितिक्षु पूर्व में आकर अंग (वर्तमान भागलपुर) में स्थापित हुये। इनके पौत्र हेम के पौत्र (नं० २६) बलि एक प्रसिद्ध और विजयी राजा थे। इनकी सुदेष्णा रानी में इन्हीं की आज्ञा से तोवरा मरुत्त को यज्ञ कराने वाले संवर्त के भतीजे तथा उचथ्य और ममता के पुत्र प्रसिद्ध वैदिक ऋषि अन्धे दीर्घतमस ने पाँच पुत्र उत्पन्न किए, जिनके नाम अंग, बंग, कलिंग, सुम्ह और पौण्ड्र थे। अनन्तर इन्हीं मामतेय ने नेत्रवान होकर गोतम नाम धारण किया, तथा दुष्यन्त पुत्र पौरव सम्राट् भरत का ऐन्द्रमहाभिषेक कराया। बलि के पाचों पुत्रों ने बढ़ कर पूर्वी प्रान्तों में राज्य किया। इनके द्वारा शासित देश इन्हीं के नामों से प्रख्यात हुए। ये सब पूर्वी बिहार से बंगाल तक पर फैले थे। बंग (वर्तमान वीरभूमि मुर्शिदाबाद, बर्दवान, और नदिया), पुण्ड्र (छोटा नागपुर), सुम्ह (बाँकुरा और मदनापूर), और कलिङ्ग (उड़ीसा) Kapson के अनुसार आनवों के थे। बलि पुत्र अंग (नं० २७) ने पिता ही की राजधानी मालिनी में राज्य किया। इन्हीं के नाम पर देश अंग (वर्तमान मुंगेर तथा भागलपुर) कहलाया। इनके वंशधर प्रसिद्ध नरेश लोमपाद (नं० ४०) राम के पिता दशरथ के मित्र थे। कौशल्या की पुत्री

शान्ता को गोद लेकर इन्होंने उसका ऋष्य शृंग से विवाह किया। इनके प्रपौत्र चम्प ने चम्पापुरी बसाई, जो अङ्ग की राजधानी हुई। इसी वंश के किसी राजकुमार उद्र का राज्य उड़ीसा में जमा। लोमपाद के वंशधर जयद्रथ (नं० ४८) ने एक ऐसी कन्या से विवाह किया, जिसकी माता ब्राह्मणी और पिता क्षत्रिय था। इस कारण यह वंश सूत कहलाने लगा। आगे का वर्णन यथा स्थान आवेगा। इस वंश का विवरण महाभारत, रामायण तथा पुराणों में है। दीर्घतमस का वर्णन म० भा० के अतिरिक्त ऋग्वेद, वायु ९९, मत्स्य ४८ तथा बृहद्देवता IV १५ में भी है। इस काल के उपर्युक्त महापुरुषों के विवरण जो पुराणों से अन्यत्र मिलते हैं, उनके भी कथन यहाँ किए जाते हैं। इनमें वेदर्षि निम्न हैं:—

दीर्घतमस, वीतिहव्य, जमदग्नि, राम परशुधर और शिवि। यदु, द्रुह्यु, अनु और तुर्वश के नाम ऋग्वेद में बार-बार आये हैं। गन्धार में बहुत करके रावलपिण्डी और पेशावर के जिले लगते थे। उसमें तक्षशिला और पुश्करावती शहर थे। अन्तिम को अब प्रेग और चारसद (पेशावर से उत्तर पच्छिम १७, मील) कहते हैं। ऋग्वेद I १२६, ७, में गान्धारियों की ऊन की प्रशंसा है। अथर्ववेद V २२, १४, में गन्धारी लोग निन्द्य होकर मूजवन्तों के साथ कथित हैं। पीछे यहाँ विद्वत्ता की प्रसिद्धि हुई, जहाँ वेदों तथा १८ विद्याओं की शिक्षा होती थी। छान्दोग्य, VI १४, में उद्दालक, आरुणि, गान्धारी विद्वत्ता की प्रशंसा करते हैं। उद्दालक जातक नं० ४८७, में उद्दालक तक्षशिला जाकर विद्या सीखते हैं। सेतुकेतु जातक नं० ३७७ कहता है कि उद्दालक पुत्र सेतुकेतु ने तक्षशिला में विद्या पढ़ी। कौटिल्य भी वहीं के विद्यार्थी थे। जातक (४०६) में कश्मीर और तक्षशिला गान्धार में थे। गन्धार राज द्रुह्यु वंशी थे। ऋग्वेद में गन्धार वाले उत्तर पच्छिमी लोग थे।

केकय लोग गन्धार और व्यास नदी के बीच में थे, (रामायण, II ६८, १९, २२, VII ११३, १४)। राजधानी राजगृह या गिरिव्रज जलालपुर झेलम पर थी। एक मागध गिरिव्रज भी था। मत्स्य और वायु पुराण कहते हैं कि उशीनर केकय और मद्रक लोग

आनव थे। ऋग्वेद VIII ७४, कहता है कि आनव मध्यपञ्जाब में थे।

मद्र के दो भाग हैं, अर्थात् उत्तर और दक्षिण मद्र। ऐतरेय ब्राह्मण में उत्तर माद्र हिमालय के उस पार लिखे हैं। कश्मीर के निकट उत्तर कुरु में दक्षिण माद्र मध्यपञ्जाब में थे। केकय तथा इरावती के बीच में (महाभारत VIII ४४, १७) यह राज्य सियालकोट और निकट के ज़िलों पर था। यह गुरु गोविन्दसिंह के समय तक मद्र कहलाता था। राजधानी साकल थी (महाभारत)। कलिङ्ग जातक ४७९ और ५०१ कुश जातक में वहां राजकीय सत्ता एक राजाधीन है। पहले मद्र अच्छा था, किन्तु कर्णपर्व में माद्रों की निन्दा है।

उशीनर का प्रान्त मध्यदेश में था। ऐतरेय ब्राह्मण VIII १४,कहता है कि मध्यदेश में कुरु, पांचाल, वश एक वश का नाम था तथा उशीनरों का राज्य था। कौशीतकि उपनिषत् में उशीनरों का साथ मत्स्य, कुरु, पांचाल और वशों से है। कथा सरित्सागर में उशीनर कनखल के पास हैं। पाणिनि भी इनका कथन करते हैं। महाभारत में राजधानी भोज नगर है तथा ऋग्वेद, X ५९, ७, १०, में उशीनरानी। अनुक्रमणी और जातकों में उशीनर और तत्पुत्र शिवि के कथन हैं। मत्स्य में अलवर, जैपुर तथा भरतपुर के भाग थे। राजधानी वैराट जैपुर में थी। ऋग्वेद VII १८, ६ में मत्स्य लोग सुदास से हारते हैं। अङ्ग मगध के पूर्व में है। राजधानी चम्पा थी, तथा चन्दन नदी हद।

मथुरा शूरसेनों की राजधानी थी। इसका नाम ऋग्वेद में नहीं है। ग्रीक लेखक मथुरा तथा शूर सेनों के कथन करते हैं। यादवों में वीतिहोत्र, सात्वत आदि के नाम हैं, तथा सात्वतों में देवावृद्ध, अन्धक महाभोज और वृष्णि के। शतपथ ब्राह्मण VIII ६, ४६, में शौद्युम्नि भरत सात्वतों को हराकर उनका अश्वमेध बिगाड़ते हैं। ये सात्वत भीमसात्वत के पहले हुए होंगे। ऐतरेय ब्राह्मण में सात्वत दाक्षिणात्य हैं (VIII १४, ३) जिनके राजा भोज हैं। माहिष्मती, विदर्भ आदि यादवों की राजधानियाँ थीं। ऐतरेय ब्राह्मण VII ३४, में विदर्भराज भीम तथा गान्धार राज नग्नजित के समकालीन बभ्रु दैवावृद्ध हैं। अवन्ती में मालवा, नीमार तथा निकट की भूमि लगती थी। उत्तरी

राजधानी उज्जैन थी तथा दक्षिणी अवन्ती। आजकल उज्जैन और अवन्ती एक ही शहर के नाम हैं। सम्भवतः उस काल दो हों। दक्षिणापथ की राजधानी माहिष्मती (मान्धाता) नर्मदा पर थी। महाभारत में अवन्ती के विन्द अनुविन्द नर्मदा के निकट के थे। ऐतरेय ब्राह्मण VIII १४, दक्षिणी भागों से यादवों तथा भोजों का सम्बन्ध बतलाता है। पहला घराना हैहयों का था। इनका कथन कौटिल्य करते हैं। इन्होंने नागोंको जीता। मत्स्य पुराण इनमें पाँच भाग मानता है, अर्थात् वीतिहोत्र भोज, अवन्ती, कुडिकेर या तुण्डिकेर और तालजंघ।

काम्बोज उत्तरापथ में गन्धार के निकट था। राजपूर काम्बोजों का केन्द्र था; यथा, "कर्णराजपुरे गत्वा काम्बोज निर्जितस्त्वया।"

राज्यों की पाँच श्रेणियाँ थीं, अर्थात् साम्राज्य, भौज्य, स्वराज्य, वैराज्य, और राज्य। भोज पहले यदुवंश के अंग थे। पीछे भौज्य से दाक्षिणात्य राज्य का प्रयोजन मिलने लगा। शतपथ ब्राह्मण XIII ५, ४, ६, में मरुत्त अवीक्षित अयागव थे, अर्थात् शूद्र पिता और वैश्या माता से उत्पन्न।

महिषी, परिवृक्ता, वावाता और पालागली नाम्नी चार रानियाँ होती थीं। मुख्य महारानी महिषी थी, प्रेमहीना परिवृक्ता, मुख्य प्रेमिका वावाता और अन्तिम, मन्त्री की कन्या, पालागली। भारी सम्राट् का ऐन्द्रमहाभिषेक होता था। शर्यात, विश्वकर्मा, सुदास, मरुत्त और भरत के ऐसे अभिषेक हुए। ग्रामिक आदि राजा को सलाह देते थे।

विष्णु पुराण का कथन है कि बाहु तालजंघ से हार कर और्व के आश्रम गये। सगर ने शक, यवन, काम्बोज, परद और पल्लवों को जीता। वशिष्ठ ने उन्हें बचा कर प्रजा के रूप में बसने दिया। महाभारत आदि पर्व में वशिष्ठ ने शबरों तथा म्लेच्छों के द्वारा विश्वामित्र को जीता। जनमेजय के सर्पसत्र में आस्तीक ने, म० भा० आदि पर्व में गय, शशिबिन्दु, अजमीढ़, रामचन्द्र और युधिष्ठिर के यज्ञों की प्रशंसा की। द्रोण पर्व में व्यास ने युधिष्ठर के समझाने में निम्न १६ प्राचीन भारतीयों कोश्रेष्ठ कहा:—मरुत्त (यज्ञकर्ता सम्राट्),

छोड़ना पड़ा, और नहुष इन्द्र हुए। इन्द्र का स्थान भारत के बाहर कहीं समझ पड़ता है। नहुष इन्द्रत्व चला न सके और पदच्युत हुए तथा इन्द्र फिर स्थापित हुए। शायद इसी अवसर पर पुरंजय ने उनकी सहायता की हो। अनन्तर चन्द्रवंशी नहुष पुत्र ययाति (नं० ६) प्रसिद्ध विजयी हुए। इन्होंने राज्य बहुत बढ़ाया। दो रानियों में इनके पाँच पुत्र हुए। जेठे पुत्रों से आज्ञा भङ्ग के कारण अप्रसन्न होकर ययाति ने कनिष्ठ पुत्र पुरु को सम्राट् बनाया, तथा चारों ज्येष्ठ पुत्रों को बाह्य प्रान्त दिए।

सूर्य और चन्द्रवंशों में इस काल कई राज्य स्थापित हो चुके थे। ययाति के पीछे कई पुश्तों तक महत्ता में शायद ये दोनों समान रहे हों। दोनों कुलों में छठी पुश्त से बीसवीं पीढ़ी पर्यन्त प्रायः ढाई सौ वर्ष तक किसी नरेश की महत्ता न हुई, यहाँ तक कि इस काल के कई नाम भी लुप्त हो गए। भारत के प्राचीन शासकों में किसे दबा कर ये दोनों वंश स्थापित हुए सो अकथित है। यह भी नहीं विदित है कि इन प्रायः ढाई सौ वर्षों में सूर्य, चन्द्र वंशों की तुलनात्मक शिथिलता के समय भी उन लोगों ने इन्हें जीतने का कोई प्रयत्न किया। शायद इन दिनों के भूपाल न तो बहुत निकलते हुए थे, न ऐसे निर्बल कि कोई उनके राज्य ही छीन लेता। सुदास नं० ३९ के समय तक वैदिक वर्णन भारी-भारी अनार्य राजाओं का अस्तित्व बतलाता है। पुराणों में भी इस साधारण काल में कुछ अनार्यों के आर्यों से युद्ध कथित हैं, किन्तु वे प्रभावपूर्ण न थे। इस शिथिल काल के पीछे सब से पहले महत्तायुक्त यादव नं० २०, भूपाल शशिबिन्दु हुए। इन्होंने पौरवों को पराजित करके अनेक यज्ञ किए। अनन्तर इनका वश फिर शिथिल पड़ गया और इनके दामाद सूर्यवंशी (नं० २१) मान्धाता प्रबल पड़े। इन्होंने अनु, द्रुह्यु और तुर्वश वंशियों को पराजित किया तथा पुरुवश को राज्यच्युत कर दिया। उधर थोड़े ही दिनों में तुर्वश वंशी मरुत्त भी प्रबल पड़ कर सम्राट् हो गए और उनके दत्तक पुत्र दुष्यन्त पौरव प्रतापी होकर अपना राज्य फिर जमाने में यत्नवान हुए। इस स्थिति का मुख्य कारण सूर्यवंशियों का द्रुह्यु वंशियों के पीछे पड़ कर गान्धार तक

सुहोत्र (भारी वीर, यज्ञकर्ता, राजधानी में स्वर्ण बाहुल्य), अङ्ग, (यज्ञकर्ता), शिविऔशीनर (दानी, यज्ञकर्ता), दाशरथी राम, भगीरथ (सार्वभौमराजा, हज़ारों कन्यायें विप्रों को दीं), दिलीप इलवलात्मज (यज्ञ कर्ता), मान्धातृ (युवनाश्वात्मज, विजेता, यज्ञकर्ता), ययाति (यज्ञकर्ता), अम्बरीष नाभागात्मज (विजयी, रण, मख दान यहीतीन काम थे), शशिबिन्दु (अश्वमेध में स्वपुत्र दान में दिए), गय (यज्ञकर्ता), रन्तिदेव (संकृतपुत्र, भोजन दान, यज्ञ), दुष्यन्त पुत्र भरत (दाँत पकड़ कर सुप्रतीक हाथी वश किया; कई अश्वमेध तथा विश्वजित यज्ञ किए), पृथु (पृथ्वीपुत्री, यज्ञकर्ता), परशुराम (विजयी)।

त्रेतायुग का सम्मिलित वर्णन।

चाक्षुस मन्वन्तर के पीछे मनु वैवस्वत और बुध ने भारत में सूर्य और चन्द्रवंशों के राज प्रायः साथ ही साथ स्थापित किए। ये दोनों ससुर दामाद थे। मनु अयोध्या में जमे, और बुध प्रतिष्ठानपुर (प्रयाग के निकट झूँसी) में। मनु की मुख्यता थी और उन्हीं के नाम पर मन्वन्तर चला। उनके पुत्र सुद्युम्न के तीन पुत्र पूरब में गंगा, और सोन पर जमे, शर्य्याति आनर्त में तथा नाभानेदिष्ठ वैशाली में। मनु पुत्र धृष्ट का प्रभाव बाल्हीक देश की ओर कहा जाता है। इक्ष्वाकु मनु के ज्येष्ठ पुत्र थे। ये अयोध्या में राजा हुए। इनके पुत्र शकुनि की अध्यक्षता में बहुतेरे ऐक्ष्वाकु उत्तरापथ (पंजाब की ओर) गए। वशाति और दंडक के नेतृत्व में इसी प्रकार कुछ ऐक्ष्वाकु दक्षिणापथ गए। वहाँ इनका उपनिवेश दंडक के व्यभिचार से असफल हुआ। इक्ष्वाकु के समय में राप्ती नदी के निकट से आकर माथव नामक सरदार ने गौतम को पुरोहित बना कर मिथिला में राज्य जमाया। उनकी राजधानी अयन्त हुई। इस बारह पुश्तों के पीछे इक्ष्वाकु वंशी निमि और सत्पुत्र मिथि मिथिला में स्थापित हुये। ऐक्ष्वाकु (नं० ४) पुरंजय ककुत्स्थ इन्द्र के मुख्य सहायक और भारी नरेश थे। इन्हीं दिनों चन्द्रवंश में नं० ४, पुरूरवा और नं० ५, नहुष महान हुए। विश्वरूप और वृत्रवध के पीछे कुछ कारणों से इन्द्र को अपना पद

छोड़ना पड़ा, और नहुष इन्द्र हुए। इन्द्र का स्थान भारत के बाहर कहीं समझ पड़ता है। नहुष इन्द्रत्व चला न सके और पदच्युत हुए तथा इन्द्र फिर स्थापित हुए। शायद इसी अवसर पर पुरंजय ने उनकी सहायता की हो। अनन्तर चन्द्रवंशी नहुष पुत्र ययाति (नं० ६) प्रसिद्ध विजयी हुए। इन्होंने राज्य बहुत बढ़ाया। दो रानियों में इनके पाँच पुत्र हुए। जेठे पुत्रों से आज्ञा भङ्ग के कारण अप्रसन्न होकर ययाति ने कनिष्ठ पुत्र पुरु को सम्राट् बनाया, तथा चारों ज्येष्ठ पुत्रों को बाह्य प्रान्त दिए।

सूर्य और चन्द्रवंशों में इस काल कई राज्य स्थापित हो चुके थे। ययाति के पीछे कई पुश्तों तक महत्ता में शायद ये दोनों समान रहे हों। दोनों कुलों में छठी पुश्त से बीसवीं पीढ़ी पर्यन्त प्राय: ढाई सौ वर्ष तक किसी नरेश की महत्ता न हुई, यहाँ तक कि इस काल के कई नाम भी लुप्त हो गए। भारत के प्राचीन शासकों में किसे दबा कर ये दोनों वंश स्थापित हुए सो अकथित है। यह भी नहीं विदित है कि इन प्राय: ढाई सौ वर्षों में सूर्य, चन्द्र वंशों की तुलनात्मक शिथिलता के समय भी उन लोगों ने इन्हें जीतने का कोई प्रयत्न किया। शायद इन दिनों के भूपाल न तो बहुत निकलते हुए थे, न ऐसे निर्बल कि कोई उनके राज्य ही छीन लेता। सुदास नं० ३९ के समय तक वैदिक वर्णन भारी-भारी अनार्य राजाओं का अस्तित्व बतलाता है। पुराणों में भी इस साधारण काल में कुछ अनार्यों के आर्यों से युद्ध कथित हैं, किन्तु वे प्रभावपूर्ण न थे। इस शिथिल काल के पीछे सब से पहले महत्तायुक्त यादव नं० २०, भूपाल शशि-बिन्दु हुए। इन्होंने पौरवों को पराजित करके अनेक यज्ञ किए। अनन्तर इनका वश फिर शिथिल पड़ गया और इनके दामाद सूर्य-वंशी (नं० २१) मान्धाता प्रबल पड़े। इन्होंने अनु, द्रुह्यु और तुर्वश वंशियों को पराजित किया तथा पुरुवश को राज्यच्युत कर दिया। उधर थोड़े ही दिनों में तुर्वश वंशी मरुत्त भी प्रबल पड़ कर सम्राट् हो गए और उनके दत्तक पुत्र दुष्यन्त पौरव प्रतापी होकर अपना राज्य फिर जमाने में यत्नवान हुए। इस स्थिति का मुख्य कारण सूर्यवंशियों का द्रुह्यु वंशियों के पीछे पड़ कर गान्धार तक

सुहोत्र (भारी वीर, यज्ञकर्ता, राजधानी में स्वर्ण बाहुल्य), अङ्ग, (यज्ञकर्ता), शिबिऔशीनर (दानी, यज्ञकर्ता), दाशरथी राम, भगीरथ (सार्वभौमराजा, हजारों कन्यायें विप्रों को दीं), दिलीप इत्वलात्मज (यज्ञ कर्ता), मान्धातृ (युवनाश्वात्मज, विजेता, यज्ञकर्ता), ययाति (यज्ञकर्ता), अम्बरीष नाभागात्मज (विजयी, रण, मख दान यहीतीन काम थे), शशिबिन्दु (अश्वमेध में स्वपुत्र दान में दिए), गय (यज्ञकर्ता), रन्तिदेव (संकृतपुत्र, भोजन दान, यज्ञ), दुष्यन्त पुत्र भरत (दाँत पकड़ कर सुप्रतीक हाथी वश किया; कई अश्वमेध तथा विश्वजित यज्ञ किए), पृथु (पृथ्वीपुत्री, यज्ञकर्ता), परशुराम (विजयी)।

त्रेतायुग का सम्मिलित वर्णन।

चाक्षुष मन्वन्तर के पीछे मनु वैवस्वत और बुध ने भारत में सूर्य और चन्द्रवंशों के राज प्रायः साथ ही साथ स्थापित किए। ये दोनों ससुर दामाद थे। मनु अयोध्या में जमे, और बुध प्रतिष्ठानपुर (प्रयाग के निकट झूँसी) में। मनु की मुख्यता थी और उन्हीं के नाम पर मन्वन्तर चला। उनके पुत्र सुद्युम्न के तीन पुत्र पूरब में गीर्वा और मोन पर जमे, शर्याति आनर्त में तथा नाभानेदिष्ठ वैशाली में। मनु पुत्र धृष्ट का प्रभाव वाल्हीक देश की ओर कहा जाता है। इक्ष्वाकु मनु के ज्येष्ठ पुत्र थे। ये अयोध्या में राजा हुए। इनके पुत्र शकुनि की अध्यक्षता में बहुतेरे ऐक्ष्वाकु उत्तरापथ (पंजाब की ओर) गए। वशाति और दंडक के नेतृत्व में इसी प्रकार कुछ ऐक्ष्वाकु दक्षिण पथ गए। वहाँ इनका उपनिवेष दंडक के व्यभिचार से असफल हुआ। इक्ष्वाकु के समय में राप्ती नदी के निकट से आकर माधव नामक सरदार ने रहूगण को पुरोहित बना कर मिथिला में राज्य जमाया। उनकी राजधानी जयन्त हुई। दस बारह पुश्तों के पीछे इक्ष्वाकु वंशी निमि और तत्पुत्र मिथि मिथिला में स्थापित हुये। ऐक्ष्वाकु (नं० ४) ककुत्स्थ इन्द्र के मुख्य सहायक और भारी नरेश थे। इन्हीं चन्द्रवंश में नं० ४, पुरूरवस और नं० ५, नहुष महान हुए। . . और वृत्रवध के पीछे कुछ कारणों से इन्द्र को अपना पद

छोड़ना पड़ा, और नहुष इन्द्र हुए। इन्द्र का स्थान भारत के बाहर कहीं समझ पड़ता है। नहुष इन्द्रत्व चला न सके और पदच्युत हुए तथा इन्द्र फिर स्थापित हुए। शायद इसी अवसर पर पुरंजय ने उनकी सहायता की हो। अनन्तर चन्द्रवंशी नहुष पुत्र ययाति (नं० ६) प्रसिद्ध विजयी हुए। इन्होंने राज्य बहुत बढ़ाया। दो रानियों में इनके पाँच पुत्र हुए। जेठे पुत्रों से आज्ञा भङ्ग के कारण अप्रसन्न होकर ययाति ने कनिष्ठ पुत्र पुरु को सम्राट् बनाया, तथा चारों ज्येष्ठ पुत्रों को बाह्य प्रान्त दिए।

सूर्य और चन्द्रवंशों में इस काल कई राज्य स्थापित हो चुके थे। ययाति के पीछे कई पुश्तों तक महत्ता में शायद ये दोनों समान रहे हों। दोनों कुलों में छठी पुश्त से बीसवीं पीढ़ी पर्यन्त प्रायः ढाई सौ वर्ष तक किसी नरेश की महत्ता न हुई, यहाँ तक कि इस काल के कई नाम भी लुप्त हो गए। भारत के प्राचीन शासकों में किसे दबा कर ये दोनों वंश स्थापित हुए सो अकथित है। यह भी नहीं विदित है कि इन प्रायः ढाई सौ वर्षों में सूर्य, चन्द्र वंशों की तुलनात्मक शिथिलता के समय भी उन लोगों ने इन्हें जीतने का कोई प्रयत्न किया। शायद इन दिनों के भूपाल न तो बहुत निकलते हुए थे, न ऐसे निर्बल कि कोई उनके राज्य ही छीन लेता। सुदास नं० ३९ के समय तक वैदिक वर्णन भारी-भारी अनार्य राजाओं का अस्तित्व बतलाता है। पुराणों में भी इस साधारण काल में कुछ अनार्यों के आर्यों से युद्ध कथित हैं, किन्तु वे प्रभावपूर्ण न थे। इस शिथिल काल के पीछे सब से पहले महत्तायुक्त यादव नं० २०, भूपाल शशिबिन्दु हुए। इन्होंने पौरवों को पराजित करके अनेक यज्ञ किए। अनन्तर इनका वंश फिर शिथिल पड़ गया और इनके दामाद सूर्यवंशी (नं० २१) मान्धाता प्रबल पड़े। इन्होंने अनु, द्रुह्यु और तुर्वश वंशियों को पराजित किया तथा पुरुवंश को राज्यच्युत कर दिया। उधर थोड़े ही दिनों में तुर्वश वंशी मरुत्त भी प्रबल पड़ कर सम्राट् हो गए और उनके दत्तक पुत्र दुष्यन्त पौरव प्रतापी होकर अपना राज्य फिर जमाने में यत्नवान हुए। इस स्थिति का मुख्य कारण सूर्यवंशियों का द्रुह्यु वंशियों के पीछे पड़ कर गान्धार तक

प्रभुत्व जमाने का प्रयत्न था। यदि सूर्यवंशी अयोध्या से इतनी दूर जा राज्य स्थापन के फेर में न पड़ कर मध्यदेश में महत्ता रखते, तो पहले पराजित मरुत्त का इतना प्रभाव न बढ़ पाता। फलतः पौरव राज्य अयोध्या की अधीनता से निकल गया, तथा इनका गान्धार में भी प्रभाव चिरस्थायी न रहा। उपर्युक्त प्रयत्न में तल्लीन रह कर मान्धाता के पौत्र त्रसदस्यु ने शायद प्रसन्नतापूर्वक दुष्यन्त को पौरव राज्य फेर दिया अथच गान्धारों को पराजित किया। कुछ ही दिनों में यहाँ अयोध्या का राज्य शेष न रहा होगा और (नं० ३४) दिलीप खट्वांग पर्यन्त अयोध्या ने कोई भारी विजय न पाई। इस काल वृक ने हैहयों के आक्रमण से राज्य रक्षित रक्खा, तथा नाभाग और अम्बरीष ने यश भी प्राप्त किया, किन्तु अयोध्या का प्रभाव विशेषतया बढ़ न सका।

उधर दुष्यन्त पुत्र भरत (नं० २४) ने महत्ता प्राप्त करके ऐन्द्रमहाभिषेक पाया अथच यादव हैहय ने भारी ऐश्वर्य संपादित किया। उनके दबाव से दूसरी यादव शाखा को विदर्भ (बरार) की ओर जाना पड़ा। पौरव नं० ३०, हस्तिन ने पश्चिम की ओर बढ़ कर हस्तिनापुर को राजधानी बनाया। इनके वंशधरों ने थोड़े ही दिनों में विदर्भ (द्विमीढ़ शाखा), उत्तर पांचाल, दक्षिण पांचाल, काशी और कान्यकुब्ज के राज्य स्थापित कर लिये। उधर यादवों में हैहय वंशी बढ़े और दूसरी यादव विदर्भ शाखा भी बढ़ कर मथुरा में स्थापित हुई। राक्षसों का भी प्रभुत्व तिमिध्वज, शम्बर, वर्चिन, भेद और रावण के आधिपत्य में बढ़ा।

सूर्यवंशियों ने भी दक्षिण कोशल, हरिश्चन्द्र तथा सगर वाले तीन नवीन राज्य बनाये। मध्यभारत में उस काल निषधराज वीरसेनात्मज नल (नं० ३५) एक प्रतापी राजा हुए। इधर हरिश्चन्द्र और रोहिताश्व ने अच्छे नाम पैदा किये। दक्षिण कोशल नरेश ऋतुपर्ण नल के साथी थे। कान्यकुब्ज में विश्वामित्र राज्य छोड़ ब्रह्मर्षि हो गए। इनका वशिष्ठ से जो वैमनस्य हुआ, उसका प्रभाव हरिश्चन्द्र, सुदास, संवर्ण, दक्षिण कोशल तथा उत्तर कोशल पर पड़ा। मध्यभारत में भार्गव वंश भी विशेष महत्ता युक्त हुआ। हैहयों का राज्यवर्द्धनवाला

प्रयत्न इस काल कथनीय है। उन्होंने इसी के कारण काशीराज, सगर, कान्यकुब्ज नरेश, यादवों तथा भार्गवों से शत्रुता पाली और अन्त में उनका वंश राज्य हीन हो गया। इसी झगड़े में वैशाल तथा कान्यकुब्ज राज्य भी लुप्त हो गए। इस काल की तीन महती घटनायें हैहय पराभव, दिवोदास, और सुदास के विजय तथा राम रावण युद्ध हैं। हैहय वंश का पतन परशुधर भार्गव ने किया और अन्त प्रतर्दन तथा सगर द्वारा भरद्वाज एवं अग्निऔर्व भार्गव की सहायता से हुआ। दिवोदास ने दशरथ की सहायता से तिमिध्वज शम्बर को मारा तथा सुदास ने दस राजाओं के युद्ध में अनार्य राजा भेद एवं वर्चिन को पस्त कर दिया। पौरवों से भिड़ने में सुदास का प्रभाव गिरा। राम ने रावण को मार कर भारत में तत्कालीन अन्तिम अनार्य बल को नष्ट किया। अतएव हम देखते हैं कि परशुराम, प्रतर्दन, सगर, भरद्वाज और अग्नि और्व के प्रयत्नों से पराये अधिकारों को न मानने वाला हैहय वंश गिरा तथा दशरथ, दिवोदास और सुदास के पुरुषार्थ से शम्बर, वर्चिन, भेदादिक अनार्य राजे पस्त हुए। इनमें से वर्चिन की बहुतेरे आर्य नरेश भी सहायता करते थे। राम ने रावण को मार कर अन्तिम और परमोत्कृष्ट अनार्य बल का क्षय किया। वशिष्ठ ने धर्म की आड़ में म्लेच्छों द्वारा अपने राजकीय बल की स्थिरता रख कर कान्यकुब्ज नरेश विश्वामित्र को हराया, किन्तु इन्होंने राज्य छोड़ एवं ऋषि होकर वशिष्ठ के म्लेच्छ दल का ध्वंसन किया। अनन्तर तालजंघ हैहय ने म्लेच्छों द्वारा कई उत्तरी भूपालोंको गिरा कर अपना बल बढ़ाया, किन्तु प्रतर्दन और सगर के पुरुषार्थ से हैहय और म्लेच्छ दोनों मिट गए। इस प्रयत्न में और्व तथा भरद्वाज ने भी योग्य सहायता दी। इस प्रकार तत्कालीन भारत में म्लेच्छ बलवृद्धि विश्वामित्र, और्व तथा भरद्वाज के प्रयत्नों से रुकी एवं त्रिशंकु, प्रतर्दन, और सगर द्वारा नष्ट हुई। अब आगे के अध्याय में त्रेतायुग के मुख्य उन्नायक श्री रामचन्द्रजी का विवरण किया जाता है। इस काल की धार्मिक और सामाजिक स्थिति हम वैदिक विवरण में छठवें से आठवें अध्यायों तक दिखला आये हैं। इन विषयों का प्रचुर वर्णन ऋग्वेद तथा इतर वैदिक साहित्य में मिलता है। इसे बहुतेरे

यति यावन; ब्रह्म ७३, हरिवंश।

सगर, ब्रह्म ८७, पद्म सृष्टि (भगीरथ), पद्मस्वर्ग, १५, विष्णु भाग चौथा। शिवपुराणीय ६१, भागवत नवाँ भाग, ८, आग्नेय पहला भाग ६८।

अहल्या, ब्रह्म ८७, पद्म सृष्टि ५१, आग्नेय पहला भाग। ८०; रामायण।

शुक्र ब्रह्म ९५ पद्म सृष्ठि १३ (मातावध, जयन्ती विवाह, मार्कण्ड भार्गव), देवी भागवत चौथा भाग ११, १२।

पुरूरवस महाभारत ब्रह्म १०१, १५१, पद्म सृष्टि ८, १२, विष्णु भाग चौथा ७, महाभारत। अगस्त्य लोपामुद्रा, महाभारत, ब्रह्म ११०, पद्म सृष्टि १९, २२ (समुद्र पान), वराह ६९, ७०, वातपि दानव भस्म, स्कन्द में तथा काशी में; अगस्त्य दुर्दम के समय में। दुर्दम हैहय वंशी नं० ३१ थे। उधर अलर्क के पितामह प्रतर्दन हैहय वीतिहव्य नं० ३५ को जीतते हैं. सो अलर्क के समकालीन अगस्त्य हैहय नं० २९ के भी समकालीन बैठते हैं। इस प्रकार से अगस्त्य का आठ हैहय पीढ़ियों तक चलना निकलता है। अगस्त्य राम और अलर्क के समकालीन रामायण और हरिवंश के अनुसार थे ही, सो यदि आठ पीढ़ियों तक चलना इनका अनुचित हो, तो स्कन्द पुराण में लिखित दुर्दम की समकालीनता अग्राह्य होगी। स्कन्द पुराण का कथन बहुत मान्य है भी नहीं।

काशी विष्णु चौथा भाग ८ (धन्वन्तरि), मार्कण्डेय, ३८ (अलर्क) हरिवंश में लोपामुद्रा द्वारा अलर्क को वरदान। स्कन्द (प्रतर्दन, दिवोदास), ब्रह्म, १२२।

आपस्तम्ब, ब्रह्म १३०।

पांचाल—महाभारत, हरिवंश, आग्नेय, पहला भाग। ६३ (मुद्गल) ब्रह्म १३६।

बृहस्पति...पद्म सृष्टि १४, नास्तिक मत।

ब्रह्म पुराण में (नृसिंह), १४९ (अजीगर्त), १५० (चन्द्र तथा तारा), १५२ (अष्टावक्र), २१२।

२१२ में वराह नृसिंह वामन।

दत्तात्रेय, जमदग्नि, राम, कृष्ण कल्कि ।

पद्म पाताल में, विभीषण मोचन १००, पद्योत्तर में ३ (जालन्धर), १५,(वृन्दा), पद्मसृष्टि ४ पद्योत्तर २६० तथा भाग आठवां। ७ एवं महाभारत में समुद्र मन्थन, सृष्टि खण्ड ६,४२, हिरण्यकशिपु, पद्योत्तर में २२८, (मत्स्य), २५९, (कूर्म), २६४, (वराह), २६७, (वामन), २६८, परशुराम ।

नृसिंह, लिंग ९६, स्कन्द, भागवत सातवां ९ ।

ध्रुव, विष्णु ११, पद्म यस्वर्ग...१२ लिंग । ६२, भागवत चौथा भाग ८ ।

वामन, पद्म, सृष्टि, २५, भागवत, ८ वां । १८, आग्नेय पहला खंड, ६०, स्कंद (वामन) ।

वेन पृथु, पद्म, सृष्टि, ८ पद्म भूमि, २६, २९, ३६, (वेन द्वारा जैन धर्म), विष्णु १३, ब्रह्म १४१ ।

शिववायवीय...५३,५७, भागवत चौथा भाग १३,१५,२४ ।

वराह, पद्म, सृष्टि, ७३, भागवत तीसरा खंड १३, स्कन्द १० खंड १५, २० इसमें वराह का दांत टूटना भी लिखित है ।

प्रह्लाद...पद्म, सृष्टि, ७४, (सुरत्व प्राप्ति), विष्णु, १७, २१, (वंश), शिव ज्ञान संहिता, ५९ देवी भागवत चौथा भाग, ९ ।

रावण, पद्म, यस्वर्ग, ११ शिवज्ञान खंड ५५ ।

दशावतार, वराह ४, स्कन्द ।

व्यास, महाभारत, स्कन्द, सनत्कुमार, संहिता, १८, २१, शंकर सहिता, वेद विभाग, भागवत १२ वां ६, ७, जनमेजय के यहां वेद विभाग, अथर्ववेद ।

शिवि, पद्म यस्वर्ग, १८ महाभारत ।

उशीनर...पद्म यस्वर्ग, १८ ।

दिवोदास, पद्म यस्वर्ग २३ ।

राधा । पद्म, पाताल, ७०, ८३, देवी भागवत नवां भाग २, १३, ५०, ब्रह्मवैवर्त, १२४ ।

सौभरि ऋषि, पद्योत्तर २३३ ।

कुशध्वज वंश, विष्णु चौथा भाग ५ ।

तुर्वश...विष्णु चौथा भाग, १६।

द्रुह्यु. विष्णु चौथा १७।

अनु...विष्णु चौथा १८, कर्ण भी, शिवि वायवीय, ५६।

जह्नु, विष्णु चौथा २०।

खांडिक्य, विष्णु पांचवां ६ (केशिध्वज को ज्ञान)।

नल, शिव ज्ञान खंड ६२।

त्रमूर्ति...शिव वायवीय ११, वराह १०।

पाशुपतव्रत; शिव वायवीय २९।

रन्तिदेव, स्कन्द में।

सुदर्शन, देवी भागवत तीसरा भाग १४, २५, (युधाजित संबंधी कथन)।

श्वेत द्वीप, देवी भागवत छठवां २८, म० भा० शान्तिपर्व।

कन्धर, मार्कण्डेय २।

देश भक्ति, देवी भागवत आठवां ११, विष्णु पुराण तथा भागवत में भी।

वैशाली का मनुवंश-मार्कण्डेय ११२ (प्रपध्र की शूद्रता), ११३,३८ (प्रपध्र शूद्र), नाभाग, प्रमति भलन्दन, वत्सप्री, खनित्र, विविंश, खनीनेत्र, करन्धम, अवीक्षित, वैशालिनी हरण, अवीक्षित बन्दीत्व, उद्धार, वैराग्य वैशालिनी का दानव से अवीक्षित द्वारा उद्धार, वैशालिनी से विवाह, मरुत्त, नरिष्यन्त, सुमन का स्वयंवर, नरिष्यन्तवध, वपुष्मत, दम वैशाली, गरुड़।)

भविष्य पुराण शतानीक से कहा गया। इसमें सुदर्शन चक्र वर्णन है। संवर्ण, प्रद्योत, यूनानी, तर्कीश, इलीश, म्लेच्छागमन, कारण, अग्निवश विस्तार, विक्रमादित्य, पद्मावती, हरिदास, भर्तृहरि, बोपदेव, आल्हा ऊदल, चन्द कवि तथा शिवाजी के भी कथन इस पुराण में हैं।

ऊपर जहां-जहां महाभारत और हरिवंश के कथन आये हैं, उनके अतिरिक्त भी इन दोनों ग्रंथों में प्रायः सभी कथायें आगई हैं। महाभारत के आदि, सभा, वन, उद्योग और शान्ति पर्वों में मुख्य कथायें भरी पड़ी हैं।

तेरहवां अध्याय

भगवान् रामचन्द्र ।

तेरहवीं शताब्दी (बी० सी०)

इस अध्याय की कथा मुख्यतया वाल्मीकीय रामायण पर आधारित है और कहीं-कहीं महाभारत वन पर्व, विष्णु पुराण, हरिवंश और श्रीभागवत का थोड़ा सा आधार है। इनमें इतर आधार बारहवें अध्याय के अन्त में दिये हुए हैं। महाराजा दशरथ के राजत्व-काल में भारत की क्या दशा थी उसका दिग्दर्शन गत अध्यायों में कराया जा चुका है। इन महाराज के वृद्धप्राय हो जाने तक भी कोई पुत्र न हुआ। इनकी रानी कौशल्या से शान्ता नाम्नी एक कन्या मात्र उत्पन्न हुई थी। उसे भी इनके मित्र राजा रोमपाद ने दत्तक ले लिया था। ये महाराजा अंग देश के स्वामी थे। जब बहुत काल पर्यन्त दशरथ के कोई पुत्र नहीं हुआ तब उन्होंने पुरोहित वशिष्ठ की सम्मति से अपने दामाद ऋष्य शृंग को बुलाकर पुत्रेष्टि यज्ञ कराया। थोड़े दिनों में इनकी तीनों रानियों से चार पुत्ररत्न हुए। बड़ी रानी कौशल्या के आत्मज भगवान् रामचन्द्र दशरथ के सब से बड़े राजकुमार थे। इनसे छोटे कैकेयी-पुत्र भरत हुए, तथा उनसे भी छोटे सुमित्रा के यमज पुत्र लक्ष्मण और शत्रुघ्न। इस प्रकार चार पुत्र पाकर महाराजा दशरथ ने अपने को धन्य माना। उचित समय पर इन राजकुमारों को शास्त्र और शस्त्र का अभ्यास कराया गया।

जब रामचन्द्र की अवस्था सोलह वर्ष के लगभग हुई, तब ऋषिवर विश्वामित्र ने महाराजा दशरथ के पास आकर निवेदन किया, "राक्षस लोग मुझे यज्ञ नहीं करने देते, सो कृपा करके कुछ दिनों के लिये आप रामचन्द्र को दीजिये तो इनकी रक्षा से मेरा यज्ञ पूर्ण हो जावे।" पहले तो बालकों का अल्पवय विचार कर महाराजा दशरथ को इस निवेदन में बड़ा गड़बड़ देख पड़ा, किन्तु पीछे से उन्होंने वशिष्ठ के समझाने

तुर्वश···विष्णु चौथा भाग, १६।

द्रुह्यु, विष्णु चौथा १७।

अनु···विष्णु चौथा १८, कर्ण भी, शिवि वायवीय, ५६।

जह्नु, विष्णु चौथा २०।

खांडिक्य, विष्णु पांचवां ६ (केशिध्वज को ज्ञान)।

नल, शिव ज्ञान खंड ६२।

त्रिमूर्ति···शिव वायवीय ११, वराह १०।

पाशुपतव्रत; शिव वायवीय २९।

रन्तिदेव, स्कन्द में।

सुदर्शन, देवी भागवत तीसरा भाग १४, २५, (युधाजित संघर्ष कथन)।

श्वेत द्वीप, देवी भागवत छठवां २८, म० भा० शान्तिपर्व।

कन्धर, मार्कण्डेय ७।

देश भक्ति, देवी भागवत आठवां ११, विष्णु पुराण तथा भागवत में भी।

वैशाली का मनुवंश-मार्कण्डेय ११२ (प्रपध्र को शूद्रता), ११३,३८ (प्रपध्र शूद्र), नाभाग, प्रमति भलन्दन, वत्सप्री, खनित्र, विविंश, खनीनेत्र, करन्धम, अवीक्षित, वैशालिनी हरण, अवीक्षित बन्दीत्व, उद्धार, वैराग्य वैशालिनी का दानव से अवीक्षित द्वारा उद्धार, वैशालिनी से विवाह, मरुत्त, नरिष्यन्त, सुमन का स्वयंवर, नरिष्यन्तवध, वपुष्मान, दम वैशाली, गरुड़।)

भविष्य पुराण शतानीक से कहा गया। इसमें सुदर्शन तक वर्णन है। संवर्ण, प्रद्योत, यूनानी, तर्लीश, इलीश, म्लेच्छागमन, कारण, अग्निवंश विस्तार, विक्रमादित्य, पद्मावती, हरिदास, भर्तृहरि, जयदेव, आल्हा ऊदल, चन्द कवि तथा शिवाजी के भी कथन इस पुराण में हैं।

ऊपर जहां-जहां महाभारत और हरिवंश के कथन आये हैं, उनके अतिरिक्त भी इन दोनों ग्रंथों में प्रायः सभी कथायें आयी हैं। महाभारत के आदि, सभा, वन, उद्योग और शान्ति पर्वों में प्रचुर कथायें भरी पड़ी हैं।

तेरहवां अध्याय

भगवान् रामचन्द्र ।

तेरहवीं शताब्दी (बी० सी०)

इस अध्याय की कथा मुख्यतया वाल्मीकीय रामायण पर आधारित है और कहीं-कहीं महाभारत वन पर्व, विष्णु पुराण, हरिवंश और श्रीभागवत का थोड़ा सा आधार है। इनमे इतर आधार बारहवें अध्याय के अन्त में दिये हुए हैं। महाराजा दशरथ के राजत्व-काल में भारत की क्या दशा थी उसका दिग्दर्शन गत अध्यायों में कराया जा चुका है। इन महाराज के वृद्धप्राय हो जाने तक भी कोई पुत्र न हुआ। इनकी रानी कौशल्या से शान्ता नाम्नी एक कन्या मात्र उत्पन्न हुई थी। उसे भी इनके मित्र राजा रोमपाद ने दत्तक ले लिया था। ये महाराजा अंग देश के स्वामी थे। जब बहुत काल पर्यन्त दशरथ के कोई पुत्र नहीं हुआ तब उन्होंने पुरोहित वशिष्ठ की सम्मति से अपने दामाद ऋष्य शृंग को बुलाकर पुत्रेष्टि यज्ञ कराया। थोड़े दिनों में इनकी तीनों रानियों से चार पुत्ररत्न हुए। बड़ी रानी कौशल्या के आत्मज भगवान् रामचन्द्र दशरथ के सब से बड़े राजकुमार थे। इनसे छोटे कैकेयी-पुत्र भरत हुए, तथा उनसे भी छोटे सुमित्रा के यमज पुत्र लक्ष्मण और शत्रुघ्न। इस प्रकार चार पुत्र पाकर महाराजा दशरथ ने अपने को धन्य माना। उचित समय पर इन राजकुमारों को शास्त्र और शस्त्र का अभ्यास कराया गया।

जब रामचन्द्र की अवस्था सोलह वर्ष के लगभग हुई, तब ऋषिवर विश्वामित्र ने महाराजा दशरथ के पास आकर निवेदन किया, "राक्षस लोग मुझे यज्ञ नहीं करने देते, सो कृपा करके कुछ दिनों के लिये आप रामचन्द्र को दीजिये तो इनकी रक्षा से मेरा यज्ञ पूर्ण हो जावे।" पहले तो बालकों का अल्पवय विचार कर महाराजा दशरथ को इस निवेदन में बड़ा गड़बड़ देख पड़ा, किन्तु पीछे से उन्होंने वशिष्ठ के समझाने

पर राम और लक्ष्मण को महर्षि विश्वामित्र के साथ कर दिया। जान पड़ता है कि राजकुमारों के साथ कुछ सेना भी गई होगी, यद्यपि इसका वर्णन ग्रन्थों में नहीं है। विश्वामित्र ने मार्ग में दोनों राजकुमारों को पूरी शस्त्र-विद्या सिखाई। ऋषिवर को देखते ही कामवन में ताड़का ने इन पर आक्रमण किया किन्तु अपकारिणी होने पर भी स्त्री समझ कर रामचन्द्र उस पर प्रहार करने में आनाकानी करते रहे। अन्त में जब विश्वामित्र के कहने से राम ने जाना कि यह बड़ी ही प्रबला थी और यह भी समझ पड़ा कि महर्षि पर प्रहार करने ही को थी, तब इन्होंने विवश होकर युद्ध में उसका वध कर डाला। अनन्तर ऋषि के साथ राम उनके सिद्धाश्रम में पहुँचे। दूसरे दिन राम की इच्छानुसार महर्षि विश्वामित्र यज्ञ करने लगे। यह देखकर मारीच और सुबाहु सेना समेत यज्ञ-ध्वंसनार्थ चढ़ दौड़े। रामचन्द्र ने लक्ष्मण को साथ लेकर उनका सामना किया। घोर संग्राम हुआ, जिसमें राक्षसी दल को भारी हानि पहुँची और सुबाहु मारा गया। यह देख मारीच हत-शेष राक्षसों के साथ उत्तरीय भारत को छोड़ दण्डकारण्य में जा बसा। इस प्रकार बाल्यावस्था में ही भगवान् रामचन्द्र ने उत्तरीय भारत को राक्षसों से छुटकारा दिलाकर भारी यश प्राप्त किया। अब विश्वामित्र का यज्ञ निर्विघ्न समाप्त होगया।

इस काल मिथिला देश के राजा सीरध्वज उपनाम जनक ने यह प्रण किया था कि जो पुरुष जनकपुर का भारी शैव धनुष चढ़ाकर बाण युक्त कर देगा, उसी के साथ राजकन्या सीता का विवाह होगा। बहुत से राजकुमार तथा राजा लोग धनुष चढ़ाने मिथिला गये थे, किन्तु सब को विफल मनोरथ हो अपनी कीर्ति गवाँकर लौटना पड़ा था। इन हारे हुए लोगों में रावण भी था। उससे भी पिनाक न चढ़ सका था। धनुष चढ़ाने आने के लिये अयोध्या भी निमन्त्रण जा चुका था। रामचन्द्र के शौर्य से विश्वामित्र परम प्रसन्न हुए और उनको समझ पड़ा कि यह धनुष चढ़ा सकेंगे। इसलिये यज्ञ पूर्ण होने के पीछे ये राजकुमारों के साथ मिथिला पहुँचे। महाराजा सीरध्वज ने उनका यथायोग्य सत्कार किया। उचित वार्तालाप के पीछे विश्वामित्र की आज्ञा से भगवान रामचन्द्र धनुष चढ़ाने पर सन्नद्ध हुए। इन्होंने

पृथ्वी-मण्डलस्थ राजकुल के सारे पराक्रम को दमन करनेवाले भारी शैव पिनाक को सहज ही में चढ़ा दिया और उसे ज्यायुक्त करके उस पर इस ज़ोर से बाण ताना कि वज्रवत कठोर पिनाक एक तिनके की भाँति टूट गया। मिथिलापुर में सैकड़ों लोगों के धनुष चढ़ाने में विफल मनोरथ होने से सीता के ब्याह विषयक भाँति-भाँति के संकल्प-विकल्प उठ रहे थे। रामचन्द्र ने पल भर में इन शंकाओं को निर्मूल कर दिया। अब जनकपुर में बधाई बजने लगी। महाराजा जनक के विश्वविमोहिनी रूपराशि सीता के अतिरिक्त एक और कन्यारत्न थी, तथा इनके भाई कुशध्वज के दो कन्याएँ थीं। इसलिये महाराजा सीरध्वज ने महाराजा दशरथ को पत्र भेज कर उनके चारों राजकुमारों का अपनी कन्याओं और भतीजियों के साथ विवाह करने का प्रस्ताव किया। महाराजा दशरथ ने इस प्रस्ताव को सहर्ष स्वीकार किया और इन चारों भाइयों के विवाह यथासमय जनकपुर में हो गये। राम को सीता, भरत को माण्डवी, लक्ष्मण को उर्मिला और शत्रुघ्न को श्रुतकीर्ति मिलीं।

चारों पुत्रों का विवाह करके महाराजा दशरथ जिस काल अयोध्या को लौट रहे थे, तब मार्ग में उनकी परशुराम से भेंट हुई। ये हैहयवंश-विध्वंसकारी ही परशुराम थे। वृद्ध परशुराम ने शिवशिष्य होने के कारण रामचन्द्र द्वारा शैव धनुष तोड़ा जाना सुनकर भारी क्रोध किया और वे युद्धार्थ संनद्ध भी हुये, किन्तु रामचन्द्र की विनय और पुरुषार्थ से प्रसन्न होकर तथा अपने पिता के मामा विश्वामित्र का दबाव मानकर पीछे से अपना परमोत्कृष्ट धनुष उनको देकर वन चले गये। परशुराम के हार मानने से रामचन्द्र की ख्याति संसार में और भी अधिक हुई। अब महाराजा दशरथ पुत्र-वधुओं तथा पुत्रों समेत अयोध्या पहुँचे और फिर से पूर्ववत राज्य करने लगे। कुछ दिनों के पीछे सीता समेत रामचन्द्र मिथिलापुरी गये और कई साल वहीं रहे।

जब राजकुमार श्रीराम अयोध्या को पधारे, तब थोड़े दिनों के लिये शत्रुघ्न को साथ लेकर राजकुमार भरत अपने ननिहाल गये। इसी बीच में महाराजा दशरथ ने रामचन्द्र को युवराज पद देने का विचार

किया। इस पर उनकी प्रियतमा रानी कैकेयी को उसकी दासी मन्थरा ने समझाया कि किसी प्रकार अपने पुत्र के लिये युवराज पद प्राप्त करो। पहले तो कैकेयी ने इस प्रस्ताव को धर्मविरुद्ध कह कर मन्थरा का बहुत भर्त्सन किया, किन्तु पीछे से उसके समझाने में आकर उसी के मन्त्रणानुसार चलना स्वीकार कर लिया। जब कैकेयी का विवाह दशरथ से हुआ था, तब यह निश्चित हो गया था कि दशरथ से उत्पन्न कैकेयी का ही पुत्र उत्तराधिकारी होगा। राम का प्रभाव बहुत बढ़ जाने से पुत्र प्रेमवश दशरथ ने इस प्रतिज्ञा का मान उचित न समझा।

किसी समय राजा दशरथ ने कैकेयी को दो वर देने की प्रतिज्ञा की भी थी और रानी ने उन्हें उस काल न माँगकर भविष्य के लिये थाती स्वरूप रख छोड़ा था। मन्थरा ने उन्हीं का स्मरण दिलाकर कैकेयी से कहा कि अपने पुत्र के लिये राज्य तथा राम के लिये १४ वर्षों का वनवास माँग लिया जाय। अब कैकेयी कोपभवन में चली गई। राजा ने वहाँ जाकर उसे मनाना चाहा तो उसने अपने दोनों वरदान माँग कर उनके हृदय में काँटा सा चुभो दिया। महाराजा दशरथ सब लड़कों का उचित प्यार करते थे किन्तु राम उनके जीवनाधार ही थे। बिना राम को देखे उनको एक घड़ी चैन नहीं पड़ती थी। इसलिये इनके वनवास का वरदान सुनकर वे अत्यन्त विकल हुए। सत्य से भ्रष्ट होना उनके लिये त्रिकाल में भी सभव न था, किन्तु राम को वन भेजना उन्हें प्राणत्याग से भी अधिक दुःखदायी था। इसलिये उन्हें सारी रात विलाप करते ही बीती। प्रातःकाल जब लोग राम का अभिषेक होना समझ रहे थे, तभी इस दुर्घटना के समाचार सारी अयोध्या में फैल गये। रामचन्द्र ने अपने पिता की महा दुरवस्था देखकर उन्हें बहुत समझाया और १४ वर्ष के लिये वन जाने में अपनी पूरी प्रसन्नता प्रकट की, किन्तु राजा का दुःख किसी प्रकार कम न हुआ। पिता की मानसिक आज्ञा शिरोधार्य करके राम सुखपूर्वक वन जाने की तय्यारी करने लगे। इनकी प्रिया सीता और वात्सल्य-भाजन अनुज लक्ष्मण ने छोड़ना किसी प्रकार पसन्द न किया और विवश होकर इन्हें उनको भी साथ लेना पड़ा।

रामचन्द्र ने समझा होगा कि हमारे वन चले जाने पर राजा किसी प्रकार धैर्य धारण करेंहीगे। इसलिये माता पिता को कलपते छोड़ तथा रोती हुई अयोध्या से मुख मोड़ और केवल धर्म को शिरोधार्य मान कर्त्तव्यपालनार्थ भगवान् रामचन्द्र सीता लक्ष्मण के सहित उसी दिन जंगल को चले ही गये। पितृभक्ति, धर्मपालन और स्वार्थत्याग का इन्होंने इस अवसर पर जो अपूर्व उदाहरण दिखलाया, वह आज भी हतभाग्य भारत का सिर ऊँचा करता है और चरित्र-शोधनार्थ हमारे लिये एक परम पूज्य आदर्श स्वरूप प्रस्तुत है। बहुत से अयोध्यावासी लोग राजभक्ति दिखलाते हुए रामचन्द्र के पीछे लगे। उन्होंने सोचा कि बिना राम की अयोध्या नरक से भी निकृष्टतर है और जहाँ राम हैं वहीं शत अयोध्याओं का सुख है। रामचन्द्र के बहुत समझाने पर भी जब वे लोग न लौटे तब उनका दुःख दूर करने के विचार से रात में छिप कर ये जंगल को चले गये। प्रातःकाल राजकुमार को न पाकर ये लोग विवश होकर अयोध्या लौट आये। भगवान् ने पहली रात तमसा नदी के पास निवास करके दूसरी गोमती-तट पर बिताई। आप यथा समय गंगातट पर शृंगबेरपुर पहुँचे। वहाँ गुहनामक निषाद-पति ने बहुत सेवा की, यहाँ तक कि उसके आचरण से प्रसन्न होकर भगवान् ने उसे मित्र माना। गंगापार होकर श्रीरामचन्द्र प्रयाग में भरद्वाज ऋषि के आश्रम को पधारे। वहाँ भरद्वाज ने भगवान् का अच्छा आतिथ्य किया। अनन्तर दोनों राजकुमार चित्रकूट पहुँचे और वहाँ कई मास विराजमान रहे।

उधर रामचन्द्र की वनयात्रा से महाराजा दशरथ का धैर्य बिलकुल छूट गया और वे बालक की भाँति विलाप करने लगे। महारानी कौशल्या, सुमित्रा तथा सब मन्त्रियों के समझाने पर भी इनको धैर्य न आया। कहते ही हैं कि बाप सा वत्सल, स्त्री सा सखा और भाई सा सहायक कोई नहीं। सब लोगों के समझाते हुए भी महाराजा दशरथ को अपने प्रियतम पुत्र के क्लेशों का स्मरण कर कर के मन शान्त करने का कोई उपाय न देख पड़ा। जब रामचन्द्र के पास से पलट कर राजसचिव सुमन्त ने विनती की कि सब प्रकार से समझाने बुझाने पर भी दोनों राजकुमारों और सीता में से कोई न लौटा, तब

महाराजा दशरथ की अंतिम आशा भी टूट गई। अब राजा का चित्त शोक से ऐसा संतप्त हुआ कि दो ही चार दिनों में उनका शरीरपात ही हो गया। राजा दशरथ का स्वर्गवास रामचन्द्र के वनगमन के छठवें दिन हुआ। राज-मन्त्रियों ने यह आकस्मिक दुर्घटना देख राजा का शव तेल में डालकर सुरक्षित रक्खा और शीघ्रगामी दूत द्वारा भरत को ननिहाल से बुला भेजा। भरत ने अति शीघ्र अयोध्या आकर सारे समाचार सुने और सब विपत्तियों का मूल कारण अपने ही को समझ कर वे दीन भाव से विलाप करने लगे। सब के समझाने बुझाने और राज-माता कौशल्या की अनुमति पाने पर भी भरत ने १४ वर्ष भी राज्य करना पसन्द न किया और विधिपूर्वक पिता की अन्त्येष्टि क्रिया करके वे रामचन्द्र को वापस बुलाने के लिये राज-परिवार सहित चित्रकूट को प्रस्थित हुए। संसार में जब तक सद्गुणों का मान रहेगा तब तक महात्मा भरत के इस भारी स्वार्थ-त्याग के लिये उनका नाम इतिहास के पृष्ठों पर स्वर्णाक्षरों से अंकित रहेगा। मार्ग में निषाद-पति से सेवित होने और प्रयाग में भरद्वाज ऋषि का आतिथ्य स्वीकार करते हुए राजकुमार भरत यथासमय चित्रकूट में पहुंच कर ज्येष्ठ भ्राता राम की सेवा में उपस्थित हुए।

पिता का अशुभ समाचार सुनके रामचन्द्र ने बड़ा शोक मनाया और विधिपूर्वक शुद्ध होकर वे भरत को समझाने लगे। भरत ने राम-चन्द्र को अयोध्या चलने को बहुत प्रकार से विनती की। अन्त में भगवान् ने आज्ञा दी कि जिस पिता ने पुत्र को त्याग कर सत्य रक्खा और शरीर छोड़ पुत्र-प्रेम का असीम उदाहरण दिखलाया, उस पिता तथा राजा का वचन मेटना सुगम नहीं है। फिर भी मेरे चित्त में इन सब बातों से बढ़ कर तुम्हारा संकोच है। अतः तुम्हीं सब बातों पर विचार करके कहो कि क्या कर्त्तव्य है? क्या राजाज्ञा की अपेल महिमा का उल्लंघन करके किसी सुयशी पुरुष को राज्यसुखार्थ अथवा वन दुःख-विमोचनार्थ विचार तक करना चाहिये और क्या तुम्हीं को राजाज्ञा होते हुए राज्यभार से बचने का प्रयत्न करना उचित है? इन बातों को सुन कर महात्मा भरत किंकर्तव्यविमूढ़ हो गये, किन्तु कर्तव्य का पूरा ध्यान रखते हुए भी राज्य-ग्रहण की ग्लानि ने उन्हें ऐसा घेरा

कि इस बात के लिये वे किसी भाँति प्रस्तुत न हुए। उन्होंने सोचा कि पिता ने मुझे राज्याधिकार अवश्य दिया है किन्तु मैं उसे ग्रहण न करके भी उनकी आज्ञा भंग करने का दोषी नहीं हो सकता, क्योंकि अपना भी राज्य उचित उत्तराधिकारी को सौंप देने का मुझे सदा अधिकार है। उनका ऐसा विचार समझ और उन्हें किसी प्रकार राज्य ग्रहण न करते देख कर रामचन्द्र ने उनकी इच्छानुसार सिंहासनासीन करने के लिए अपनी पादुकायें उन्हें दीं। उन पादुकाओं को सिंहासन पर रखकर भरत ने प्रतिनिधि के समान अयोध्या से दो मील नन्दिग्राम में रह कर १४ वर्ष राज्य चलाने का संकल्प किया और अपना व्रत निभा दिया।

इधर भगवान रामचन्द्र का असली हाल समझ कर हजारों मनुष्य चित्रकूट में इनके दर्शनार्थ आने लगे। इस कलकान से बचने के लिये रामचन्द्र ने दूर देश का प्रस्थान किया। अब ये तीनों दण्डकारण्य में फिरते हुए पञ्चवटी के निकट पहुँचे। वहाँ इन्होंने जनस्थान में अगस्त्य ऋषि के दर्शन किये और उनकी सम्मति के अनुसार पंचवटी में गोदावरी के एक रम्य तट पर पर्णकुटी बनाकर ये निवास करने लगे। कहते हैं कि उस स्थान पर गोदावरी नदी धनुषाकार बहती थी। अगस्त्य ने सब से प्रथम विन्ध्य और महाकान्तार वन को पार करके दक्षिण में जन स्थान पर पहला आर्य उपनिवेष बसाया था। वैदर्भी लोपामुद्रा से आपका विवाह हुआ था। दोनों वेदर्षि थे। अगस्त्य ने इल्वल राक्षस को हराकर उपनिवेश बसाया था। वेद में आप वीर कहे गये हैं। अरब समुद्र के लुटेरों को जलयुद्ध में हराकर आपने व्यापार अकटक किया था। लोपामुद्रा द्वारा राम के मित्र काशी नरेश अलर्क को आशीर्वाद दिया जाना लिखा है। भगवान् रामचन्द्र ने चित्रकूट में लगभग दस मास और पञ्चवटी में प्रायः १२ वर्ष निवास किया। इसी निवास-स्थान के निकट आपने एक बार हड्डियों का ढेर देख उसे टीला समझ कर पूछा कि यह क्या है? इस पर ऋषियों ने उत्तर दिया कि ये राक्षसों द्वारा खाये हुये ब्राह्मणों की हड्डियां हैं। १२ वर्ष तक ऋषियों के साथ ज्ञान-वैराग्य की वार्त्ता करते हुए भी भगवान् को यह भारी उपद्रव देख इतना क्रोध आया कि आपने उसी स्थान पर दक्षिण

महाराजा दशरथ की अंतिम आशा भी टूट गई। अब राजा का चित्त शोक से ऐसा संतप्त हुआ कि दो ही चार दिनों में उनका शरीरपात ही हो गया। राजा दशरथ का स्वर्गवास रामचन्द्र के वनगमन के छठवें दिन हुआ। राज-मन्त्रियों ने यह आकस्मिक दुर्घटना देख राजा का शव तेल में डालकर सुरक्षित रक्खा और शीघ्रगामी दूत द्वारा भरत को ननिहाल से बुला भेजा। भरत ने अति शीघ्र अयोध्या आकर सारे समाचार सुने और सब विपत्तियों का मूल कारण अपने ही को समझ कर वे दीन भाव से विलाप करने लगे। सब के समझाने बुझाने और राज-माता कौशल्या की अनुमति पाने पर भी भरत ने १४ वर्ष भी राज्य करना पसन्द न किया और विधिपूर्वक पिता की अन्त्येष्टि क्रिया करके वे रामचन्द्र को वापस बुलाने के लिये राज-परिवार सहित चित्रकूट को प्रस्थित हुए। संसार में जब तक सद्गुणों का मान रहेगा तब तक महात्मा भरत के इस भारी स्वार्थ-त्याग के लिये उनका नाम इतिहास के पृष्ठों पर स्वर्णाक्षरों से अंकित रहेगा। मार्ग में निषाद-पति से सेवित होते और प्रयाग में भरद्वाज ऋषि का आतिथ्य स्वीकार करते हुए राजकुमार भरत यथासमय चित्रकूट में पहुंच कर ज्येष्ठ भ्राता राम की सेवा में उपस्थित हुए।

पिता का अशुभ समाचार सुनके रामचन्द्र ने बड़ा शोक मनाया और विधिपूर्वक शुद्ध होकर वे भरत को समझाने लगे। भरत ने रामचन्द्र को अयोध्या चलने की बहुत प्रकार से विनती की। अन्त में भगवान् ने आज्ञा दी कि जिस पिता ने पुत्र का त्याग कर सत्य रक्खा और शरीर छोड़ पुत्र-प्रेम का असीम उदाहरण दिखलाया, उस पिता तथा राजा का वचन मेटना सुगम नहीं है। फिर भी मेरे चित्त में इन सब बातों से बढ़ कर तुम्हारा संकोच है। अतः तुम्हीं सब बातों पर विचार करके कहो कि क्या कर्तव्य है? क्या राजाज्ञा की अपेक्षा महिमा का उल्लंघन करके किसी सुयशी पुरुष को राज्यसुखार्थ अथवा वन दुःख-विमोचनार्थ विचार तक करना चाहिये और क्या तुम्हीं को राजाज्ञा होते हुए राज्यभार से बचने का प्रयत्न करना उचित है? इन बातों को सुन कर महात्मा भरत किंकर्तव्यविमूढ़ हो गये, किन्तु कर्तव्य का पूरा ध्यान रखते हुए भी राज्य-ग्रहण की ग्लानि ने उन्हें ऐसा घेरा

कि इस बात के लिये वे किसी भाँति प्रस्तुत न हुए। उन्होंने सोचा कि पिता ने मुझे राज्याधिकार अवश्य दिया है किन्तु मैं उसे ग्रहण न करके भी उनकी आज्ञा भंग करने का दोषी नहीं हो सकता, क्योंकि अपना भी राज्य उचित उत्तराधिकारी को सौंप देने का मुझे सदा अधिकार है। उनका ऐसा विचार समझ और उन्हें किसी प्रकार राज्य ग्रहण न करते देख कर रामचन्द्र ने उनकी इच्छानुसार सिंहासनासीन करने के लिए अपनी पादुकायें उन्हें दीं। उन पादुकाओं को सिंहासन पर रखकर भरत ने प्रतिनिधि के समान अयोध्या से दो मील नन्दिग्राम में रह कर १४ वर्ष राज्य चलाने का संकल्प किया और अपना व्रत निभा दिया।

इधर भगवान रामचन्द्र का असली हाल समझ कर हजारों मनुष्य चित्रकूट में इनके दर्शनार्थ आने लगे। इस कलकान से बचने के लिये रामचन्द्र ने दूर देश का प्रस्थान किया। अब ये तीनों दण्डकारण्य में फिरते हुए पञ्चवटी के निकट पहुँचे। वहाँ इन्होंने जनस्थान में अगस्त्य ऋषि के दर्शन किये और उनकी सम्मति के अनुसार पंचवटी में गोदावरी के एक रम्य तट पर पर्णकुटी बनाकर ये निवास करने लगे। कहते हैं कि उस स्थान पर गोदावरी नदी धनुषाकार बहती थी। अगस्त्य ने सब से प्रथम विन्ध्य और महाकान्तार वन को पार करके दक्षिण में जन स्थान पर पहला आर्य उपनिवेष बनाया था। वैदर्भी लोपामुद्रा से आपका विवाह हुआ था। दोनों वेदर्षि थे। अगस्त्य ने इल्वल राक्षस को हराकर उपनिवेश बसाया था। वेद में आप वीर कहे गये हैं। अरब समुद्र के लुटेरों को जलयुद्ध में हराकर आपने व्यापार अकंटक किया था। लोपामुद्रा द्वारा राम के मित्र काशी नरेश अलर्क को आशीर्वाद दिया जाना लिखा है। भगवान् रामचन्द्र ने चित्रकूट में लगभग दस मास और पञ्चवटी में प्रायः १२ वर्ष निवास किया। इसी निवास-स्थान के निकट आपने एक बार हड्डियों का ढेर देख उसे टीला समझ कर पूछा कि यह क्या है? इस पर ऋषियों ने उत्तर दिया कि ये राक्षसों द्वारा खाये हुये ब्राह्मणों की हड्डियां हैं। १२ वर्ष तक ऋषियों के साथ ज्ञान-वैराग्य की वार्त्ता करते हुए भी भगवान् को यह भारी उपद्रव देख इतना क्रोध आया कि आपने उसी स्थान पर दक्षिण

बाहु उठाकर प्रण किया कि यदि मैं सच्चा क्षत्रिय हूँ तो पृथ्वी को निशिचर-हीन करूँगा। इतिहासज्ञों से छिपा नहीं है कि राम ने यथा समय यह प्रण सच्चा कर दिखाया। इसी स्थान पर निवास करते हुए ऋषियों के सुसंग से रामचन्द्र में वह भारी दृढ़ता एवं चरित्र विशुद्धता आ गई थी कि सब राजाओं में इन्हें मर्यादा-पुरुषोत्तम की उपाधि मिली। हमारे सभी राजाओं में आदर्श-आर्य भगवान् रामचन्द्र ही थे।

पंचवटी में रहते हुए इन्हें एक बार सम्राट् रावण की बहिन शूर्पणखा ने देखा और चाञ्चल्यवश वह इन पर तत्काल मोहित हो गई। उसने कई प्रकार से समझा बुझा कर इन्हें अपने साथ विवाह करने पर राजी करना चाहा। इन्होंने उसका प्रस्ताव दृढ़तापूर्वक अस्वीकृत किया, किन्तु उसने इनका पीछा न छोड़ा और सब प्रकार से इन्हें दुःख दिया। उसका ऐसा असह्य चाञ्चल्य देखकर इन्होंने उसे रूपगर्विता समझ कर लक्ष्मण को इशारा किया और उन्होंने तत्काल नाक-कान काट कर उसे पूर्णतया विरूपा कर दिया। इनका यह एक ऐसा कर्म है जिसका किसी प्रकार से समर्थन नहीं हो सकता और जो इनके आदर्श हिन्दू होने के भी प्रतिकूल है।

शूर्पणखा ने अपनी यह दुर्दशा देख रो-रो कर अपने भाई खर को सारा वृत्तान्त सुनाया। वह अपने नाना के भाई माल्यवान की अध्यक्षता में इस ओर रावण का अन्तपाल था। रावण का वंश कथन नवें अध्याय के २१ वें नोट में है। खर ने दूषण और त्रिशिरा एवं कुछ चुने हुए योद्धाओं के साथ भगवान् पर आक्रमण किया। रामचन्द्र ने धनुषबाण उठा कर सहज ही में इन शत्रुओं का शमन किया। चुने हुए योद्धाओं के साथ अपने नेता खर का विनाश देख कर राक्षस लोग हाय-हाय करते हुए दण्डकारण्य से भी भागे। रामचन्द्र ने इस प्रकार सुगमतापूर्वक राक्षसों के दोनों भारतीय उपनिवेश ध्वस्त कर दिये। अब शूर्पणखा रोती हुई रावण के पास पहुँची। उसकी यह दशा देख रावण ने किसी दुश्चरित्र की आशंका करके मंत्रियों को हटा एकान्त में बहिन से जंगल का वृत्तान्त पूछा। उसने अपनी बुराइयों को दबाकर इतना ही कहा कि राम ने मुझे

आपकी बहिन समझ कर निशिचर-कुल के अपमानार्थ मेरी यह दशा की। इसी के साथ रावण का लालच बढ़ाने के विचार से उसने सीता के रूप की भी बड़ी प्रशंसा की। रावण ने इस दुर्घटना को समझ कर तथा राम के साहस का ध्यान करके निशिचर-कुल के भविष्य पर विचार किया, किन्तु उसे यह निश्चय न हुआ कि राम का पराक्रम कैसा प्रचण्ड है। इसलिये अपमान का बदला अपमान ही द्वारा चुकाने के विचार से वह रथ पर चढ़कर अकेला दण्डकारण्य में मारीच के आश्रम पर पहुँचा। मारीच राम से पहले ही बहुत भयभीत था, इसलिए उसने रावण को राम से विरोध न बढ़ाने का कई प्रकार से उपदेश दिया, किन्तु इसने एक न मानी। तब विवश होकर मारीच इसकी सहायतार्थ चला। मारीच ने रामाश्रम के समीप जङ्गल में ऐसी माया की कि इन्हें मृग का भ्रम हो गया। वह युक्तिपूर्वक दोनों राजकुमारों को आश्रम से दूर निकाल ले गया। बहुत दूर निकल जाने पर रामचन्द्र ने निशिचर का छल जाना और एक ही बाण से उसका बध कर डाला। लक्ष्मण को भी अपने पीछे देख कर रामचन्द्र ने उनका बहुत भर्त्सन किया और कहा कि तुमने सीता को अकेली छोड़ देने में भारी भूल की। लक्ष्मण को स्वयं सीताजी ने राम के पीछे जाने की आज्ञा दी थी और उन्हें आनाकानी करते देख मर्मभेदी कई अनुचित वचन कहे थे जिनके कारण विवश होकर ही वे रामचन्द्र के पीछे गये थे। फिर भी भूल थी ही, क्योंकि सीता के क्रोधपर भी वे इनको रक्षा के लिये छिप कर वहीं रह सकते थे।

इधर सूने में आश्रम जाकर रावण ने यति के रूप में सीता का बलपूर्वक हरण किया तथा रथ पर बिठाकर उनको लिये हुए वह लंका को चला। मार्ग में जटायु नामक एक भद्र पुरुष ने स्त्री की यह दशा देख उसके उद्धारार्थ रावण को ललकारा, किन्तु राक्षसराज ने उसको मृतप्राय कर डाला। आगे चलने पर पाँचों मन्त्रियों समेत सुग्रीव को बैठा देख सीता ने नूपुर समेत अपना एक वस्त्र वहीं डाल दिया। इसी प्रकार अन्य स्थानों पर भी रामचन्द्र के जानने को अपनी वस्तुयें डालती हुई विलपती सीता रावण के साथ लंका पहुँची। रावण ने सीता के आचरण से मार्ग ही में समझ लिया था कि किसी प्रकार के बल-

प्रयोग से यह वश में नहीं आवेगी और तुरन्त अपना प्राण खो देगी। रावण सीता को राम के अपमानार्थ ही लाया था, किन्तु इनके रूप-लावण्य से वह मोहित भी हो गया था। फिर भी किसी प्रकार इच्छा पूर्ण होते न देखकर उसने सीता को अशोकवाटिका में स्थान दिया। उनकी रक्षा के लिये त्रिजटा के आधिपत्य में कई राक्षसियां और कड़े पहरे को कई राक्षस नियत हुए।

इधर भगवान रामचन्द्र ने मारीच को मारकर वापस आने पर सूने आश्रम को भ्रष्ट और कमण्डलु को टूटा पाया, तथा सीता को भी वहां न देखा। इन बातों से इन्हें किसी के द्वारा सीताहरण का निश्चय हो गया। सूने आश्रम के इधर-उधर इन्होंने इसका बहुत पता लगाया, किन्तु कोई खोज न चली। अन्त को विवश होकर ये अपनी प्रिय पत्नी की खोज में निकले। थोड़ी दूर चलकर आपने वृद्ध जटायु को क्षत-विक्षत-पूर्ण मरणप्राय दशा में पाया। उससे वार्तालाप करने पर इन्हें इतना ही ज्ञान हो सका कि विलाप करती हुई प्रियतमा सीता को लेकर कोई दक्षिण को गया है और उसी से युद्ध करने में जटायु की यह दशा हुई है। वह कौन था, इसका पता जटायु स्वशरीर-शैथिल्य अथवा अज्ञान के कारण रामचन्द्र को न दे सका। इसी अवसर पर उसने अपना देह छोड़ दिया। उसकी इस उदारता पर मुग्ध होकर भगवान् ने अपने हाथ से उसके शव का दाह-संस्कार किया।

इसके पीछे सीता को खोजते तथा विविध प्रकार से विलाप करते हुए रामचन्द्र लक्ष्मण सहित दक्षिण की ओर बढ़े। यथासमय ऋष्य-मूक पर्वत के समीप पम्पासरोवर पर दोनों पहुँचे। जनस्थान और किष्किन्धा उस काल दक्षिण के सर्वोत्कृष्ट स्थान थे। ऋष्यमूक पर सुग्रीव वानर रहता था। यह किष्किन्धा के राजा वालि का भाई था किन्तु कई कारणों से इन दोनों में बिगाड़ था। वालि ने सुग्रीव को निकाल दिया था और उसकी स्त्री भी छीन ली थी। वालि को मृत समझकर एक बार सुग्रीव राजा तथा उसकी स्त्री तारा का पति बन बैठा था। इसी लिये वालि ने उसकी भी स्त्री छीनी थी। रामचन्द्र को देखकर सुग्रीव को भय हुआ कि वालि ने मेरे निग्रहार्थ तो इन्हें नियोजित नहीं किया है। इसलिये उसने अपने मन्त्री हनुमान् को

राम के पास भेजा और वे वार्तालाप करके इन्हें सुग्रीव के निकट ले गये। यहाँ हनुमान् ने सुग्रीव से इनका परिचय कराया और दोनों ने एक दूसरे का हाल जान समझ कर सहायतार्थ आपस में प्रगाढ़ मैत्री की और अग्नि को साक्षी देकर उसे दृढ़ किया। सुग्रीव ने सीता जी के नूपुर और पट भगवान् को दिये जिन्हें पहचान कर आपने बड़ा शोक किया।

अब वालि-निग्रहार्थ निश्चय करके रामचन्द्र ने सुग्रीव को उसके साथ युद्धार्थ भेजा और आप एक ताल वृक्ष की ओट से युद्ध देखते रहे। सुग्रीव बहुत छल बल करके भी वालि का बल न रोक सका और उसके एक ही मुष्टिप्रहार से भग्नात्साह होकर भागा। जब सुग्रीव राम के पास पहुँचा तब इन्होंने कहा कि तुम अपने भ्राता के ऐसे समरूप हो कि मैं युद्ध के समय तुम दोनों को पृथक् न कर सका। अब रामचन्द्र ने सुग्रीव को चिह्न-स्वरूप एक माला पहिनाकर युद्धार्थ वालि के पास फिर भेजा। दोनों में फिर युद्ध होने लगा और वालि को प्रबल पड़ते देख रामचन्द्र ने ओट से ही उस पर तीव्र शर का प्रहार किया, जिससे मृतप्राय होकर वह धरणी पर गिर पड़ा। रामचन्द्र के चरित्र-समालोचकों ने इनकी इस करनी पर कुछ सन्देह प्रकट किया है, किन्तु युद्ध में ऐसी नीतियाँ प्रायः करनी पड़ती हैं। शायद राम के सामने जाने से उसके भाग जाने और झगड़ा बढ़ने का भय हो। उसके मरने पर रामचन्द्र ने सुग्रीव को किष्किन्धा का राजा बनाया, किन्तु वालि के ही पुत्र अङ्गद को युवराज किया। इस प्रकार उसके पक्ष पर भी दया करके भगवान् ने अपनी न्यायप्रियता का उदाहरण दिखाया है। उसके मरणान्तर उसकी रानी तारा के साथ सुग्रीव ने फिर विवाह कर लिया। अब वर्षाकाल आ गया था, इसलिये सीता की खोज नहीं की जा सकती थी। रामचन्द्र पिता की आज्ञा से किसी ग्राम में नहीं रह सकते थे, अतः सुग्रीव के अनुचरों ने इनके लिये प्रवर्षण गिरि पर कुटी बना दी, जहाँ आपने वर्षा काटी।

वर्षा ऋतु में ही हनुमान् की सम्मति से सुग्रीव ने कुछ वानर सीता को खोजने भेजे थे, किन्तु इस प्रयत्न का कोई फल न हुआ था।

इधर का कोई समाचार न पाकर रामचन्द्र को समझ पड़ा कि सुग्रीव ने हमारा काम भुला दिया है, इसलिये वानरेश को डराकर बुला लाने के लिये इन्होंने लक्ष्मण को किष्किन्धा भेजा। लक्ष्मण ने जाकर क्रोध करते हुये कहा कि सारा पुर जला कर भस्म कर देंगे। इन्हें क्रुद्ध समझ कर सुग्रीव ने समझाने के लिये हनुमान् के साथ महारानी तारा को भेजा। इन लोगों ने कुमार को सब हाल बतला और बहुत प्रकार से नम्रता दिखलाकर प्रसन्न किया। अब सुग्रीव ने भी आ सुमित्रानन्दन का अभिवंदन किया और सब लोग मिल कर रामचन्द्र के पास पहुँचे। वहाँ सब प्रकार से सलाह होकर वृद्ध मन्त्री जाम्बवान् ऋक्ष की अधीनता में चुने-चुने सरदार सीता की खोज निकालने के लिये भेजे गये। इनमें युवराज अंगद और हनुमान् भी थे। खोजते-खोजते ये लोग ठेठ दक्षिण में समुद्र के किनारे पहुँचे और वहाँ जटायु के भाई वृद्ध संपाति से इन्हें लंका में सीता का होना विदित हुआ। अब यह प्रश्न उठा कि इतना बड़ा समुद्र तैर कर लंका कौन पहुँच सकता है! सभों ने अपने-अपने सामर्थ्य का कथन किया किन्तु स्वयं अङ्गद तक को जाकर लौट आने की हिम्मत न पड़ी। तब जाम्बवान् की सम्मति से महावीर हनुमान् इस कार्य पर नियुक्त हुए और इन्होंने इसे सहर्ष स्वीकार किया। सीता के लिये चिह्न स्वरूप रामचन्द्र ने इन्हें एक अँगूठी दी थी। अब उसी को लेकर हनुमान् अपने जीवन के सर्वोत्कृष्ठ कार्य-साधन में प्रवृत्त हुए।

अनन्तर एक ऊँचे टीले पर चढ़कर साहस के सहारे श्री हनुमान्जी समुद्र में कूद पड़े और ४० मील तैर कर दूसरी ओर जाने के प्रयत्न में लगे। बीच के टापुओं पर दम लेते और जान पर खेलते हुए साहसमूर्ति महावीर तैरते ही चले गये। मार्ग में सुरसा नाम्नी नागमाता ने इनके बल और बुद्धि की परीक्षा ली किन्तु प्रसन्न हो एवं आशीर्वाद देकर वह चली गई। आगे बढ़कर एक टापू पर सिंहिका नाम्नी राक्षसी ने इन्हें पकड़ कर खा जाना चाहा। और प्रकार प्राण बचता न देख विवश होकर हनुमान् को उस स्त्री तक से युद्ध करना पड़ा। उसे क्षण भर में मारकर ये आगे बढ़े और तैरते हुए लंका के टापू पर पहुँच ही गये।

अब साधारण पथिक बनकर इन्होंने लङ्कापुरी में प्रवेश किया। पुरी की रम्यता देखकर इनका चित्त बहुत प्रसन्न हुआ। हनुमान् महावीर होने के अतिरिक्त छद्मवेष धारण में भी बड़े पटु थे। इन्होंने किसी उचित छद्मवेष में सारा शहर घूमते हुए रावण का महल भी देख लिया और वहां सीता को न पाकर इन्हें भारी संताप हुआ। इधर-उधर घूमते हुए इन्हें रावण के अनुज विभीषण मिले। उनको रावण-कृत सीताहरण का कर्म बहुत ही निन्द्य प्रतीत हुआ था। इसलिये हनुमान् का हाल जानकर उन्हें प्रसन्नता हुई और उन्होंने इन्हें सीता जी से मिलने की सारी युक्ति बता दी। अब ये सीता के निवासस्थल अशोक-वाटिका में पहुँचे और वहाँ अपनी स्वामिनी को घोर विरह-वेदना से खिन्न पाकर इन्हें हर्ष और शोक साथ ही साथ हुए, हर्ष उनके मिलने और सतीत्व पर और शोक दुःखों पर। महावीर ने देखा कि राक्षसियां सीता को घेरे हुए हैं और उन्हें रावण का प्रणय स्वीकार करने के लिये भांति-भांति के दुःख देती हैं। उन लोगों की बातों से इन्हें यह भी ज्ञात हुआ कि रावण अपने प्रयोजन के साधनार्थ सीताजी को कई बार भांति-भांति से समझा बुझा चुका है और नम्रता एवं क्रोध प्रकाश के कई छलबल कर चुका है किन्तु इन्होंने उसके प्रणय का पूर्ण निरादर करते हुए उसकी सदैव उपेक्षा की है और यही कहा है कि जब तू अपने को लोकपालों से बढ़कर समझता और पुलस्त्य ऋषि के कुल का भी अहंकार करता है, तब इन महत्त्वों के विवर्धनार्थ धर्मपालन में भी क्यों नहीं प्रवृत्त होता?

अब रात्रि बहुत जा चुकी थी, इसलिये राक्षसियाँ अपने-अपने घर चली गईं तथा उनके त्रास से छूटने पर अकेली रहने के कारण सीता की विरह वेदना और भी बढ़ी। इसी अवसर को उचित काल समझ कपिवर ने रामचन्द्र की दी हुई अंगूठी देकर सीताजी से परिचय किया और पत्नी-हरण के पीछे रामचन्द्र ने जो-जो कार्य किये थे उन सब का भी संक्षेप में विवरण कह सुनाया। सीताजी ने उस घड़ी को धन्य माना और प्रेमाश्रु से अँगूठी को भिगो दिया। इसके पीछे इनकी आज्ञा लेकर महावीर ने अशोक वाटिका का उजाड़ना आरम्भ किया। इन्होंने मालियों की उपेक्षा करके मधुर फल खाये, शाखायें तोड़ डालीं

और मना करनेवालों पर प्रहार किया। यह दशा देख मालियों ने बहुत से युद्धकर्त्ताओं को बुलाकर इन्हें पकड़ना चाहा किन्तु इन्होंने उन सब का भी विमर्दन किया। अब रावण के पास समाचार गये और उसने अपने पुत्र अक्षयकुमार को इन्हें परास्त करने के लिये कुछ योद्धाओं के साथ भेजा. किन्तु मरुतनन्दन ने उनका भी मानमर्दित किया और अक्षयकुमार को मार ही डाला। यह समाचार सुनकर रावण बड़ा दुःखित हुआ। अब उसने अपने मुख्य पुत्र युवराज मेघनाद को आज्ञा दी कि वानर मारा न जाय वरन् पकड़ कर सामने लाया जाय। मेघनाद ने आकर हनुमान से द्वन्द्व युद्ध किया और दिव्यास्त्रों के द्वारा इन्हें मूर्छित कर दिया। अब उनके अनुयायियों ने इन्हें बाँध लिया और यथाकाल ये राजसभा में उपस्थित किये गये।

इन्होंने रावण से सीताजी के छोड़ने की सम्मति पर वार्तालाप किया और अपने को रामचन्द्र का दूत कहकर इसी विषय में उनका भी सन्देश कह सुनाया। रावण ने सीता को वापस करना पसन्द न करके पुत्रवध के कारण हनुमान् के लिये प्राण-दण्ड की आज्ञा दी। इस पर विभीषण ने निवेदन किया कि दूत का मारना राज-धर्म के प्रतिकूल है सो इसे कोई और दंड दिया जाय। यह विचार राजा ने भी पसन्द किया और आज्ञा दी कि जिन हाथों से इसने राजपुत्र का वध किया है वह जला दिये जायँ। प्राचीन ग्रंथों में पूँछ के जलाने की आज्ञा लिखी है किन्तु उसका प्रयोजन हाथों से मालूम पड़ता है। राक्षसों ने तेल और लाख में भिगोये हुये वस्त्र बाहुदहन के लिये एकत्रित किये, किन्तु उनका अभीष्ट सिद्ध न हुआ और महावीर ने झट बन्धन तोड़ जलते हुए वस्त्रों से लंका के कई प्रासादों में आग लगा दी। यह आग एक से दूसरे मकान तक फैलती हुई बहुत दूर तक व्याप्त हो गई और हजारों महल जलकर राख हो गये। इस अग्नि से लंका के प्रासादों को भारी हानि पहुँची। अब लंका में कोई कार्य शेष न देख कर माता के लिये सीताजी से चूड़ामणि प्राप्त करके हनुमान्जी समुद्र में कूद पड़े और तैरते हुए इस ओर अपने साथियों से आ मिले। उन सब ने इनके आने से भारी प्रसन्नता मनाई और सारा हाल सुन कर परम प्रसन्न

हो इनके बाहुओं का पूजन किया।

अब ये सब लोग सुग्रीव के पास पहुँचे और उनके साथ सभों ने रामचन्द्र का दर्शन किया। रामचन्द्र ने सीता की सुध पाकर बड़ा हर्ष मनाया और महावीर-चरित्र सुनकर उनकी भारी प्रशंसा की। अनन्तर सैन्य सजाकर सुग्रीव ने लंका पर आक्रमण करने की तैयारी की। भगवान् रामचन्द्र ने भारत से लंका तक सेतु बाँध कर अपनी सेना उस पार पहुँचाने का मंसूबा बाँधा। जिस काल सेतुबन्धन का कार्य हो रहा था, तब रावण ने अपने मन्त्रियों से इस विषय में सलाह की तो विभीषण ने बड़े तीक्ष्ण शब्दों में राम का प्रताप एवं राक्षसों के असामर्थ्य का कथन किया। इस पर क्रुद्ध हो रावण ने उसकी कुछ निन्दा की। इस अपमान से रुष्ट होकर विभीषण ने लंका से भाग कर राम की शरण ली और भगवान् ने दया एवं कार्यसाधन के विचार से उसे लंकेश बनाने का वचन दिया, तथा समुद्र का जल मँगा कर उसी स्थान पर राज्याभिषिक्त कर दिया। जान पड़ता है कि जो टीलों का समूह भारत से लंका पर्यन्त है, उन्हीं के बीच का उथला पानी पाषाणों आदि से भरकर भगवान् ने सेतु बँधवाया होगा। रावण ने बल के मद में उन्मत्त होकर समुद्र पार करते समय सेना की गति का निरोध नहीं किया। चार दिनों में राम का दल सेतु द्वारा समुद्र पार हो गया। अंगद सेनापति नियत हुए। राम दल के उस पार पहुँचने पर रावण ने शुक-सारण को दूत बनाकर सेना का हाल जानने के लिये भेजा, किन्तु बानर लोगों ने उन्हें पकड़ लिया और बड़ी कठिनाई से छोड़ा। भगवान् ने अब अंगद का दूत बनाकर लंका पुरी भेजा, किन्तु रावण ने अधीनता स्वीकार करने तथा सीता को लौटाने की सम्मति न मानी।

शान्ति होते न देख कर भगवान् ने लंका पुरी का दुर्ग सब ओर से घेर लिया। चारों फाटकों पर चुने चुने योद्धा आक्रमणार्थ रक्खे गये। रावण ने भी चारों फाटकों की रक्षा के निमित्त भारी योद्धा नियुक्त किये। अब विकराल युद्ध का आरंभ हुआ और थोड़े ही दिनों में रामचन्द्र की सेना ने अपना प्राबल्य दिखला दिया। अपने दल की भारी हानि देख और प्रहस्त तथा धूम्राक्ष का निधन सुन राक्षसेश्वर

रावण के चित्त में कुछ उद्वेग आया। अब उसने नाना के भाई माल्यवान्, महोदर, स्वपुत्र मेघनाद तथा अन्य प्रधान-प्रधान सरदारों को बुलाकर मन्त्रणा की। महोदर तथा माल्यवान् ने शान्ति की सलाह दी, किन्तु रावण और मेघनाद को सम्राट् पद का दर्प छोड़ कर अधीनता स्वीकार करना मरण से भी निकृष्टतर समझ पड़ा। मेघनाद ने रावण को साहस प्रदान करके राक्षसों का बल सुनाया और अपना प्रसिद्ध पुरुषार्थ दिखलाने के विषय में भी नम्रता पूर्वक विनती की। दूसरे दिन उसने महान शौर्य दिखलाकर स्वयं रामचन्द्र को नागपाश से बद्ध कर दिया, किन्तु अन्य लोगों ने प्रयत्न करके अपने स्वामी को बन्धन मुक्त किया। नागपाश व्यर्थ देख कर रावण ने युद्धार्थ अपने भ्राता कुम्भकर्ण को भेजा, किन्तु परम शौर्य दिखलाकर वह रामचन्द्र के हाथ से मारा गया। इसके पीछे प्रचण्ड युद्ध करके मेघनाद भी लक्ष्मण के हाथ से मरा।

यह बुरा दिन देखकर साम्राज्ञी मन्दोदरी ने रावण को सीता लौटा देने के विषय में बहुत कुछ समझाया, किन्तु उसने उत्तर दिया कि तुम सीता को दो या न दो, मैं कुम्भकर्ण और मेघनाद के बिना शरीर धारण नहीं कर सकता। इस पर मकराक्ष ने विनती की, "हे सम्राट् ! जब तक तेरा सेवक मैं जीवित हूँ, तब तक लंका में शीश वचन मुख से कौन निकाल सकता है ? अनन्तर रावण की आज्ञा ले पराक्रमी वीर खरात्मज मकराक्ष विभीषण के पुत्र नरणासेन को साथ लेकर युद्धक्षेत्र में कूद पड़ा। इन दोनों ने निशिचर कुलाद्धारार्थ प्रचण्ड संग्राम किया, किन्तु रामचन्द्र की असह्य शक्ति के सामने कोई युक्ति काम न आई। मकराक्ष लक्ष्मण के हाथ से मारा गया और नरणासेन को स्वयं रामचन्द्र ने मारा। अपने पुत्र-विनाश के पीछे विभीषण ने विलाप करते हुए भगवान् से उसका असली हाल बताया। यह सुन रामचन्द्र को बड़ा क्लेश हुआ। युद्ध फिर भी चलता रहा और महोदरादि रावण के मन्त्री और सरदार एक एक करके पराशायी हुए। सबसे पीछे स्वयं रावण ने कई दिन तक प्रचण्ड युद्ध करके और रामचन्द्र के भारी-भारी योद्धाओं को पराजित करके अन्त में स्वयं भगवान् के हाथ से वीरगति प्राप्त की।

सीताधर्पणाभाव से लंका की बढ़ी हुई सभ्यता भली भाँति प्रदर्शित होती है। रामचन्द्र लंका-विजयार्थ विजयादशमी के दिन चले थे। लंका का युद्ध ८४ दिन होकर चैत्र मास में रावण-वध के साथ समाप्त हुआ। रावण के पीछे रामचन्द्र ने विभीषण को लंका देकर सीता को फिर प्राप्त किया। लोगों के संदेह मिटाने का यिवनमा की पावक-परीक्षा करके रामचन्द्र ने उनका ग्रहण किया। पावक-परीक्षा के विषय में आज कल संदेह उपस्थित किया जा सकता था, किन्तु इन्हीं दिनों घनारम आदि कई स्थानों पर लोगों ने दहकते हुए कोयलों से भरे हुए कुण्डों पर साधारण लोगों को चलाकर सिद्ध कर दिया है कि किसी न किसी भाँति अग्नि की दाहिका-शक्ति का दमन किया जा सकता है। इस बात से अग्निशुद्धि का महात्म्य अवश्य कम हो जाता है।

कुल मिलाकर जानकी जी लंका में दस मास रहीं। ऊपर कहा जा चुका है कि रावण के पास कुबेर वाला आकाशगामी पुष्पक विमान था। अब वह रामचन्द्र को प्राप्त हुआ और उसी पर चढ़कर पत्नी और भ्राता समेत आप मुख्य-मुख्य सरदारों को भी साथ लेकर अयोध्या रवाना हुए, क्योंकि १४ वर्ष का समय भी अब समाप्त होने ही को था। मार्ग में भरद्वाज के दर्शन करते और निषाद-पति गुह से मिलते हुए चौदहवाँ वर्ष समाप्त होते ही १५ वें वर्ष के ठीक पहले दिन रामचन्द्र ने नन्दिग्राम में प्रिय भाई भरत को दर्शन दिये। वहीं पर चारों भाइयों ने जटाओं को त्याग कर गाजे बाजे के साथ उचित समय पर अयोध्या में प्रवेश किया। रामचन्द्र के प्रवेशोत्सव में अयोध्या नई दुलहिन की भाँति सजाई गई। अब उचित समय पर राम का अभिषेक हुआ और ये सुखपूर्वक राज्य करने लगे।

राम-राज्य में प्रजा ख़ूब सुख के साथ रही। उसको किसी प्रकार का कष्ट नहीं होता था और जितने कष्टों का राज्य निवारण कर सकता था वह मानों प्रजा के लिये बने ही न थे। भारत में सर्वोत्तम राज्य का अब तक रामराज्य कह कर उसकी महत्ता सूचित करते हैं। हिन्दू शास्त्रानुसार प्रजा के चारों वर्णों को जिस-जिस धर्म पर चलाना चाहिये, उसी पर रामचन्द्र ने उनको चलाया। आदर्श आर्य होने से

जमाया। तक्ष को तक्षशिला मिली और पुष्कर को पुष्करावती (वायु ८८, विष्णु IV ४, ४७; पद्म V ३५-२३-४; VI २७१, १२; अग्नि ११, ७-८; रघुवंश XV ८८-९)। इस प्रकार यह राज्य भी सूर्यवंशियों के अधिकार में आ गया। समय पर अन्य कई राज्य भी रामचन्द्र ने प्राप्त किये। अब आपने पुत्रों और भतीजों को सब प्रकार से समर्थ समझ कर जीते हुए और पैतृक राज्य उन्हीं में विभाजित कर दिये। ज्येष्ठ पुत्र कुश को (पद्म VI २७१-५४-५५) अयोध्या का युवराज बना कर कुशस्थली पर कुशावती में भी राज्य चलाने की आज्ञा दी। यह विन्ध्याचल के दक्षिण है। कालिदास के अनुसार कुश ने समय पर प्रजा की प्रार्थना से अयोध्या फिर से राजधानी बनाई। लव को शरावती उपनाम उत्तर कोशल का राज्य मिला, जिसकी राजधानी श्रावस्ती थी। कहते हैं कि लवकोट उपनाम लाहौर नगर लव का ही बसाया हुआ है। श्रावस्ती जिला गोंडा व बहराइच में है। तक्षशिला को अब शाहधेरी कहते हैं, जो अटक तथा रावलपिण्डी के बीच में कालका सराय से एक मील की दूरी पर स्थित है। लक्ष्मण के पुत्र अंगद और चन्द्रसेन (या चन्द्र केतु) या चन्द्रचक्र को कारापथ के अन्तर्गत अंगद नगर तथा चन्द्रावती (मल्लदेश) के राज्य दिये गये। (वायु ८८, १८७, ८; ब्रह्माण्ड III ६३, १८८-९; विष्णु IV ४, ४७; रघुवंश XV ९०; पद्म V ३५, २४; VI २७१—११—२; ये स्थान हिमाचल के निकट थे।) सुबाहु को मथुरा तथा शत्रुघाती को विदिशा (वर्तमान भेलसा) मिले। इस प्रकार रामचन्द्र ने अपने तथा भाइयों के आठों पुत्रों को प्रसन्न करके सभी को राजा बना दिया। भगवान् ने शत्रुघ्न, सुग्रीव और विभीषण को मिलाकर केवल अपने बाहुबल से ग्यारह राजाओं का अभिषेक किया। अंग, बंग, मत्स्य, शृंगबेरपुर काशी, सिन्धु-सौवीर, सौराष्ट्र, दक्षिण कोशल, किष्किन्धा और लंका भगवान की मित्र शक्तियां थीं। रामचन्द्र ने मधुरा से इतर किसी आर्य नरेश पर सेना सन्धान नहीं किया। अब तक भारतीय किसी सम्राट् का राज्य एवं प्रभाव देश न बढ़ा था। आर्यावर्त का भी प्रभाव आप के कारण बहुत बढ़ा।

रामचन्द्र के चरित्र का सब से बड़ा अंग दृढ़ता थी और अब

यही अयोध्या के सर्वप्रधान रत्न को लूटने वाली हुई। रामचन्द्र ने एक बार प्रण किया था कि यदि कोई मेरी आज्ञा भंग करेगा तो मैं उसका त्याग कर दूँगा। दैववश लक्ष्मण को ही अवश होकर इनकी आज्ञा टालनी पड़ी, जिस पर न चाहते हुए भी इन्होंने उनका त्याग कर दिया। रामचन्द्र से पृथक् होकर लक्ष्मण को सारा संसार शून्य समझ पड़ा और वे महल से सीधे गुप्तारघाट पर पहुँच कर सरयू के जल में लुप्त हो गये। आप की माता और सीता जी स्वर्ग वासिनी हो ही चुकी थीं, अब लक्ष्मण का भी शरीरान्त सुनकर रामचन्द्र से भी न रहा गया और इन्होंने शरीर-त्याग के विचार से अपने शेष दोनों भाइयों को साथ ही देखना चाहा। भरत तो अयोध्या में रहते ही थे, शत्रुघ्न भी अब वहीं पहुँचे। इन दोनों भाइयों ने राम का विचार सुनकर इनके पीछे संसार में शरीर धारण तुच्छ समझ इन्हीं के साथ गुप्तार घाट में शरीर छोड़ दिया। यह दुर्घटना देख अयोध्या के हजारों लोगों ने भी ऐसा ही किया। कहा जाता है कि आत्मघात वाले रोग से इस काल अयोध्या उजाड़ सी हो गई।

रामचन्द्र ने यावज्जीवन अपने चरित्र से परमोच्च आदर्श दिखलाया। इन्होंने अपनी तीनों माताओं तथा सभी अन्य लोगों से यथोचित व्यवहार रक्खा। किसी का उचित मनोरथ इनके द्वारा कभी विफल नहीं हुआ। क्या दानशीलता, क्या न्यायपरता, क्या राज्य-शासन और क्या कोई भी चरित्र-सम्बन्धी सद्गुण, इन्होंने सभी बातों में अपने पुनीत जीवन को नमूना बना रक्खा था। इनके इस उत्कृष्ट चरित्र के कारण ही लोगों ने बालि एवं शूद्र मुनि के वध, शूर्पणखा-विरूपकरण और सीता-त्याग वाले कर्मों की तीक्ष्ण आलोचना भी की है। ये हिन्दुओं में ईश्वरावतार समझे जाते हैं, सो धार्मिक विचारों से भी इनके लाखों भक्त हैं। इसलिये उपर्युक्त बातों के खण्डन-मण्डन में बहुत कुछ लिखा पढ़ी हुई है, जिसका सार भी कहना यहाँ अनावश्यक समझ पड़ता है।

इनका चरित्र एक रामायण द्वारा इनके जीवन ही में गाया गया। बाल्मीकि द्वारा रचित रामायण ग्रन्थ अब भी उपस्थित है। यह बड़ा प्राचीन ग्रन्थ है, किन्तु फिर भी १३ वीं शताब्दी बी० सी० का नहीं

हो सकता। पंडित लोग इसे छठवीं से तीसरी शताब्दी बी० सी० तक के इधर-उधर का ग्रन्थ मानते हैं। वाल्मीकि का जन्म भृगुवंश में हुआ। इसी वंश के शुक्राचार्य थे। महाभारत का कथन है कि वाल्मीकि ने रामायण के ५ काण्ड १२००० श्लोकों में लिखे थे, ७ कांड और २५००० श्लोक उनके लिखे नहीं हैं। महाराज रामचन्द्र सम्बन्धी जितने ग्रंथ संस्कृत और भारतीय वर्तमान भाषाओं में बने हैं उतने बुद्ध और श्रीकृष्ण से इतर यहाँ किसी एक मनुष्य के विषय में नहीं बने। बौद्ध ग्रन्थों में भी रामचन्द्र का वर्णन अधिकता से है। "दशरथ जातक" नामक ग्रन्थ परम प्रसिद्ध जातकों में से एक है। इसमें रामचन्द्र की कथा बहुत अंशों में ज्यों की त्यों लिखी है। अन्य जातकों में भी इनका कथन यत्र तत्र मिलता है। जैन ग्रन्थों में भी इनके वर्णन हैं, एवं एक जैन रामायण भी प्रस्तुत है।

इतने प्रमाणों के होते हुए भी कुछ पाश्चात्य लोगों को भ्रम हो गया है कि रामचन्द्र कल्पित पुरुष मात्र हैं। इसके प्रमाण में वे वेदों में राम नाम के अभाव को पेश करते हैं। जैसा कि ११ वें अध्याय में दिखलाया जा चुका है, वेदों में चन्द्र वंशियों के अधिक वर्णन हैं और सूर्यवंशियों के कम; तथापि वेदों में भी राम नाम का अभाव नहीं है। स्वयं ऋग्वेद में इन्द्र को कई बार राम कहा गया है और यज्ञ करने वाले एक राम नामक शक्तिमान मनुष्य भी हैं। कोई कारण नहीं है कि ऋग्वेद वाले यही यज्ञकर्ता सशक्त राम दशरथ-नन्दन राम न माने जावें। यदि राम वास्तव में न हुए होते तो हिन्दू-मत विद्वेषी बौद्ध और जैन लोग अपने ग्रन्थों में इनका वर्णन कभी न करते। फिर ब्राह्मण और वेद ग्रन्थ इतिहास नहीं हैं और उनमें जो नाम आये हैं वे सब प्रसंगवश लिखे गये हैं। इस लिये यदि उनमें कोई विशिष्ट नाम न हो, तो भी यह अभाव उसके अनस्तित्व का अकाट्य तर्क नहीं है। बहुत से पाश्चात्य पंडितों ने भी पौराणिक अत्युक्तियों को असिद्ध मानते हुए भी राजवंशों का विवरण ग्राह्य कहा है। इन लोगों में पार्जिटर और विन्सेण्ट स्मिथ भी हैं। इन सब कारणों से रामचन्द्र की ऐतिहासिक सत्ता दृढ़ है।

उस काल राजा को न्याय करने में नियम बनाने की आवश्यकता

नहीं पड़ती थी और प्रवीण पंडितों के बनाये हुए राज्य-नियम प्रत्येक देश में चलते थे। सारे भारतवर्ष के सभी मुख्य स्थानों में एक दूसरे से व्यापारिक सम्बन्ध था और अनार्य राज्यों पर भी आर्य सभ्यता का प्रभाव पड़ने लगा था। रावण-राज्य के भारी सभ्यतापूर्ण व्यवहार .. इन कथनों की सिद्धि होती है। बालि और सुग्रीव के राज्य से भी उसकी महत्ता प्रकट होती है। रामचन्द्र के समय दण्डकारण्य में आर्यों का एक उपनिवेश था। इनके विजयों से दक्षिण पर भी आर्यों का बड़ा प्रभाव पड़ा और आर्य लोग बहुतायत से वहां बसने लग गये थे। इस काल से कुछ पहले राम के पिता दशरथ और उत्तर पांचाल नरेश दिवोदास ने वेदों में प्रसिद्ध (तिमिध्वज) शम्बर को मार कर उसके १०० दुर्ग तोड़े। अनन्तर इसी समय के लगभग दिवोदास के भतीजे सुदास ने भी भारी अनार्य्य नरेश वर्चिन को मार कर तथा भेदादि को पराजित करके भारत में अन्तिम अनार्य्य बल तोड़ दिया। इसका विशेष विवरण ऋग्वेद के सातवें मण्डल में है। अतः शम्बर, रावण और वर्चिन के पराजय से यह काल आर्य्यों के लिये बड़ी महत्ता का हुआ। रामायण काल में हम गोदावरी में दक्षिण आर्य्य विस्तार पाते हैं, तथा पम्पा, मलय, महेन्द्र और लंका तक में आर्य्य प्रभाव स्थापित होता है।

चौदहवां अध्याय

द्वापर युग पूर्वार्द्ध—राम के पीछे युधिष्ठिर काल के पूर्व तक

१३ वीं शताब्दी बी० सी० से १० वीं शताब्दी बी० सी० तक

द्वापर युग के राजवंशों को डाक्टर प्रधान ने विशेष परिश्रम करके दृढ़ कर दिया है। राम ने अपने आठों सूर्यवंशी भतीजों को राजा बना दिया जैसा कि गत अध्याय में कहा जा चुका है। उनमें से लक्ष्मण तथा शत्रुघ्न के लड़कों से राज्य बहुत शीघ्र छूट गये। भरत के बेटों के प्रभाव बहुत काल तक रहे, ऐसा समझ पड़ता है, क्योंकि इनके नामों पर पुष्करावती और तक्षशिला के प्रान्त शताब्दियों तक इन्हीं नामों से प्रसिद्ध रहे। फिर भी वे लोग तथा उनके वंशधर मध्यदेश से सबंध छोड़कर अपने ही प्रान्त के क्षत्रियों में मिल गए, जिससे पुराणों में इन वंशों के कथन न आये।

कुश वंश।

रामचन्द्र के बड़े पुत्र कुश को दक्षिण कोशल तथा अयोध्या के प्रान्त मिले। अवध प्रान्त के दो भाग करके भगवान राम ने श्रावस्ती लव को दी तथा अयोध्या कुश को। ऐसा समझ पड़ता है कि बड़े होने से उन्हें दक्षिण कोशल भी मिला। यह विन्ध्य में था, अथच पूर्वोक्त दक्षिण कोशल से पृथक था क्योंकि वह राज्य महाभारत के पीछे तक चलता रहा। कुश पहले कुशावती में रहने लगे और अयोध्या उजाड़ हो चली। तब वहां के निवासियों ने विनती की और आप कुशावती छोड़कर वहीं चले आये। कुश का विवाह किसी कुमुद नाग की पुत्री कुमुद्वती से हुआ। दुर्जय नामक किसी असुर से युद्ध करके कुश ने संसार त्यागा। इनके पुत्र अतिथि को कालिदास ने बड़ा प्रतापी राजा

कहा है। उन्होंने अपने पिता-हंता दुर्जय राक्षस को मारा। इनका नंबर ४१ था। इनके वंशधर (नं० ४९),पारिपात्र के छोटे भाई सहस्राश्व ने कोई दूसरा राज्य स्थापित किया। पुराणों में उनमें दूसरा वंश चला है। पारिपात्र के तीन पुत्र शल, दल, बल, सब एक दूसरे के पीछे राजा हुए। बल के वंश में राज्य चला। नं० ५६ हिरण्यनाभ धर्मात्मा और प्रतापी थे। इन्होंने जैमिनि से योग सीखा, तथा याजवल्क्य को सिखलाया (चौथे अध्याय में ऋषि वंश देखिए)। इनके पौत्र अत्नारात्मज नं० ५८ "पर" थे; जिनके पीछे इस वंश का राज्य न चला। दूसरी शाखा वाले न० ४९ सहस्राश्व का राज्य ६ पीढ़ी चला। अंतिम राजा नं० ५४ श्रुतायुस महाभारतीय युद्ध के समय में थे। इस नाम के तीन राजे उस युद्ध में लिखे हैं। डाक्टर प्रधान का विचार है कि इन्हीं को महाभारत में अम्बष्ट श्रुतायुस कहा गया है। मत्स्य पुराण में भी ऐक्ष्वाकु श्रुतायुस का महाभारत में मारा जाना लिखा है। राजसूय में भीम ने अयोध्या नरेश पुण्यात्मा दीर्घयज्ञ को हराया, यह कथन प्रधान में है। यह नाम वंशावली में नहीं है,शायद यह उकूथ का उपनाम हो।

लव वंश

रामचंद्र के दूसरे बेटे लव श्रावस्ती नरेश बनाये गये। इनके विषय में कोई विशेष घटना नहीं है। इनके वंश का राज्य बड़े भाई कुश वाले से बहुत अधिक पीढ़ियों तक चला।

लव के पौत्र राजा ध्रुवसन्धि हुए। इनका पहला विवाह कलिंगनरेश वीर की पुत्री मनोरमा से हुआ और दूसरा उज्जैनपति युधाजित की पुत्री लीलावती से। मनोरमा के गर्भ से सुदर्शन नामक पुत्र उत्पन्न हुआ और इसी से एक मास पीछे लीलावती के गर्भ से शत्रुजीत का जन्म हुआ। राजा ध्रुवसन्धि शत्रुजीत को अधिक चाहता था और लोगों का विचार था कि इसी को युवराज बनावेगा। इतने ही में शिकार में राजा ध्रुवसन्धि एक घायल शेर द्वारा मार डाला गया। राज-मंत्रियों ने बड़े होने के कारण सुदर्शन को ही तिलक के योग्य समझा किन्तु उज्जैन और कलिंग नरेश अपने-अपने दौहित्र का पक्ष ले लेकर लड़ने को तैय्यार हुए। शृङ्गवेरपुर में भारी युद्ध

हुआ जिसमें कलिंग नरेश मारा गया और मनोरमा सुदर्शन को लेकर जङ्गल में भाग गई। सुदर्शन की अवस्था इस काल बहुत छोटी थी। उसे लेकर मनोरमा प्रयाग में भरद्वाज के आश्रम में रहने लगी और युधाजित उज्जैनपति ने शत्रुजीत को अयोध्या का राजा बना दिया।

युधाजित ने भरद्वाज आश्रम से सुदर्शन को पकड़ मँगाने की भी युक्ति की किन्तु ऋषि ने उसे न भेजा और युधाजित ने भी उन की महिमा के विचार से इस पर ज़ोर न दिया। थोड़े दिनों में काशी नरेश सुबाहु की पुत्री शशिकला का स्वयंवर होने को हुआ। इस समय तक सुदर्शन भरद्वाज ऋषि की शिक्षा से अच्छा विद्वान् हो चुका था। उसके गुणों से मुग्ध होकर शशिकला ने पत्र द्वारा उसे बुला भेजा। जब सुदर्शन काशी पहुँचे, तब उन्होंने वहाँ युधाजित, शत्रुजीत, कारूश-पति, भद्रशार, सिंहराज, माहिष्मतीपति, पांचाल-राज, कामरूप, कर्णाटक, विदर्भ, केरल, चोल आदि के राजाओं को वहाँ एकत्र पाया। युधाजित ने इस बात का प्रश्न उठाया कि स्वयंवर नरेशों के लिये है सो सुदर्शन का प्रवेश इसमें नहीं हो सकता। इस पर केरल नरेश ने कहा कि राजा ध्रुवसन्धि का बड़ा पुत्र होने से सुदर्शन एक माननीय व्यक्ति अवश्य है। फिर भी युधाजित झगड़ा करता रहा। यह देख कई राजाओं ने मिलकर सुदर्शन को अपने पास बुलाया और उसकी शिष्टता तथा पाण्डित्य से प्रसन्न होकर उसका पक्ष लिया। अब सुदर्शन का विवाह शशिकला के साथ हो गया। यह देख युधाजित और शत्रुजित युद्धार्थ सन्नद्ध हुए। राजा सुबाहु तथा सुदर्शन के पक्षवाले अन्य राजाओं ने युद्ध में विजय पाई और युधाजित तथा शत्रुजीत मारे गये। यह कथा हमने केवल देवी भागवत (III १४-२५) में देखी है, अन्यों में नहीं। उस काल काशी में सुबाहु नामक कोई राजा न था तथा उज्जैन में कोई युधाजित था यह निश्चित नहीं है। फिर भी कथा असम्भव नहीं है। भरद्वाज का कोई वंशधर आश्रम में होगा। अब सुदर्शन को अयोध्या का राज्य भी मिल गया। इसने बहुत नीतिपूर्वक राज्य किया। इसके पीछे इसका पुत्र अग्निवर्ण राजा हुआ। यह बड़ा ही कामकिंकर था और इसके अन्याय से सूर्य कुल का प्रभाव बहुत ही घट गया। ऐसा जान पड़ने लगा कि यह

राज्य ही लुप्त हो जायगा, किन्तु इतने ही में इसका शरीरपात हो गया। इसकी गर्भवती रानी ने राज्य प्रबन्ध बहुत अच्छा किया और पुत्रोत्पत्ति के पीछे भी उसके युवा होने पर्यन्त राज्य को सुपालित रक्खा, जिससे यह नष्ट होने से बच गया। युधिष्ठिर के समय इस वंश का राजा बृहद्वल (नं० ५३) था जो चक्रव्यूह में मारा गया तथा जिसका पुत्र बृहत्क्षम राजा हुआ। इस वश का शेष विवरण आगे होगा। रामचन्द्र के पीछे राज्य बँट जाने से इनके वंशधरों का प्रभाव कम हो गया। अग्निवर्ण तक का विवरण रघुवश में है।

सगर वंश

रामचन्द्र के पीछे राजा सगर का वंश नं०, ४३ भगीरथ पर्यन्त चला। पुराणों में यह वंश राम वंश में मिला हुआ है, सो भगीरथ के पीछे इसका पता नहीं है।

दक्षिण कोशल-वंश

दक्षिण कोशल नरेश कल्मापपाद राम के प्रायः समकालीन थे। उनके पीछे दोनों लड़कों पर राज्य के दो खंड हो गए। पहले वंश में अश्मक, उरकाम और मूलक के नाम लिखे हैं, तथा दूसरे में सर्व कर्मन, अनरण्य, निघ्न, और अनमित्र के। इनके भाई रघु लिखे हैं। बौद्ध साहित्य में इस वंश का नाम अस्सक कहा गया है। महाभारतीय युद्ध में अश्मक पुत्र ने युद्ध किया। इनका महाभारत के पीछे कुछ प्रभाव बढ़ा, जिसका विवरण आगे आवेगा। उसी में बौद्ध साहित्य के आधार भी होंगे।

विदेह का सूर्यवंश

दशरथ तथा राम के समकालीन सीरध्वज जनक यहाँ के राजा थे। इनके भाई कुशध्वज सांकाश्य नरेश बनाये गये। इनके वंश में कवल धर्मध्वज, कृतध्वज, और केशिध्वज के समय तक राज्य चला। कृतध्वज के भाई मितध्वज थे, जिसके पुत्र खांडिक्य का राज्य उसी के किसी वंश वाले उपर्युक्त केशिध्वज ने छीन लिया, किन्तु इनसे ज्ञान सीख कर फेर दिया। ऐसा विष्णु-पुराण VI, ६ में लिखा है। यहाँ राज्य

से किसी साधारण अधिकार जागीर आदि का प्रयोजन समझ पड़ता है, क्योंकि खाण्डिक्य राजा थे ही नहीं। ज्ञानियों में इनकी गणना है। मुख्य वंश में, नं० ३८, सीरध्वज के पुत्र भानुमंत राम के साले थे। शकुनिपुत्र स्वागत के भाई ऋतुजित, नं० ४५, ने दूसरा राज्य स्थापित किया। इनके वंश में नं० ५५, उपगुप्त पर्यन्त राज्य चला। नाम सभी के वंशावली में हैं। मुख्य वंश में स्वागत, नं० ४५, के वंशधरों में, नं० ५२, धृति, ५३ बहुलाश्व और ५४, कृति अंतिम नरेश थे। धृति और बहुलाश्व के समय में श्रीकृष्ण चन्द्र इनके राज्य में गए थे (भागवत दशमस्कंध)। यह वंश भी इस काल महत्ता युक्त न था। वंशावली में विदेह वंश का वर्णन इसके आगे नहीं है, किन्तु महाभारत युद्ध के प्रायः ढाई सै वर्ष पीछे इसने वह महत्ता प्राप्त की, जो इसमें कभी भी न थी। डाक्टर राय चौधरी का विचार है कि पुराणों के कृति शायद अन्तिम विदेह राज कराल जनक हों। यह मत ठीक नहीं समझ पड़ता, क्यों कि उन्हीं के अनुसार कराल जनक पौरव जनमेजय से बहुत पीछे हुए, तथा कृति के पिता स्वयं श्री कृष्ण के समकालीन थे। वैदिक विवरणों में माथव तथा जनक के अतिरिक्त पर अल्हार तथा नमीसाप्य के भी कथन हैं। मैकडानल और कीथ महाशय पर अल्हार को काशलराज पर अल्हार बतलाते हैं, नमीसाप्यशांटय ब्राह्मण XXV १७, १८, में प्रसिद्ध यज्ञ कर्ता हैं। इसके पीछे विदेहों का विवरण आगे आवेगा।

सूर्यवंश का सम्मिलित विवरण

द्वापर-युग में इस वंश में लव, कुश, सगर, दक्षिण कोशल और विदेह वंशों के विवरण ऊपर आ चुके हैं। वैशाली वंश त्रेता में ही टूट चुका था। महत्ता में लव वंश का प्राधान्य इस काल भी था, और आगे आने वाला है। फिर भी द्वापर युग में सारा सूर्यवंश दबा रहा और चन्द्र वंशियों की मुख्यता तथा महत्ता रही। कोशल और विदेह वंशों में कई की वंशावलियां पुराणों में हैं, और हमारे पाँचवें अध्याय में उल्लिखित हैं। दक्षिण कोशल-वंश बना बहुत काल पर्यन्त रहा, किन्तु उसकी वंशावली गुप्त कालीन पौराणिक संपादकों की भूल से राम के

पूर्व पुरुषों में जुड़ कर आगे के लिये लुप्त होगई। सारे सूर्यवंश में लव के वंशधरों ने सब से बढ़कर महत्ता प्राप्त की, जैसा कि आगे यथा स्थान आवेगा।

मुख्य पौरव-वंश

रामचन्द्र के समकालीन, नं० ३८, कुरु प्रतापी थे। आपने वत्स जीता, जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है। आप ही के नाम पर कौरव वंश चला। इनके पुत्र, नं० ३९, सार्वभौम के पीछे इस वंश के भाई चारे वालों ने कई राज्य जमाये, जैसा कि आगे कहा जावेगा, किन्तु-मुख्य शाखा में नं० ४८, प्रतीप तक कोई विशिष्ट वर्णन पुराणों में नहीं है। प्रतीप महत्ता युक्त थे। महाभारत में इनके तीन पुत्र देवापि वाल्हीक और शन्तनु या शान्तनु कहे गये हैं, किन्तु ऋग्वेद में देवापि अरिष्टिषेण के पुत्र हैं। या तो वे पिता के सामने ही मर चुके होंगे, या थोड़ ही दिन राज्य करके गत हो गये होंगे जिससे महाभारत से इनका नाम छूट रहा हो। अरिष्ट षेण का पितृत्व कुछ संदिग्ध भी है, जैसा कि वंशावलियों में कथित है। देवापि के कुष्ट रोग था, सो ब्राह्मणों ने इनके राजा होने के प्रतिकूल आपत्ति उठाई। बेचारे प्रतीप रोने तक लगे किन्तु प्रजा के विरोध से विवश होकर उन्होंने अपने छोटे पौत्र या पुत्र शान्तुन को उत्तराधिकारी बनाया, क्यों कि मँझला वाल्हीक पहले ही से अपने मामा शिवि का राज्य पाकर उत्तरापथ जा चुका था। शान्तुन एक अच्छे वैद्य भी थे। शान्तनु को मत्स्य और वायु पुराण महाभिषक कहते हैं। देवापि का कुष्ट रोगी होना, म० भा० १४९, ६, में कथित है। देवापिका प्रतीप का पुत्र होना किन्तु केवल शिष्यत्व के कारण दत्तक पिता अरिष्टिशेण का पुत्र वेद में कहलाना प्रधान का मत है, क्योंकि शतपथ ब्राह्मण ९, ३, ३, उनके भाई वाल्हीक को कौरव नरेश प्रातीप्य कहता है, किन्तु यह प्रमाण संदिग्ध है, क्योंकि प्रतीप का पौत्र भी प्रातीप्य कहा जा सकता था। आगे की कथा महाभारत के आधार पर कही जावेगी। महाराजा शान्तुन के जेठे भाई देवापि ब्राह्मण हो गए। इस काल कौरव राज्य सरस्वती से गंगा तक था। उसके तीन भाग थे, अर्थात

कुरु, जांगलकुरु और कुरुक्षेत्र। तैत्तिरीय आरण्यक,वैदिक अनुक्रमणिका के अनुसार कुरुक्षेत्र की सीमायें निम्न हैं:—दक्षिण खाण्डव, उत्तर तुर्घ्न, पश्चिम परीणह। इस वंश को पुरु भारत वंश कहा है।

प्रतीप की वृद्धावस्था में गंगा नाम्नी एक सुन्दरी ने इनसे अनोखी दिल्लगी की। वृद्ध प्रतीप एक समय गंगातट पर तपस्या कर रहे थे। उस काल गङ्गा आकर अकस्मात् इनकी दाहिनी जंघा पर बैठ गई। इस रूपराशि की ऐसी ढिठाई से महाराजा प्रतीप संभ्रम पूर्ण होकर कहने लगे, "हे शुभे! जो तुम्हारा प्रिय कार्य हो वह करने को मैं प्रस्तुत हूँ, इसलिये आज्ञा करो कि तुम्हारी क्या इच्छा है?" यह सुन कर गंगा ने कहा, "हे भूपशिरोमणे! आप मेरे साथ प्रीतिपूर्वक विहार कीजिये।" यह सुन प्रतीप ने उत्तर दिया, मैं "कामवश होकर परस्त्रीगमन कभी नहीं करता और असमानवर्णा भार्या से विवाह भी नहीं करता, यह मेरा व्रत है।" इस बात से प्रकट होता है कि उस काल मिलित विवाहों की प्रथा प्रचलित थी परन्तु राजा प्रतीप उसको पसंद नहीं करते थे। गङ्गा ने उत्तर दिया, "मैं अश्रेयसी और अगम्या नहीं हूँ तथा कुमारी हूँ, इसलिये तुम निर्भय होकर मुझसे विवाह करो।" प्रतीप ने कहा, "यदि तुम्हें मेरे साथ विवाह करना था, तो मेरी वाम जंघा पर बैठना चाहिये था न कि दक्षिण पर, जिस पर केवल पुत्री अथवा पुत्रवधू बैठ सकती है। जब स्वयं तुम्हीं ने धर्मव्यतिक्रम किया है, तब यदि मैं तुम्हारे साथ विवाह न करूँ, तो तुम्हें मुझको दोष न देना चाहिये। तुम्हारे दक्षिण जंघा पर बैठने के कारण मैं अपने पुत्र शन्तनु के लिये तुम्हारा वरण करता हूँ।" यह सुनकर गङ्गा ने उत्तर दिया, "हे धर्मज्ञ भूपाल! जो तुम आज्ञा करते हो वही हो।" अब राजा ने अपने पुत्र को बुला कर गङ्गा के साथ विवाह करने के लिये आज्ञा दी और उन्हें राज्याभिषिक्त करके आप तप करने के लिए रानी समेत वन को चले गये।

कुछ दिनों में महाराजा शन्तनु मृगयार्थ गङ्गा जी के किनारे गये, तो उसी उपर्युक्त रूपवती तरुणी से इनकी भेंट हुई। उसने थी समान ज्योतिर्मय तरुण तन पर उस काल दिव्य आभूषण धारण कर

रक्खे थे। उसकी पद्म-समान तनद्युति पर सुधा-सी श्वेत साड़ी शोभित हो रही थी और वह अतुल रूपराशि उस काल एकाकिनी विराजमान थी। उसे देखते ही महाराजा शन्तनु पुलकित हो गये और उसकी सुधामयी छविपान से अपने नेत्र तृप्त होते न देख, निकट जाकर बोले, "हे शोभने! तुम देवी, दानवी, अप्सरा, किन्नरी, अथवा मानुषी में से कौन हो? मैं स्त्री हेतु तुम्हारा वरण करना चाहता हूँ। आशा है कि कृपा करके तुम इस प्रस्ताव को स्वीकृत करोगी।" यह सुन गङ्गा ने उत्तर दिया, "मैं इस नियम पर तुम्हारी स्त्री होने को सन्नद्ध हूँ कि मैं शुभाशुभ चाहे जो करूँ, तुम न तो मना करो और न कभी मुझसे अप्रिय वचन कहो। इन दोनों बातों में से एक के होने पर भी मैं तुरन्त तुम्हारा त्याग कर दूंगी।' राजा शन्तनु ने इतने पर भी अपने को धन्य माना तथा गंगा से तथास्तु कह कर और पाणिग्रहण कर के वे उसे अपने महल में ले आये।

राजा शन्तनु के गंगा से एक एक कर के सात पुत्र उत्पन्न हुए किन्तु रानी ने इन सब को गंगा में डुबोकर मार डाला। राजा को यह कर्म बड़ा ही अप्रिय लगा किन्तु त्याग के भय से उन्होंने कभी कुछ कहा नहीं। जब आठवाँ पुत्र उत्पन्न हुआ तब इनसे बिना कहे न रहा गया और ये बोले कि हे रानी! तुम यह सुत-बध का क्रूर कर्म क्यों करती हो? हे पुत्रघ्नि! क्या तुझे पाप से कोई भय नहीं है? गंगा ने उत्तर दिया, "हे पुत्रकाम भूपाल! मैं तेरा यह पुत्र न मारूंगी किन्तु मेरी प्रतिज्ञा पूरी हो गई और अब मैं जाती हूँ।" जान पड़ता है कि महाराजा प्रतीप से वचन-बद्ध होने के कारण गंगाने शन्तनु के साथ विवाह तो किया, किन्तु इन्हें वह चाहती बिलकुल न थी। इसलिये इन्हें और प्रकार से अपमान करते हुए न देखकर उसने अपना छुटकारा पाने के लिए पुत्र-बध सा क्रूर कर्म किया। यह अनुमान बहुत पुष्ट नहीं समझ पड़ता है। महाभारत में इसका कारण देवताओं से सम्बन्ध रखता है। गङ्गा को किसी भाँति निश्चय हो गया था कि उनके प्रथम सातों बच्चे देवता थे जो नर देह से बचने को स्वयं अपना मारा जाना चाहते थे। फिर शन्तनु के त्याग का कोई पुष्ट कारण नहीं मिलता।

समझना चाहिये था। इधर वचन-पालन तथा सत्य का माहात्म्य सभी स्थानों में परमोच्च है और यही भीष्म का मत था। हमारी समझ में सत्य के सामने किसी दूसरी बात के मानने का प्रश्न ही नहीं उठता।

भीष्म के ये धर्मपूर्ण वचन सुनकर तथा इनकी यह भी अनुमति पाकर कि प्राचीन प्रथानुसार किसी कुलीन ब्राह्मण द्वारा पुत्रोत्पादन कराया जावे, राज-माता सत्यवती ने अपना प्राचीन गुप्त भेद इनसे प्रकट किया। उन्होंने कहा कि विवाह से पूर्व ऋषिवर पराशर के सम्पर्क से उनके कृष्णद्वैपायन नाम का गुप्त पुत्र उत्पन्न हुआ था। समय पर भारी पण्डित होकर इन्होंने वेदों का सम्पादन करके व्यास की उपाधि आगे चल कर पाई। सत्यवती ने अपने नाम की यथार्थता प्रकट करते हुए भीष्म से कहा कि यदि उचित हो तो बुलाकर विचित्रवीर्य की रानियों में इन्हीं से पुत्र उत्पन्न कराये जायें। यह सुन कर भीष्म ने यह प्रस्ताव सहर्ष स्वीकार किया और सत्यवती द्वारा निमन्त्रित होकर भगवान वेदव्यास ने भी इसे माना। व्यास की सम्मति से रानियों ने एक वर्ष व्रत साधन करके अपने को शुद्धतर बनाया। इसके पीछे भगवान वेदव्यास द्वारा अम्बिका के धृतराष्ट्र नामक अन्धपुत्र हुआ और अम्बालिका के पाण्डुनामक धृतराष्ट्र का अनुज उत्पन्न हुआ। राज-माता सत्यवती ने अम्बिका का पुत्र अन्धा समझ कर व्यास को उन्हें एक और पुत्र देने का निवेदन किया और इन्होंने स्वीकार भी कर लिया, किन्तु व्यास के कुरूप होने के कारण अम्बिका उनके पास जा न सकी और अपने स्थान पर उसने दासी भेज दी जिससे विदुर नामक परम ज्ञानी पुत्र की उत्पत्ति हुई। विदुर सदैव पाण्डु और धृतराष्ट्र के भाई समझे गये किन्तु दासी-पुत्र होने से क्षत्रियत्व में इनका यथेष्ट सम्मान न था।

घर में तीन पुत्रों के उत्पन्न होने से राजमाता सत्यवती, भीष्म तथा समस्त प्रजावर्ग को बड़ा आनन्द प्राप्त हुआ। भीष्म सदा की भांति त्यागपूर्वक राज्य का प्रबन्ध करते रहे। क्रमशः ये तीनों बालक सयाने होकर राज-प्रबन्ध के योग्य हुए और तब सत्यवती, भीष्म,

मन्त्रियों एवं प्रवीण ब्राह्मणों की सलाह से जन्मान्ध होने के कारण धृतराष्ट्र राज्य के अयोग्य समझे गये और पाण्डु को राजगद्दी मिली। भीष्म ने गन्धार-नरेश महाराजा सुबल की कन्या गान्धारी के साथ धृतराष्ट्र का विवाह किया। अपने पति के अन्धे होने के कारण पातिव्रत धर्म के बढ़े हुए विचार से महारानी गान्धारी ने अपने नेत्रों में पट्टी बांध ली और यावज्जीवन कभी नेत्रों का व्यवहार न किया। ऐसी-ऐसी दृढ़ताओं के उदाहरण किसी भी देश को अकथनीय गरिमा प्रदान कर सकते हैं। भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र के पितामह शूरसेन की फूफू के पुत्र भोजपति राजा कुन्तिभोज अपत्यहीन थे, इस लिये उन्होंने शूरसेन का पहला सन्तान इनसे मांगा और उन्होंने स्वीकार किया। समय पर शूर की पहली सन्तति कन्या रत्न हुई, जिसे राजा कुन्तिभोज अपने घर ले गये और इसका नाम कुन्ती रक्खा गया। समय पर यह बड़ी रूपवती स्त्री हुई। विवाह से पूर्व कारणवश इसका सूर्य नामक व्यक्ति से संगम हो गया, जिससे कर्ण नामक कानीन पुत्र उत्पन्न हुआ। कुन्ती ने इस बच्चे को एक टोकरे में रखकर गंगा जी में बहा दिया। वहां से थोड़ी ही दूर पर सूतपुत्र अधिरथ अपनी स्त्री राधा के साथ स्नान कर रहा था। इन दोनों ने उस टोकरे को निकाल कर बालक को देखा तो गंगा द्वारा दिया पुत्र मान परम प्रसन्न हो उसे अपने घर लाकर पुत्रवत् पालन किया। इस पुत्र का नाम कर्ण हुआ। समय पर यह बहुत बड़ा दानी, सत्यभाषी, सुयशी और शस्त्रवेत्ता हुआ। इसने परशुराम से अस्त्रविद्या सीख कर हस्तिनापुर में निवास किया। थोड़े दिनों में राजा कुन्तिभोज ने अपनी पुत्री कुन्ती का स्वयंम्वर ठाना। देश-देश के राजाओं में कुन्ती ने पाण्डु को पसन्द कर के उन्हीं के गले में जयमाल डाल दी। विधिपूर्वक ब्याह करके पाण्डु पृथा उपनाम कुन्ती को अपने घर ले आये। इनका दूसरा विवाह मद्रपति शल्य की बहिन माद्री से हुआ।

राजा पाण्डु ने इस उत्तमता के साथ प्रजा का पालन किया कि इनकी सभों न प्रशसा की। धृतराष्ट्र और भीष्म का उचित मान इन्होंने सदैव स्थिर रक्खा। कुछ दिनों में महाराजा पाण्डु

दिग्विजय को निकले। इन्होंने अपनी विजययात्रा दशार्ण देश (बुंदेलखंड) से आरम्भ की और यहाँ के राजाओं से कर लिया। फिर मगध के सब राजा जीते गये। वहाँ से मैथिल देश के विदेह राजाओं को जीतकर काशीपति, सुग्हपति और पौण्ड्रपति को भी पाण्डु ने जीता। इन सब राजाओं से प्रचुर धन लेकर पाण्डु नरेश हस्तिनापुर को वापस गये। भीष्म कुरुवृद्धों समेत पाण्डु की अगवानी को गये। पाण्डु ने इन्हें देख रथ से उतर कर पद-वन्दन किया। भीष्म ने अपने भतीजे का मूर्धा घ्राण करके बड़े आदर के साथ हृदय से लगा कर अश्रु जल से उनके वदन कमल का सिञ्चन किया। अब पाण्डु नरेश ने हस्तिनापुर आकर धृतराष्ट्र के पद-वन्दन किये और उनकी आज्ञा लेकर विजय का सारा धन भीष्म, सत्यवती, अम्बिका और अम्बालिका को बाँट दिया। इनके अतिरिक्त विदुर, अमात्य तथा अन्य राजसेवियों को पुरस्कार दिये गये। अनन्तर महाराजा धृतराष्ट्र ने कई यज्ञ करके विपुल दक्षिणा दी।

कुछ दिन के पीछे कुन्ती और माद्री का मत पाकर महाराजा पाण्डु हिमाचल के दक्षिण ओर वन में रहने लगे। इनको मृगया की बड़ी बुरी लत थी। इसलिये ये जंगल में जाकर शिकार खेला और रानियों के साथ विहार किया करते थे। राजा धृतराष्ट्र इनके लिये आराम की सभी वस्तुयें भेजा करते थे। जंगल में रहते-रहते कारणवश राजा पाण्डु पुत्रोत्पादन के अयोग्य हो गये। इसलिये ग्लानिपूर्ण होकर उन्होंने राज्य छोड़ दिया और पत्नियों समेत बहुमूल्य वस्त्र त्याग कर अजिनाम्बर धारण किये। पहले उन्होंने अपनी रानियों को हस्तिनापुर वापस भेजने का विचार किया, किन्तु जब उन्होंने पाण्डु का साथ वानप्रस्थाश्रम में भी छोड़ना पसन्द न किया, तब इन्होंने उनको साथ रक्खा। पाण्डु ने रानियों के तथा अपने बहुमूल्य वस्त्र और अलंकार ब्राह्मणों को दान दे दिये और सेवकों से कहा कि अब हम तुमको विदा करते हैं, तुम हस्तिनापुर जाकर महाराजा धृतराष्ट्र और भीष्म से निवेदन करना कि पाण्डु ने राज्य छोड़ वनवास ग्रहण किया।

यह सुन वे लोग हाहाकार करके रोने लगे। इतने पर भी पाण्डु ने

अपना निश्चय न छोड़ा और विवश होकर सब सेवक लोग हस्तिनापुर वापस गये। यह शोकपूर्ण वृत्तान्त सुनकर महाराजा धृतराष्ट्र बहुत विकल हुए और कई दिनों तक भोजन शयन आदि छोड़कर विरक्त रहे। अन्त में विवश होकर इन्होंने राज्य-कार्य संभालना आरम्भ किया, वरन् यों कहें कि ये सदा की भांति फिर से राजकार्य देखने लगे। पाण्डु के राज्य में धृतराष्ट्र ने यह कभी नहीं जाना था कि वे राजा नहीं हैं। इस लिये अपने ऊपर राजभार आते देख इन्हें किसी प्रकार की प्रसन्नता न हुई। अब महाराजा धृतराष्ट्र राजसिंहासन पर भी बैठने लगे और अपने ही नाम से राजकार्य चलाने लगे, किन्तु इन्होंने अपना अभिषेक कभी नहीं कराया। कम से कम महाभारत में ऐसा लिखा नहीं।

महाराजा पाण्डु ऋषियों के समान और उन्हीं के साथ वन-वन घूमते हुए तथा तीर्थाटन करते जीवन निर्वाह करने लगे। कुछ दिनों के पीछे इनका पितृ ऋण से उद्धार पाने का विचार हुआ और इनकी आज्ञा से कुन्ती ने धर्म, पवन, और इन्द्र तथा माद्री ने दोनों अश्विनीकुमारों को क्रम से बुलाकर पाँच पुत्र उत्पन्न किये। कुन्ती के युधिष्ठिर, भीम और अर्जुन पुत्र हुए तथा माद्री के नकुल और सहदेव। इधर महाराजा धृतराष्ट्र के दुर्योधन, दुःशासन, दुर्मर्षण, दुर्मुख, विकर्ण, आदि अनेक पुत्र हुए तथा दुःशला नाम्नी एक कन्या भी हुई। इनके युयुत्सु नामक एक वैश्या-पुत्र भी हुआ। दुःशला का विवाह सिन्धु देश के राजा जयद्रथ के साथ हुआ। कुछ दिन के बाद जंगल ही में रहते हुए महाराजा पाण्डु का शरीरपात हो गया और महारानी माद्री उन्हीं के साथ सती हो गईं। यह देख ऋषियों ने कुंती समेत पांचों पांडु-पुत्रों को हस्तिनापुर ले जाकर महाराजा धृतराष्ट्र को सौंप दिया। पांडवों को पाकर महाराज बहुत प्रसन्न हुए तथा उचित प्रकार से राजकुमारों की भांति इनका पालन पोषण और शिक्षण करने लगे। पांडवों ने महाराजा धृतराष्ट्र की कृपाओं से उन्हें पितृवत् उपकारी पाया। हस्तिनापुर में धृतराष्ट्र और पांडु के वंशियों की इस प्रकार दो शाखाएँ हुईं। इसलिए पांडु के पुत्र पाण्डव कहलाए और धृतराष्ट्र के पक्ष वाले कौरव की पुरानी उपाधि से पुकारे जाते रहे।

इन दोनों शाखाओं में युद्ध होकर अन्त में पाण्डव युधिष्ठिर राजा हुये। यही महाभारत का प्रसिद्ध युद्ध है, जिसका वर्णन आगे के अध्याय में होगा। पुरुवंश की यही शाखा इस काल मुख्य रही। इस शाखा का इतना इतिहास हम यहां पर समाप्त करते हैं और अब उसकी अन्य शाखाओं का वर्णन उठाते हैं। पुरुवंश का उपर्युक्त इतिहास महाभारत में है।

विदर्भ का द्विमीढ़वंश

इस वंश का नं० ४० धृतिमन्त अनुमान से राम का समकालीन समझ पड़ता है। इनका वंशधर नं० ५२ उग्रायुध महत्तायुक्त हुआ। इसने उत्तर और दक्षिण पांचालों का राज्य छीनकर अधिकार जमाया। वहां के तत्कालीन राजे पृषत् के पितामह (नं० ४७) और जनमेजय, (नं० ५३) थे। उग्रायुध ने शान्तनु के पीछे उनकी विधवा सत्यवती से बलपूर्वक विवाह करने का भी प्रस्ताव किया। इसे ऐसा मदोन्मत्त देखकर देवव्रत भीष्म ने युद्ध में इसका वध किया और दक्षिण पांचाल का शायद कोई उत्तराधिकारी न देख कर वे दोनों राज्य पृषत् को सौंप दिए। उग्रायुध के पीछे यह वैदर्भ राज्य (नं० ५६) बहुरथ पर्यन्त चला (ह, वं, २०, १०८३, ११११, १२)। सिवा पाँचाल विजय के इस वंश का कोई विशेष विवरण पुराणों में उल्लिखित नहीं है।

उत्तर पांचाल

रामचन्द्र के समकालीन सोमक के पुत्र अर्कदत (नं० ४०) राजा हुए। इनके पीछे डाक्टर प्रधान के अनुसार सात पुश्तों के नाम अज्ञात हैं। अनन्तर (नं० ४८) दुष्टरीतु (और नं० ४९) पृषत् एक दूसरे के पीछे राजा हुए। विदर्भराज उग्रायुध से हारकर दोनों पांचाल राज्य टूट गए, किन्तु भीष्म की सहायता से पृषत् को वे दोनों मिल गए। सम्भवतः पृषत् ने भी उस युद्ध में कौरवों की मदद की होगी। अनन्तर पृषत् पुत्र द्रुपद राजा हुए। अग्निवेष ऋषि के आश्रम में इनकी महाभारत वाले प्रसिद्ध द्रोणाचार्य से मित्रता हुई, किन्तु जब वे इनके यहां गए, तब इन्होंने उनका अपमान किया। इस पर कौरव पाण्डवों के शस्त्रगुरु

होकर उन्होंने द्रुपद को पराजित करके इनसे उत्तर पांचाल राज्य ले लिया और ये उत्तर से दक्षिण पांचाल में चले आये। यह राज्य द्रोण के अधिकार में कब तक रहा, सो पता नहीं, किन्तु महाभारत के युद्ध के समय वे राजा नहीं समझ पड़ते और दोनों पांचाल द्रुपद के ही अधिकार में होंगे, ऐसा जान पड़ता है।

द्रुपद की पुत्री द्रौपदी से पांचों पाण्डवों का विवाह हुआ। इनका पुत्र शिखण्डी दशार्णनाथ हिरण्यवर्म की पुत्री से ब्याहा था। महाभारत के युद्ध में द्रोण ने द्रुपद को मारा और द्रुपद पुत्र धृष्टद्युम्न ने द्रोण को। द्रोणात्मज अश्वत्थामा ने धृष्टद्युम्न और शिखण्डी दोनों को मारा। पुराणों में इस कुल की वंशावली धृष्टद्युम्न पुत्र धृष्टकेतु पर समाप्त है, किन्तु उल्लिखित है कि आदिम कालकाल में इस वंश में कई राजे हुए, जिनके कथन यथा स्थान आवेंगे। धृष्टद्युम्न पाण्डवों के साले और सेनापति थे। पाण्डवी दल में पांचालों की महत्ता थी। सृंजय और सोमक द्रुपद के साथी थे (म० भा I १३१, ५१३४, ४५, ह० वं० २०, १११३, ५)।

दक्षिण पांचाल

त्रेता के पीछे इस राज्य में पौरपार (नं० ४१) आते हैं। इनके पुत्र नीप महत्तायुक्त थे। कहीं-कहीं नीप द्विर्मीढ़ों में भी माने गए हैं, किन्तु डाक्टर प्रधान ने भारी खोज से इन्हें दक्षिण पांचालों में रक्खा है। महाभारत में इनका भीष्म से युद्ध लिखा है। या तो वह कथन अशुद्ध होगा या अपनी वंशावली में इनका नम्बर नीचे होगा। इनके वंशधर (नं० ४८) अणुह शुक के दामाद और पौरव प्रतीप के मित्र थे। यह एक प्रसिद्ध भूपाल हो गुजरे हैं। इनकी पत्नी कृत्वी किसी उस शुक की पुत्री होगा, जो व्यास पुत्र से इतर शुक होगा, क्योंकि अणुह व्यास के पूर्ववर्ती थे। इस विवाह से ब्रह्मदत्त पुत्र हुआ (मत्स्य, ४९, ५६, ७)।

इनके वंशधर नं० ५३, जनमेजय वैदर्भ उग्रायुध से हारकर राज्य खो बैठे। तब से इस वंश का राज्य लुप्त होगया।

पांचालों के शेष वर्णन

महाभारत में उत्तमौजस तथा सृंजय पांचाल थे। धृष्टद्युम्न सोमकों

में मुख्य कहे गए हैं। महाभारत में पांचाल भारतों की शाखा है (आदि पर्व, ९४, ३३)। दिवोदास, सुदास और द्रुपद पांचाल थे। वैदिक, साहित्य में पांचालों के निम्न राजा उल्लिखित हैं:—क्रैव्य केशित,दालभ्य शोनशाख्राशहा, प्रवाहण जैवलि, दुर्मुख, जैवलि (ये जैवलि जनमेजय के पीछे विदेह काल में थे)। दुर्मुख उससे भी पीछे के समझ पड़ते हैं। इनका कथन कुम्भकार जातक (४०८) में भी है। उत्तर पांचाल की राजधानी अहिच्छत्र थी। उत्तर पांचाल के विषय में कुरु पांचालों में समय समय पर बहुत युद्ध हुए। यह कभी कौरवों का रहा और कभी पांचालों का। जब द्रुपद ने द्रोण से लड़ कर अपना पैत्रिक राज्य उत्तर पांचाल खोकर दक्षिण पांचाल मात्र अपने पास रख पाया तब गंगा से चम्बल तक का देश उनके पास रह गया और वे गंगा तट पर माकन्दीपुरी में बसे, ऐसा महाभारत आदि पर्व का कथन है। महाभारत में वह प्रायः द्रुपद पुरु कहलाता था। उधर द्रोण की राजधानी अहिच्छत्र पुरु में हुई। वे कभी-कभी हस्तिनापुर में भी रहते थे। शायद महाभारत युद्ध के पूर्व वे उसे खो चुके थे, क्योंकि उस काल सारे पांचाल देश के राजा द्रुपद ही समझ पड़ते हैं, तथा उत्तर पांचाल के कुछ छोटे मोटे शासक और भी उल्लिखित हैं। पुराणों में पांचाल का विवरण कुछ कम है, किन्तु वैदिक साहित्य में वह प्रचुरता से पाया जाता है, विशेषतया ऋग्वेद में।

चेदि राज्य

पौरव राजा कुरु (नं० ३८) के पीछे वसु ने चेदि जीतकर बुन्देलखंड में यह राज्य स्थापित किया। सुहोत्र कुरु के पौत्र थे। इनके पौत्र (नं० ४२) कृतयज्ञ के दो पुत्र मुख्य हुए,अर्थात चेदि और उपरिचर वसु। चेदि के नाम पर यह राज्य कहलाया। उधर वसु ने मागध राज्य स्थापित किया, जिसका कथन आगे आवेगा। चेदि की राजधानी शुक्तिमती केन पर थी। चेदि या चिदि मत्स्य से मगध तक राज्य फैलाकर चक्रवर्ती हुए। सम्भवतः उपरिचर वसु पहले इनके अधीनस्थ राजा थे। चेदि और उपरिचर वसु के वंशधर मगध और चेदि के अतिरिक्त कौशाम्बी, करूप और मत्स्य में भी स्थापित हुए (पार्जिटर)।

चेदि वंश की कुछ पीढ़ियां पुराणों से छूट गई हैं। (नं० ५१) दमघोष को कृष्ण की फूफी ब्याही थी। इन दोनों का पुत्र शिशुपाल हुआ। इसे मागध सम्राट् जरासन्ध पुत्रवत् मानता और अपने दल का सेनापति बनाये था। शिशुपाल पाण्डवों का मौसेरा भाई था, किन्तु जरासन्ध के कारण यह श्रीकृष्ण तथा पाण्डवों के विपक्षियों में था। कुन्डिनपुर के राजा भीष्मक अपनी पुत्री रुक्मिणी का ब्याह इसके साथ करते थे, किन्तु रुक्मिणी की इच्छा से श्रीकृष्ण ने उन्हें प्राप्त किया। जरासन्ध के मारे जाने पर शिशुपाल इन लोगों से और भी अप्रसन्न हुआ, यहां तक कि युधिष्ठिर के राजसूय यज्ञ में श्रीकृष्ण के हाथ से इसका वध हुआ। शिशुपाल का पुत्र धृष्टकेतु महाभारत के युद्ध में पाण्डवों की ओर से लड़कर द्रोणाचार्य द्वारा मारा गया। इसके पीछे इस कुल की वंशावली नहीं चलती है।

मागध राज्य

उपर्युक्त कृतयज्ञ के पुत्र (राजा नं० ४३) उपरिचर वसु ने ऋषभ दैत्य को जीतकर मगध राज्य प्राप्त किया। इसकी राजधानी गिरिव्रज हुई। पहले शायद ये चेदि के कुछ अधीन थे, किन्तु पीछे यह राज्य स्वतंत्र होगया। इनको शायद चेदि शाखा के कारण चैद्योपरिचर भी कहते हैं। इनका पुत्र (नं० ४४) बृहद्रथ बड़ा प्रतापी हुआ, जिससे यह वंश बार्हद्रथ कहलाने लगा। विराट वाला मत्स्य कुल भी इन्हीं उपरिचर वसु का वंशधर था। कहीं-कहीं ऐसा लिखा है कि इनके पास व्योमयान होने से ये उपरिचर कहलाते थे। बृहद्रथ का वंशधर ५२, जरासन्ध बड़ा प्रतापी सम्राट् हुआ। इसने भारत के बहुतेरे राजाओं को जीतकर गौरव प्राप्त किया।

जरासंध बड़ा प्रतापी और पराक्रमी राजा हुआ। यह डीलडौल में भारी था, पर कहते हैं कि इसके शरीर में एक संधि थी, जिसके कारण यह इस नाम से पुकारा जाता था तथा एक प्रकार की इसमें शारीरिक हीनता रह गई थी। इसने अन्य राज्य जीता तथा अपना राज्य बहुत विस्तृत करके सम्राट् पद प्राप्त किया। भारत में शान्तनु के पीछे यही राजा सम्राट् हुआ। यह शिशुपाल को पुत्रवत् मानता

था और मथुरा का राजा कंस इसका दामाद था। हंस और डिम्भक जरासंध के मन्त्री तथा सेनापति थे, जो एक दूसरे के भाई, परम पराक्रमी, भ्रातृ प्रेमी, स्वामिभक्त एवं सज्जन पुरुष थे। इसकी इस कारण बड़ी बदनामी हुई कि एकबार इसने एक सौ राजाओं को पकड़ कर उन्हें बलिदान दे डालने का विचार किया और एतदर्थ ८६ नरेशों को अपने बन्दीगृह में बांध भी रक्खा था। इसी कारण भगवान् श्रीकृष्ण इससे बहुत अप्रसन्न हो गए और अन्त में इसका विनाश हुआ। जरासध के श्रीकृष्ण से बिगाड़ का वर्णन भगवान के इतिहास में आवेगा।

जिस काल अपने जामाता कंस का श्रीकृष्ण द्वारा वध सुनकर जरासन्ध ने मथुरा पर आक्रमण किया, तब निम्नलिखित नरेश इसके साथ चढ़ाई में सम्मिलित थे:—

कारुष (उत्तर-पश्चिमी भारत देश का राजा) दन्त वक्र, शिशुपाल, कलिंग-पति शाल्व, पुंड्र पति, कैशिक (दक्षिण) पति क्रथ, संकृति, भीष्मक, रुक्मी, वेणुदार, श्रुतश्रु, क्वाथ, अंशुमान, अङ्ग, वङ्ग, कोशल, काशी, दशार्ह और सुम्ह के नरेश, विदेह, मद्रपति, त्रिगर्त-नाथ, दरद, यवन, भगदत्त, सौवीर का शैव्य, गांधार का सुवल, पांड्य, नग्नजित, काश्मीर का गोनर्द, हस्तिनापुर के दुर्योधन, चलख का चेकितान और (अन्त में) कालयवन। जान पड़ता है कि राजा दुर्योधन तो जरासन्ध के साथ केवल मित्रता वश गये थे पर अन्य राजे उससे अवश्य दबते थे। इस सूची में भारतवर्ष के प्राय: सभी भागों के नरेश सम्मिलित हैं, जिससे जरासंध के प्रभाव का विस्तार प्रकट होता है। उसने मथुरा पर १८ आक्रमण किये और अन्त में यादवों को भगवान् कृष्ण सहित वहां से भागकर द्वारिका चला जाना पड़ा। जरासन्ध अपने शारीरिक पराक्रम का इतना अभिमानी था कि दुर्योधन के सखा कर्ण का शौर्य सुनकर इसने उन्हें मगध में बुलाकर उनसे मित्र भाव से द्वन्द्व-युद्ध किया और अपनी संधि में विकार के कारण युद्ध छोड़ कर्ण की प्रशंसा की और उस पर बड़ी प्रसन्नता प्रकट की एवं उसे अङ्ग देश देकर मालिनी नगर का स्वामी बनाया। जरासन्ध का वध भीमसेन द्वारा हुआ जिसका वर्णन आगे आवेगा।

जरासंध की मृत्यु के साथ इस घराने से सम्राट् पद जाता रहा और इसका पुत्र सहदेव एक मांडलिक नरेश मात्र रह गया।

वह पाण्डवों की ओर से लड़कर महाभारत युद्ध में द्रोणाचार्य द्वारा मारा गया और सहदेवात्मज (सोमाधि नम्बर ५४) द्वापर का अन्तिम मागध नरेश हुआ। इस के पीछे यह वंश बहुत काल तक स्थापित रहा, जिसका विवरण यथा स्थान आवेगा। द्वापर के पीछे केवल लव सोमाधि और अर्जुन के वंशों का महत्व भारत में रहा और इन्हीं की वंशावलियां पुराणों में उल्लिखित हैं तथा शेष राजों की पुश्तों की गणना मात्र दे दी गई है।

काशीराज्य

राम के समकालीन काशी नरेश (नं० ४०) अलर्क के पीछे यह वंश राजा (नं० ५५) भद्रसेन तक चौथे अध्याय की वंशावली में लिखा हुआ है, किन्तु पुराणों में अलर्क के पीछे कोई विशेष विवरण नहीं मिलता। अम्बा, अम्बिका और अम्बालिका किसी काशी राज की कन्यायें थीं, जिनका अपहरण विचित्रवीर्य के लिये भीष्म ने किया। इन्हीं अन्तिम दोनों कन्याओं से कौरव पाण्डव वश चले। इसी प्रकार सूर्यवशी लव के प्रपौत्र सुदर्शन का विवाह किसी काशिराज की कन्या से होना कहा गया है, किन्तु उस काशिराज का नाम प्रधान वाली वंशावली में नहीं मिलता। द्वापर में काशीराज्य की मुख्यता नहीं रही, किन्तु आदिम कलिकाल में इसका प्रभाव बढ़ा, जैसा कि यथा-स्थान कहा जावेगा।

प्राचीन स्फुट राज्य

कान्यकुब्ज राज्य द्वापर में न था। यादव हैहय कुल का राज्य आदिम द्वापर में ही समाप्त हो गया, जैसा कि ऊपर त्रेता के कथन में आ गया है। द्वापर में भी उज्जैन आदि के कुछ राजाओं के कथन यत्र-तत्र आये हैं, किन्तु उनकी वशावली आदि का पता नहीं है, न उनके राजाओं के ही क्रम बद्ध कथन मिलते हैं। क्रथ कैशिक की वैदर्भी चेदि शाखा का कुछ कथन श्रीकृष्ण के विवाह सम्बन्ध में हैं, जहां विदर्भ में एक क्रथ कैशिक वंशा राजा मिलते हैं, किन्तु इनका भी

कोई विशेष क्रमबद्ध वर्णन नहीं है; जितना कुछ है वह श्रीकृष्ण के सम्बन्ध में आवेगा। उसी विवरण में सूर्यवंशी यदु द्वारा स्थापित दो अन्य राज्यों के कथन मिलेंगे। महाभारत के सम्बन्ध में बहुतेरे राज्यों के नाम हैं, जिनके पृथक विवरण यहाँ अनावश्यक हैं। उनमें मत्स्यपति विराट मुख्य हैं। ऊपर मगध के विवरण में आ गया है, कि ये वसु चैद्यापरिचर के वंशधर थे। तुर्वश वंश दुष्यन्त के समय पौरव हो गया, अर्थात् पौरव वास्तव में थे तौर्वश, किन्तु कहलाये पौरव। तुर्वश वंशी यवनों का पृथक वर्णन अप्राप्त है। द्रुह्यु वंशी भोज और म्लेच्छ हुए। म्लेच्छ वे भारत के बाहर जाकर हुए और उनके पृथक इतिहास नहीं हैं। जो अन्य म्लेच्छों का इतिहास है वही उनका है। भोजों का भी पूर्ण इतिहास पुराणों में नहीं है किन्तु अन्य वर्णनों के संबंध में उनके स्फुट कथन मिलते हैं। पाश्चात्य आनव शाखा ने कई राज्य पंजाब, सिन्ध, राजपूताना आदि में स्थापित किए। इन देशों के राज्यों में कुछ द्रुह्यु वंशी भी होंगे। इन्हीं में भरत पुत्रों के सूर्यवंशी भी मिल गए। इन राज्यों में बहुतेरे महत्ता युक्त भी थे, किन्तु मध्यदेश से दूरस्थ होने से पुराणों में इनके पूर्ण इतिहास या वंश अकथित हैं। पौरव प्रतीप के समय उनके पौत्र बाल्हीक ने भी अपने मामा शिवि का राज्य बाल्हीक प्रान्त में पाया, जो पंजाब के उत्तर पच्छिम में है। भारत के स्फुट राज्यों के कुछ विवरण श्री कृष्ण और पाण्डवों की विजयों तथा महाभारतीय युद्ध के सम्बन्ध में आगे आवेंगे।

पूर्वीय राज्य अंग

आनव अंग शाखा में रामचन्द्र के समय में (नं० ४०) लोमपाद और (नं० ४१) चतुरंग थे। (नं० ४८) जयद्रथ के ब्राह्मणी माता तथा क्षत्रिय पिता की कन्या ब्याहने से यह वंश आगे से सूत होगया। इस काल जाति भेद की कड़ाई समझ पड़ती है। (नं० ५१) पर एक दूसरे अंग नरेश हुए। शायद इन्हीं के समय जरासन्ध मागध ने अंग राज्य मगध में मिला लिया। अंग के पूर्व पुरुष (नं० ४७) ब्रहन्मनस् के दूसरे वंश में इस काल (नं० ५२) अधिरथ थे, जिनका कुन्ती का

किसी सूर्य नामक व्यक्ति से उत्पन्न कानीन आत्मज कर्ण पालित पुत्र था। इसके शौर्य का हाल सुनकर मगधेश जरासन्ध ने मित्र भाव से बुला इससे द्वन्द्व युद्ध किया और उसमें पराजित होने से कर्ण की प्रशंसा करके ख़ुशी ख़ुशी अंग राज्य फेर कर उसे मालिनी नगर में प्रतिष्ठित किया। सम्भवतः इसी बात से अंग ने भी कर्ण को अपना दत्तक पुत्र बनाया होगा। फिर भी महाभारत में ये अधिरथ और उसकी स्त्री राधा के कारण अधिरथी तथा राधेय कहलाते थे। इससे जान पड़ता है कि इनका दत्तक विधान द्व्यामुष्यायन की रीति पर हुआ होगा, जिससे ये अंग और अधिरथ दोनों के पुत्र रहे। कर्ण पौरव सम्राट दुर्योधन के ऐसे प्रगाढ़ मित्र थे, कि अपने वास्तविक माता पिता कुन्ती और सूर्य के समझाने पर भी पाण्डव बन कर इन्होंने सम्राट होना तक भी पसन्द न किया, क्योंकि ऐसा करने से दुर्योधन का साथ छोड़कर इन्हें पाण्डवों का सहायक बनना आवश्यक होता। दुर्योधन ही ने कर्ण को अंग राज्य का अभिषेक किया। परशुराम से अस्त्र विद्या पाकर आप अर्जुन के समान ही योद्धा थे, किन्तु महाभारतीय युद्ध में इनके रथ का पहिया कीचड़ में फँस गया, जिससे अर्जुन द्वारा इनका निधन हुआ। इनके पुत्र (नं० ५४) वृषसेन उसी युद्ध में मारे जा चुके थे. सो तत्पुत्र (नं० ५५) पृथुसेन अंग नरेश हुआ। इसके पीछे इस कुल की वंशावली नहीं मिलती, यद्यपि आदिम कलिकाल में भी अंग राज्य बहुत काल पर्यन्त स्थापित रहा। कर्ण महादानी, सत्यभाषी और मित्र वत्सल था। दुर्योधन के लिये आपने भारत विजय भी किया। इनकी कथा महाभारत में है। यह राज्य मगध के पूर्व था। जातक ५४५ राज-गृह को मगध का शहर कहता है। शान्तिपर्व २९, ३५ में, अंग राज विष्णुपद गया में यज्ञ करता है। सभा पर्व में अंग बंग एक राज्य है। कथा सरित्सागर में अंग राज्य समुद्र पर्यन्त फैला हुआ है, जहां उसका शहर टंकपुर है। महाभारत काल में राजधानी मालिनी थी, किन्तु पीछे जातकों में चम्पा होगई।

पूर्वी राज्य प्राग्ज्योतिष

महाभारत के समय प्राग्ज्योतिषपुर एक राज्य था जिसके राजा

असह्य समझ कर उसे युद्धार्थ प्रचारा और उसका वध कर डाला। राजा कंस ने केवल बाल-वध और प्रजा पीड़न ही नहीं किया था, वरन् वह अपने पिता उग्रसेन को कारागार में डालकर राजा हुआ था। अब श्रीकृष्ण ने अपने बूढ़े नाना के अग्रज भाई को कारागृह से निकाल कर फिर से उन्हें राज्य दिया। वास्तव में उग्रसेन राजा न होकर संघ मुख्य मात्र थे, किन्तु कहे राजा ही जाते थे। दूसरे संघ मुख्य कृष्ण हुये। जिस काल श्रीकृष्णचन्द्र नन्द के यहाँ गोकुल और पीछे से वृन्दा-वन में रहते थे, तब इन्होंने गान, वाद्य और नाच में विशेष रुचि दिखलाई थी। इनके रासों में वृषभानु की पुत्री राधा भी सम्मिलित होती थी, अतः इन दोनों में भी बड़ी मित्रता होगई थी। पहले राधा का विवाह श्रीकृष्णचन्द्र के ही साथ होने वाला था, किन्तु जब यह प्रकट हुआ कि ये नन्दात्मज गोप न होकर वसुदेव-पुत्र यादव हैं, तब वृषभानु ने अपनी पुत्री का विवाह अजान गोप के साथ कर दिया। काली नामक एक नाग-सरदार वृन्दावन के निकट जमुना के किनारे रहता था। उसे भी द्वन्द्व-युद्ध में हरा कर श्रीकृष्ण ने आज्ञा दी थी कि तुम जाकर अपने देश में समुद्र के निकट रहो। संकर्षण और श्रीकृष्ण ने कंस को जीत कर मथुरा का प्रबन्ध दृढ़ किया। श्रीकृष्णचन्द्र ने संकर्षण समेत शस्त्रों तथा शास्त्रों की शिक्षा अवन्तीपुरी निवासी सान्दीपनि ऋषि से प्राप्त की।

इधर कंस के मरने पर जरासन्ध की दोनों कन्याओं ने आकर पिता से अपनी विपत्ति कह सुनाई। जरासन्ध कंस वध से पहले ही क्रुद्ध था, सो अपनी दो कन्याओं को विधवा देखकर वह बहुत ही झुँझलाया। अब उसने एक प्रचंड सेना सजाकर तथा वङ्गनरेश चित्रसेन, चेदिपति शिशुपाल, क्रथकैशिक पति और अनेक पूर्वोक्त अन्य राजाओं को साथ लेकर मथुरा पर आक्रमण किया। कई दिन तक भारी युद्ध हुआ और संकर्षण उपनाम बलराम से स्वयं जरासन्ध ने गदायुद्ध किया। ये दोनों वीर गदायुद्ध में परम पटु थे, इसलिये एक दूसरे को हरा न सके। एक लड़के को गदायुद्ध में पराजित न कर सकने पर जरासन्ध विषण्णमन होकर सेना सहित मगधदेश को लौट गया। कुछ दिन में अपनी विधवा पुत्रियों की

करुणा से दुःखित होकर जरासन्ध फिर से मथुरा पर चढ़ दौड़ा किन्तु फल प्रथम आक्रमण के समान ही रहा।

इसी भाँति सम्राट् जरासन्ध ने मथुरा पर सत्रह धावे किये, किन्तु श्रीकृष्ण और बलराम ने यादवी दल को इस प्रवीणता से लड़ाया और वे भी अपने प्राचीन राज्य पर भारी संकट समझ कर ऐसे जी तोड़कर लड़े कि भारत का यह सम्राट् उन्हें अपने वश में न कर पाया। फिर भी प्रति आक्रमण में यादवी शक्ति कुछ कुछ कम होती गई और जब जरासन्ध ने अट्ठारहवीं बार २० अक्षौहिणी सेना लेकर मथुरा को घेरने का प्रबन्ध किया, तब विकद्रु नामक यादव ने श्रीकृष्ण से कहा, "अब हम लोग जरासन्ध से एक बार लड़ने में भी नितान्त असमर्थ हैं।" इस बात का समर्थन कृष्णचन्द्र के पिता स्वयं वसुदेव ने भी किया। तब कृष्ण भगवान् ने कहा, "जरासन्ध का आप लोगों से कोई वैर नहीं है वरन् केवल हमसे और बलराम से है। इसलिये हम लोग उसके देखते हुये यहाँ से चले जायँगे, तब वह यादवों को कुछ भी कष्ट दिये बिना हमारे ही पीछे दौड़ेगा और आप लोग प्रसन्नता-पूर्वक रहियेगा। हम दोनों आदमी बाहर जाकर किसी न किसी भाँति इससे पल्ला छुड़ा लेवेंगे।" इस बात पर सब की सम्मति स्थिर हुई और जरासन्ध के आने पर बलराम और कृष्ण ने कुछ देर लड़ कर दक्षिण का रास्ता लिया।

जरासन्ध सूनी मथुरा में किसी को सताना अपने महत्व के प्रतिकूल समझ कर इन्हीं दोनों भाइयों को खोजता हुआ सेना समेत दक्षिण को चला। राम और कृष्ण कई देश मँझाते हुए सह्याद्रि पर पहुँचकर वेणु नदी के किनारे वटवृक्ष के नीचे भीष्म के गुरु परशुराम से मिले। इन्होंने प्रणाम करके उनसे अपनी कथा कहकर सम्मति माँगी। उन्होंने कहा, "आप लोग इस काल करवीरपुर में हैं, जिसे यदु के पुत्र ने बसाया था। उनके वंशधरों को पराजित करके इस काल राजा शृगाल यहाँ राज्य करता है। वह बड़ा क्रूर पुरुष है, इसलिये आप का यहाँ ठहरना ठीक नहीं है। हम आपके साथ चलकर मार्ग बतलाते हैं। हम लोगों को वेणु नदी पार करके यज्ञ गिरि पर एक रात बसकर दूसरे दिन खट्वांग नगर पार करना चाहिये।

वहाँ यदुपुत्र मारस का रचा हुआ क्रौंचपुर है। वहाँ के राजा महाकपि से मिलकर हम लोगों को गिरि गोमन्त (वर्तमान गोवा) को चलना होगा। उस स्थान पर जरासन्ध तुम्हें नहीं पा सकेगा।" इन लोगों ने ऐसा ही किया और गिरि गोमन्त से परशुरामजी राम और कृष्ण को वहीं छोड़ कर अपने स्थान को चले गये।

रामकृष्ण को वहाँ रहते हुए थोड़े ही दिन बीते थे कि जरासन्ध ने सेना समेत गिरि गोमन्त को आ घेरा। ढूँढ़ने से इन दोनों भाइयों को न पाकर उसने चारों ओर से इस पर्वत पर आग लगा दी। पहाड़ पर अनेक झरने जलपूर्ण थे इसलिये जरासन्ध के जलाने से वह न जला और गड़बड़ में बहुत से योद्धाओं को मारकर ये दोनों निकल गये। इस प्रकार विफल-मनोरथ होने से जरासन्ध अपने अनुयायियों समेत बहुत हतोत्साह होकर मगध देश को चला गया, अकेला चेदिपति शिशुपाल अपनी सेना समेत वहीं रह गया। यह कृष्ण बलराम की फूफी का पुत्र था। इसलिये उनसे मिल कर बोला, "मैं जरासन्ध के भय से उससे मिलकर रहता था और अब तुम्हारा अनुगामी बनूँगा। इस काल मैं चाहता हूँ कि मेरी सेना की सहायता लेकर आप मेरे लिये राजा शृँगाल से करवीरपुर जीत दीजिये।" यह सुन श्रीकृष्णचन्द्र ने करवीरपुर घेर कर युद्ध में राजा शृंगाल का वध किया। यह देख पद्मावती नाम्नी उसकी पटरानी ने अपने पुत्र शक्रदेव को कृष्ण के सम्मुख खड़ा करके विनती की, "जिस राजा को आपने मारा है उसी का यह पुत्र हाथ जोड़ कर आपके सम्मुख खड़ा है। इसलिये आप जो आज्ञा दें उसी का यह पालन करे।" यह सुन कर भगवान् को दया आगई और शिशुपाल की इच्छा के प्रतिकूल आप ने उसी बालक का अभिषेक करके उसे करवीरपुर का राजा बना दिया। इसके पीछे राजा शृगाल के हरिताश्व रथ पर चढ़कर कृष्ण बलदेव मथुरा पधारे और शिशुपाल भग्नमनोरथ हो कर चेदिदेश को चला गया।

कुछ दिनों के पीछे श्रीकृष्ण को समाचार मिला कि कुण्डिनपुर के राजा भीष्मक की पुत्री रुक्मिणी अपना विवाह उन्हीं के साथ करना चाहती थी और उसके पिता की भी यही सम्मति थी, किन्तु

उसका भाई स्वयंवर करता था। यह सुन श्रीकृष्ण भारी सेना समेत कुण्डिनपुर पहुँचे और राजा कैशिक के यहाँ ठहरे। उन्होंने इनका उचित आतिथ्य किया। कृष्णागमन से चिन्तित होकर नृपसमूह भीष्मक के सभासदन में मंत्र करने लगा। उस स्थान पर जरासन्ध ने इनकी सारी कथा कह कर प्रस्ताव किया कि इनके साथ सन्धि करनी चाहिये। राजा सुनीथ ने जरासन्ध की सम्मति का प्रतिपादन किया। राजा दंतवक्र ने भी कहा कि श्रीकृष्ण ने कभी अपनी ओर से किसी से बैर नहीं बढ़ाया और वे अब भी कलह बचा कर क्रथ-कैशिक के यहां ठहरे हैं। जिसने इनसे नाहक बैर बढ़ाया, केवल उसी को इन्होंने दण्ड दिया है। इसलिये इन्हें कलह के योग्य न समझ कर हम लोगों को इनके पास जाकर मित्रवत् मिलना चाहिये। राज-कुमारी जिसको चुनेगी, वही उसको पावेगा। इसलिये आपस में विग्रह से कोई लाभ नहीं है। यह सुन राजा शाल्व ने कहा कि पहले उनसे बैर बढ़ाकर अब इस प्रकार दैन्य दिखाना क्या शस्त्रधारी क्षत्रियों को शोभा देता है? इसलिये हम लोगों को अपनी शान छोड़ना उचित नहीं और बैर प्रीति का निबाहना ही अच्छा है। यह सुन सब मानी राजा चुप हो रहे और उस दिन कुछ निश्चित न हो सका।

दूसरे दिन सब राजा लोग फिर राजसभा में एकत्रित हुए। इतने में राजा क्रथकैशिक का भेजा हुआ देवदूत सभा में पहुँचकर कहने लगा, "क्रथकैशिक ने कहा है कि कृष्ण से निष्कारण बैर बढ़ाने में कोई लाभ नहीं है। इसलिये जरासन्ध, शाल्व, रुक्म और सुनीथ नामक चार भूपाल अशून्य हित कुण्डिनपुर में रह जावें और शेष सब राजे यहां पधार कर श्रीकृष्ण का अभिषेकोत्सव देखें, ऐसी मेरी विनती है।" यह सुन जरासन्ध की आज्ञा लेकर सब राजाओं ने ऐसा ही किया। क्रथकैशिक के यहां श्रीकृष्ण का राज्याभिषेक हुआ और एकत्रित राजाओं का वासुदेव ने वसन, रत्न और हाटक से पूजन किया। श्रीकृष्ण ने राजा भीष्मक को समझाया कि मुझे स्वयंवर में कोई विघ्न नहीं डालना है; आप, जिसे चाहें, सुखपूर्वक अपनी कन्या दे सकते हैं। यह कह कर श्रीकृष्णचंद्र वहां से चल दिये और

उनके प्रभाव से चिन्तित होकर भीष्मक नरेश ने सब राजाओं के साथ कुण्डिनपुर आकर सभा एकत्रित करके सारे भूपालों से कहा कि अब स्वयंवर में बड़ा विघ्न समझ पड़ता है, इसलिये आप मेरे इस अपराध को क्षमा कीजिये।

यह सुन जरासन्ध, शाल्व, सुनीथ, दन्तवक्र, महाकूर्म, क्रथकैशिक, श्रीशत वेणुदार और काश्मीरनरेश मन्त्र करने के लिये वहीं रह गये और शेष राजे भीष्मक से विदा होकर मलिनमन अपने-अपने देश को चले गये। अब इन सब की सभा जोड़कर राजा भीष्मक ने जरासन्ध को सम्बोधित करके कहा, "आप सब लोग नीतिनिपुण हैं और आप ही की सम्मति से मैंने यह काम किया था। इसलिये अब उचित मन्त्र दीजिये।" इतना कह कर राजा भीष्मक ने अपने युवराज रुक्मी की ओर देखकर कहा, "वसुदेव-देवकी धन्य हैं जिन्होंने श्रीकृष्ण सा पुत्र पाया। परमेश्वर सब को ऐसा ही पुत्र देवे अथवा अपुत्र रक्खे।" यह सुन राजा शाल्व बोला, "हे भीष्मक! आपने क्षोभ करके अपने पुत्र की निन्दा तो की किन्तु यह निन्दा नहीं है, क्योंकि इसने भी परशुराम से शस्त्र-विद्या साध्य कर प्रचण्ड शौर्य उपार्जित किया है। कृष्ण के सिवा रुक्मी को जीतने वाला संसार में कोई नहीं है। इसलिए मेरा कहना मान कर राजसमाज को चाहिये कि राजा कालयवन की सहायता लेकर श्रीकृष्ण का मान मर्दित करे।"

इस बात को सभी ने पसन्द किया और जरासन्ध ने भी कहा, "यद्यपि मेरा आश्रय छोड़कर नृपसमाज कुलटा पत्नी की भाँति अपराश्रित होना चाहता है, तथापि समय का विचार और सब का भला समझ कर मैं भी इसमें सहमत हूँ। मैं स्वयं पराश्रय ग्रहण करने के बदले युद्ध में लड़ना श्रेष्ठतर समझता हूँ, किन्तु आप लोगों को इस कार्य से न रोक कर समुचित दूत भी बताये देता हूँ। राजा शाल्व विहिताविहित-विचारी और बड़ ज्ञानी हैं। इनके पास आकाशगामी सोभ नामक विमान भी है। इसलिए इन्हीं को दूत बना कर कालयवन के पास भेजिए।" यह कहकर जरासन्ध ने शाल्व को आज्ञा दी, "तुम राजा कालयवन के पास जा मेरे आदेशानुसार व्यवहार बढ़ाकर उससे श्रीकृष्ण के जीतने का मन्त्र करना।" शाल्व ने इसको स्वीकृत

किया। तब आकाश-मार्ग से वे कालयवन के देश को प्रस्थित हुए और शेष राजे अपने अपने स्थान को चले गये।

शाल्व को देखकर राजा कालयवन ने मन्त्रियों समेत आगे बढ़कर अर्घ्यपाद्य देना चाहा, पर इन्होंने कहा कि हम इस काल अर्घ्य के योग्य नहीं हैं, क्योंकि जरासन्ध आदि राजाओं ने हमें दूत बना कर भेजा है और राजा के लिये दूत अर्घ्यार्ह नहीं हैं। यह सुन कालयवन ने कहा, "इस अवसर पर आप और भी अधिक पूज्य हैं क्योंकि आपकी पूजा से सभों की पूजा हो जाती है।" यह कहकर दोनों राजे आनन्दपूर्वक मिले और एक ही सिंहासन पर जा बैठे। अब कालयवन ने पूछा, "जिस जरासन्ध की कृपा से हम सब राजे भयहीन रहते हैं, उसने क्या आज्ञा दी है सो कहिए।" यह सुन कर शाल्व ने कृष्ण-सम्बन्धी विग्रह का सारा वृत्तान्त कहकर कहा, "हम सब लोग केवल आपको कृष्ण के जीतने योग्य समझते हैं। इसलिए आप ही कृष्ण को मारकर राजमण्डल को आनन्द दीजिये और संसार में उत्तम यश प्राप्त कीजिए। आपके पिता ने आपको ऐसी शिक्षा दी है कि कोई भी माथुर वीर आपके सम्मुख ठहर नहीं सकता।" यह सुनकर परम प्रसन्न हो कालयवन ने निवेदन किया, "हे भूपालमणे! मैं आज पृथ्वी पर धन्य हुआ और मेरे पिता का शिक्षण भी सफल हो गया, क्योंकि सम्राट् जरासन्ध समेत सारे नृपमण्डल ने मुझे जगद्विजयी राम कृष्ण के जीतने योग्य समझ यह महत् कार्य सौंपकर युद्धार्थ निदेश दिया है। सब नृपगण के आशीर्वाद से मैं अवश्य जय प्राप्त करूँगा। यदि सब राजाओं के कार्य में मेरा शरीरपात भी हो जावे तो करोड़ विजयों से श्रेष्ठतर है।" यह कह कालयवन ने ब्राह्मणों को प्रचुर दान देकर युद्धार्थ तैयारी की और उसी क्षण परम शुभ मुहूर्त समझ कर तुरन्त मथुरा की ओर सेना समेत प्रस्थान किया।

उधर अभिषेक पाने के पीछे जब श्रीकृष्ण मथुरा पहुँचे तब राजा उग्रसेन ने इन्हें भूपाल समझ कर अर्घ्य देना चाहा किन्तु आपने निवारण करके कहा कि आपके लिए जैसे हम थे वैसे ही सदा रहेंगे। पीछे कंस की माता ने कंस का सारा कोष भगवान् को अर्पित किया, किन्तु

उदारतापूर्वक उसे भी वापस करके इन्होंने कहा कि मथुरा के राज्य और कोष से हमें कुछ प्रयोजन नहीं है। अब श्रीकृष्ण पूर्ववत् रहने लगे। थोड़े ही दिनों में कालयवन सम्बन्धी सारा समाचार सुनकर आपने निश्चय किया कि सब राजाओं से शत्रुता करके हम क्षेमपूर्वक मथुरा में नहीं रह सकेंगे। इस विचार से गरुड़ नामक अपने मित्र से सम्मति करके आपने रैवत गिरि के समीप एकलव्य की रची हुई द्वारकापुरी में रहना स्थिर किया। राजा उग्रसेन ने यह विचार सुनकर विनती की कि हम सब लोग भी आपकी सहायता बिना यहाँ नहीं रह सकेंगे, इसलिए हमें भी द्वारका ले चलिए। भगवान् ने यह सम्मति स्वीकार की और सब यदुवंशी मथुरा छोड़ द्वारका को चले गये। द्वारका के स्वामी ने इनका रोकना अपनी शक्ति से बाहर समझ कर किसी प्रकार की आपत्ति न की और यदुवंशी लोग सुखपूर्वक वहाँ बस गये। सब को यथासम्भव पूरा सुपास देकर श्रीकृष्णचन्द्र अकेले मथुरा लौट गये।

इतने में कालयवन ने सेना समेत वहाँ पहुँच कर दुन्दुभी बजाई। श्रीकृष्ण ने उससे कुछ युद्ध करके एक ओर का रास्ता लिया और वह सेना समेत इनके पीछे लगा। श्रीकृष्णचन्द्र ने भागते हुए बहुत दूर जाकर उस गिरि-गुहा में प्रवेश किया जिसमें राजा मुचकुन्द सोते थे। आप वहीं छिप रहे। कालयवन ने भी दो-चार अनुयायियों समेत उसी में घुस मुचकुन्द को कृष्ण समझ कर एक लात लगाई। यह राजा मुचकुन्द बड़ा बलवान था, सो पाद-प्रहार से क्रुद्ध होकर इसने तुरंत ही कालयवन का वध कर डाला। स्वामी का वध देखकर उसकी सेना तितर बितर हो गई। अब राजा मुचकुन्द से उचित वार्तालाप करके श्रीकृष्ण द्वारका चले आये और महाराजा मुचकुन्द हिमाचल पर जा कर तपस्या करने लगे।

द्वारका जाकर श्रीकृष्ण के मतानुसार यादवों ने उस पुरी का निर्माण किया। अब असीम उदारता दिखलाते हुए श्रीकृष्ण ने उग्रसेन को वहाँ का भी राजा बनाया और उनके पुत्र अनाधृष्ट को सेनापति किया। उद्धव, कंक, विकद्रु, गद, स्वफल्क, विपृथु, चित्रक, पृथु और सात्यकि विविध विभागों के मन्त्री बनाये गये। इस प्रकार श्रीकृष्ण ने

९ मन्त्रियों की प्रणाली बनाई, जैसे इधर शिवाजी ने अष्ट मन्त्रियों की स्थापना की। सात्यकि युद्धसचिव बनाये गये, सान्दीपनि ऋषि पुरोहित और दारुक स्वयं कृष्ण के सारथी। राजा रैवत ने अपनी पुत्री रेवती का विवाह बलराम के साथ किया।

कुण्डिनपुर के राजा भीष्मक का वर्णन ऊपर आ चुका है। ये महाशय यदुसुत क्रोष्टा के वंशज थे। विदर्भ भीष्मक के पूर्व पुरुष थे। इनका राज्य विन्ध्य शैल के दक्षिण विदर्भ देश में था और उसकी राजधानी कुण्डिनपुर थी। जरासन्ध के पूर्व पुरुष बृहद्रथ के पिता उपरिचर वसु के वंश में दमघोष नाम का राजा हुआ था। यह दमघोष उपरिचर वसु के मागध वंश से पृथक् था। इसका राज्य चेदि देश में था। श्रीकृष्ण की फूफी श्रुतिश्रवा इसको ब्याही थी। इन्हीं दोनों का पुत्र चेदिपति शिशुपाल था। शिशुपाल को जरासन्ध ने सदैव पुत्रवत माना। उपर्युक्त सम्बन्धों के वर्णन से प्रकट है कि यद्यपि श्रीकृष्ण के पिता वसुदेव राजा न थे, तथापि तात्कालिक कई राजाओं से इनका घनिष्ठ सम्बन्ध था। कुन्तिभोज, कंस, शिशुपाल और पाण्डु इनके निकट के सम्बन्धी थे।

राजा भीष्मक ने रुक्मी के मत से विवश होकर अपनी कन्या रुक्मिणी का विवाह शिशुपाल के साथ स्थिर किया। तब रुक्मिणी जी ने ब्राह्मण द्वारा श्रीकृष्ण के पास पत्री भेजी, "आप मुझ को इस दुर्घटना से बचाइये।" यह सुन बलराम के साथ एक भारी सेना लेकर श्रीकृष्णचन्द्र कुण्डिनपुर पहुँचे। जब रुक्मिणी गौरी का पूजन करके लौटने को हुईं, तभी उपयुक्त समय समझ कर श्रीकृष्ण ने उन्हें रथ पर बिठला द्वारका का रास्ता लिया और बलराम सेना समेत मार्ग रोक कर युद्धार्थ खड़े रहे। अब दोनों दलों में प्रचण्ड युद्ध होने लगा, किन्तु इसे व्यर्थ समझ कर रुक्मी ने श्रीकृष्ण के पीछे अकेले जाने का विचार किया। उसने प्रतिज्ञा की, "यदि श्रीकृष्ण को मार कर रुक्मिणी न वापस लाऊँ, तो लौट कर इस नगर का मुख न देखूँगा।" ऐसा कह और प्रचण्ड कोदण्ड उठाकर रथारोही रुक्मी श्रीकृष्ण के पीछे परम वेग से धावित हुआ। राजा अंशुमान, वेणुदार तथा श्रुतर्वा रुक्मी के साथ चले। इन लोगों ने नर्मदा के पास जाकर श्रीकृष्ण से प्रचण्ड

युद्ध किया। श्रीकृष्ण ने सहज ही में अंशुमान् और श्रुतर्वा को मूर्छित कर दिया और वेणुदार का दक्षिण बाहु छेद दिया। रुक्मी ने कृष्ण के साथ बहुत देर तक भारी युद्ध किया किन्तु अन्त में श्रीकृष्ण उसे मूर्छित करके रुक्मिणी को साथ लिये द्वारावती चले गए। राजाओं को युद्ध में जीतकर बलराम भी द्वारका वापस आये। उधर श्रुतर्वा रुक्मी और शेष दोनों साथियों का रथ पर डालकर कुण्डिनपुर की ओर चला। रास्ते में चेत कर रुक्मी प्रतिज्ञा भङ्ग होने के कारण कुण्डिनपुर में प्रवेश न करके वहाँ से दक्षिण भोजकट नामक नया नगर बसाकर वहीं रहने लगा।

इधर श्रीकृष्णचन्द्र ने रुक्मिणी के साथ विधिवत् ब्याह करके दस पुत्र उत्पन्न किये, जिनके नाम यह थे—प्रद्युम्न, चारुदेष्ण, सुदेष्ण, सुषेण, चारुगुप्त, चारु, चारुबाहु, चारुविन्द, भद्रचारु और चारुक। इनके अतिरिक्त चारुमती नाम्नी एक कन्या भी हुई। रुक्मिणी के अतिरिक्त श्रीकृष्ण के सात और पटरानियाँ थीं अर्थात् कालिन्दी उपनाम यमुना (सूर्य की पुत्री), मित्रविन्दा (अवन्तिराज की कन्या), सत्या (अवधनरेश नग्नजित की पुत्री), जाम्बवती (जाम्बवान् ऋक्ष की पुत्री), भद्रा उपनाम रोहिणी (केकय-पति की पुत्री), सुशीला (मद्रराज की कन्या) और सत्यभामा (सत्राजित की लड़की)। इनके अतिरिक्त शैव्यराज की पुत्री लक्ष्मणा इनकी नवम रानी था। सभी रानियाँ पुत्रवती थीं। पुत्रों में प्रद्युम्न, साम्ब, सट, सारण और गद की प्रधानता थी। साम्ब मुल्तान में सूर्य्य मंदिर बनवा कर शाकद्वीप से ब्राह्मणों को लाये। आर्य भट्ट और वराहमिहिर शाकद्वीपी ब्राह्मण थे। प्रद्युम्न ने काल शम्बर तथा वज्रनाभ नामक प्रसिद्ध नरेशों को युद्ध में मारा। भगवान् के पौत्रों में अनिरुद्ध और वज्र प्रधान थे। समय पर रुक्मी की कन्या सुभागी का स्वयम्बर हुआ और उसने कृष्ण-पुत्र प्रद्युम्न को पति चुना। यह विवाह प्रेमपूर्वक हुआ। इन दोनों के पुत्र कुमार अनिरुद्ध हुए।

समय पर रुक्मिणी ने रुक्मी की पौत्री के साथ अनिरुद्ध का विवाह रुक्मी को पत्र लिख कर स्थिर किया। इस विवाह में रुक्मी ने भ्गाटाइ करके बलराम जी के साथ द्यूतारम्भ किया और जब वे हारे,

तब हँसी मजाक़ में अनेक दुर्वचन कहे। जब बलरामजी जीते, तब भी रुक्मी और उसके साथी राजाओं ने बेईमानी करके अपनी ही जीत बतलाई। इस पर सभासदों ने बलराम के ही पक्ष में निर्णय किया। अब राम ने क्रुद्ध होकर मोहरों की भरी हुई एक थैली उठा कर रुक्मी के हृदय में ज़ोर से मार दी जिससे उसका शरीरान्त हो गया। कलिङ्ग-पति दाँत निकाल कर हँसा था, अतः उसके मुँह पर लात मार कर इन्होंने उसके दाँत गिरा दिये। यह करके आपने जनवासे में जाकर श्रीकृष्ण से सारा वृत्तान्त कह सुनाया। उन्होंने भावी गति कहकर रुक्मिणी को समझाया और विवाहोपरान्त सब द्वारका लौट आये।

भगवान श्रीकृष्ण ने प्राग्ज्योतिष नरेश नरकासुर का अधर्म सुनकर उसकी राजधानी में जा और उसका वध करके बहुत सी कुमारिकाओं का कष्ट मोचन किया। फिर उसके पुत्र भगदत्त को राजा बनाकर आप वापस चले आये। इन्होंने उग्रसेन की आज्ञा से काशी पुरी में पौंड्रक को युद्ध में मारा। श्रीकृष्ण ने धर्मराज्य स्थापन करने का पूर्ण प्रयत्न किया। आपने युद्ध में शौर्य और विजय में क्षमा का सदैव पूर्ण आदर्श दिखलाया। इन्होंने उजड़ी हुई द्वारका को लिया किन्तु किसी और विजित राजा का राज्य नहीं छीना। अपने सब संबन्धियों के साथ इन्होंने सदैव यथायोग्य व्यवहार किया और यादव संघ को चिरकाल तक भली भाँति चलाया। व्यवहार (क़ानून) का सुस्थापित न होना तथा नेताओं के सम्बन्धी अथच इतर तरुणों का अनियन्त्रित हो जाना, संघों पर विपत्ति लाते हैं।

भगवान के समय यादवों में अन्धक, वृष्णि, यादव, कुकुर और भोज नामक पांच विभाग थे। ये पाँचों बाहर वालों के लिये मिले रहते थे, किन्तु आन्तरिक प्रबन्ध में हर एक को स्वतन्त्रता थी। भोजों के नेता अक्रूर थे तथा इनसे बलदेव जी का भी सहयोग था। श्रीकृष्ण से मुख्य होड़ करने वाले प्रतिद्वन्दी बभ्रु थे, किन्तु मुशल पर्व के पूर्व वास्तविक युद्ध नहीं हुआ। केवल पैंतड़ेबाजी सी रहती थी। श्रीकृष्ण और उग्रसेन संघ मुख्य थे। मुशल युद्ध के पीछे भी बभ्रु बच गये। शान्ति पर्व राजधर्म २१वें अध्याय में भगवान श्रीकृष्ण कहते हैं कि

संकर्षण बल में मस्त रहते हैं, गद सुकुमारता और प्रद्युम्न सौन्दर्य में तथा स्वयं भगवान को अच्छे सहायक नहीं मिलते अथच आहुक और अक्रूर अधिकार प्राप्त करते जाते हैं। यादवों का संघ (Confederation) मात्र था जो अन्त में बिगड़ कर मिट गया जैसा कि आगे के अध्याय में आवेगा। प्राचीन भारत में प्रजातन्त्र को गण कहते थे और सूद मुरक्कब (Compound interest) को चक्रवृद्धि। सरस्वती एवं दृषद्वती से प्रयाग तक मध्यदेश था। बौद्ध ग्रन्थों में बिहार तक इसी में है। इसकी पूर्वी सीमा कंज गल (सन्थाल पर्गना का राँकजोल) है। इसके पूरब, दक्खिन, पच्छिम और उत्तर के देश क्रमशः प्राची, दक्षिणापथ, अपरान्त या पश्चिम तथा उत्तरापथ हैं। यह अन्तिम नाम बहुधा पञ्जाब का है।

अब भगवान श्रीकृष्ण का कथन फिर से उठाया जाता है। गान, वाद्य तथा नृत्य में इनकी अलौकिक गति थी। इन सरस गुणों को रखते हुये भी दर्शन-शास्त्र से नीरस विषय पर भी इनका प्रगाढ़ अधिकार था। भगवद्गीता का जगत्प्रसिद्ध ज्ञान इन्हीं ने संसार को सिखलाया, जिसका वर्णन यथास्थान किया जावेगा। धर्म और पूजन में इनकी उपयोगितावाद पर विशेष रुचि थी। इनकी बाल्यावस्था में गोप लोग इन्द्र का पूजन करने वाले थे, तब इन्होंने शिक्षा दी थी कि गोपों के लिये इन्द्र की अपेक्षा गोवर्धन गिरि विशेषतया पूज्य है, क्योंकि गिरि और कानन से हमारा गोधन प्रसन्न रहता है और जिसकी जीवनवृत्ति जिस पदार्थ से है उसके लिये वही पूज्य है। इनके इस उपयोगितावाद को गोपों ने स्वीकार किया था और तभी से इनको गोविन्द की उपाधि मिली थी। श्रीकृष्ण की उदारता विजित राजाओं तथा उग्रसेन से जैसा व्यवहार हुआ उससे विदित होती है। इसके अतिरिक्त ब्राह्मणों को इन्होंने कई बार बहुत दान दिया। सुदामा का दान इस कथन का उदाहरण है। संसार में अनेकानेक गुणी हो गये हैं और बहुत से लोगों ने अनेक गुणों में भी योग्यता संपादन की है, किन्तु जितने और जैसे अनमिल गुणों में भगवान का प्रगाढ़ अधिकार था वैसा दूसरा उदाहरण संसार में पाना कठिन है। आप मित्रवत्सल ऐसे थे कि इन्हीं की सहायता से राजा युधिष्ठिर सम्राट् हो गये,

किन्तु इन्होंने सामर्थ्य रखते हुए भी अपने लिये सम्राट् क्या राजपद की भी कभी इच्छा न की। परम प्रभावशाली हो जाने पर भी आपने अपने बालसखाओं को न भुलाया और प्रभास क्षेत्र पर गोप-गोपियों को निमन्त्रित करके उनके साथ पूर्ववत् वात्सल्य भाव दिखलाया। भारत में विष्णु भगवान् के दस अवतार माने गये हैं; जिनमें चार की भारी प्रधानता है, अर्थात् वामन, रामचन्द्र, कृष्ण और गोतम बुद्ध की। पंडितों ने श्रीकृष्णचन्द्र को इन्हीं कारणों से कदाचित् षोड़श कला का पूर्ण अवतार माना है। ब्राह्मण ग्रंथों के अवलोकन से विदित होता है कि "देवकीनन्दन कृष्ण" दर्शन-शास्त्र मनन करने के उत्साही थे। स्वामी शंकराचार्य्य का निराधार कथन है कि ये दर्शन शास्त्री कृष्ण घोर वंशी ब्राह्मण थे न कि वासुदेव कृष्ण। उनके पास कोई ऐसा आधार अवश्य होगा जो अब अप्राप्त है। यदु-वंश का यह इतिहास हरिवंश और श्री भागवत के आधार पर लिखा गया है।

इस काल के आर्य राजा लोग परम धार्मिक तथा दृढ़प्रतिज्ञ हुए और ब्राह्मणों का प्रभाव दिनोंदिन बढ़ता गया। राजाओं में वृद्धावस्था आने पर राज्य छोड़कर वानप्रस्थाश्रम का विधान दृढ़ता को प्राप्त हुआ और बहुत से राजाओं ने अपने उदाहरण द्वारा इस रीति को आदर दिया। वानप्रस्थ का विधान ब्राह्मणों, राजपुत्रों तथा साधारण प्रजा में भी बड़ी दृढ़ता से स्थिर हुआ और इसके नियमापनियम पुष्ट करने के विचार से आरण्यक नामक ग्रन्थों की रचना हुई। बहुत से ब्राह्मणों ने शस्त्रविद्या में भी प्रवीणता प्राप्त की और समय समय पर ऋचीक, जमदग्नि, दो परशुरामों, अगस्त्य और द्रोणाचार्य्य ने इस विषय में ख्याति पाई। क्षत्रियों ने युद्ध-विद्या की अच्छी उन्नति की और सारे भारतवर्ष में ब्राह्मण-सभ्यता का विस्तार किया।

इस काल उत्तरी भारत से शोणितपुर को छोड़ राक्षसों दैत्यों आदि का अधिकार पूर्णतया उठ गया और मध्य तथा पश्चिमी भारत में भी आर्य-सभ्यता पूर्णरूपेण फैल गई। राज्य छीनने के लिये कोई राजा दूसरे को प्रायः नहीं जीतता था। राजाओं में विजय बहुत करके प्रभाववर्धनार्थ ही होती थी। किसी नवीन शक्ति के उठने पर सब

संकर्षण बल में मस्त रहते हैं, गद सुकुमारता और प्रद्युम्न सौन्दर्य में तथा स्वयं भगवान को अच्छे सहायक नहीं मिलते अथच आहुक और अक्रूर अधिकार प्राप्त करते जाते हैं। यादवों का संघ (Confederation) मात्र था जो अन्त में बिगड़ कर मिट गया जैसा कि आगे के अध्याय में आवेगा। प्राचीन भारत में प्रजातन्त्र को गण कहते थे और सूद मुरकब (Compound interest) को चक्रवृद्धि। सरस्वती एवं दृपद्वती से प्रयाग तक मध्यदेश था। बौद्ध ग्रन्थों में बिहार तक इसी में है। इसकी पूर्वी सीमा कंज गल (सन्थाल पर्गना का कांकजोल) है। इसके पूरब, दक्खिन, पच्छिम और उत्तर के देश क्रमशः प्राची, दक्षिणापथ, अपरान्त या पश्चिम तथा उत्तरापथ हैं। यह अन्तिम नाम बहुधा पञ्जाब का है।

अब भगवान श्रीकृष्ण का कथन फिर से उठाया जाता है। गान, वाद्य तथा नृत्य में इनकी अलौकिक गति थी। इन सरस गुणों को रखते हुये भी दर्शन-शास्त्र से नीरस विषय पर भी इनका प्रगाढ़ अधिकार था। भगवद्गीता का जगत्प्रसिद्ध ज्ञान इन्हीं ने संसार को सिखलाया, जिसका वर्णन यथास्थान किया जावेगा। धर्म और पूजन में इनकी उपयोगितावाद पर विशेष रुचि थी। इनकी बाल्यावस्था में गोप लोग इन्द्र का पूजन करने वाले थे, तब इन्होंने शिक्षा दी थी कि गोपों के लिये इन्द्र की अपेक्षा गोवर्धन गिरि विशेषतया पूज्य है, क्योंकि गिरि और कानन से हमारा गोधन प्रसन्न रहता है और जिसकी जीवनवृत्ति जिस पदार्थ से है उसके लिये वही पूज्य है। इनके इस उपयोगितावाद को गोपों ने स्वीकार किया था और तभी से इनको गोविन्द की उपाधि मिली थी। श्रीकृष्ण की उदारता विजित राजाओं तथा उग्रसेन से जैसा व्यवहार हुआ उससे विदित होती है। इसके अतिरिक्त ब्राह्मणों को इन्होंने कई बार बहुत दान दिया। सुदामा का दान इस कथन का उदाहरण है। संसार में अनेकानेक गुणी हो गये हैं और बहुत से लोगों ने अनेक गुणों में भी योग्यता संपादन की है, किन्तु जितने और जैसे अनमिल गुणों में भगवान् का प्रगाढ़ अधिकार था वैसा दूसरा उदाहरण संसार में पाना कठिन है। आप मित्रवत्सल ऐसे थे कि इन्हीं की सहायता से राजा युधिष्ठिर सम्राट् हो गये,

किन्तु इन्होंने सामर्थ्य रखते हुए भी अपने लिये सम्राट् क्या राजपद की भी कभी इच्छा न की। परम प्रभावशाली हो जाने पर भी आपने अपने बालसखाओं को न भुलाया और प्रभास क्षेत्र पर गोप-गोपियों को निमन्त्रित करके उनके साथ पूर्ववत् वात्सल्य भाव दिखलाया। भारत में विष्णु भगवान् के दस अवतार माने गये हैं; जिनमें चार की भारी प्रधानता है, अर्थात् वामन, रामचन्द्र, कृष्ण और गोतम बुद्ध की। पंडितों ने श्रीकृष्णचन्द्र को इन्हीं कारणों से कदाचित् षोड़श कला का पूर्ण अवतार माना है। ब्राह्मण ग्रंथों के अवलोकन से विदित होता है कि "देवकीनन्दन कृष्ण" दर्शन-शास्त्र मनन करने के उत्साही थे। स्वामी शंकराचार्य्य का निराधार कथन है कि ये दर्शन शास्त्री कृष्ण घोर वंशी ब्राह्मण थे न कि वासुदेव कृष्ण। उनके पास कोई ऐसा आधार अवश्य होगा जो अब अप्राप्त है। यदुवंश का यह इतिहास हरिवंश और श्री भागवत के आधार पर लिखा गया है।

इस काल के आर्य राजा लोग परम धार्मिक तथा दृढ़प्रतिज्ञ हुए और ब्राह्मणों का प्रभाव दिनोंदिन बढ़ता गया। राजाओं में वृद्धावस्था आने पर राज्य छोड़कर वानप्रस्थाश्रम का विधान दृढ़ता को प्राप्त हुआ और बहुत से राजाओं ने अपने उदाहरण द्वारा इस रीति को आदर दिया। वानप्रस्थ का विधान ब्राह्मणों, राजपुत्रों तथा साधारण प्रजा में भी बड़ी दृढ़ता से स्थिर हुआ और इसके नियमापनियम पुष्ट करने के विचार से आरण्यक नामक ग्रन्थों की रचना हुई। बहुत से ब्राह्मणों ने शस्त्रविद्या में भी प्रवीणता प्राप्त की और समय समय पर ऋचीक, जमदग्नि, दो परशुरामों, अगस्त्य और द्रोणाचार्य्य ने इस विषय में ख्याति पाई। क्षत्रियों ने युद्ध-विद्या की अच्छी उन्नति की और सारे भारतवर्ष में ब्राह्मण-सभ्यता का विस्तार किया।

इस काल उत्तरी भारत से शोणितपुर को छोड़ राक्षसों दैत्यों आदि का अधिकार पूर्णतया उठ गया और मध्य तथा पश्चिमी भारत में भी आर्य-सभ्यता पूर्णरूपेण फैल गई। राज्य छीनने के लिये कोई राजा दूसरे को प्रायः नहीं जीतता था। राजाओं में विजय बहुत करके प्रभाववर्धनार्थ ही होती थी। किसी नवीन शक्ति के उठने पर सब

राजा लोग मिल कर उसे दबाने का प्रयत्न करते थे। यह रीति इसी काल में स्थिर होकर मुसलमान काल पर्यन्त भारत में पाई जाती है। इस काल के राजाओं में आपस में भाईचारे का व्यवहार बहुत दृढ़ देख पड़ता है। किसी भारी घटना के होने पर बहुत से राजा आपस में मिल कर प्रायः मंत्रणा किया करते थे। राजा भीष्मक की सभा में सब राजा कृष्ण से मेल करना चाहते थे, किन्तु अकेले शाल्व ने सब की राय फेर दी और सभों ने शत्रुता ही की सलाह ठीक रक्खी। राजकुमार विद्या-प्राप्ति के लिये प्रवीण गुरुओं के यहाँ दूर देशों में जाकर परिश्रम करते थे। इस कथन के उदाहरण भीष्म, कर्ण, रुक्मी और श्रीकृष्णचन्द्र हैं।

चातुर्वर्ण्य की प्रणाली बहुत दिनों से जन्मज हो गई थी। इसकी दृढ़ता दिनोंदिन बढ़ती गई किन्तु विविध वर्णों में विवाहादि बराबर होते थे। एक ही गोत्र में भी विवाहों की विधि थी तथा मामा, फूफू आदि की कन्याओं के साथ विवाह की कोई रोक न थी। विविध वर्णों में खान-पान सम्बन्धी कोई निषेध न था और जातियों में ऊँच-नीच के विचार नहीं उठे थे। व्यापार बहुत करके बनजारों आदि के द्वारा चलता था। समुद्र यात्रा का कथन बहुतायत से नहीं है। पाश्चात्य पण्डितों का विचार है कि भारतवासी यूनानियों को ही यवन कहते थे किन्तु हम इसी काल से ही भारतीयों का कालयवन से सम्पर्क देखते हैं। यह नहीं विदित होता है कि कालयवन कहाँ का राजा था, किन्तु जान पड़ता है कि यह कहीं बाहर से भारत में बुलाया गया था। रावण का पुष्पक और शाल्व का सौभ नामक विमान आकाश में उड़ते थे। उपरिचर वसु के पास भी व्योमयान था। इनके अतिरिक्त व्योमयान केवल देवताओं के पास कहे गये हैं। जान पड़ता है कि ये बने तो अवश्य थे किन्तु इनकी उन्नति नहीं हुई थी। सारांश यह कि इस काल में प्रायः सभी बातों में भारतीयों ने अच्छी उन्नति की।

पन्द्रहवाँ अध्याय

महाभारत

दसवीं शताब्दी बी० सी०

यह अध्याय मुख्यतया महाभारत पर आधारित है। गत अध्याय में कौरवों पांडवों की उत्पत्ति का कथन हो चुका है। अपने भ्रातृकुल में बहुत से कुमारों के होने से प्रसन्न होकर पितामह भीष्म ने उनकी शिक्षा का प्रबन्ध उत्तम रीति से करना चाहा। महाराजा शन्तनु ने दो अनाथ ब्राह्मण बालकों (बालक-बालिका) को एक तालाब के किनारे से उठवा कर पाला था। उनके नाम कृप और कृपी रक्खे गये। कृप ने शास्त्राभ्यास भली भांति करके परशुराम से शस्त्रविद्या भी सीखी। इन्होंने वृष्णि यादव आदि कुल के अनेक राजकुमारों को शिक्षा देकर आचार्य पदवी पाई थी। कृपाचार्य्य जनक के पुरोहित शतानन्द के वंशधर थे। कृपी का विवाह प्रसिद्ध धनुर्धर द्रोणाचार्य के साथ हुआ था। इन्होंने भी पूरा शास्त्राध्ययन किया और शस्त्र-विद्या में भी बड़ी उत्कट प्रवीणता प्राप्त की थी। ये महाशय महर्षि भरद्वाज के पुत्र अथवा वंशज थे। पहले इन्हें शस्त्र-विद्या-प्राप्ति की भारी उत्कण्ठा न थी। इन्होंने मुख्यतया शास्त्राध्ययन किया था। एक बार धन मांगने के लिए महात्मा परशुराम के पास द्रोणाचार्य ऐसे समय में पहुँचे, जब कि वे अपना सारा धन ब्राह्मणों को बांट चुके थे और जंगल जाने वाले ही थे। उन्होंने इनकी धनेच्छा समझ कर नम्रतापूर्वक कहा, "प्रियवर! मैं अपनी सारी पृथ्वी कश्यप को दे चुका हूँ और सारा धन-धान्य ब्राह्मणों को बाँटकर इस काल बन-वास ही के लिए चलने को हूँ। अब तो मेरे पास केवल शस्त्र-विद्या और शरीर शेष हैं, इसलिये इन दोनों में से जो आप मांगें वही

प्रस्तुत हैं"। यह सुनकर द्रोणाचार्य ने विनती की, "हे दानिशिरोमणि! आप प्रयोग, संहार तथा रहस्य विधान सहित सब अस्त्र-शस्त्र मुझे दीजिए।" तब गुरुवर परशुराम ने द्रोणाचार्य को उनकी इच्छा के अनुसार शस्त्रास्त्र-विद्या भली भांति सिखला दी और इन्होंने भी उस को पूर्णतया सीख कर अद्वितीय गौरव प्राप्त किया। अनन्तर अग्निवेश ऋषि से आपने आग्नेयास्त्र पाया। यह अस्त्र उन्हें भरद्वाज ही ने दिया था।

इधर पौरव राजकुमारों को कृपाचार्य शस्त्र एवं शास्त्र का शिक्षण देते थे। भीष्म-पितामह की इच्छा हुई कि कोई प्रवीणतर गुरु पौत्रों की शिक्षा के लिए बुलाना चाहिये। एक दिन भारत-राजकुमारगण गुल्ली-डंडा खेल रहे थे कि गुल्ली अकस्मात् एक निर्जल कूप में जा पड़ी। उसी के पनघट पर द्रोणाचार्य विराजमान थे। सब कुमार गुल्ली निकालने के अनेक प्रयत्न करके विफलमनोरथ रहे। यह देख द्रोणाचार्य ने हँस कर कहा, "तुम लोग भरतवंशज होकर कुएँ में से एक गुल्ली नहीं निकाल सकते? देखो मैं ब्राह्मण होकर गुल्ली क्या एक मुंदरी तक सीकों से बेधकर बाहर निकाले देता हूँ।" यह कह कर द्रोणाचार्य ने धनुष उठा कर सींक से गुल्ली बेध दी और दूसरी सींक से उस सींक को बेधा। इसी प्रकार बेधते हुए सींकों के ही द्वारा गुल्ली कुएँ के बाहर कर दी। यह देख राजकुमार युधिष्ठिर ने एक मुद्रिका कुएँ में डाल कर विनती की कि यह भी निकाली जाय। द्रोणाचार्य ने उसे भी गुल्ली की भांति सींकों के ही द्वारा निकाल दिया।

यह देख कुमारों ने परम प्रसन्न होकर द्रोणाचार्य का विवरण भीष्म पितामह को जा सुनाया। यह सुन गांगेय ने समझ लिया कि जैसा उपयुक्त गुरु वे चाहते थे वैसा ही अकस्मात् मिल गया। अब परम प्रसन्न होकर स्वयं भीष्म पितामह द्रोणाचार्य के पास पधारे और प्रणाम करके सब हाल पूछने लगे। द्रोणाचार्य ने अपनी शिक्षा का वर्णन करके कहा, "कृपाचार्य की भगिनी कृपी से मैंने पितृवियोग के अनन्तर पुत्रेच्छा से विवाह किया था, जिससे अश्वत्थामा नामक तनय प्राप्त हुआ। मैंने धन की कभी इच्छा न की थी, इसलिए मेरे पास एक गौ तक न थी, किन्तु पुत्र धनिकसुतों को दूध पीते देख उसके लिए मचलने

लगा। दूध के अभाव में मैं चावल बांट, पानी में घोल, पुत्र को दूध कहकर पिला देता था और वह बाल्यवश उसको पीकर आनन्द से नाचता था। यह दशा देख मेरे पड़ोसी कहने लगे कि इस ब्राह्मण द्रोण को धिक्कार है जिसे कहीं धन ही नहीं मिलता और जिसका पुत्र क्षीर समझ पिष्टोदक-पान से नाचता है। यह सुन मेरी बुद्धि भ्रष्ट होगई और मैंने समझा कि मेरी गृहस्थी भली भांति नहीं चल रही है। मैं तपस्या छोड़ धनोपार्जन का कार्य निन्द्य समझता था और शुद्ध प्रतिग्रह छोड़ दूषित दान नहीं लेना चाहता था। इसीलिए मुझे इतना कष्ट हुआ।"

द्रोणाचार्य ने फिर कहा, "बालवय में पांचाल राजकुमार द्रुपद महर्षि अग्निवेश के आश्रम में मेरा सहपाठी था और मुझसे कहता था कि वयस्क होने पर उसका राज्य मेरे ही अधीन रहेगा। इसीलिए इस विपत्ति में पड़कर अपने बालसखा द्रुपद का स्मरण करके मैं सकुटुम्ब पाँचाल देश पहुँचा और द्रुपद को राज्याभिषिक्त सुनकर प्रसन्न हुआ, किन्तु मिल कर जब मैंने उसे मित्र कहकर सम्बोधित किया, तब मिथ्या आत्मगौरव के घमण्ड में वह ऐसा चूर हुआ कि मेरे कथनों से अपनी भारी मानहानि समझ कर कहने लगा कि ऐसे भिखमंगों के सखा राजा नहीं होते। उसका यह अनुचित गर्व देख कर मैं एक मानसिक प्रण कर चुका हूँ, जिसे समय पर पूरा करूँगा। अब मैं यहां उपस्थित हुआ हूँ और आपकी कामना पूरी करने को तय्यार हूँ। इसलिये आप जो कहें सो मैं करूँ।" यह सुन पितामह ने कहा, "आप मुझे भाग्यवश मिल गये; अब मुझ पर अनुग्रह करके यहीं विराजिये। कुरु कुल में जो वित्त है उसके आप ही स्वामी हैं और जो यह राज्य है उसके आप ही राजा हैं। यह कुरुवंश आज से आप ही का हो चुका। आपको जो कुछ वाञ्छित हो उसे तुरन्त संपादित समझिये और इन पुत्रों को सद्विद्यादान कीजिये।" यह कहकर द्रोण का सविधि पूजन करके भीष्म ने विविध भांति के धन-धान्य से युक्त चारु सदन उन्हें समर्पित किया और कौरव-कुमारों को शिष्य बनाने के लिये उन्हें सौंप दिया।

द्रोणाचार्य ने इस योग्य सत्कार से परम प्रसन्न हो कर नियम के

साथ कुमारों को शस्त्र-विद्या सिखलाना आरम्भ किया। अर्जुन और कर्ण धनुषविद्या में श्रेष्ठ हुए और दुर्योधन तथा भीम गदायुद्ध में। पीछे से इन दोनों ने श्रीकृष्ण के भाई बलराम से भी गदायुद्ध की उच्च शिक्षा पाई। कर्ण ने द्रोणाचार्य से ब्रह्मास्त्र सीखने का भी प्रस्ताव किया किन्तु इन्होंने उत्तर दिया कि ब्रह्मास्त्र का प्रयोग केवल ब्राह्मण और क्षत्रिय के योग्य है न कि शूद्र के। यह सुन द्रोण से विद्या-प्राप्ति में भग्नोत्साह हो कर पराक्रमी तथा महत्त्वाकांक्षी कर्ण महेन्द्रगिरि पर चला गया और अपने को ब्राह्मण कह कर परशुराम से पूरी विद्या प्राप्त करने में समर्थ हुआ।

एक बार कर्ण की जंघा पर शीश रखकर परशुराम सो गये। उसी समय अकस्मात् एक कीड़ा नीचे से आकर कर्ण की जांघ को ऐसे स्थान पर काटने लगा कि जहां बिना जांघ उठाये उसका निवारण नहीं हो सकता था। कर्ण ने गुरु की निद्रा भंग न करने के विचार से जंघा नहीं हिलाई, यद्यपि कृमि के काटने से उससे रुधिर की धारा बहने लगी। शोणित के सिर में लगने से महर्षि परशुराम जाग पड़े और सारा वृत्तान्त सुन कर कर्ण के कष्टों पर बड़े दुखित हुए, किन्तु यह भी ताड़ गये कि कष्ट में इतना शारीरिक धैर्य ब्राह्मण के लिये कठिन है, अतः यह मेरा शिष्य कोई क्षत्रिय समझ पड़ता है। उनके पूछने पर कर्ण ने सारा हाल कह सुनाया। परशुराम ने उसकी झुठाई पर कुछ क्रोध किया किन्तु उसके असीम धैर्य एवं शस्त्र-प्राप्ति की उद्दाम इच्छा से मुग्ध होकर उसे शिष्यत्व से अलग नहीं किया और श्रम करके पूरा धार एवं शस्त्र विद्या-पारंगत बना दिया। अन्त में गुरु से आशीर्वाद पाकर कर्ण अपने घर वापस गया।

इधर द्रोणाचार्य कौरव पाण्डवों को विधिवत् शस्त्र-विद्या सिखलाते रहे। इसी बीच में किरातधीश हिरण्यधनु का पुत्र एकलव्य द्रोणाचार्य से शस्त्र-विद्या सीखने के लिये आया। इन्होंने किरात को नीच समझ कर शिष्य न बनाया, किन्तु उसने इनकी मृन्मयी मूर्ति सामने रखकर जंगल में शस्त्राभ्यास करना प्रारंभ किया और थोड़े ही दिनों में ऐसी योग्यता संपादित कर ली कि एक बार शिकारी कुत्ते के भौंकने पर जब तक वह मुंह बन्द करे तब तक इसने उसके मुख को पांच बाणों

से भर दिया। इसका पराक्रम देख कर अर्जुन को भी ईर्ष्या उत्पन्न हुई पर पीछे से उन्होंने एकलव्य से अधिक योग्यता संपादित करली। द्रोण का महत्व सुनकर भारत भर से देश देश के राजपुत्र आ आकर इनसे शस्त्र-विद्या सीखते थे।

उचित समय पर जब भारत राजकुमार अस्त्र-विद्या में निपुण होगये, तब द्रोणाचार्य ने यह शुभसंवाद धृतराष्ट्र से कह सुनाया। उस काल सभा में बाल्हीक, कृपाचार्य, सोमदत्त, भीष्म, विदुर और भगवान् वेदव्यास भी वर्तमान थे। सभों ने द्रोण की भारी प्रशंसा की और धृतराष्ट्र ने संतोष प्रकट कर के कहा, कि हे भरद्वाज नन्दन! आप ने बहुत बड़ा कार्य किया है। यह कह कर महाराजा धृतराष्ट्र ने विदुर को आज्ञा दी, "द्रोणाचार्य की इच्छानुसार कुमारों के शस्त्र-नैपुण्य-प्रदर्शनार्थ उचित प्रबन्ध करा दीजिये और नगर में डौंड़ी पिटवा दीजिये जिससे सर्वसाधारण भी कुमारों का यह महत्कार्य अवलोकन करके प्रसन्नता प्राप्त करें और समझें कि हमारे रक्षणार्थ कैसे कैसे प्रबन्ध किये गये हैं।" विदुर ने ऐसा ही किया और शुभ दिन पर पुरजन समेत कौरव राज-समाज कुमारों की प्रवीणता देखने को एकत्रित हुआ। रानियां भी यथास्थान उपस्थित होकर इस शुभ अवसर की शोभा बढ़ाने लगीं और दर्शनागार प्रेक्षकों तथा अधि-कारियों से खचाखच भर गया।

उचित समय पर श्वेत पट एवं श्वेत माला पहिने हुए अस्त्र-सिन्धु-आचार्य द्रोण अश्वत्थामा तथा शिष्यों समेत दर्शनागार में पधारे। इतने में राजा की आज्ञा से विविध प्रकार के बाजे बजने लगे तथा धर्मधुरीण आचार्य ने विधिवत् क्षेत्र पूजन किया और ब्राह्मण लोग वेद मन्त्र पढ़ने लगे। अब कुमारों ने अपनी अपनी शिक्षा दिखलानी प्रारंभ की। सब से बड़े होने के कारण युधिष्ठिर ने ही सब से पहिले अपनी कला दिखलाई। इनके भाई भीम और धृतराष्ट्र पुत्र दुर्योधन एक ही दिन उत्पन्न हुए थे। स्थिर तथा चल लक्ष्यवेध में कुमारों ने अच्छी प्रवीणता प्रदर्शित की और भांति भांति के बाहनों पर चढ़-चढ़कर भिन्न प्रकार के लक्ष्यवेध में नैपुण्य दिखाया। फिर भीम और दुर्योधन गदा ले लेकर कृत्रिम युद्ध दिखाने लगे, किन्तु इसमें प्राचीन

वैमनस्य होने के कारण कृत्रिम के स्थान पर वास्तविक युद्ध होने लगा। यह देख पिता की आज्ञा से अश्वत्थामा ने बीच में खड़े होकर इन दोनों का युद्ध निवारण किया। इसके पीछे शूरशिरोमणि अर्जुन ने सब से बढ़कर अपना कौशल दिखलाया।

ज्योंही अर्जुन ने कार्य समाप्त किया कि द्वार से एकायक भुजदंड ठोंकने की वज्राघात के समान ध्वनि सुन पड़ी। सभों ने आश्चर्यित हो कर उधर ही की ओर दृष्टि लगाई और लोग इधर उधर हट गये तथा महाबली कर्ण ने मार्ग पाकर रंगस्थल में आ सब का निरीक्षण किया। उसने पांचों पाण्डवों को द्रोणाचार्य के साथ खड़े पाया और धृतराष्ट्र पुत्रों को अश्वत्थामा के पास। कर्ण के सिंह-समान शरीर पर सहज कवच एवं कर्णकुण्डल शोभा देते थे और वह सूर्य के समान प्रकाशमान हाथ में धनुषबाण लिये गुरुकाय से चरणगामी पर्वत के समान शोभित था। रंग का भली भांति निरीक्षण करके परशुराम के इस प्रिय शिष्य ने कृपाचार्य और द्रोण को सादर नमस्कार किया। 'यह कौन आया' इसी विचार में बहुत लोग चकित थे कि कर्ण ने दर्पपूर्वक ये गम्भीर वचन कहे, "हे अर्जुन! मैं अधिरथ एवं राधा का पुत्र कर्ण तुम्हारी वीरता को तृणवत् मानकर तुम्हारे दिखलाये हुए कौशल से कहीं बढ़कर नैपुण्य दिखलाता हूँ।" यह सुनकर अर्जुन को साथ ही साथ लज्जा और क्रोध ने आ घेरा तथा दुर्योधन परम प्रसन्न हुआ। अनन्तर द्रोणाचार्य की आज्ञा पाकर कर्ण ने अर्जुन के दिखलाये हुए सारे कार्य फिर से कर दिखाये।

यह देख दुर्योधन ने उसका भारी सम्मान करके कहा, "तुम मुझे भाग्यवश मिल गये; राज्य सहित मेरी जो कुछ संपत्ति है, उसका तुम यथेष्ट भोग करो।" इस महासत्कार को नमितमूर्धा होकर स्वीकार करते हुए वीर कर्ण ने अर्जुन के साथ द्वन्द्व-युद्ध करने की इच्छा प्रकट की और द्रोणाचार्य की आज्ञा पाकर वीर अर्जुन भी अमोघ कोदण्ड धारण करके युद्धार्थ सन्नद्ध हुआ। यह देख कर्ण और अर्जुन दोनों के अपने प्रिय पुत्र होने से महारानी कुन्ती बन्धु-विरोध से चलितधैर्य होकर ऐसी घबराईं कि मूर्छित ही हो गईं। विदुर ने यह

अनर्थ देख चंदनादि उपचार से महारानी की मूर्छा भंग की। रनिवास की इस गड़बड़ से खिन्न होकर आचार्य कृप ने युद्ध को अनुचित मान कर्ण से कहा, "द्वन्द्व-युद्ध शास्त्रानुसार सम वय, बल और प्रतिष्ठा युक्त पुरुषों में हो सकता है, अन्यथा नहीं। इसलिये तुम्हारे सूत-पुत्र होने के कारण तुम कुलीन अर्जुन से द्वन्द्व-युद्ध करने के योग्य नहीं।" यह सुन कर्ण ने कुछ भी न कहा किन्तु दुर्योधन ने क्रुद्ध होकर उत्तर दिया, "हे आचार्य! शास्त्रानुसार राजयोनि तीन प्रकार से समान होती है, अर्थात् शूर, कुलीन और सेनाधीश; ये तीनों समभाव से पूज्य क्षत्रिय हैं और किसी कुलविशेष में जन्म ग्रहण करने से क्षत्रियत्व की दृष्टि में कोई ऊंच नीच नहीं। यदि वीर कर्ण को राज्यरहित समझकर अर्जुन इनसे युद्ध नहीं करता, तो मैं इन्हें अंग देश का राज्याभिषिक्त भूपाल बनाता हूँ।" यह कह कर दुर्योधन ने विधिपूर्वक कर्ण का अभिषेक करके राज्य चिह्न दिये और वीर कर्ण छत्र चामरों से सुशोभित हुआ। इस सम्मान से प्रसन्न होकर कर्ण का पालक पिता अधिरथ शिथिलाङ्ग होने पर भी यष्टि के सहारे चलता हुआ कर्ण के पास पहुँचा और पुत्र ने उसके पैरों पर अपना सिर रख दिया तथा उसने कर्ण को हृदय से लगाकर अभिषिक्त शिर का आघ्राण किया और हर्ष-अश्रुओं से उसका सिंचन करके अपने को धन्य माना। युद्ध संबन्धी दो-चार साधारण वादविवाद होने के पीछे अब सूर्य भगवान अस्ताचल को पधारे और सब लोग प्रसन्न मन अपने अपने निवासस्थान को चले गये। इस दिन युधिष्ठिर को यह भय हुआ कि कर्ण के समान योद्धा पृथ्वी-मंडल पर नहीं था।

कृतास्त्र हो जाने पर भारत कुमारों ने द्रोणाचार्य से गुरुदक्षिणा मांगने के विषय में निवेदन किया और आचार्य ने कहा, "पांचाल राज द्रुपद को युद्ध में पकड़ कर तुम सब लोग मेरे पास बांध लाओ।" यह सुन कौरवी सेना ने युद्धार्थ तैयार होकर प्रस्थान किया और राजकुमारों ने द्रुपद पुर काम्पिल्य पर दलबल समेत आक्रमण किया। द्रुपद ने वीरता के साथ इनका सामना किया, किन्तु अर्जुन के आगे उसकी एक न चली और इन्होंने सहज ही में उसे पकड़ कर द्रोणाचार्य के सम्मुख उपस्थित कर दिया। अब द्रोणाचार्य की प्रतिज्ञा पूरी हुई

और इन्होंने द्रुपद की दृष्टि में भी अपना पद उसके समान करने के लिये उसका आधा राज्य उत्तर पांचाल लेकर शेषार्द्ध दक्षिण पांचाल पर उसे पुनः प्रतिष्ठित किया। द्रोणाचार्य ने कुछ दिन तक इस राज्य का पालन किया, किन्तु इसे कब और कैसे छोड़ दिया इसका वर्णन महाभारत में नहीं मिलता। जान पड़ता है कि राज्यशासन-कार्य अपने अनुकूल न पाकर द्रोणाचार्य ने थोड़े ही दिनों में द्रुपद का आधा राज्य भी उसे वापस दिया होगा। जो हुआ हो, वे युद्ध काल में रहते हस्तिनापुर ही में थे।

अब सब कुमार फिर से सुख पूर्वक हस्तिनापुर में रहने लगे और थोड़े दिनों में राजा धृतराष्ट्र ने युधिष्ठिर को युवराज पद दे दिया। युधिष्ठिर को राज्य पाने का अधिकार था अथवा नहीं इस प्रश्न पर मतभेद सम्भव है। शास्त्रानुसार निरिन्द्रिय अथवा जन्मान्ध पुरुष राज्य नहीं पा सकता, किन्तु उसके पुत्र अव्यङ्ग न होने पर पा सकते हैं। फिर भी यदि कोई राजा एक बार किसी कारण से गद्दी पा जावे तो उसके पीछे उसी के उत्तराधिकारी राज्य पावेंगे न कि उसके पहिले वाले के। यहां धृतराष्ट्र के जन्मान्ध होने से पाण्डु उचित प्रकार से राजा हुए, किन्तु उन्होंने पुत्र जन्म के पूर्व रानियों समेत स्वेच्छापूर्वक राज्य छोड़ दिया। उस काल पर्यन्त धृतराष्ट्र के भी कोई पुत्र न था। जिस नेत्र-दोष के कारण धृतराष्ट्र विचित्रवीर्य के उत्तराधिकारी नहीं हुए थे, उसी कारण पाण्डु के भी नहीं हो सकते थे। विदुर दासी पुत्र होने से राज्य के अधिकारी नहीं थे और उचित उत्तराधिकारी भीष्म राज्य चाहते न थे। इस कारण से जन्मान्ध होते हुए भी धृतराष्ट्र ही राजा हुए और तब पाण्डवों और धार्तराष्ट्रों का जन्म हुआ। पाण्डवों के जन्म काल में पाण्डु का राज्याधिकार शेष न था और थोड़े ही दिनों में धृतराष्ट्र भी पुत्रवान् हो गये। धृतराष्ट्र का उत्तराधिकारी उनका बड़ा पुत्र दुर्योधन था। इसलिए शास्त्रानुसार दुर्योधन को ही युवराज होना चाहिये था, किन्तु इन बातों का विचार उस काल हस्तिनापुर में नहीं हुआ और युधिष्ठिर युवराज बनाये गये।

पाण्डवों का दुर्योधन से बाल्यकाल से ही वैर चला आता था।

लड़कपन के खेल-कूद में ही भीम ने कई बार दुर्योधन के भाइयों को इतना तंग किया था कि इन्होंने एक बार भीम को जहर पिलाकर गंगा जी में फिंकवा दिया था, किन्तु कुछ नाग लोगों ने औषध करके बे-सुध भीम की प्राण-रक्षा की थी। पाण्डवों से ही विजय पाने के लिए दुर्योधन कर्ण का भारी सम्मान करता था। अब युधिष्ठिर के युवराज होने से उसकी राज्य-कामना मुर्झाती हुई देख पड़ी और उसने नीतिज्ञ कणिक द्वारा अपने पिता को राजनीति का उपदेश कराया। अनन्तर किसी प्रकार से विवश करके उसने धृतराष्ट्र को इस बात पर सहमत किया कि वारणावत नगर में पाण्डव लोग लाक्षागृह में फूँक दिये जायँ। इसका प्रबन्ध दुर्योधन ने पुरोचन नामक एक प्रवीण शिल्पी द्वारा किया। वारणावत को अब बरनावा कहते हैं जो मेरठ के उत्तर-पश्चिम १९ मील की दूरी पर स्थित है। पाण्डव लोग फुसलाये जाकर सैर के लिए वारणावत भेजे गये। उनके जाते समय विदुर ने धृतराष्ट्र से सारा भेद जानकर युधिष्ठिर को पहले ही से म्लेच्छ भाषा में साव-धान कर दिया। वारणावत पहुँचकर इन लोगों ने प्रकट में असावधानी रक्खी किन्तु गुप्त भाव से भागने की सुरंग तय्यार कर तथा स्वयं पुरोचन को लाक्षागृह में भस्म करके सुरंग के मार्ग से गंगातट का रास्ता लिया और विदुर की भेजी हुई नौका से गंगापार करके जंगल ही जंगल एकचक्रपुर का मार्ग पकड़ा।

कनिंगहम का विचार है कि एकचक्रपुर वर्तमान आरा नगर को कहते हैं, किन्तु यह मत संदिग्ध है। चकर नगर नामक एक स्थान वर्तमान इटावा के दक्षिण-पश्चिम सोलह मील पर स्थित है। डाक्टर फ्यूरर का मत है कि उस काल का यही एकचक्रपुर है। वहां जाते हुए पाण्डवों की हिडम्ब नामक राक्षस से भेंट हुई। इसकी बहिन हिडम्बा भीम पर आसक्त हो गई। इसी बात पर हिडम्ब का भीम से युद्ध हुआ और वह मारा गया। अब युधिष्ठिर की सम्मति से न चाहते हुए भी इन्हें हिडम्बा से विवाह करना पड़ा जिससे घटोत्कच नामक प्रतापी पुत्र उत्पन्न हुआ। पाण्डवों ने ब्राह्मण बनकर दस मास पर्यन्त माता कुन्ती समेत एकचक्रपुर में निवास किया। अन्त में वहाँ के अन्यायी शासक बक नामक राक्षस से इनका विरोध हो गया और भीम ने उसका

वध कर के नगर के संकटमुक्त किया। अब इनकी व्यास भगवान् से भेंट हुई और उनकी सम्मति से ये लोग द्रौपदी का स्वयंवर देखने के लिए द्रुपदपुर (काम्पिल्य) को गये।

मार्ग में अर्जुन का अंगारपर्ण नामक गन्धर्व से युद्ध हुआ और उसने पराजित होकर बहुत से घोड़े इनको दिये जो थाती की भाँति उसी के पास रक्खे गये। द्रुपदपुर में बहुत से राजा लोग स्वयंवर के लिए उपस्थित हुए। एक भारी धनुष सभा में रक्खा गया और कहा गया कि जो कुलीन वीर पुरुष इसे ज्यायुक्त करके ऊपर घूमते हुए मत्स्यलक्ष्य के प्रतिबिम्ब के नीचे रक्खे हुए तेल के कड़ाह में देख-कर केवल पाँच बाणों से लक्ष्य का भेद कर देवेगा, उससे द्रौपदी विवाह करेगी। सीता-स्वयंवर के समय धनुष चढ़ने पर विवाह करने के लिये प्रत्येक मनुष्य का अधिकार माना गया था किन्तु द्रौपदी के स्वयंवर में यह अधिकार केवल कुलीनों को प्राप्त था। यह अन्तर दोनों समयों के प्रचलित विचारों का अच्छा उदाह-रण है।

इस स्वयंवर में राम और कृष्ण भी उपस्थित थे। उन्होंने पाण्डवों को देख कर पहचान लिया और उनका लाक्षागृहदाह-सम्बन्धी शोक दूर हो गया। जरासन्ध, शिशुपाल, शल्य, दुर्योधन, अश्वत्थामा, प्रभृति राजाओं और वीरों ने धनुष चढ़ाने का प्रयत्न किया किन्तु ये सब विफलमनोरथ हुए। अनन्तर वीरवर कर्ण ने ज्यायुक्त करके उसपर बाण चढ़ाया किन्तु द्रौपदी ने कहा, 'मैं सूतसुत कर्ण के साथ विवाह नहीं कर सकती क्योंकि वह कुलीन नहीं है।' इस बात पर कर्ण ने प्रत्यंचा उतार कर धनुष रख दिया। इसके पीछे कई और वीरों के प्रयत्न निष्फल हुए। अन्त में उठ कर अर्जुन ने धनुष चढ़ा कर नियमानुसार पाँच बाणों से मत्स्य-लक्ष्य का निपात किया और द्रौपदी ने उनके गले में जयमाल डाल दी। अब पाण्डव लोग द्रुपद-कन्या को लेकर अपने निवास-स्थान कुलाल गृह को चले गये। कई कारणों से अर्जुन तथा माता कुन्ती की इच्छानुसार द्रौपदी का पाँचों पाण्डवों के साथ विवाह होना स्थिर हुआ। द्रौपदी तथा उसके कुटुम्बी भी इस बात पर कुछ तर्क-वितर्क करके व्यास भगवान की सम्मति

से सहमत हुए। कृष्ण-बलराम ने भी पाण्डवों से मिलकर उनके लाक्षा-गृह से बचने पर प्रसन्नता प्रकट की और सर्वसम्मति से इन्होंने ब्राह्मण वेष छोड़ कर अपना पाण्डव होना प्रसिद्ध किया। अब इन लोगों का विवाह हो गया और आपस में नियम करके इन्होंने प्रत्येक पाण्डव के लिये द्रौपदी के सालभर में दो दो महीने और १२-१२ दिन बाँट दिये। अब पाण्डव लोग प्रसन्नतापूर्वक द्रुपदपुर में रहने लगे।

लाक्षागृह के दाह से कौरवों को यह समझ पड़ा था कि पाण्डव लोग उसी में जल मरे। इसलिये सभों ने उनके सम्बन्ध में मरणोत्तर संस्कारादि भी कर डाले थे। विदुर को उनके भागने का समाचार ज्ञात था किन्तु उन्होंने इसका हाल किसी से न कहा। भीष्म और द्रोणाचार्य को पाण्डव-विनाश सुनकर बड़ा खेद हुआ और महाराजा धृतराष्ट्र भी बड़े दुःखित हुए थे। पीछे से स्वयंवर-समाचार सुनकर उनका जीवित रहना ज्ञात हुआ। इस पर महाराजा धृतराष्ट्र ने भीष्म, द्रोण, विदुर और संजय की सम्मति ली तो इन सभों ने कहा कि कुल बातों पर विचार करके आधा राज्य पाण्डवों को दे दिया जाय और आधा कौरवों के पास रहे। इसी सम्मति के अनुसार महाराजा धृतराष्ट्र द्वारा प्रेरित होकर विदुर पाण्डवों को द्रौपदी समेत द्रुपदपुर से बुला लाये और महाराजा धृतराष्ट्र की आज्ञानुसार युधिष्ठिर ने आधा राज्य लेना स्वीकार करके इन्द्रप्रस्थ (वर्तमान दिल्ली) में अपना निवास-स्थान बनाया।

अर्जुन कई कारणों से थोड़े दिन के लिये भारत-भ्रमण को निकले। इसी भ्रमण में आपने नागसुता उलूपी तथा मणिपुर-नरेश की कन्या चित्राङ्गदा से विवाह करके दोनों में एक-एक पुत्र उत्पन्न किया। उलूपी का पुत्र इरावान् हुआ तथा चित्राङ्गदा का बभ्रुवाहन। मणिपुर-नरेश के कोई पुत्र न था, इसलिये उन्होंने बभ्रुवाहन को लेकर अपना उत्तराधिकारी बनाया। घूमते हुए अर्जुन द्वारावती पहुँचे। उस काल वहाँ बलराम की बहिन सुभद्रा का स्वयंबर हो रहा था। इस कन्या-रत्न को देखकर अर्जुन का चित्त चंचल हुआ और श्रीकृष्ण की गुप्त सम्मति एवं महाराजा युधिष्ठिर की आज्ञा लेकर

इन्होंने युक्ति से सुभद्राहरण कर लिया। यह हाल सुन यादव लोग युद्धार्थ सन्नद्ध हुए किन्तु श्रीकृष्ण के समझाने पर उन्होंने अर्जुन को बुलाकर सुभद्रा के साथ उसका विवाह कर दिया। इधर शेष चारों पाण्डवों ने भी एक एक विवाह किये। पाण्डवों ने एक एक अपना अपना पुत्र द्रौपदी में उत्पन्न किया और एक एक द्वितीय स्त्री में। सुभद्रा के अभिमन्यु नामक बड़ा पराक्रमी पुत्र उत्पन्न हुआ। इस प्रकार पांडवों के दस पुत्र हुए और घटोत्कच, इरावान् तथा बभ्रुवाहन को भी मिलाने से इनकी संख्या तेरह होती है। राजा दुर्योधन के लक्ष्मण पुत्र और लक्ष्मणा कन्या हुई। कर्ण के पुत्रों में वृषसेन और वृषकेतु मुख्य थे। द्वारावती से लौट कर अर्जुन ने खाण्डवप्रस्थ नामक जंगल जला कर बहुत सी भूमि कृषि के योग्य निकाली। उस जलते हुए जंगल से आपने मय नामक दानव की रक्षा की जिसने राजा युधिष्ठिर के लिये एक बड़ी विचित्र सभा तय्यार की। इसी से जारतर, द्रोण, सारीसृक और स्तम्बमित्र नामक चार वे मन्दपाल ऋषि के पुत्र बचाये गये जो शूद्रा से उत्पन्न थे और प्रायः अन्तिम वेदर्षि हुये। इन के मन्त्र ऋग्वेद के दूसरे मण्डल में हैं। यह कथन कुम्भ कोनम म० भा० (XIII ५३,२१-२२) का है। खाण्डव-वन के कथन तैत्तिरीय आरण्यक (V १,१) पंच विंश ब्राह्मण (XXV ३,६) और शाट्यायन में भी हैं।

इस प्रकार अपने प्रताप की भारी वृद्धि देख कर श्रीकृष्ण-चन्द्र की सम्मति से राजा युधिष्ठिर ने राजसूय यज्ञ करने का विचार किया जिसमें उनको सम्राट् पद भी प्राप्त हो जाय। इस अभिलाषा का सब से बड़ा बाधक जरासन्ध ही समझ पड़ा। इसी ने श्रीकृष्ण से मथुरा का राज्य छीन कर अपने वश में किया था और सब राजाओं को जीत कर बहुत काल से यह सम्राट् पद का भोग भी कर रहा था। श्रीकृष्णचन्द्र ने विचार किया कि यदि वे भीम और अर्जुन को साथ लेकर छद्म वेष में मगधपुर जावें और जरासन्ध से द्वन्द्व-युद्ध मांगें, तो शौर्याभिमान से वह अवश्य लड़ेगा और मारा भी जायगा, नहीं तो सेना के साथ लड़ने में क्या परिणाम होगा, इसका निश्चय नहीं किया जा सकता। इस बात पर भीम तथा अर्जुन को भी साथ

देख कर युधिष्ठिर ने इसे स्वीकार किया और कृष्ण, भीम एवं अर्जुन ब्राह्मण बन कर मगधपुर पहुँचे। इन लोगों ने ब्राह्मणोचित चिह्नों के साथ बहुमूल्य वसनाभरण भी धारण किये और अपने उन्नत शरीरों को चन्दनादि से सुशोभित किया। इन्होंने जरासन्ध के महल में फाटक से न घुस कर तीन कक्षाये फलांग कर प्रवेश किया और ये लोग एकायक उस के सामने जा खड़े हुए। इनके इन अनुचित कर्मों पर क्रुद्ध न होकर सम्राट् जरासन्ध ने इन्हें पूजनयोग्य विचार कर इनसे कुशलप्रश्न किया। भीमार्जुन अपने अनुचित कर्म के कारण ऐसी सभ्यता के व्यवहार की आशा नहीं रखते थे, सो जरासन्ध की मृदुलता पर किंकर्तव्यविमूढ़ होकर अवाक् खड़े रह गये, किन्तु श्रीकृष्णचन्द्र ने बात बनाकर कहा, "हमारे दोनों साथी मौनव्रती होने से केवल रात्रि में बात कर सकते हैं।" यह सुन जरासन्ध ने इन्हें मखालय में स्थान दिया और इनके आतिथ्य का प्रबन्ध करके वह स्वयं अन्तःसदन को चला गया।

सन्ध्या को वह इन लोगों के पास फिर आया और तब इन्होंने कहा, "हम लोग अतिथि होकर दूर से आपके पास आये हैं, इसलिये जो दान मांगें वह आप कृपा कर दीजिये।" यह सुन सम्राट् ने कहा, "हे छद्मवेषी ब्राह्मणो! आप लोग यहीं बैठिये।" अब ये चारों आदमी वहीं बैठे और तब जरासन्ध ने इनके वेष की निन्दा करते हुए कहा, "स्नातक लोग गन्धमाल्य समेत नहीं फिरा करते। तुम्हारे शुण्डादण्ड समान भुजदण्ड ज्याघात से अंकित हैं और कर्मों से अब्राह्मणत्व पूर्णतया प्रदर्शित है।" यह सुन श्रीकृष्णचन्द्र ने कहा, "शत्रुसदन में अद्वार से ही प्रवेश उचित है। आपने क्षत्रियों को पकड़ कर कारागार में डाल दिया है और अब उनकी रुद्र बलि करने का भी विचार आप कर रहे हैं। अब तक हमने मनुष्य का ऐसा अपमान न कहीं देखा न सुना। आप स्वयं क्षत्रिय होकर दूसरे क्षत्रिय का पशु के समान बलिदान करना चाहते हैं, यह किस शास्त्र का विधान है, सो हमारी समझ में नहीं आता। ऐसा प्रचंड पापी समझ कर हम लोग आपके मारने के लिये यहां आये हैं। सैन्य बाहुल्य अथवा बल-दर्प से कोई मनुष्य नर-जाति का ऐसा प्रचण्ड अपकार करके

राक्षस ही कहलाने के योग्य रह जायगा। हम ब्राह्मण नहीं हैं और तुमसे युद्ध चाहते हैं। हम स्वयं वासुदेव कृष्ण हैं और ये दोनों भीमार्जुन हैं। इसलिये आप या तो सब बन्दी राजाओं को छोड़ दीजिये या हमसे लड़कर यमपुरी का मार्ग लीजिये।'

श्रीकृष्ण की ये बातें सुनकर जरासन्ध ने उत्तर दिया, "बिना युद्ध में जीते हमने एक भी राजा नहीं पकड़ा है। दुःखद जीवधारियों का दमन करना क्षत्रियों का धर्म है और मेरा विचार है कि जीतकर पकड़े हुए मनुष्य से कोई चाहे जैसा व्यवहार करे। इसलिये जिन राजाओं को देवतार्थ पकड़ रक्खा है, उन्हें किसी प्रकार न छोड़ूँगा। मैं सहसैन्य से सहसैन्य और अकेले से अकेला लड़ने के लिये सदैव सन्नद्ध हूँ तथा दो तीन से भी अकेला लड़ता हूँ।" सम्राट् से युद्ध निश्चित समझ कर श्रीकृष्ण ने पूछा, "हम तीनों में से जिसके साथ आप युद्ध करना चाहें वही सज्जित हो"। जरासन्ध ने उत्तर दिया, "अर्जुन अभी लड़का है और तुम भगोड़े हो क्योंकि मेरे भय से तुमने मथुरा छोड़कर सिन्धु की शरण ली। अतः तुम भी युद्ध के योग्य नहीं हो, सो मैं भीमसेन से लड़ूँगा।" कार्तिक की प्रथमा प्रतिपदा को युद्ध होने लगा और चौदह दिन तक बराबर मल्लयुद्ध होता गया। ये लोग दिन भर लड़ते और रात्रि को विश्राम लेते थे। चौदहवें दिन भीम ने सम्राट् जरासन्ध को स्ववश करके उसका वध किया। फिर जरासन्ध के रथ पर चढ़कर इन तीनों ने बन्दी राजाओं का मोचन करके उन्हें युधिष्ठिर के राजसूय में आने के लिए निमन्त्रित किया। इन राजाओं ने हेममणि से इनका पूजन किया। अनन्तर जरासन्धपुत्र सहदेव का राज्याभिषेक करके ये तीनों वीर इन्द्रप्रस्थ वापस आये। यज्ञसम्बन्धी शुभ दिन स्थिर हुआ और तब भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र, युधिष्ठिर एवं भीम के पदवन्दन करके तथा तीनों कनिष्ठ पांडवों से वन्दित होकर द्वारका चले गये।

थोड़े दिनों में राजा युधिष्ठिर ने अपने भाइयों द्वारा भारतविजय का विचार किया और इसलिए इन्होंने विजयार्थ चारों भाइयों को चारों दिशाओं में भेज दिया। अर्जुन उत्तर दिशा को गये, सहदेव दक्षिण को, भीम पूर्व को और नकुल पश्चिम को। अब हम महा-

भारत के अनुसार इन लोगों के जीते हुए देशों तथा राजाओं का कथन करते हैं। प्राचीन स्थानों के वर्तमान नाम जहाँ तक ज्ञात हो सके हैं कोष्ठकों में दर्ज कर दिये गये हैं।

अर्जुन ने अपनी विजय-यात्रा कुलिन्द (सहारनपुर) से प्रारम्भ की। वहाँ से उलूक के राजा वृहन्त को जीतकर आपने देवप्रस्थ नरेश सेनाविन्दु को जीता और फिर मोदापुरी के निकटस्थ सब राजाओं को हराया। वहाँ से पौरव राजा विश्वगश्व को जीतते हुए काश्मीर के राजा लोहित एवं उरग देश (जिला हज़ारा) में अभिसारीपुरी (हज़ारा) के भूपाल रोचमान को पराजित किया। फिर सिंहपुर, वाल्हीक (बलख या व्यास एवं सतलज नदियों के बीच का देश), काम्बोज (अफ़ग़ानिस्तान) तथा सुम्भ के नरेशों को जीतकर आप ऋपिक लोगों के देश में पहुँचे और विकराल युद्धानन्तर उनको वश कर सके। अनन्तर श्वेतगिरि (सफ़ेद कोह) नरेश को जीतकर शाक-द्वीप (मध्य एशिया) में आपने प्रतिविन्ध्य आदि राजाओं को पराजित किया। वहाँ से तिब्बत की ओर जाकर अर्जुन ने उस देश में घुसना चाहा। तब वहाँ के राजसेवियों ने कहा, "इस देश में भारतीय मनुष्य जीवित नहीं रह सकता, इससे तुम यहाँ मत आओ; हम लोग तुम्हारी कामना योंही पूरी किये देते हैं।" यह कहकर उन लोगों ने दिव्य भूषण वसन तथा मणिगण कर-स्वरूप देकर अर्जुन को संतुष्ट किया और तब इन्होंने मानस सरोवर जाकर ऋषियों के दर्शन किये तथा गंधर्व रक्षित देश जीत कर किंपुरुषों (शिकिम वालों) को हराया। वहाँ से हाटक, गुह्य देश जीतते हुए आपने प्राग्ज्योतिष (कामरूप उपनाम आसाम) के नरेश भगदत्त को जीतकर उससे कर लिया। उक्त देशों और नरेशों के अतिरिक्त अर्जुन ने आनर्त पति, कालकूटपति, राजा सुमंडल, किरातों, पहाड़ी जातियों वा चीनियों को जीता और फिर अन्तर गिरि, वहिर्गिरि व उपगिरि को जीतकर वामदेव, सुदाम, सुकुल, उत्तर उलूक, उत्सव संकेत की अनार्य जातियां, त्रिगर्त, कोकनद, सुभल, दरद, निष्कुट गिरि, दक्षिणी साइबेरिया और पश्चिमी चीन को पराजित किया। आपने उपर्युक्त सभी देशों के राजाओं से दंड स्वरूप कर लेकर इन्द्रप्रस्थ को प्रस्थान किया।

भीमसेन की विजय-यात्रा पांचाल देश (रुहेलखंड से काम्पिल्य तक दो भागों से) प्रारंभ हुई। वहाँ के राजा द्रुपद से साम द्वारा कर लेकर आपने कोसल (अवध) नरेश बृहद्बल तथा अवधपुरी (अयोध्या) नरेश धर्मात्मा दीर्घयज्ञ को हराया।

वहां से कुमाराधीश श्रेणिमान् तथा काशिराज सुबाहु को जीतकर आपने कुण्डिन नगर में शर्म्मक वर्म्मक नामक विदेह राजाओं को पराजित किया। अनन्तर वैदेह जनक को जीता। इन नामों से मिथिला के छोटे-छोटे राजाओं का प्रयोजन समझ पड़ता है। यहाँ से चल कर मगध (दक्षिणी बिहार) से कर लेते हुए भीमसेन ने अंग देश (भागलपूर) से कर लिया और फिर मोदागिरि (मुंगेर) और मल्ल (हजारी बाग तथा मानभूमि) नरेशों को जीतकर बङ्ग (मध्य बङ्गाल) नरेश समुद्रसेन को पराजित किया। अनन्तर ताम्रलिप्त (दक्षिणी बङ्गाल), पौंडू (उत्तरी बङ्गाल), सप्त किरात (टिपरा), तथा सुम्भ (अराकान) से कर लेते हुये भीमसेन ने मलय (पूर्वीघाट) को जीता। वहां से दशार्ण (छत्तीसगढ़), अश्व-मेधपति रोचमान, पुलिन्द (पश्चिमी बुंदेलखंड तथा सागर) पति सुमित्र, चेदि (चंदेरी) पति शिशुपाल तथा गोपाल वृक्ष के राजाओं से कर लिया। फिर वत्स (प्रयाग के पश्चिम) को जीत कर मत्स्य (अलवर तथा जयपुर) से भी कर लिया।

सहदेव ने भी मत्स्य को जीता, जिससे जान पड़ता है कि उस काल मत्स्य देश में कई राजे थे जिनमें से कुछ भीमसेन ने जीते और शेष सहदेव ने। दशार्ण देश का राजा उस समय सुधर्मा था, जिसने भीमसेन से अकेले निरायुध युद्ध किया। इन्होंने उसे जीतकर अपना सेनापति बना लिया। पौंड्र नरेश वासुदेव था। ताम्रलिप्त और सुम्भ के राजे म्लेच्छ कहे गये हैं और यह भी कथित है कि भीमसेन ने सागर तट के म्लेच्छों को जीता। भीम ने भद्रक, गोपालाक्ष, उत्तरी कौशल नरेश, मल्लट, सुक्ति मति गिरि, सुपर्श के क्रथ, मत्स्य, मलद, मदधर गिरि, सोमदेव, वत्स भूमि नरेश भर्ग, निषाद पति, मणिमान, भगवान् पर्वत, दक्षिणी मल्ल, शक, बर्बर, प्रसुम्भ (मिदनापूर), दंडधर, गिरि व्रत, कौशिकी, कच्छ नाथ, महौजस, समुद्रसेन,

चन्द्रसेन, पर्वत के अनार्य राजे व लौहित्य देश (दक्षिणी आसाम) भी जीते। अनार्य राजाओं ने बहुमूल्य भेंटें दीं। इस प्रकार पूर्व दिशा के राजाओं को जीतकर भीम उनसे कर लेकर इन्द्रप्रस्थ वापस आये।

सहदेव ने इन्द्रप्रस्थ से चलकर सूरसेनाधिप अर्थात् माथुर नरेश को हराया। इससे जान पड़ता है कि जरासन्ध ने मथुरा का राज्य बहुत जल्द छोड़ दिया था और कोई दूसरा यादव वहां का राजा हो गया था। यही वह सूरसेनाधिप कहा गया है। मथुरा से सहदेव ने मत्स्य देश (अलवर और जयपुर) में घुसकर कई राजाओं से कर लिया और तब राजपूताना के एक अन्य राजा दन्त वक्र को हरा कर राजा सुमित्र को भी पराजित किया। वहां से गोशृंग गिरि के निषाद राजे जीते गये जिनमें श्रेणिमान् भी एक था। नरराष्ट्र को जीत कर सहदेव ने ननिहाल कुन्तिभोज (मालवा में एक राज्य) में प्रेम से कर लिया। वहाँ से चम्बल नदी के किनारे बसने वाले जम्भकसुत को हराकर सेक (चम्बल और उज्जैन के बीच) देश जीतते हुए सहदेव ने अवन्ती (उज्जैन) के राजा विन्द और अनुविन्द को परास्त किया। फिर आपने भोजकट (बरार में अमरावती या इलिचपुर) नरेश भीष्मक को जीतकर वेणा (कृष्णा) नदी तट, महाकान्तार जंगल, प्राकोटक नाटक (करनाटक), हेरम्ब, मारुध, नाचीन, अर्बुक तथा वात के राजाओं को हराया। अनन्तर पुलिन्द (पश्चिमी बुंदेलखंड तथा सागर) के कुछ राजाओं को जीत कर तथा माहिष्मती के राजा नील से कर लेकर किष्किन्धा, (बीजानगर के निकट) पाण्ड्य, दंडकवासी सूरसेन, सुरभिपट्टन (मदरास), ताम्रद्वीप, तिमिंगिल, कर-हाट, केरल (मलावार), लंका तथा कोंकण को जीतते हुए और भरुकच्छ, सौराष्ट्र (उपनाम काठियावाड़) के राजाओं से कर लेते हुए सहदेव इन्द्रप्रस्थ वापस आये।

कहा गया है कि किष्किन्धा पुरी के राजा उसकाल भी द्विविद और मयन्द नामक दो वानर थे। इन लोगों के साथ सहदेव का सात दिन युद्ध हुआ। ये वानर रामचन्द्र के समकालिक द्विविद मयंद से इतर थे। संभव है कि द्विविद मयंद वंश-परंपरागत नाम हों। राजा भीष्मक

का सहदेव के साथ दो दिन तक युद्ध हुआ। दक्षिण के द्वीपों में उस काल म्लेच्छ, राक्षस और निषादों का वास था। सुरभिपट्टन, ताम्रद्वीप, तिमिङ्गिल, करहाट, केरल तथा कोंकण के राजाओं ने दूतों से संदेश सुनकर बिना युद्ध किये ही कर दे दिया। सहदेव ने पतच्चर (मेवाड़), कौशल, वेणुमत, नालकेय, हिरम्बक, व गरुध नामक तीन जातियों, कई जंगली नरेशों, वातापिपुर (बादामी), त्रैपुर, अक्रिति, सुराष्ट्र, सुर्पारक, तालका, पुण्ड्र, द्रविड़ आदि जातियों, सामुद्रीय अनार्यों, काला पर्वत, रमक पर्वत, पसन्न उद्र, केरल, आंध्र, तलवन, कलिंग, अतविपुरी और यवनपुर को भी जीता।

नकुल ने रोहीतक (रोहतक) सैरीसक, आक्रोश, शिवि (सवान, सिन्धु नदी के दक्षिण तट पर), त्रिगर्त (जालन्धर), पंच करपट, मध्यमकेय (मध्यमेश्वर, पंच केदारों में से एक) और वाटधान देशों को जीता। अन्तिम तीनों के राजे ब्राह्मण थे।। अनन्तर पुष्करण्य, सिन्धुतट के म्लेच्छ और सरस्वती तट के शूद्र राजाओं को जीतकर तथा अभीरों को वश में करके नकुल ने मत्स्य देश के कुछ राजाओं को जीता। फिर कटपुर, पंचनद (पंजाब), हारहूण, रामठ, मद्र (रावी और चनाब के बीच, राजधानी साकल), सिन्ध, द्वारिका, मालव और दशार्ण के राजाओं से कर लिया गया। मद्र देश के शल्य नकुल के मामा थे और द्वारका के श्रीकृष्ण पूर्ण सहायक। अतः इन दोनों ने प्रेम पूर्वक भेंट दी। रोहीतक के निवासी मत्तमयूर कहे गये हैं और उनसे घोर युद्ध होना लिखा है। सैरीसक पहाड़ था। सिन्ध देश में उस काल म्लेच्छों का निवास था। नकुल ने महेत्थ, अम्बष्ट, अमर कोट, बाण ज्योतिष, दिव्यकट, द्वारपालपुरी, रमथ, पश्चिमी कई नरेशों, पल्हव, बर्बर, किरात, यवन और शकों को भी जीता। इनके द्वारा प्राप्त भेंटें १० हजार ऊँटों पर लाद कर आई थीं। इस भांति नकुल ने भी पश्चिम दिशा को जीत कर इन्द्रप्रस्थ में प्रवेश किया।

इन विजयों से समझ पड़ता है कि भारतवर्ष उस काल सैकड़ों माण्डलिक राजाओं में बँटा हुआ था। ठेठ पूर्व, ठेठ दक्षिण, सिन्ध

और पंजाब के कुछ प्रान्तों में अनार्यों के राज्य थे, किन्तु शेष भारत-वर्ष में सब कहीं आर्य राजे फैले हुए थे। अनार्यों में म्लेच्छ, निषाद, राक्षस, वानर, बर्बर, यवन, शक, काम्बोज, किरात और आभीर नाम्नी जातियों की प्रधानता थी। विजय यात्राओं में कहीं के भी राजा का वध नहीं हुआ तथा शिशुपाल, शल्य, कृष्ण, कुन्तिभोज नरेश आदि संबन्धियों ने बिना लड़े ही कर दे दिया। कर्ण को जीतने की शक्ति भीम में नहीं थी किन्तु उसने भी नाम मात्र को युद्ध करके कर देना ठीक समझा। हस्तिनापुर में बरौआ दुर्योधन से कर लेने कोई गया भी नहीं। इन बातों से जान पड़ता है कि यद्यपि राजसूय यज्ञ के करने वाले को सम्राट् पद मिलता था, तथापि यज्ञ के कारण लोग उसका विशेष विरोध नहीं करते थे।

उचित समय पर महाराजा युधिष्ठिर ने सब राजाओं को बुलाकर यज्ञारम्भ किया। इस अवसर पर सबों ने फिर से रत्न, मणि आदि भेंट में दिए। इस बार पाण्डवों की ओर से भेंट लेने का कार्य राजा दुर्योधन ने किया। यज्ञ होते समय एकत्रित महाशयों के पूजन में यह प्रश्न उठा कि सब से प्रथम पूज्य कौन है और भीष्म पितामह के मतानुसार श्रीकृष्ण को सर्वश्रेष्ठ समझ कर राजा युधिष्ठिर ने सहदेव के द्वारा सब से पहले उन्हीं का पूजन कराया। यह देख राजा शिशु-पाल बड़ा क्रुद्ध हुआ और कहने लगा, कि शास्त्रानुसार ऋत्विक्, आचार्य, राजा, हितू, सम्बन्धी और गुणी पुरुष ही पूज्य हैं। उसने कृष्ण में इन सब गुणों का अभाव बतला कर भीष्म, पाण्डवों और कृष्ण की बड़ी निन्दा की, तथा वत्सासुर एवं पूतना-विनाश के कारण श्रीकृष्ण को गो-स्त्रीघातक भी कहा। बहुत देर तक वादविवाद होता रहा, किन्तु जरासन्ध के विनाश के कारण शिशुपाल का क्रोध शान्त न हुआ। उसने भगवान् वासुदेव को सौ से अधिक गालियां दीं। इस पर श्रीकृष्ण ने नृप-समाज को संबोधित करके कहा, "इस की माता मेरी फूफी थी, जिससे वचनबद्ध होने के कारण मैंने शिशुपाल के सौ अपराध पर्यन्त क्षमा करने का प्रण किया था। इस संख्या के बढ़ जाने से अब मैं इसे उचित दंड देता हूँ।" यह कहकर भगवान् ने शिशुपाल को प्रचार कर चक्रद्वारा उसका शिर-छेदन किया। अनन्तर

यज्ञ कार्य निर्विघ्न समाप्त हो गया और सब आगन्तुक लोग अपने अपने स्थानों को वापस गये।

मय दानव ने युधिष्ठिर की सभा ऐसी विचित्र बनाई थी कि उसमें जल थल तथा अन्य बातों का भ्रम हो जाता था। राजा दुर्योधन को उसमें कुछ भ्रम हो गया जिस पर द्रौपदी तथा भीम ने उपहास करके कहा कि अंधों के लड़के भी अंधे ही होते हैं। यह बात या तो दुर्योधन ने सुन ली अथवा उनके कानों तक पहुँचाई गई। इससे तथा पाण्डवों की भारी श्रीवृद्धि से उन्हें क्रोध और ईर्ष्या उत्पन्न हुई। हस्तिनापुर जाने पर अपने मामा शकुनि की सलाह से महाराजा धृतराष्ट्र की किसी प्रकार से आज्ञा लेकर उन्होंने राजा युधिष्ठिर को हस्तिनापुर बुलाया और वहाँ छल के पाँसे रचकर शकुनि की सहायता से युधिष्ठिर का सर्वस्व जुए में जीत लिया। राजपाट हार कर राजा ने अपने चारों भाइयों को भी हार दिया और फिर अपने को भी हार कर द्रौपदी तक को फण पर रक्खा। इस बात पर भीष्म द्रोणादि ने उनको बहुत धिक्कारा किन्तु सौबल ने पाँसे फेंक कर द्रौपदी को भी जीत लिया। अब राजा दुर्योधन की आज्ञा से कुमार दुःशासन बलात् पकड़ कर द्रौपदी को सभा में घसीट लाये। रानी ने यह प्रश्न उठाया कि जब राजा पहले अपने को हार चुके थे, तब पीछे से उसे नहीं हार सकते थे। भीष्म और द्रोण ने इस बात का निर्णय द्रौपदी के पक्ष में करना उचित न समझा और इसका फ़ैसला युधिष्ठिर ही पर रख दिया। फल यह हुआ कि सभा में कौरव राजकुमारों ने इस अनाथ राज-महिला के भारी अपमान करने तथा उसे वस्त्र-विहीना बनाने के प्रयत्न का कलंक अपने ऊपर लिया। यह दशा देख धृतराष्ट्र ने पाण्डवों के दासत्व का मोचन करके जीती हुई उनकी सारी संपत्ति फेर दी। इतना करके वे भीष्म द्रोण सहित सभा से उठ गये और तब उसी समय अथवा कुछ दिनों के पीछे फिर से द्यूत खेला गया जिसमें यह निश्चय हुआ कि राजा युधिष्ठिर रानी द्रौपदी तथा भाइयों समेत १२ वर्ष वनवास करके तेरहवें वर्ष कहीं गुप्त रीति से रहें। यदि तेरहवें वर्ष कौरव लोग उन्हें न खोज सकें तो उनका राज्य वापस मिल जावे, नहीं तो फिर इसी नियमानुसार वे वनवास करें।

अब पाण्डव लोग सर्वस्व छोड़कर उपर्युक्त नियमानुसार जंगल को चले गये और कौरवों ने उनके राज्य पर अधिकार जमाया। जंगल में जाकर भगवान श्रीकृष्णचन्द्र ने उनसे मुलाक़ात की और कहा, "मैंने राजसूय यज्ञ में जो शिशुपाल का वध किया था, उससे क्रुद्ध होकर कलिङ्गनरेश राजा शाल्व मेरी अनुपस्थिति में द्वारावती (द्वारिका) पर आक्रमण करके पुर तथा उपवनों को भग्न करता हुआ बहुत प्रकार के दुर्वचन कहकर मुझे खोजने चला गया। अपने नगर में लौट आने पर मैंने जब यह हाल सुना, तब सेना सहित उसकी खोज करता हुआ मैं समुद्र के निकट पहुँचा। उसी स्थान पर प्रचंड युद्ध हुआ जिसमें शाल्व मारा गया और उसकी सेना ध्वस्त हुई। इसी कारण मैं इन्द्र-प्रस्थ नहीं आ सका, नहीं तो न द्यूत होने पाता और न आप पर विपत्ति आती। अब चौदहवें वर्ष पृथ्वी कौरवों का रुधिर पान करेगी।" इस प्रकार पांडवों को सान्त्वना देकर तथा सुभद्रा आदि को कुछ राजकुमारों सहित साथ लेकर श्रीकृष्णचन्द्र द्वारका चले गये। राजा युधिष्ठिर ने माता कुन्ती को हस्तिनापुर में ही विदुर के पास छोड़ दिया था। अब राजा ने द्रौपदी के अतिरिक्त शेष रानियों को उनके पुत्रों समेत अपने अपने मायके भेज दिया और पांचों द्रौपदेयों को लेकर द्रुपदपुत्र धृष्टद्युम्न काम्पिल्य को चले गये। तेरह वर्ष के पीछे कौरवों से युद्ध अनिवार्य समझ कर महाराजा युधिष्ठिर को भीष्म, द्रोण, कर्ण और कृपाचार्य के भारी पराक्रमों से चिन्ता हुई। इस पर अर्जुन ने हिमालय पर जाकर पूर्ण धनुर्विद्या सीखने का निश्चय किया। इसलिए अपने भाइयों तथा रानी द्रौपदी की आज्ञा लेकर उन्होंने हिमाचल पर जा शिव नामक किरात से धनुर्विद्या सीखी और फिर इन्द्र नामक एक प्रतापी पर्वतीय राजा के यहाँ पांच वर्ष निवास किया। उस राजा के हितार्थ अर्जुन ने उसके शत्रु कालिकेय (असीरिया वालों) तथा निवातकवची दैत्यों का नाश किया।

इधर राजा युधिष्ठिर ने रानी द्रौपदी और भाइयों समेत लोमश और धौम्य के उपदेश से तीर्थयात्रा करने का निश्चय किया। इन्द्र सेनादि परिचारक गण उनके साथ अस्त्र, शस्त्र, रथ, आयुध आदि लेकर चले। इस यात्री समाज ने काम्यक वन में त्रिरात्र निवास

करके स्थान स्थान पर ठहरते हुए यथा समय नैमिषारण्य में पदार्पण किया। यहीं पर धन, तथा गोदान करके ये लोग गंगा यमुना के संगम स्थल प्रयाग पहुँचे, जहाँ सभों ने विधि से क्षौर कराया तथा अक्षयवट, भारद्वाजाश्रम और भृगु तीर्थ के दर्शन किये। अनन्तर ये लोग हेमकूट (रत्नगिरि जिला पटना में) गये और कौशिकी नदी (कोसी) के पार उतरे। यहां ऋषि विश्वामित्र का आश्रम विद्यमान था जहां विधि पूर्वक स्नान करके यह यात्रीसमाज गंगासागर (गंगा और समुद्र के संगम स्थल) पर पहुँचा। यहां स्नानादि कर्म से निवृत्त होकर ये लोग समुद्र ही के किनारे चल कर कलिंग (उड़ीसा के दक्षिण और द्रविड़ के उत्तर) देश की ओर प्रस्थित हुए। मार्ग में वैतरणी नदी को पार करके समुद्र के किनारे चलते हुए ये पुण्य क्षेत्र गोदावरी पर पहुँचे। यहां विधिपूर्वक स्नान करके तथा ब्राह्मणों को दान देकर महाराजा युधिष्ठिर द्रविड़ देश को चले। इन्होंने अगस्त्यनारी (जिला नासिक में) और शूर्पारक (सूरत, सिधार अथवा कोल्हापुर के दक्षिण में कोई स्थान) आदि तीर्थों को देखते हुए प्रभास क्षेत्र में (गुजरात में सोमनाथ मन्दिर के निकट) पदार्पण किया। वहां वृष्णिकुल के मुख्य मुख्य वीर पुरुष पाण्डवों से मिलने आये और उनकी दशा पर शोक मनाते रहे। श्रीकृष्णचन्द्र से विदा होकर पाण्डव लोग वैडूर्य पर्वत और नर्मदा नदी को गये।

अनन्तर सैन्धवारण्य पहुँच कर इन्होंने पुष्कर क्षेत्र में स्नान किया। फिर यमुना, सरस्वती, विपाशा आदि नदियों को पार करते हुए ये लोग कश्मीर में गये जो मानसरोवर का द्वार कहा गया है। यहां इन्होंने प्रख्यात वातिक खंड देखा जहां से गंगा नदी बहती है, जहां मैनाक पर्वत विद्यमान है और जिसे श्वेत मन्दिर पर्वत सुशोभित करता है। इसके उपरान्त यह समाज गन्धमादन पर्वत (जो बदरिकाश्रम से उत्तर पूर्व कुछ दूर से आरंभ होता है) पर गया। यहां से आगे की यात्रा बहुत कठिन देख कर और द्रौपदी से उसका होना असंभव समझ कर धर्मराज चिन्ताकुल हुए। तब राजा तथा द्रौपदी की आज्ञा लेकर भीमसेन ने हिडम्बा-पुत्र घटोत्कच को बुलाया। उसने बहुत से अनुयायियों समेत यात्रा में योग दिया और अशक्त

लोग राक्षसों के कन्धे पर बैठ बैठ कर चले और मार्ग में बहुत से देश पार किये गये। इस प्रकार जाते हुए इन लोगों ने रम्य पर्वत कैलास के दर्शन किये और उसी के समीप नर-नारायण का आश्रम देखा। इसी स्थान पर इन की यात्रा समाप्त हुई, अर्जुन ने आकर राजा के दर्शन किये और अपनी शस्त्र-शिक्षा की पूर्णता बतला कर उन्हें प्रसन्न किया। अब ये सब लोग फिर इधर उधर जंगलों में बने रहे।

उधर राजा दुर्योधन ने विष्णु यज्ञ करने का विचार किया और तब कर्ण ने उनके लिये भारत में दिग्विजय की। अनन्तर विधिपूर्वक यज्ञ पूर्ण हुआ। थोड़े दिनों में राजा युधिष्ठिर के वनवास का बारहवां वर्ष समाप्त हुआ और तेरहवें में मत्स्यपुर जाकर पाण्डव लोग नियमानुसार छद्म वेष में राजा विराट् की नौकरी करने लगे। यहां विराट् के साले कीचक ने द्रौपदी पर मुग्ध हो और उसे दासी मात्र समझ कर स्ववश करने के अनेक प्रयत्न किये, यहां तक कि भीमसेन को विवश होकर गुप्त रीति से उसका वध करना पड़ा। होते होते इनका अज्ञात वाला तेरहवां वर्ष भी समाप्तप्राय हुआ और ये प्रकट होने वाले ही थे कि कुछ कौरव राजकुमारों ने राजा विराट् के गोधन का हरण कर लिया। इस काल अर्जुन क्लीब वेष में विराट् पुत्री उत्तरा को नाचना गाना सिखाते थे।

अब इन्होंने युद्ध में कौरवों को पराजित किया और यह गुप्त भेद खुल गया। तब लोकापवाद के भय से विराट् ने अपनी कन्या उत्तरा का विवाह इन्हीं से करना चाहा, किन्तु अर्जुन ने यह कह कर कि बालिका उत्तरा मुझे सदैव आचार्य मानती थी और मैं उसे पुत्री समान देखता था, उसका विवाह अपने साथ अनुचित माना और विराट् का आदेश सफल करने को अपने ही पुत्र अभिमन्यु के साथ पाणिग्रहण करा दिया।

अब पाण्डवों ने प्रकट होकर दुर्योधन से अपना राज्य मांगा और बल संचित करना आरंभ किया। यह सुन राजा दुर्योधन ने भी अपने पक्षियों को निमंत्रित किया और दोनों ही ओर सेना एकत्रित होने लगी। राजा युधिष्ठिर की ओर वृष्णि वंशी सात्यकि, शिशुपाल

पुत्र चेदिराज धृष्टकेतु, जरासन्ध-पुत्र सहदेव और जयत्सेन, राजा पाण्ड्य और राजा विराट् एक एक अक्षौहिणी सेना लेकर आये, तथा पांचालराज द्रुपद दो अक्षौहिणी सेना लाये। कोई राजा नील भी इनके पक्ष में थे जो युद्ध में अश्वत्थामा द्वारा मारे गये। उधर राजा दुर्योधन की ओर प्राग्ज्योतिष पति भगदत्त, बाल्हीक-नरेश सोमदत्त, मद्रपति शल्य, भोजनरेश कृतवर्म्मा, सिन्धु नरेश जयद्रथ, काम्बोजनरेश श्रुतायु, माहिष्मती-नरेश नील, अवन्ति के राजा विन्द, अनुविन्द और केकय-राजा सौदार्य आये। भगदत्त नरकासुर नामक एक ब्राह्मण का पुत्र था, किन्तु उसकी सेना में चीनी योद्धा भी थे (म० भा० II २५,१००८; V १८, ५८४)। महाभारतीय युद्ध के पीछे इस के पुत्र वज्रदत्त ने भी अश्वमेध के सम्बन्ध में अर्जुन से युद्ध किया। दुर्योधन के सहायकों में से विन्द और अनुविन्द के पास दो अक्षौहिणी थीं और शेष सहायकों के पास एक एक अक्षौहिणी। एक अक्षौहिणी में हाथी, घोड़े, रथ आदि के अतिरिक्त प्रायः १,६४,००० युद्धकर्ता मनुष्य होते हैं। इनके अतिरिक्त दक्षिण पथ, कुरु जांगल, पंजाब, मरुभूमि, रोहित कारण्य (करणवती उपनाम केन नदी के समीप वाले) कालकूट, अहिच्छत्र, दोआब (अन्तर वेद) आदि देशों के अनेक छोटे मोटे राजे दुर्योधन की ओर आये। अतः दुर्योधन के मुख्य सहायकों की सेना ११ अक्षौहिणी थी और इसके अतिरिक्त अमुख्य सहायकों की तथा घरू सेना विशेष थी। कृतवर्मा और सात्यकि दोनों यादव थे, किन्तु इन्होंने एक दूसरे से प्रतिकूल पक्ष लिये। इससे प्रकट होता है कि इसी काल से यादवों में दो प्रतिकूल दल हो गये थे, जिनका वैमनस्य श्रीकृष्ण के होते हुए भी न दूर हो सका। इसी विभ्राट् ने समय पर यादवों का विनाश किया जैसा कि आगे ज्ञात होगा। मद्रपति शल्य पाण्डवों के मामा थे, किन्तु सत्कार करके दुर्योधन ने उन्हें अपनी ओर कर लिया। उन्होंने शेष पंजाबी नरेशों का साथ देकर भी दुर्योधन का पक्ष लिया। देशों के अनुसार पाण्डवों के साथी हुये मत्स्य, चेदि, कारूप, काशी, दक्षिण पांचाल, पाश्चात्य मागध तथा पाश्चात्य यादव गुजरात सुराष्ट्र से। उधर दुर्योधन की ओर पंजाबी, उत्तरी, पूर्वी एवं दाक्षिणात्य शक्तियां थीं। इन में प्राग्ज्योतिष, चीन, किरात

(उत्तर पूर्व), काम्बोज, यवन, शक, मद्र, केकय, सिन्धु, सौवीर, भोज, दक्षिणपथ, आन्ध्र (दक्षिण पूर्व), माहिष्मती और अवन्ती भी थे।

पाण्डवी दल का सेनापति द्रुपद पुत्र धृष्टद्युम्न हुआ और कौरवी दल के भीष्म पितामह। कई बार दोनों राजाओं के बीच दूत आये गये और युधिष्ठिर ने कहला भेजा कि या तो आधा राज्य दे दो अथवा पाँच प्रान्त ही सही। दुर्योधन ने राजा धृतराष्ट्र तथा अन्य सुहृदों के समझाने पर भी सन्धि का प्रस्ताव न माना और साक्षात् श्रीकृष्ण के दूतत्व करने पर कहा, "बिना युद्ध के सूच्यग्र भी जमीन न दूँगा।" पलटते हुए श्रीकृष्णचन्द्र ने कर्ण से कहा, "तुम कुन्ती के ज्येष्ठ पुत्र होने से पाण्डु के भी सहौढ़ पुत्र हो। इसलिए सूतजपन छोड़कर पाण्डवपद ग्रहण करो तथा सब से बड़े भाई होने से राज्य भी लो और युधिष्ठिर को युवराज बनाओ।" कर्ण ने इतना भारी उत्कोच भी धर्म के आगे तुच्छ समझा और उत्तर दिया, "अब तक संसार में परमधर्मी और दानी का यश भोग करते हुए मैं अपने मित्र दुर्योधन से विश्वासघात सा परम गरिष्ठ पातक कैसे कर सकता हूँ?" श्रीकृष्ण के विफल मनोरथ रहने पर माता कुन्ती ने भी कर्ण के पास जाकर यही प्रस्ताव किया और अपने माता के पद का महत्त्व भी उसी में मिला दिया। कर्ण के पिता सूर्य ने भी इसी बात की सम्मति दी। माता कुन्ती ने यह भी कहा, "जब तुम और अर्जुन एक हो जाओगे, तब दुर्योधन अवश्यमेव सन्धि कर लेगा और क्षात्र-विनाश मिट जायगा।"

इन गौरवपूर्ण सम्मतियों को सुनकर भी कर्ण दुर्योधन का साथ छोड़ना बड़ा ही गर्ह्य कर्म मानता रहा और हाथ जोड़ कर बोला, "हे माता! वीरपुरुष को राज्य-सुखार्थ धर्म छोड़ना शोभा नहीं देता। राजा दुर्योधन ने मुझे मन्त्री, भाई, भट, सखा सभी मानकर पाला है और मेरे ही बल के सहारे वह पाण्डवों को पराजित करना चाहता है। ऐसे स्वामी को ऐसे समय छोड़ना कीर्तिविनाशक और महान् अपराधकर है। अतः मैं आपकी आज्ञा न मानने में विवश हूँ किन्तु मानसिक भय के मिटाने को यह सच्चा प्रण करता हूँ कि अर्जुन को छोड़कर आपके शेष चारों पुत्रों

को नहीं मारूंगा, जिससे पांचों पुत्र जीवित रहेंगे अर्थात् अर्जुन के न होने से कर्ण और कर्ण के न होने से अर्जुन विद्यमान रहेगा।" यह सुन कुन्ती ने भावी को अमिट जानकर प्रिय वचन कह कर घर का रास्ता लिया और चलते समय इतना कह दिया कि युद्ध के समय इस प्रण को भूल मत जाना। अब दोनों ओर से युद्ध की अंतिम तय्यारी हुई और दोनों सेनायें युद्धार्थ कुरुक्षेत्र में पधारीं।

जब कौरवों तथा पाण्डवों की सेनायें युद्धार्थ एक दूसरी के सम्मुख उपस्थित हुईं तब अर्जुन को निकट के सम्बन्धियों से युद्ध करने में बड़ा क्षोभ उत्पन्न हुआ। भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र ने इनका सारथ्य ग्रहण किया था सो उन्होंने यह शैथिल्य देख गीता का ज्ञान समझा कर इन्हें युद्धार्थ सन्नद्ध किया। १८ दिन तक घोर युद्ध हुआ। इन १८ दिनों में कौरवी दल का नेतृत्व भीष्म पितामह ने दस दिन किया, द्रोणाचार्य ने पाँच दिन, कर्ण ने दो दिन और शल्य ने आधे दिन। इसके अलावा बीच में कई बार मिलाकर ८-१० दिन युद्ध बन्द रहा। इतने दिनों में अनेकानेक युक्तियों से पाण्डवों ने सारा कौरवी दल अशेष कर दिया और प्रधान पुरुषों में केवल कृपाचार्य, कृतवर्मा तथा अश्वत्थामा बच गये। उधर पाण्डवों की सात अक्षौहिणियों में भी केवल एक ही बची। दुर्योधन को मरणप्राय दशा में देखकर अश्वत्थामा ने महाक्रोध किया और बचे बचाये कौरवी दल की सहायता से रात में यह पाण्डवी दल भी अशेष कर दिया। अब पुरुष प्रधानों में पाण्डवों की ओर भी उन पाँच भाइयों के अतिरिक्त श्रीकृष्ण, सात्यकि और धृतराष्ट्र का वैश्यापुत्र युयुत्सु बच गये।

युद्ध में भीष्म का पराक्रम सब से बढ़ा रहा और द्रोणाचार्य ने सबसे अधिक पुरुष-प्रधानों का वध किया। कर्ण और अश्वत्थामा ने भी अच्छा पुरुषार्थ दिखलाया। कर्ण ने अर्जुन से इतर चारों पाण्डवों को जीतकर अपने प्रणानुसार छोड़ दिया पर अर्जुन के हाथ उसका विनाश हुआ। पाण्डवों की ओर अर्जुन सर्वप्रधान थे। उन्हीं के बल तथा श्रीकृष्ण की युक्तियों से राजा युधिष्ठिर को विजय प्राप्त हुई। युद्ध समाप्त होने पर अश्वत्थामा ने राजा धृतराष्ट्र की प्रदक्षिणा करके दूर देश का प्रस्थान किया तथा कृत-

वर्मा द्वारावती चले गये और कृपाचार्य हस्तिनापुर जाकर अपने घर में पूर्ववत् रहने लगे। महाभारत का युद्ध अगहन और पूस में हुआ। भरद्वाजवंशी बहुत से ब्राह्मण एवं अन्य कुल आज तक भारतवर्ष में हैं। वे सब अश्वत्थामा के ही वंशधर हैं। इनके अतिरिक्त कहते हैं कि दक्षिण का पल्लव राजकुल अश्वत्थामा वाली शाखा का भारद्वाज वंशधर था तथा प्रसिद्ध वाकाटक सम्राट् भी इसी कुल के थे।

राजा युधिष्ठिर ने अब पूरे कौरवी राज्य पर अधिकार जमाया। इन्होंने राजा धृतराष्ट्र का सम्मान पूर्ववत् स्थिर रक्खा तथा कृपाचार्य, विदुर और संजय का भी यथेष्ट मान किया। भीष्म पितामह युद्ध में बहुत घायल हो गये थे किन्तु उसके पीछे कई मास पर्यन्त जीवित रहे। इन्होंने राजा युधिष्ठिर को नीति का उपदेश दिया जिसका विशद वर्णन महाभारत के शान्ति पर्व में है। महाभारत के युद्ध में इतना बड़ा जन-विनाश हुआ कि इस पर लोगों को विश्वास नहीं होता था क्योंकि प्रायः ३५ लाख की हताहत संख्या पर विश्वास करना अबतक असंभव सा समझ पड़ता था, किन्तु अब योरोपीय महायुद्ध की हताहत संख्या को देखते हुए महाभारत में लिखित संख्या को कोई असंभव नहीं कह सकता।

राजा युधिष्ठिर ने राज्य पाने के पीछे अश्वमेध किया। अर्जुन हयरक्षक होकर गये और इन्होंने प्रायः सभी राजाओं को बड़ी सुगमता पूर्वक परास्त कर दिया। मणिपुर में इनका अपने पुत्र बभ्रुवाहन के साथ युद्ध हुआ और पुत्रस्नेह वश ये उससे हार भी गये किन्तु पीछे से मेल हो गया और उसने घोड़ा छोड़ दिया। प्रायः १२ वर्ष हस्तिनापुर में युधिष्ठिर के समय में रहकर महाराजा धृतराष्ट्र गान्धारी, कुन्ती और विदुर समेत वनवासार्थ चले गये। थोड़े दिनों के पीछे यज्ञाग्नि से बढ़कर उस वन में भारी पावकप्रकोप हुआ जिसमें कुन्ती और गांधारी सहित महाराजा धृतराष्ट्र जल मरे। विदुर का शरीरपात उनसे पहले ही हो चुका था।

राजा युधिष्ठिर ने दुर्योधन के पीछे ३६ वर्ष राज्य किया। इस वर्ष यादवों की घरू अशान्ति ऐसी उभड़ी कि थोड़े ही कारण से उनमें युद्ध हो पड़ा। इस काल वे लोग ऐसे मदोन्मत्त हो गये कि राजधर्म

छोड़ कर ब्राह्मणों पर भी अत्याचार करने लगे थे जिससे कई ब्राह्मणों ने शाप भी दिये थे। फल यह हुआ कि श्रीकृष्णचन्द्र के सामने ही कृतवर्मा और सात्यकि के पक्षियों में युद्ध होने लगा। श्रीकृष्ण के पुत्र पौत्रों ने सात्यकि का साथ दिया और जब भोजान्धक वंशियों ने सात्यकि, प्रद्युम्न, अनिरुद्ध, गद, चारुदेष्ण आदि कुमारों तथा सरदारों का वध ही कर डाला, तब श्रीकृष्णचन्द्र भी मुशलास्त्र लेकर युद्ध में प्रवृत्त हुए। फल यह हुआ कि थोड़े ही समय में यदुवंशियों का सर्वनाश हो गया। यह देख बलरामजी ने समुद्र में घुसकर अपना शरीर छोड़ दिया। श्रीकृष्णचन्द्र प्रभास के निकट एक वृक्ष के नीचे उदास मन लेटे थे कि एक बहेलिये ने मृग समझ इनके ऊपर विषाक्त बाण चला दिया जिसमें इनका भी शरीरपात हो गया। यह दुर्घटना देख दूसरे दिन कृष्ण-पिता वसुदेव भी मारे शोक के स्वर्गवासी हुए। यह बड़ी विचित्र बात है कि अयोध्यावासी रामचन्द्र के पिता दशरथ तथा द्वारकावासी श्रीकृष्ण के पिता वसुदेव दोनों ही पुत्र-वियोग से मरे। परशुराम के अतिरिक्त भारत में यही दो सर्वोत्कृष्ट वीर हुए हैं।

जान पड़ता है कि आपस की फूट के अतिरिक्त कुछ शत्रु लोगों ने भी यादवों पर अत्याचार किये क्योंकि अर्जुन के पास दूत भेजते समय श्रीकृष्णचन्द्र ने कहला भेजा था कि तुम्हारे द्वारिका पहुँचने के सात दिन पीछे समुद्र इस नगरी को डुबो देगा। द्वारिकापुरी गुजरात प्रान्त में समुद्र तट पर है। शायद बेलजियम और हालैण्ड की भाँति यहाँ भी मोटी भीतें बना कर समुद्र से कुछ भूमि ली गई थी और नगर का मुख्य भाग उन्हीं भीतों के सहारे समुद्र से निम्नतर भूमि में बसा था। शत्रुओं ने शायद इन्हीं भीतों को फोड़ कर नगर को डुबोना चाहा था और इसी के लिये अर्जुन के आने की अवधि दी गई थी। यदि केवल समुद्र द्वारा नगर डूबने की बात होती, तो यादव लोग सारा राज्य छोड़ने के स्थान पर कुछ दूर हटकर नगर बसाने का प्रयत्न करते। समुद्र द्वारा केवल प्राकृतिक शक्तियों से नगर के डूबने में अवधि भी नहीं हो सकती थी। जान पड़ता है कि धृतराष्ट्र वंशी, पंजाबी राजाओं की सहायता से पंचनद में बसे होंगे। ३६ वर्षों में बल सम्पादित करके भोजों आदि की सहायता से उन्होंने

यादवों को मारा तथा अर्जुन को हराया। काठियावाड़ के काठी क्षत्रिय अपने को धृतराष्ट्र वंशी कहते भी हैं। काठी लोग सिकन्दरी आक्रमण के समय पंचनद में रहते थे। यादव विनाश गान्धारी के शाप से हुआ, ऐसा महाभारत में भी कथित है। जान पड़ता है कि इन्हीं के वंशधर और मायके वाले यादव विनाश कर्ता मुख्य शत्रु होंगे। इसलिये शत्रु-शंका का विचार निश्चित समझ पड़ता है।

दारुक सूत के मुख से श्रीकृष्ण का यह सन्देशा सुनकर अर्जुन अकेले रथ पर चढ़कर द्वारिका पहुँचे और महाशोक ग्रस्त हो मृत यादवों की दाहक्रिया किसी प्रकार समाप्त करके सात दिन के भीतर धन, स्त्री, बच्चों, सेवकों, पुरजनों आदि को, तथा बहुत सा सामान साथ ले कुरुक्षेत्र को रवाना हुए। इसके अनन्तर ही द्वारावती समुद्र के पेट में लीन हो गई। इस दुर्घटना के पीछे जान पड़ता है कि कुछ यादव लोग दक्षिण को चले गये और शेष अर्जुन के साथ उत्तर को। समय पर दाक्षिणात्य यादवों ने उस देश पर अपना शासन जमाया जिसका वर्णन यथास्थान आवेगा। इधर हतशेष यादव-समाज लिये हुए अर्जुन जिस काल पञ्चनद में ठहरे तब निस्सहाय समझ कर लूट के लालच से इन पर आभीरों ने आक्रमण किया। राजसूय सम्बन्धी दिग्विजय में नकुल ने आभीरों को परास्त किया था। सम्भव है कि उसी का बदला लेने के लिए आभीरों ने कौरवों से मिलकर यह आक्रमण किया हो। शोकमूर्छित होने के कारण अर्जुन इनका सामना न कर सके और इन लोगों ने यादवों का सारा धन तथा सहस्रों स्त्रियाँ लूट लीं। बचे-खुचे सामान तथा मनुष्यों को साथ लेकर परम शोक-विह्वल अर्जुन कुरुक्षेत्र पहुँचे।

वहां से हार्दिक्य पुत्र तथा भोजपुर की स्त्रियों को अर्जुन ने मातृकावत नगर में स्थान दिया तथा इन्द्रप्रस्थ में आकर श्रीकृष्ण के प्रपौत्र वज्र को वहां का राजा किया और सात्यकि के पुत्र को सरस्वती-तट का देश दिया। इन तीनों नवीन यादव राजाओं को अर्जुन ने राजनीति का उपदेश किया और द्वारका के पुरजन वज्र को सौंप दिये। मातृकावत बरार के निकट यादवों का पुराना प्रान्त था। पीछे वह भोजों का हो गया था। इन्हीं भोजों की शत्रुता से यादव विनाश

हुआ। ऐसे भीजों को अर्जुन ने मातृकावत दिया होगा, क्योंकि वह पहले ही से उन्हीं का था। अब अक्रूर की स्त्रियां तथा सत्यभामा आदि ने संन्यास ग्रहण करके जङ्गल का रास्ता लिया एवं रुक्मिणी, हेमवती, जाम्बवती और शैव्या ने अपना अपना शरीर अग्नि में जला दिया। वसुदेव की रानियों में से देवकी, रोहिणी, मदिरा और भद्रा पति के साथ सती हो गई थीं। इस प्रकार यादवों के पांच लाख योद्धा और असख्य अन्य पुरुष आपस में ही लड़कर धराशायी हुए। इसके पीछे अर्जुन ने व्यास भगवान् की शरण में जा सब हाल कहकर मन्त्र पूछा। यह सुन उन्होंने सम्मति दी कि अब तुमको भी भाइयों समेत महाप्रस्थान करना चाहिये।

अनन्तर राजा युधिष्ठिर के पास जाकर अर्जुन ने सारा वृत्तान्त कह सुनाया और व्यास भगवान् की अनुमति भी कही। पाँचों पाण्डवों तथा द्रौपदी की भी सम्मति महाप्रस्थान ही की हुई। बभ्रुवाहन को छोड़ पाण्डवों के बारहों पुत्र महाभारत-युद्ध में मर ही चुके थे और इन पांचों भाइयों में केवल अर्जुन का पौत्र परीक्षित एक मात्र सन्तान रह गया था जो अभिमन्यु और विराट पुत्री उत्तरा का पुत्र था तथा महाभारत-युद्ध के कुछ मास पीछे ही उत्पन्न हुआ था। अब इसी युवक परीक्षित का राज्याभिषेक करके महाराजा युधिष्ठिर ने इसे नीति सिखलाई और सारी प्रजा इसी को सौंप दी। प्रजा लोगों ने इनसे महाप्रस्थान-संकल्प छोड़ने को बहुत कुछ कहा, किन्तु इन लोगों ने उसको न छोड़ा। राजा युधिष्ठिर ने युयुत्सु को राज्य-प्रबन्ध का भार दिया और कृपाचार्य से कहा, "मैं बालक परीक्षित आपको सौंपे जाता हूँ।" फिर रानी सुभद्रा से कहा, "तुम अपने पौत्र का नीति से पालन करना और इसकी धर्म से प्रीति सदा स्थिर रहे, ऐसा प्रयत्न करना।" इस प्रकार प्रजा एवं कुटुम्ब का प्रबन्ध करके द्रौपदी समेत पांचों पांडवों ने सुन्दर वस्त्रालङ्कारों का त्याग करके वल्कल वसन धारण किये। उस काल सभों के हाहाकार से पृथ्वी आकाश गूँज गये। इन लोगों ने अपने ऊपर से अग्नि उतार कर पानी में डाल दी, फिर पूर्व दिशा को प्रस्थान किया। राज-परिवार तथा प्रजा लोग इनके साथ बहुत दूर तक चले गये। तब इन्होंने किसी प्रकार समझा बुझा कर पुरवासियों को

फेरा और फिर परीक्षित, कृपाचार्य और युयुत्सु को भी वापस किया। इनको जाते ही देख अर्जुन की स्त्री नागसुता उलूपी गंगा में धँसकर मर गई और बभ्रुवाहन की माता चित्रांगदा मणिपुर को चली गई। शेष राजमहिलायें रोती हुई परीक्षित को घेर कर हस्तिनापुर वापस आईं।

पूर्व दिशा को चलते हुए राजा युधिष्ठिर, द्रौपदी और भाइयों समेत समुद्र के किनारे पहुँचे। वहाँ पर एक ब्राह्मण की सम्मति से अर्जुन ने गाण्डीव धनुष और अक्षय तूणीर समुद्र में डाल दिये। वहाँ से ये पश्चिम दिशा को चले। क्रम से गुजरात में जाकर इन्होंने जलमग्न द्वारिका का निरीक्षण किया। द्वारिका को प्रणाम करके ये उत्तर दिशा को चले और हिमाचल पार करके इन्होंने वहीं से मेरु का दर्शन किया और कुछ बालू-पूर्ण पृथ्वी को पार करके बर्फिस्तान को देखा। सुमेरु पर्वत कोई कोई काकेशस उपनाम काफ़ पहाड़ को कहते हैं और कोई रुद्र हिमालय को। इसका दूसरा नाम पंच पर्वत भी है। इसी में द्रौपदी समेत ४ पांडव मृत हो गये और केवल युधिष्ठिर बचे जो पर्वत पार करके इन्द्रपुरी को चले गये। यह इन्द्रपुरी अथवा अमरावती कौन सा स्थान है इसका निर्णय सुगम नहीं है। कुछ पंडितों का विचार है कि महाभारत-युद्ध वास्तव में कुरु सृंजयों की लड़ाई थी। इन दोनों वंशों की मन मैली शतपथ ब्राह्मण (वैदिक अनुक्रमणिका II पृ० ६३) में लिखी है। पतंजलि (IV १, ४) नकुल सहदेव को कौरव कहते हैं। दस ब्रा० जातक (४९५) में इन्द्रप्रस्थ कोरव्य कहा गया है और लिखा है कि युधिष्ठिर वंशी का वहां राज्य था। आश्वलायन गृह्य सूत्र (III ४) में वैशम्पायन महाभारताचार्य्य हैं। उनका नाम तैत्तिरीय आरण्यक (I ७, ५) तथा पाणिनीय अष्टाध्यायी IV ३, १०४) में भी है।

महाभारत के समय का यह सूक्ष्म वृत्तान्त अब यहीं समाप्त होता है और इसके विषय में आधुनिक विचारों का कुछ दिग्दर्शन मात्र शेष है। इसी समय के पीछे से भारत में कलियुग का प्रारम्भ माना गया है। कलि के आरंभ का ठीक समय क्या है इस पर पण्डितों में कुछ मतभेद है। कुछ ज्योतिषियों का विचार है कि

महाभारत का युद्ध ६५३ गत कलि में हुआ। पुराणों में कलि का आरंभ कहीं कहीं महाभारत युद्ध या श्रीकृष्ण का मरणकाल माना गया है और कहीं परीक्षित का राजत्वकाल। अन्तिम दोनों समय प्रायः एक ही समझने चाहिये।

ब्राह्मण ग्रन्थों में राजा जनमेजय और परीक्षित के नाम हैं किन्तु पाण्डवों के नहीं। इसी से कुछ लोग संदेह करते हैं कि यदि पाण्डव ऐसे प्रतापी थे तो उनके नाम ब्राह्मण ग्रन्थों में क्यों नहीं आये? इसी लिए उनका विचार है कि पाण्डव लोग थे ही नहीं। यह तर्क हमको बिलकुल निस्सार समझ पड़ता है। ब्राह्मण ग्रन्थ धार्मिक हैं न कि ऐतिहासिक। उनमें राजकुलों का वर्णन केवल प्रसंगवश कहीं कहीं आ गया है। इसलिये उनमें किसी नाम विशेष के न आने से उसके अभाव सम्बन्ध में कोई निश्चित निष्कर्ष नहीं निकल सकता। इस तर्क का पूर्ण बल मान लेने पर भी इतना ही निष्कर्ष कष्टकल्पना से निकाला जा सकता है कि शायद पाण्डवों का इतना प्रताप वास्तव में न हो जितना महाभारत में वर्णित है। किसी वर्णन का अत्युक्तिपूर्ण होना एक बात है और बिल्कुल निर्मूल होना दूसरी। ब्राह्मण ग्रन्थों में देवकी-पुत्र कृष्ण का नाम आया है तथा परीक्षित एवं जनमेजय के कई बार कहे गये हैं। बौद्धों के निकाय नामक ग्रन्थों में लिखा है कि प्राचीन काल से पुराणों के सुनने की सर्वसाधारण में प्रथा थी। इससे जान पड़ता है कि प्राकृत पुराण प्रायः नवीं शताब्दी बी० सी० से चले आते थे। भगवान् वेदव्यास ने अपने शिष्य लोमहर्षण को इतिहास रक्षित रखने का कार्य दिया था। प्राचीन राजकुलों के वंश वृक्ष आज तक भली भाँति रक्षित हैं। ऐसी दशा में यह समझ में नहीं आता कि थोड़े ही काल में नितान्त झूठी कथायें पुराणों जैसे पवित्र ग्रन्थों में स्थान पाकर जन-समुदाय में पूज्य भाव से सुनी जातीं। अतः महाभारत की कथा को मिथ्या कहना हमारी समझ में अयोग्य है। यह बात दूसरी है कि उसके वर्णनों के कुछ अंश अत्युक्तिपूर्ण समझे जायँ।

वर्तमान महाभारत में बहुत स्थानों पर ऐसे कथन आये हैं कि राजा दुर्योधन के अधिकांश कार्य अधर्मपूर्ण थे तथा पाण्डव लोगों ने

अधिकतर दशाओं में धर्म का ही पालन किया था। यदि यही बात यथार्थ होती तो भीष्म पितामह, द्रोणाचार्य, कृपाचार्य, कर्ण और विकर्ण (दुर्योधन का भाई) से प्रसिद्ध धर्मात्मा पुरुष इस घराऊ युद्ध में दुर्योधन का साथ कभी न देते। इससे ज्ञात पड़ता है कि महाभारत में दुर्योधन का अधर्म तथा पाण्डवों का धर्म बहुत बढ़ाकर लिखे गये हैं। यदि भीष्मादि दुर्योधन को अधर्मी समझते होते तो उसकी नौकरी छोड़कर चले गये होते, न यह कि द्रोण अपना राज्य तक छोड़ कर हस्तिनापुर में डटे ही रहते। जिस काल राजा दुर्योधन मरणावस्था में पड़े थे, तब अश्वत्थामा ने प्रत्यक्ष कहा था कि मुझे पिता के बध से इतना कष्ट नहीं हुआ जितना कि आपकी इस दशा से। स्वामि-कष्ट से खिन्न होकर ही अश्वत्थामा ने पाण्डवी दल को अशेष किया और फिर मरते हुए दुर्योधन के कान में पाण्डव-पुत्रों और द्रुपद-पुत्रों के बध का सुखद समाचार चिल्लाकर सुना दिया। इस पर दुर्योधन मरने का दुःख भूल हर्षगद्‌गद्‌ हो गया और बोला, "तुम भीष्म, द्रोण और कर्ण से भी अधिक कार्य करके आज मुझसे उऋण हो गये।"

जिस स्वामी से उसके धर्मवान् सेवक इतने अनुरक्त हों, वह अधर्मी कभी न रहा होगा। यदि वह गर्हित कर्म करने वाला होता, तो पूरा कौरव कुल उसी की ओर कभी न होता। राजा शन्तनु के भाई बाल्हीक देश के राजा थे। उनके लिये कौरव पाण्डव दोनों समान थे किन्तु वे भी पुत्र पौत्रों समेत दुर्योधन के सहायक हुए। बाल्हीक का पौत्र भूरिश्रवा बड़ा यज्ञकर्ता, धर्मी और योद्धा था। वह भी दुर्योधन ही की ओर आया। स्वयं नकुल के मामा शल्य ने दुर्योधन का पक्ष स्वीकृत किया। पाण्डवों की ओर वे ही लोग हुए जो उनसे बहुत घनिष्ठ सम्बन्ध रखते थे। जितने तटस्थ लोग थे वे सब दुर्योधन ही की ओर आये। इस कथन के उदाहरण स्वरूप भगदत्त, बिन्द, अनुविन्द, नील आदि एवं उपर्युक्त अन्य लोग हैं। जिस काल राजा दुर्योधन मरणावस्था के निकट था, तब उसने भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र से वाद करते हुए अपने पक्ष की धार्मिकता और प्राबल्य का प्रतिपादन किया था। इस पर आसमान से उस पर सुगन्धित पुष्पों की वृष्टि हुई और धन्य-धन्य शब्द हुआ तथा साध्यों और अप्सराओं ने दुर्योधन

का समर्थन किया, जिन बातों से पांडवों सहित स्वयं भगवान् का मुँह लटक आया। इस पर आपने भी स्वीकार किया कि यदि पाण्डव लोग अधर्म न करते तो लोकपालों के समान पराक्रमी कौरव सरदार सर्वदा अजेय रहते अथच पांडवों का पराभव होता।

ये कथन महाभारत के गदा पर्व में आये हैं। इनके असम्भव भाग निकाल डालने से प्रकट है कि उस काल सर्वसाधारण की सम्मति दुर्योधन की धार्मिकताके अनुकूल थी। अग्नि पुराण में यह भी लिखा है कि पाण्डव शक थे, अर्थात् पीछे से आर्य माने गये। जब पाण्डु हिमाचल में थे तभी पाण्डवों का जन्म हुआ ही था सो ये पहाड़ियों के पुत्र थे ही। उस काल के इन्द्र एक पहाड़ी राजा थे क्योंकि अर्जुन भी उनसे पहाड़ ही पर मिले थे। एक स्त्री से कई भाइयों के विवाह की चाल कुछ हिमाचल वालों में अब भी है। द्रौपदी का विवाह ऐसा ही था। पाण्डव लोग महात्मा अवश्य थे किन्तु उपर्युक्त बातें भी पुराणों में उनके प्रतिकूल पाई जाती हैं। इन बातों से समझ पड़ता है कि इस युद्ध में न्याय दुर्योधन ही की ओर था और पाण्डवों के विजयी होने से धीरे धीरे उनकी महिमा अधिक हो गई, यहाँ तक कि दुर्योधन का पक्ष धर्महीन कहा जाने लगा। कुल बातों पर विचार करने से यही निष्कर्ष निकलता है कि पाण्डवों के अस्तित्व पर सदेह करना अनुचित है। ब्राह्मण ग्रन्थों के पढ़ने से भी विदित होता है कि परीक्षित के निकटस्थ पूर्व पुरुषों में कोई भारी घटना हुई थी। यदि महाभारत का युद्ध वास्तव में केवल पाञ्चालों द्वारा कौरव-विजय होता, जैसा कि कुछ समालोचकों का कथन है, तो पुराणों में वास्तविक विजेता को दबा कर कृत्रिम पाण्डवों की विजय-प्रशस्ति बढ़ाने का कोई कारण न था और न ऐसा मिथ्यावाद अति शीघ्र पुनीत इतिहास का पवित्र रूप पा सकता था। इसी वंश के राजा संवर्ण को पांचालों ने जीता था सो उसका भी विस्पष्ट कथन महाभारत में विद्यमान है।

युधिष्ठिर के समय हम देखते हैं कि आर्य-सभ्यता का विस्तार दक्षिण में भी वैसा ही हो गया था जैसा कि उत्तर में। इस काल महाकान्तार वन पूर्णतया आर्यों से बस गया था, जिसमें अनेकानेक

राजे थे, जिनको सहदेव ने राजसूर्य के समय जीता। अतः इस समय में आर्यसभ्यता बढ़ चुकी थी।

राजा दुर्योधन का दामाद कृष्ण-पुत्र शाम्ब था। इसने शाकद्वीपी ब्राह्मण लाकर मुल्तान में बसाये और वहां सूर्य्य मन्दिर बनवाया। इन लोगों का भी दुर्योधन के वंशधरों से मेल रहा होगा। अर्जुन पर आक्रमण पंचनद में हुआ था जो मुल्तान के निकट है। समय पर दुर्योधन के वंशधर लोग दक्षिण की ओर बढ़कर सौराष्ट्र देश में जा बसे, जो इन्हीं के नाम पर काठियावाड़ कहलाने लगा, क्योंकि इन लोगों की जातीय संज्ञा काठी है। इस जाति के कई राजे अब भी काठियावाड़ में राज्य करते हैं। महाभारत के भारी युद्ध से कौरव-वंश में जो फूट पड़ गई थी, वही इनके पतन का कारण हुई, क्योंकि पांडवों की अधीनता में रहना पसन्द न करके धृतराष्ट्र के वंशधर पश्चिम को चले गये, जिससे इनका बल विभक्त होकर दोनों भाग बलहीन हो गये। काठी लोग सौराष्ट्र में पश्चिम पञ्जाब से आये हैं, यह निश्चित है। ये लोग अब भी अपने को धृतराष्ट्र-वंशी कहते हैं। इसी कौरव-पाण्डव-विच्छेद से कुरुवंश के बलहीन हो जाने के कारण इनके द्वारा पराजित जरासन्ध-वंश समय पर इनसे बढ़ गया, जिससे बहुत काल के लिए भारत में मगध की महत्ता स्थापित हुई जैसा कि हम आगे लिखेंगे।

इसी स्थान से महाभारत पर्यन्त भारतीय इतिहास समाप्त होता है और आगे हम कलि के राजवंशों का वर्णन करेंगे। केवल इतना कहना शेष है कि महाभारत के समय में दूसरों के अधिकारों का मान बहुत अधिक होने लगा था। कई राजाओं ने अन्यों को पराजित करके सम्राट् पद पाने का प्रयत्न किया, किन्तु किसी राजा ने दूसरे का राज्य नहीं छीना। इस अच्छे गुण से एक भारी दोष भी उत्पन्न हुआ कि भारत छोटे छोटे राज्यों में विभक्त रहा और सामर्थ्य रखते हुए भी कई महाराजाओं ने सार्वभौम राज्य स्थापित न किया जिससे देश का बल न बढ़ा और महापुरुषों के सार्वभौम प्रभाव प्रायः उन्हीं के शरीरों के साथ अस्त हो गये और उनके उत्तराधिकारियों को न मिले। इस कथन के उदाहरण-स्वरूप सुदास, रामचन्द्र, जरासन्ध,

युधिष्ठिर और श्रीकृष्ण हैं, जिनके उत्तराधिकारी सोमक, कुश, सहदेव, परीक्षित और वज्र नाममात्र के प्रतापी रह जाते हैं। यदि अकबर की भाँति ये लोग भी सार्वभौम राज्य स्थापित कर जाते, तो जहाँगीर, शाहजहाँ के समान इनके अयोग्य सन्तान भी सार्वभौम पद से बहुत शीघ्र वञ्चित न होते। केवल मौर्य्यों ने इस प्रणाली का सम्मान नहीं किया जिससे उन शासकों में कई एक बहुत प्रभावशाली हुए। भारतीयों ने आर्यसभ्यता-गृहीत राजाओं के राज्य निष्कारण नहीं छीने। इन लोगों में युद्धों के कारण राज्यलोभ से इतर होते थे। कालिदास ने कहा भी है कि यहाँ के राजे राज्य-लोभ से विजय न करते थे वरन् केवल यश के लिये। अत: हम देखते हैं कि कभी कभी अच्छे सिद्धान्त भी उचित से अधिक बल पाकर देश का विनाश कर देते हैं।

महाभारत के पीछे द्रोण पुत्र अश्वत्थामा भारतीय २८ वेदव्यासों में एक हुये तथा इनके वंशधर वाकाटक समय पर भारतीय सम्राट् हुये और अन्य पल्लव वंशधर प्राय: छै शताब्दियों तक कांची राज्य के शासक रहे। अश्वत्थामा से ही भरद्वाज गोत्री कई ब्राह्मण वंश भी चले। अपने समय के सप्तर्षि में भी अश्वत्थामा की गणना हुई। दुर्योधन के वंशधर अब तक काठियावाड़ में कई नरेश हैं। श्रीकृष्ण के वंशधर कई पुश्तों तक माथुर नरेश रहे तथा दक्षिण में कई शताब्दियों तक एक अन्य शाखा शासक रही और अन्त में अलाउद्दीन द्वारा पराजित हुई। अर्जुन और कर्ण वंशियों वाले राज्यों के कथन आगे आवेंगे।

सोलहवाँ अध्याय

आदिम कलिकाल

९१४ से ५६३ बी० सी० तक

महाभारत के समय में हम लिख आये हैं कि चन्द्रवंशियों में तीन घराने प्रधान थे, अर्थात् मागध, कौरव, और यादव। मागधों का नेता जरासन्ध सम्राट् हुआ था किन्तु कौरवों ने उसे जीत कर युधिष्ठिर को सम्राट् बनाया। यादवों का घराना एक प्रकार से नौ बढ़िया था और उसका महत्व श्रीकृष्णचन्द्र के साथ बढ़ कर उन्हीं के साथ लुप्तप्राय हो गया। पुराणों में वज्र के वंशधरों में केवल प्रतिबाहु और सुचारु के नाम लिखे हैं जो उनके पुत्र और पौत्र थे। श्रीभागवत के अनुसार महाराजा वज्र ने इन्द्रप्रस्थ छोड़ मथुरा को राजधानी बनाया। जान पड़ता है कि जब जनमेजय के समय में नागों की अवनति हुई तभी कौरवों के मित्र वज्र ने अपने कुल की पुरानी राजधानी मथुरा प्राप्त की। वर्तमान जैसलमेर-नरेश का घराना वज्र का वंशधर है, किन्तु इसकी उन्नति बहुत पीछे से सम्बन्ध रखती है। आदिम कलि-काल में वज्र का कोई भी वंशधर महत्ता को न प्राप्त हुआ। रामचन्द्र का घराना महाभारत-काल में बृहद्बल, बृहद्क्षत्र, उरुक्षेप आदि पर अवलम्बित था। इन लोगों ने उस काल कोई महत्ता प्रकाशित न की और अपने संकुचित राज्य की रक्षा पर ही ध्यान दिया। मागध घराना राजा बृहद्रथ के कारण बार्हद्रथ राजकुल कहलाता था। इनके प्रतिनिधि सहदेव, सोमाधि आदि ने भी कोई गरिमा न दिखलाई। राजा द्रुपद का पांचाल राजकुल उनके पौत्र धृष्टकेतु से ही समाप्तप्राय हो गया। हैहयों में भी इस

काल कोई प्रभाव न देख पड़ा। जान पड़ता है कि भारत-युद्ध और यादव-विनाश से यह प्राचीन राजकुल ऐसे थकित-पराक्रम हो गये थे कि थोड़े से धक्के से ही भरभरा कर गिर पड़े। जिन घरानों के राज्य जीवित भी रहे उनकी दशा मृतप्राय रही। पुराणों में आदिम कलिकालिक तीन राजाओं के वर्णन और शेष की संख्या मात्र लिखी है।

पौरव-कौरव-परीक्षित वंश

पार्जिटर के अनुसार महाभारतीय युद्ध ९५० बी० सी० के लगभग हुआ, तत्पश्चात ३६ वर्ष राज्य करके पाण्डवों ने महा प्रस्थान किया और अर्जुनात्मज अभिमन्यु का पुत्र परीक्षित हस्तिनापुर में सम्राट् हुआ। वायु पुराण के अनुसार परीक्षित का जन्म महापद्मनन्द से १०५० वर्ष पूर्व हुआ, तथा वे महाभारतीय युद्ध के समय गर्भ में थे। महाभारत उनका राजत्व काल ६० वर्ष बतलाता है और यह भी कहता है कि गद्दी पाने के समय वे ३६ वर्ष के थे, एवं अन्त पर्यन्त, अर्थात् ९६ वर्ष की आयु तक, मृगयाशक्त रहे। इन कथनों से इनका राजत्व काल उचित से बढ़ा हुआ समझ पड़ता है। राय-चौधरी महाशय की सम्मति है कि पौरव कुल में एक ही परीक्षित हुए, दो नहीं। इनका नाम अथर्ववेद, ऐतरेय ब्राह्मण, शतपथ ब्राह्मण और महाभारत में है। श्रेष्ठ राजा थे। मद्र राजकुमारी मद्रावती से विवाह हुआ। इनके समय राज्य के कुरु जांगल, कुरु और कुरुक्षेत्र नामक तीन भाग थे। तैत्तिरीय आरण्यक इसे पुरु भारत वंश कहता है। महाभारत के अनुसार मृगया के सम्बन्ध में शृंगी ऋषि के पिता के गले में मृत सर्प डाल कर ये पुत्र द्वारा शापित हुए। जब कृष्ण के द्वारिका जाने पर जरासन्ध ने मथुरा पर अधिकार किया और उसके मरणोपरान्त यह अधिकार शिथिल हुआ, सम्भवतः तभी नागों ने वहां राज्य जमाया। महाभारतीय युद्ध में पूर्ण पराजय पाने से पंजाबी रियासतें बिलकुल शिथिल पड़ गईं, ऐसा समझ पड़ता है, क्योंकि तक्षशिला में नागों का राज्य स्थापित हुआ। वे मथुरा पर भी अधिकृत हुए और परीक्षित तक का सफल सामना कर सके, जिससे जान

पड़ता है कि हस्तिनापुर तक पञ्जाब में उनका सामना करने वाला कोई न था। इन्हीं से बिगाड़ होने पर तक्षक द्वारा राजा परीक्षित मारे गए। नागों का मुख्य राज्य तक्षशिला में था। महाभारत में तक्षकनामक नाग के काटने से मृत्यु लिखी है, किन्तु प्रयोजन नाग सरदार का है।

सम्राट जनमेजय और वंश

परीक्षित के सन्तान निम्नानुसार हुए:—

परीक्षित

- जनमेजय
  - शतानीक
    - अश्वमेधदत्त
      - अधिसीमकृष्ण
        - निचक्षु (कौशाम्बी गए)
- कक्षसेन
  - अभिप्रतारिन,
    - वृद्धद्युम्न,
      - रथगृत्स (इन्द्रप्रस्थ में रहे)
- उग्रसेन
- श्रुतसेन
- भीमसेन
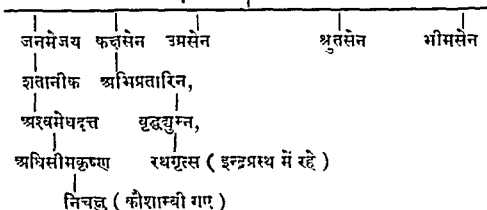
निचक्षु और रथगृत्स के पीछे कौरवों का महत्व गिर गया। ऐतरेय ब्रा०, (१४) में वे राजा मात्र थे।

जनमेजय भारी सम्राट् हुए। इन्होंने नागों को हरा कर तक्षशिला पर भी अधिकार जमाया। शायद इन्हीं के विजयों से नागों का माथुर राज्य गिर गया और वहाँ कृष्ण के प्रपौत्र वज्रनाभ यादव का अधिकार जमा। उन्होंने नागों के जीतने में जनमेजय की सहायता की होगी, क्योंकि इन दोनों के मित्र राज्य थे। अनन्तर पितृ बध से क्रोधित जनमेजय ने खोज खोज कर नाग सरदारों का वध किया। वासुकि कुलज नीलरक्त, कौणप, पिच्छल, शल, चक्रपाल, हलीमक, कालवेग, प्रकालगन, सुशरण, हिरण्यबाहु, कक्षक और कालदन्तक सरदार राजा जनमेजय की कोपाग्नि में जल कर स्वाहा होगए। इनके अतिरिक्त तक्षक पुत्र शिशुरोम और महाहनु मारे गये तथा पुच्छाण्डक, माण्डलक, उच्छिभ, छरभ, भंग, शिली, सलकर, मुक, प्रवेपन और

मुद्‌गर नामक तक्षक वंशी अन्य सरदार भी मरे। और भी ऐरावत, कौरव्य, धृतराष्ट्र आदि के वंशधर असंख्य नागों का वध हुआ (महाभारत)। जनमेजय ने नागवंश को लुप्तप्राय कर दिया और शायद इस पाप के विमोचनार्थ नाग-यज्ञ भी किया। नागराज वासुकि ने अपने भागिनेय आस्तीक को भेज कर जनमेजय से बहुत कुछ विनती कराई। तब इस नागारि ने शेष नाग कुल पर कृपा की। वायु और ब्रह्माण्ड पुराणों में लिखा है कि मथुरा में एक दूसरे के पीछे सात नाग राजे हुए। कालिया नाग को श्रीकृष्ण ने उस प्रान्त से खदेड़ा था। जरासन्ध के समय में अथवा उससे कुछ पीछे किसी शौरसेन राजा ने वहां राज्य किया था और तब नागों का अधिकार जमा था। यह प्रभाव जनमेजय और वज्र ने लुप्त करके वहां फिर से यादव राज्य स्थापित किया। परीक्षित के समय में तक्षशिला और कश्मीर पर भी नागों का अधिकार कथित है। अब तक्षशिला का राज्य जनमेजय के अधिकार में आया।

ब्राह्मण ग्रंथों में जनमेजय भारी विजेता लिखे हैं। महाभारत में वे तक्षशिला जीतते हैं। पञ्चविंश ब्राह्मण में भी उनका सर्प सत्र लिखित है। ऐतरेय ब्राह्मण का कथन है कि जनमेजय सार्वभौम राजा होना चाहते थे। तक्षशिला जीतने से नानिहाल मद्रदेश में भी उनका प्रभाव समझ पड़ता है। यह मध्य पञ्जाब में था। एक पौरव नरेश सिकन्दर से लड़े। Ptolemy टालेमी पाण्डवों को साकल (सियालकोट) का शासक बतलाता है। जनमेजय ने दो अश्वमेध किए। शतपथ ब्राह्मण कहता है कि एक में इन्द्रदेवापिशौनक ऋत्विज थे तथा ऐतरेय ब्राह्मण दूसरे का ऋत्विज तुरकावषेय को बतलाता है। गोपथ ब्राह्मण के समय जनमेजय एक प्राचीन शूर समझे जाते थे। किसी-किसी का यह भी विचार है कि ये यज्ञकर्ता दो पृथक जनमेजय हो सकते हैं। रामायण II ६४, ४२ में वे प्राचीन भारी नरेश थे। शतपथ तथा ऐतरेय ब्राह्मण, उनकी राजधानी आसन्दीवन्त कहते हैं। उधर महाभारत, रामायण II (८६) तथा पाणिनीय (२,१०, १) अष्टाध्याय में हस्तिनापुर राजधानी है। सम्भवतः लखनऊ इलाहाबाद या दिल्ली शिमला की भाँति उनकी दो राजधानियाँ हों। जनमेजय के

भाई भीमसेन, उग्रसेन तथा श्रुतसेन शतपथ ब्राह्मण, XIII (५, ४, ३) और शांख्यायन श्रौतसूत्र, XVI (९, ७,) में कथित हैं। महाभारत में उनके कुछ भाइयों का होना उल्लिखित है। वायु तथा मत्स्य पुराणों में निचक्षु तक सब के नाम हैं। इनके समय हस्तिनापुर गंगा में बह गया और कई सौ मील पूर्व हट कर कौशाम्बी बसाई गई। शांख्यायन श्रौतसूत्र का कथन है कि कौरव कुरुक्षेत्र से खदेड़े गए। छान्दोग्य उपनिषत् मट्ची (वर्षा के पत्थर या टीडी) द्वारा कुरु देश का उजाड़ होना कहता है। राय चौधरी का कथन है कि जनमेजय के पीछे राज्य के दो भाग हो गए, जिनमें मूल शाखा हस्तिनापुर में रही, तथा जनमेजय के भाई कक्षसेन के वंशधर इन्द्रप्रस्थ में स्थापित हुए। यह शाखा कौशाम्बी बसने के पीछे तक बनी रही। जनमेजय के पीछे कौरवों पर भारी विपत्तियाँ आईं। एक राजपुत्र तथा बहुतेरी प्रजा पूरब की ओर गईं (राय चौधरी)। पार्जिटर ने पौराणिक कथनों के आधार पर लिखा है कि निचक्षु दक्षिण पांचालों तथा सृंजयों से मिल कर कौशाम्बी गये। प्रयोजन यह है कि ये तीनों शक्तियां कौशाम्बी (वत्सराज्य) में एक होगईं। समय प्रायः ८२० बी० सी० था।

अब कौरवों का प्रभाव गिर गया और ये मांडलिक नरेश मात्र रह गए। निचक्षु के पहले अधिसीमकृष्ण कुछ प्रतापी थे। इनके समकालिक सूर्यवंशी दिवाकर और बार्हद्रथ सेनजित थे, ऐसा पुराणों में कथित है। अधिसीमकृष्ण को वायु पुराण सुनाई गई। इनके पीछे नं० (६०) निचक्षु से (नं० ८१) क्षेमक पर्यन्त यह वंश पुराणों में है। निचक्षु वंशी उदयन (नं० ७७) एक प्रतापी राजा थे, जिनका वर्णन आगे आवेगा। उनके पुत्र वहीनर शूर कहे गए हैं। पुराणों में अन्तिम नरेश (न० ८१) क्षेमक दुर्बल कहा गया है। प्रधान के अनुसार उदयन ५०० बी० सी० में गद्दी पर बैठे। ३८२ बी० सी० के निटक महापद्म नन्द ने सारे क्षत्रिय राजाओं को नष्ट करके अपना साम्राज्य स्थापित किया। उसी समय यह राज्य भी डूबा।

जनक विदेहों की महत्ता

शतपथ ब्राह्मण V, १,१,१३, तथा बृहदारण्यक में जनक सम्राट्

हैं। उशस्ति चाक्रायण के समय कौरवों पर विपत्ति पड़ी। ये जनक के यहाँ आते जाते थे। इनके समय कौरवों की महत्ता तथा पतन दोनों कथित हैं। ऊपर शतपथ ब्राह्मण के आधार पर कहा जा चुका है कि इन्द्रोत दैवाप या देवापि शौनक जनमेजय के समकालीन थे। उधर सत्ययज्ञ जनक के समय में थे तथा वे इन शौनक से बहुत पीछे के थे। धृति ऐन्द्रोत शौनक के चेले के शिष्य पुलुषि प्राचीन योग्य थे, जिनके चेले पौलुशि सत्ययज्ञ हुये। छान्दोग्य इन्हें बुडिल आश्वतराश्वि तथा उद्दालक आरुणि का समकालीन कहता है और इन दोनों का जनक के यहाँ होना बतलाता है, बृहदारण्यक V (४,८) तथा III (७,१)। सत्ययज्ञ के एक शिष्य भी जनक से मिले (शतपथ ब्राह्मण XI ६,२, १,३)। शतपथ ब्रा० दसवां अध्याय यों कहता है:—

(शतपथ)

जनमेजय के समय वाले—तुरकावषेय

यज्ञवचस राजस्तम्बायन

शतपथ	बृहदारण्यक	
कुश्रि		
शांडिल्य		
वात्स्य		
वामकक्षायण	उद्दालक आरुणि	जनक वाले
माहित्थि	याज्ञवल्क्य	जनक वाले
कौत्स	आसुरि	
माण्डव्य	आसुरायण	
माण्डूकायनि	प्राश्नीपुत्र आसुरिवासिन	
सांजीवी पुत्र	सांजीवी पुत्र	

सांजीवी पुत्र दोनों शाखाओं में वही हैं, जिससे सब की समकालीनतायें मिलती हैं। अतएव जनक जनमेजय से ५,६ गुरु शिष्य पीढ़ी नीचे हुए। यह समय डाक्टर राय चौधरी के अनुसार १५० या १८० वर्षों का था। अतएव इस वैदिक साक्षी से जनक परीक्षित से प्रायः २०० वर्ष पीछे हुए। परीक्षित के वंशधर इस काल पुराणों में पांच ही लिखे हैं। पौराणिक से वैदिक साक्षी श्रेष्ठतर मानी जाती है। इससे जान पड़ता है कि अपनी वंशावली में निचक्षु का नम्बर पाँच छः पुश्तों के नीचे होगा।

कोशल और मिथिला राज्यों के बीच में सदानीर (राप्ती) नदी थी। मिथिला जातकों तथा पुराणों में कथित है। वह नैपाल में अब जनकपुर कहलाता है। वैदिक अनुक्रमणी I, (४३६) में नमीसाप्य मैथिली राजा हैं। सम्भवतः पुराण वाले प्राचीन निमि पहले थे और जातकों के निमि दूसरे। उद्दालक, आरुणि तथा बुडिल आश्वतराश्वि उपनिषदों के अनुसार जनक तथा केकय अश्वपति दोनों के यहाँ जाते थे। सम्भवतः अश्वपति वंश का नाम था।

जनक के समकालीन अन्य नव राज्यों के कथन

ब्राह्मण तथा उपनिषद ग्रन्थों से जनक के समकालीन नौ और राज्य मिलते हैं, अर्थात गंधार, केकय, मद्र, उशीनर, मत्स्य, कुरु, पांचाल, काशी और कोशल।

गन्धार

इसका कथन त्रेता तथा द्वापर युग के वर्णनों में भी आ चुका है। छान्दोग्य VI, (१४) में उद्दालक आरुणि गान्धारी विद्वत्ता की प्रशंसा करते हैं। उद्दालक जातक (४८७) में उद्दालक तक्षशिला जाकर विद्या सीखते हैं। सेतकेतु जातक (३७७) कहता है कि उद्दालक के पुत्र सेतकेतु ने तक्षशिला में विद्या पढ़ी। उपनिषदों में भी इन श्वेतकेतु के बहुत से विवरण हैं। कौटिल्य चाणक्य वहीं के विद्यार्थी थे। गन्धार जातक (४०६) में कश्मीर और तक्षशिला गन्धार में थे। गन्धार राज द्रुह्यु-वंशी थे। निमि के समय में गन्धार में नग्नजीत राजा थे, जिनकी राजधानी तक्षशिला थी (कुम्भकार जतक)। इनके पुत्र सर्वजीत हुए (शतपथ ब्रा० VIII १,४,१०)।

केकय

जनक के समय केकयों का राजा अश्वपति था। शतपथ X,६,२, छान्दोग्य उ० V, ११,४, कहते हैं कि अश्वपतिने कई ब्राह्मणों को ज्ञान सिखलाया। इनमें आरुणि, औपवेशि, गौतम, सत्ययज्ञ, पौलुशि, महाशाल जाबाल बुडिल आश्वतराश्वि, प्राचीन शाल औपमन्यव और उद्दालक आरुणि के नाम हैं। जैन ग्रन्थ कहते हैं कि केकय आधा

आर्य हैं। (Ancient History of Deccon) में आया है कि केकयों की एक शाखा ८८, १०१, ई० में मैसूर गई।

मद्र, उशीनर, कुरु

इसका विवरण ऊपर भी आ चुका है। मद्रगार सौंगायनि तथा काप्य पतजल यहीं के थे बृहदा उं० (७,१,) । काप्य पतंजल उद्दालक में आरुणि के गुरु थे। प्राचीन साहित्य में मद्र की प्रशंसा है, किन्तु महाभारत कर्णपर्व में निन्दा है। उशीनर का भी विवरण ऊपर आया है। कौशीतकि उपनिषत् कहता है कि गार्ग्यबालाकि कुछ दिनों उशीनर देश में रहा। यह बालाकि काशीपति अजातुशत्रु और मैथिल जनक का समकालीन था।

शतपथ ब्रा० (XIII ५,४,९,) में मत्स्य राज्य ध्वसन द्वैतवन अश्वमेध करते हैं। महाभारत *III* (२४,२५) में द्वैतवन झील तथा जंगल है। मनु संहिता में यही ब्रह्मर्षि देश है। जनक के समय मत्स्य देश को कौशीतकि उपनिषत् गौरवान्वित मानता है। शतपथ ब्राह्मण कहता है कि प्रोत कौशाम्बेय, जनक के यहाँ जाने वाले उद्दालक आरुणि के समकालीन थे। इस काल हस्तिनापुर के बह जाने से तथा मट्ची के उपद्रव से कौरव कौशाम्बी गये। अब से इनका प्रभाव गिर गया, किन्तु भारतों का प्रभाव शतपथ ब्रा० के समय तक रहा। *XIII* (५, ४, ११)।

पांचाल

निमि जातक ५४१ में अन्तिम कराल जनक से ही पूर्व निमि विदेह राज हैं। प्रवाहण पांचालपति जनक के समकालीन हैं। बृहदा० उ० *VI* २ तथा छान्दो० उ० (१, ८, १) में प्रवाहण, आरुणि तथा श्वेतकेतु से ज्ञान कथन करते हैं। दुर्मुख, पांचालपति, निमि के समकालीन थे। वे विजयी थे। जातक ५४९, उत्तराध्यान सूत्र भासकृत स्वप्न वासवदत्ता तथा रामायण, *I* ३२, में चूलनि ब्रह्मदत्त पांचाल राज का नाम है। रामायण में इन्होंने कुश नाम की कुबड़ी कन्याओं से विवाह किया। कौटिल्य कृत अर्थशास्त्र में यही संघ राज्य था।

काशी

अथर्ववेद में यहां के लोग विदेहों तथा कोशलों के साथ कथित हैं। श्वेतकेतु के समय में जल जातूकर्ण्य (शांख्यायन श्रौतसूत्र, *XVI* (२९, ५) काशी, विदेह, और कोशल के नरेशों का पुरोहित था। जातक (४०२) में काशी का एक जनक राजा था। काशीराज पौरव थे। अजातशत्रु तथा धृतराष्ट्र काशी के ऐसे राजे थे जिनके नाम इस काल पुराणों में नहीं हैं। द्वापर में एक अजातशत्रु काशीपति हमारे चौथे अध्याय की वंशावली में हैं। पुराणों में धृतराष्ट्र का काशीशों में नाम नहीं है। अजातशत्रु उपनिषदों में शिकायत करता है कि मैथिल जनक की उदारता के कारण पंडित लोग उसकी सभा में आते ही नहीं। शतपथ ब्रा० में धृतराष्ट्र काशीराज हैं। पौरवों के पीछे काशी में जो ब्रह्मदत्त वंश स्थापित हुआ, वह शायद वैदेह हो, ऐसा डाक्टर राय चौधरी का मत है। हरिवंश में श्रीकृष्ण के समय काशी में ब्रह्मदत्त नामक राजा का कथन है। सम्भवत: उसी समय से यह वंश वहाँ स्थापित हो गया। जातक (४२१) में ब्रह्मदत्त वंश नाम है। जातक (४१९) में वह विदेह पुत्र है। उपनिषदों में अजातशत्रु उद्दालक का समकालीन था। उद्दालक जातक अजातशत्रु को ब्रह्मदत्त कहता है। शतपथ ब्रा० (V ५ ५, १४) में भद्रसेन, जो अजातशत्रु का पुत्र था, अजातशत्रु ही कहा गया है। गुत्तिल जातक (२४३) काशी को भारत में मुख्य शहर बतलाता है तथा महावाग भी इसकी प्राचीन महत्ता कहता है। जैनों का कथन है कि काशिराज अश्वसेन ७७७ बी० सी० में मृत उनके तीर्थंकर (पार्श्व) के पिता थे। काशिराज धृतराष्ट्र अश्वमेध करते थे, किन्तु शतानीक शत्राजित ने उन्हें हराया। बृहच्छत्र जातक (३३६) में एक काशिराज श्रावस्ती में घुसकर कोशलेश को बन्दी बनाता है। अन्य जातकों के कई ब्रह्मदत्त काशीनरेश कोशल पर अधिकार स्थापित करते हैं। अस्सक जातक पोतलि अस्सक की राजधानी को काशिराज का शहर बतलाता है।

काशिराज मुंज कोशल, अंग और मगध को हराता है। विश्वक्सेन, उदक्सेन और भल्लाट समय-समय पर काशिराज थे। रैप्सन के

अनुसार काशीराज्य के पच्छिम वत्सराज्य था, उत्तर में कोशल राज्य और पूर्व में मगध। समय-समय पर वत्सों, कोशलों और मागधों ने काशी जीती। वत्सों और कोशलों की उन्नतियों के बीच में ब्रह्मदत्त के समय काशी बढ़ी। इसने बुद्ध से प्रायः १५० वर्ष पूर्व कोशल जीत लिया। ६७५ बी० सी० पर्य्यन्त काशी का अच्छा प्रभाव रहा।

कोशल

यह बहुत करके वर्तमान अवध प्रान्त में है। रामायण II ३२,१७, में चित्ररथ दशरथ के समकालीन थे। दशरथ जातक में दशरथ और राम वाराणसी के राजा हैं। शतपथ ब्रा० में कोशल राज्य कुरु पांचाल के पीछे किन्तु विदेह के पूर्व महत्तायुक्त है। प्रश्न उपनि० VI १ तथा शांख्यायन श्रौत सूत्र XVI ९,१३ में हिरण्यनाभ कौशल्य का नाम है। शतपथ ब्रा० XIII ५,४,५ में आप सुकेश भारद्वाज के समय में थे। ये भारद्वाज प्रश्न I १ में कौसल्य आश्वलायन के समकालीन थे। मज्झिम निकाय II १४७ में यही आश्वलायन गौतम बुद्ध के समकालीन तथा सावत्थी के हैं। बुद्ध का जन्म ५६३ बी० सी० में हुआ। अतएव यही समय कौशल्य हिरण्यनाभ का है। यह नाम इस काल अपनी वंशावली में नहीं है, जिसमें यह समय महाकोशल, प्रसेनजित या विदूदभ का हो सकता है। हिरण्यनाभ इन तीनों में से किसी का शायद उपनाम हो। एक हिरण्यनाभ (कुशवंशी), (नं० ५६) थे, किन्तु उनका समय इनसे नहीं मिलता। इन कारणों से डाक्टर राय चौधरी का विचार है कि हिरण्यनाभ, प्रसेनजित और शुद्धोदन कोशल के अंशों के शासक थे। अयोध्या, साकेत और श्रावस्ती क्रमशः कोशल की राजधानियाँ हुईं। बौद्धकाल में अयोध्या गिर चुकी थी, किन्तु साकेत और श्रावस्ती भारत के षट मुख्य नगरों में थीं। घट जातक (४५४) अयोध्या नरेश कालसेन का कथन करता है। वंक, महाकोशल आदि की राजधानी श्रावस्ती थी। महावग्ग XVII (२९४) का कथन है कि ब्रह्मदत्त काशी नरेशों के समय कोशल छोटा सा राज्य था। ६२५ बी० सी० के निकट कोशल का अधिकार काशी पर हो जाता है।

अब पुराणों के अनुसार कोशल वंश का कथन होता है। रामचन्द्र

के पुत्र कुश का वंश द्वापर अथवा कलि के आदि में गिर चुका था। कलि में श्रावस्ती नरेश लव (रामपुत्र) के वंशधर बृहद्बल (नं० ५४) पहले राजा थे। इनके प्रपौत्र प्रतिव्योमात्मज दिवाकर (नं० ५८) पुराणों में पौरव अधिसीम कृष्ण का समकालीन कहा गया है। वे मध्यदेशान्तर्गत अयोध्या नरेश कथित हैं, जिससे जान पड़ता है कि इस काल तक कुशवंश का राज्य भी लव वंशियों के अधिकार में आ चुका था। भविष्य पुराण में दिवाकर का वर्णन वर्तमान काल में है। आदिम कलि कालि वाले राजाओं के कथन पुराण ग्रंथ थोड़े ही में करते हैं। इनके पुत्र सहदेव विख्यात कहे गए हैं और तत्पुत्र बृहद्रथ महाशय। (नं ६६) किन्नर को विजयी की उपाधि मिली है और (नं० ६७) अन्तरिक्ष को महान् की। (नं ७३) रणंजय बुद्धिमान हैं और तत्पुत्र सृंजय युद्धप्रिय। सुमित्र (नं० ८०) के विषय में कथित है कि यह अन्तिम राजा था। इस के पीछे सूर्यवश का राज्य नहीं चला। विष्णु पुराण में आया है कि (नं० ७५) महाकोशल के भाई शाक्य के पुत्र शुद्धोदन थे जिनके पुत्र गौतम बुद्ध हुए। इनके वंशधर क्रमशः राहुल, क्षुद्रक, कुंडक, सुरथ और अन्तिम (नं० ८२) सुमित्र थे।

अतः दोनों वंशों के अन्तिम नरेश सुमित्र होने से यह दूसरी वंशावली कुछ संशयाकीर्ण हो जाती है।

अंतिम काल में कोशल, वत्स, अवन्ती और मगध राज्य प्रधान थे। महाकोशल के पीछे प्रसेनजित कोशलेश पांचों राजाओं में मुख्य थे। उस काल शाक्य वंश में वासभ खत्तिया नाम्नी एक दासी से एक राज-कन्या उत्पन्न थी, जिसका किसी प्राचीन वैमनस्य के कारण शाक्यों ने प्रसेनजित से विवाह कर दिया। इसी विवाह से उत्पन्न विदूदभ पुत्र अन्त में कोशलेश हुआ। प्रधान के अनुसार ५३३ बी० सी० मे प्रसेनजित गद्दी पर थे। इनके प्रपौत्र सुमित्र को महापद्म नन्द ने ३८० बी० सी० के निकट राज्यच्युत करके कोशल मगध में मिला लिया।

मत्स्य

इसमें अलवर, जैपुर और भरतपुर के भाग थे। राजधानी वैराट जैपुर में थी। ऋग्वेद VII (१८, ६) में मत्स्य लोग सुदास से हारते

हैं। शतपथ ब्राह्मण XIII ५, ४ ९ में मत्स्यराज ध्वसनद्वैतवन अश्वमेध करते हैं। मनु संहिता में यह ब्रह्मर्षि देश है। कौशीतकि उपनिषत् में मत्स्य देश जनक के समय गौरवान्वित है। यहां संघराज था। महाभारत V ७४, १६ में राजा चेदि मत्स्य के भी शासक थे। म० भा० II ३२६, ४ में अपर मत्स्य चंबल के उत्तर पहाड़ी देश के शासक थे। रामायण II ७१, ५, में वीर मत्स्य कथित हैं।

विदेहों का फिर कथन

जातकों में आया है कि एक निमि जनक के पीछे राजा थे। कराल जनक के पीछे यह शाखा लुप्त हो गई। निमि जातक में कराल जनक के ठीक पहले निमि राजा थे। कुम्भकार जातक तथा उत्तराध्ययन सूत्र में पांचालराज दुर्मुख, गन्धार राज नग्नजित तथा कलिंग राज करन्दु के निमि समकालीन थे। दुर्मुख के पुरोहित वामदेवात्मज बृहदुक्थ थे (वैदिक अनुक्रमणी II ७१, १, ३७०)। वामदेव सहदेवात्मज सोमक के समकालीन थे (ऋग्वेद IV १५, ७, १०)। सोमक का विदर्भ राज भीम तथा गन्धार राज नग्नजित से धार्मिक सम्बन्ध था (ऐतरेय ब्राह्मण VII ३४)। अर्थ शास्त्र में कौटिल्य कहते हैं कि ब्राह्मण कुमारी से अनुचित व्यवहार करने से कराल विदेह तथा भोज दाण्डक्य अपने-अपने राज्य तथा सम्बन्धियों के सहित नष्ट हो गए। जनकों का राज्य टूटने पर मिथिला में वज्जिय संघ (प्रजातन्त्र राज्य) स्थापित हुआ। इसमें शायद काशीपति का हाथ था। बृहदा० उ० III, (८, २) में कथित है कि काशी और विदेह राज्यों में झगड़े प्रायः हुआ करते थे।

महाभारत XII, (९९, १, २) में काशीश प्रतर्दन का मिथिलश जनक से युद्ध कथित है। पालीटीका परमन्थ जोतिका, I (१५८, ६५) कहती है कि जो लिच्छवी वज्जियन संघ में मुख्य थे, वे काशी की राजकन्या के सन्तान थे। पीछे वाले जनक राजाओं के समय में कुछ आर्यों ने विन्ध्य पार करके दक्षिण में राज्य स्थापित किया। इनमें विदर्भ एक था। ऐतरेय ब्राह्मण VII (३४) में विदर्भ राज भीम नग्नजित के समकालीन थे। अतएव निमि के समय विदर्भ राज्य

वर्तमान था। करन्दु कलिंगराज भी निमि के समकालीन थे। अतएव उस काल कलिंग राज्य भी था। महागोविन्द सुत्तन्त *II* (२७०) में कलिंग राज सत्तभु, मैथिल राज रेणु, तथा काशिराज धृष्टराष्ट्र समकालीन थे। पाणिनि IV (१, १७०) तथा बोधायन I (१, ३०, ३१) कलिंग का कथन करते हैं, जिसकी राजधानी दन्तपुर नगर में थी। इस प्रकार उपर्युक्त साहित्य से सम्राट् जनक, रेणु, नमिसाप्य, निमि और कराल जनक के नाम इस काल के विदेह नरेशों में मिलते हैं।

दाक्षिणात्य रियासतें

महागोविन्द सुत्तंत में अस्सक राज्य गोदावरी पर है। वहां का ब्रह्मदत्त, रेणु तथा धृष्टराष्ट्र का समकालीन था। ऐतरेय ब्राह्मण *VIII* (१४) में भोजराज दक्षिण में है। उसकी प्रजा सत्वत है। शतपथ ब्राह्मण XIII (५, ४, ११, २१) में भोजों के अश्वमेध का घोड़ा लेकर भरत उन्हें हराते हैं। भरत का राज्य गंगा यमुना के निकट था। उसी के समीप यह भोज राज्य होगा। मत्स्य (४४, ३६) तथा वायु (९५, ३५, ३६) पुराणों में भोज विदर्भों की बिरादरी में थे। कालिदासीय रघुवंश V (३९, ४०) में विदर्भ राज भोज हैं। ऐतरेय ब्राह्मण में कई भोज राज्य हैं। दंडक भी भोजराज्य था, जहां की राजधानी कुम्भावती थी (जातक ५२२)। इन आर्य राज्यों के अतिरिक्त विन्ध्य के दक्षिण भारत में अनार्य आन्ध्र. शबर, पुलिन्द और मूतिव (ऐतरेय ब्राह्मण *VIII* (१८) भी राज्य करते थे। मत्स्य और वायु पुराणों में शबर और पुलिक दक्षिणपथ के निवासी हैं। कुछ शबर अब ग्वालियर तथा विजगापट्टम के पहाड़ों में हैं। राय चौधरी के अनुसार पुलिक नगर दशार्ण के दक्षिण पूर्व विदिशा या भेलसा था। मूतिबों का निश्चय नहीं है। विदेहों के पीछे बिम्बिसार के समय तक वैदिक साहित्य कुछ अधिक नहीं कहता, किन्तु बौद्ध साहित्य सहायता देता है। सूत्रकाल में माहिष्मती (मान्धाता), भृगुकच्छ (भरोच), शूर्पारक (सोपर कोंकन), अश्मम (पौण्डन्य), मूलक (प्रतिष्ठान), कलिंग (दन्तपूर) और उक्कल (उत्कल अर्थात् उत्तरी उड़ीसा) की शक्तियां थीं।

मगध

द्वापर सम्बन्धी विवरण में हम भारतीय युद्ध के पीछे सहदेवात्मज (नं० ५४) सोमाधि को गद्दी पर देख आये हैं। इनकी राजधानी गिरिव्रज थी। पुराणों में इस वंश के राजत्वकाल निम्नानुसार हैं:—

नाम राजा	नम्बर वंशावली	वर्षों में राजकाल
सोमाधि	५४	५८
श्रुतश्रवस	५५	६४
अयुतायुस	५६	२६
निरमित्र	५७	४०
सुक्षेत्र	५८	५६
बृहत्कर्मन, सेन	५९	२३
१६ बार्हद्रथ राजे	....	७२३

इस प्रकार केवल पांच पुश्तों के राजत्वकाल का जोड़ २६७ वर्ष है, जिससे प्रति पीढ़ी का परता साढ़े तिरपन वर्ष है। इसी प्रकार १६ राजाओं में यही परता प्रायः ४५ वर्ष आता है। पुरातत्वज्ञ ऐसे कथनों को अग्राह्य मानते हैं। अन्तिम नरेश नं० ७५ रिपुंजय ५६३ बी० सी० में गद्दी पर बैठे तथा ५१३ बी० सी० में अपने मंत्री पुणिक, पुलिक, मुनिक, शुनिक अथवा सुनक द्वारा मारे गए। गौतम बुद्ध का जन्म-काल ५६३ बी० सी० में है। मंत्री का वंश प्रद्योत कहलाता है जिसका वर्णन आगे यथास्थान होगा।

शुद्धोदन और गौतम बुद्ध का शाक्यवंश

सिद्धार्थ उपनाम गौतम बुद्ध के पिता शुद्धोदन तथा पुत्र राहुल उपर्युक्तानुसार लव वंश के नरेश थे। शुद्धोदन के पिता का नाम शाक्य लिखा है और पितामह का संजय। सञ्जय से ऊपर वाले पूर्व पुरुषों के नाम क्रमशः रणञ्जय, कृतञ्जय, धर्मा, बृहद्राज, अमित्रजित, सुपर्ण, अन्तरिक्ष, किन्नर, सुनक्षत्र आदि हैं। ये लोग कपिलवस्तु के राजा (संघ मुख्य) थे। पुराणों से यह पता नहीं चलता है कि इस वंश से अवध का राज्य कब छूटा और इसने कपिलवस्तु में कब शासन जमाया। कपिल वस्तु जिला गोरखपुर के उत्तर में एक विख्यात स्थान

हो गया है। इसकी ख्याति बौद्ध संसर्ग पर ही विशेषतया निर्भर है। बौद्धग्रन्थ महावंश लंका में पहली शताब्दी के लगभग लिखा गया। इसका ऐतिहासिक मूल्य पूर्णतया निर्विवाद नहीं है। पण्डितों ने इसमें बहुत सी ऐतिहासिक अशुद्धियाँ पाई हैं। फिर भी इसके बहुत से वर्णन शुद्ध भी हैं। इसके अनुसार अयोध्या-नरेशों में शाक्यों के अन्तिम पूर्व पुरुष महाराजा सुजात थे। पौराणिक राजवंश में सूर्यवंश का कोई भी राजा सुजात नहीं कहलाता था। महावंश के अनुसार सुजात की पटरानी से पाँच पुत्र और पांच कन्याएँ उत्पन्न हुईं और जयन्ती नाम्नी रानी से जयन्त नामक एक छठा पुत्र था। महाराज ने जयन्त ही को अपना उत्तराधिकारी बनाया और पाँच पुत्रों को निर्वासित कर दिया।

ये लोग पाँचों बहिनों को लिए हुए काशीराज के यहाँ रहने लगे जहाँ इनके सुव्यवहार से प्रजा इनपर अनुरक्त हो गई। इस बात से शङ्का मान कर काशिराज ने भी इन्हें देश से निकाल दिया और तब ये लोग उत्तर चलकर महर्षि कपिल के आश्रम में पहुँचे और वहाँ ऋषिवर के आदेशानुसार जंगल काट कपिलवस्तु नगर बनाकर बस गये। वहाँ क्षत्रिय जाति के अभाव में इन पाँचों भाइयों ने अपनी ही एक-एक बहिन के साथ विवाह कर लिया। यह सुन इनके पिता महाराजा सुजात ने विद्वन्मण्डली एकत्रित करके प्रश्न किया कि राजकुमारों का यह कार्य शक्य है अथवा अशक्य। विद्वानों ने आपद्धर्म के विचार से इसे शक्य होने की व्यवस्था दी और तभी से यह राजकुल शाक्य कहलाने लगा। विद्वानों की राजा के प्रतिकूल इस व्यवस्था देने से सिद्ध होता है कि उस काल के भी विद्वान् लोग आजकल ही के समान पक्षपात रहित थे।

सुजात नाम को पौराणिक वंशों के किस राजा का उपनाम समझना उचित है, इस प्रश्न का निर्णय कठिन कार्य है। पौराणिक वर्णनों के अनुसार राजा युधिष्ठिर के समकालिक सूर्यवंशी राजा बृहद्बल अयोध्यानरेश न थे वरन् साकेत (अवध) में एक दूसरे प्रान्त के स्वामी थे, तथा अयोध्या में एक दूसरा ही राजा था। बृहद्बल के वंशधरों ने पीछे अयोध्या का राज्य पाया। इस कुल के अन्तिम राजा

सुमित्र और उसके पूर्व पुरुष पौराणिक वर्णनानुसार स्वयं गौतम बुद्ध की सन्तान थे। महावंश के प्राचीन नाम पौराणिक सूर्यवंश के नामों से नहीं मिलते हैं। यह ग्रन्थ लङ्का में सिंहली भाषा में लिखा गया था। इतनी दूरी पर सुने सुनाये नाम लिखने से विरोध का होना स्वाभाविक ही है और इसके मिटाने का प्रयत्न भी व्यर्थ समझ पड़ता है, क्योंकि गौतम बुद्ध की वंशावली के पौराणिक वर्णन भी निश्चित नहीं समझ पड़ते, जैसा कि ऊपर आ चुका है। विष्णु पुराण द्वारा कथित वंशावली हम दे ही चुके हैं। अब सूक्ष्मतया महावंश का भी कथन लिखे देते हैं।

शाक्यवंशी राजा उल्कामुख के अमृता नाम्नी कन्या हुई जो वयस्क होने पर कुष्ठ रोग ग्रस्त हो गई। यह देख राजकुमारों ने उसे हिमाचल की एक गुफा में छोड़ दिया। वहां कोलि नामक राजर्षि के प्रयत्न से राजकन्या रोगविहीना हुई और इन दोनों का विवाह भी हो गया। कोलि और अमृता के पहाड़ ही में रहते हुए ३२ पुत्र उत्पन्न हुए और वयस्क होने पर माता की आज्ञा से ये लोग कपिलवस्तु पहुँचे। वहां शाक्य महाराजा ने इनका अच्छा स्वागत करके रोहिणी नदी के पूर्व स्थान दिया जहां ये लोग कोलिग्राम बसा कर रहने लगे। इन लोगों का शाक्य कुमारियों के साथ विवाह हुआ और ये कोलिय कहलाने लगे। बहुत दिन पीछे देवदह के कोलिय राजवंश में राजा सुप्रभूत के माया और महाप्रजावती नाम्नी दो कन्याएँ और पांच पुत्र उत्पन्न हुए। इधर शाक्यवंश में राजा सिंहनु के पुत्र राजा शुद्धोदन हुए जिन्होंने उपर्युक्त दोनों कन्याओं के साथ विवाह किया। इन्हीं महाराजा शुद्धोदन और मायादेवी के पुत्र प्रसिद्ध महात्मा गौतम बुद्ध हुए।

महाराजा शुद्धोदन परम सच्चरित्र पुरुष तथा प्रजावत्सल संघ मुख्य नरेश थे। इनकी प्रकृति बहुत शान्त थी। अनेक यज्ञादि करने पर शुद्धोदन से पैंतालीसवें वर्ष वैशाखी पूर्णिमा की रात्रि में उनकी रानी मायादेवी के गर्भ रहा। बौद्धग्रन्थ ललित विस्तार में लिखा है कि गर्भाधान के थोड़े ही दिन पीछे महामाया ने स्वप्न देखा कि "एक महात्मा जिसका वर्ण हिम रजत के समान स्वच्छ था और जिसकी

प्रभा चन्द्र सूर्य के समान थी, उसके उदर में प्रवेश कर गया।" ब्राह्मणों का मत हुआ कि इस स्वप्न का फल यह है कि रानी का बालक या तो चक्रवर्ती राजा होगा या बुद्ध। अब तक शुद्धोदन के कोई सन्तान न थी इसलिए इस गर्भाधान से बड़ी प्रसन्नता मनाई गई। महामाया की इच्छा थी कि पुत्रोत्पत्ति उसके पिता के घर में हो। इस विचार से पति की सम्मति ले अपनी वहिन प्रजावती के साथ वह देवदह के लिए प्रस्थित हुई। शाक्य राज्य ही में राजा के बनवाये हुए लुम्बिनी कानन में उनकी रानियां ठहरी। शुद्धोदन भी लुम्बिनी कानन तक उन्हें पहुँचा कर वापस चले गये। लुम्बिनी में रात को महामाया ने चार स्वप्न देखे, एक यह कि छः दांतो वाला एक सुन्दर श्वेत गज उसके उदर में घुस गया। दूसरा यह कि वह आकाश में उड़ रही है और अन्तिम दो स्वप्न थे कि वह एक ऊँचे पहाड़ से उतरती है तथा सहस्रों मनुष्य उसके सामने दण्डवत् करते हैं। इसी कानन में महामाया को ऐसे समय में प्रसव-वेदना हुई जब वह उद्यान में सैर कर रही थी। रानी प्रसव-वेदना से विकल हो एक साल-वृक्ष की डाली पकड़ कर खड़ी हुई थी जब बुद्ध महात्मा का जन्म हुआ। यह शुभ समय माघ पूर्णिमा ५६३ बी० सी० का है।

सूर्यवंशी राजाओं का वर्णन हम यहीं समाप्त करते हैं। शेष इतिहास आगे के अध्यायों में यथास्थान लिखा जायगा। पुराणों में लिखा है कि उपर्युक्त ऐक्ष्वाकु दिवाकर, के समय पर्यन्त वार्हद्रथ सेनजित तथा कौरव राज (अधिसीम कृष्ण) के पीछे महापद्मनन्द तक राजे निम्नानुसार हुए:—२७ पांचाल नरेश, २४ काशिराज, २८ हैहय भूपाल, ३२ कलिंगपति, २५ अश्मक भूपति, २४ ऐक्ष्वाकु नरपति, २६ कौरव-पौरव नराधिप, २८ मैथिल नृप, २३ शौरसेन महीपति और २० वीतिहोत्र नरपाल। इसी काल में विदिशानरेश नागराज शेष का पुत्र भोगी, शत्रुओं का पराजित करने वाला हुआ। वायु पुराण के अनुसार इसका नाम पुरञ्जय था। इसने नाग वंशियों का पराक्रम बहुत बढ़ाया। इसके वंशधर रामचन्द्र, चन्द्रांशु, नखवन्त, धनधर्मण, वगर और भूतनद प्रसिद्ध राजे हुए। उपर्युक्त अनेकानेक राजकुलों में से अनेकों का अस्तित्व नाम मात्र को अथच अनिश्चित था। आदिम कलिकाल के

अंत में इनमें से बहुत कम घराने जीवित पाये गये; जो बच गये वे महापद्मनन्द द्वारा ३८२ बी० सी० तक नष्ट हुये।

सोलह रियासतें

गौतम बुद्ध के समय मगध में बिम्बिसार नरेश थे। अन्तिम विदेहों के पीछे से बुद्धकाल के पूर्व तक सोलह रियासतों का कथन आया है। बौद्ध ग्रंथ अंगुत्तर निकाय इनके नाम निम्नानुसार कहता है—

काशी, कोशल, अंग, मगध, वज्जी, मल्ल, चेतिय (चेदि), वंस, (वत्स), कुरु, पांचाल, मत्स्य, शूरसेन, अस्सक, अवन्ति, गन्धार और काम्बोज। ये सब महाजनपद कहलाते थे। ये कलार जातक तथा महाकोशल के बीच में हुए। यही नामावली जैन भगवती सूत्र में निम्नानुसार है:—अंग, वंग, मगध, मलय, मालव, अच्छ, कौन्छ, पाढ़, पांड्य, लाढ़ (राढ़), वज्जी, मोलि, काशी, कोशल, अवह और शम्भुत्तर। मालव शायद अवन्ती एवं मोलि मल्ल हैं। इनमें से काशी, कोशल और मत्स्य के विवरण ऊपर आ चुके हैं। जातकों में लिखा है कि काशी राज्य का फैलाव किसी समय २००० वर्गमील था। कोशल की श्रावस्ती वर्तमान नैपाल में गोरखपुर से उत्तर पश्चिम ७० मील की दूरी पर है। इस काल कोशलों का राज्य बनारस और साकेत पर भी था और शाक्यसंघ इनको अधीश्वर मानता था। कोशल राज्य, दक्षिण में गंगा और पूरब में गण्डक तक फैल चुका था। किसी कोशलेश वंक ने काशी जीतने का प्रयत्न किया तथा कंम काशी विजेता कहलाता था।

अंग

अंग राज्य मगध के पूर्व था। चन्दन नदी दोनों राज्यों के बीच में थी। राजधानी चम्पा वर्तमान भागलपुर के निकट है। इसके मगध से युद्ध हुआ करते थे। पहले यहाँ महाभारत में प्रसिद्ध कर्ण का राज्य था। जातक (५४५) राजगृह को अंग का शहर कहता है। गौतम बुद्ध के समय चम्पा, राजगृह, श्रावस्ती, साकेत, कौशाम्बी और बनारस बड़े शहर थे। व्यापारी लोग जहाजों पर चम्पा से स्वर्ण-भूमि तक जाते थे। अथर्ववेद (V२२,१४.) में आंगों, मूजवन्तों, गान्धारों तथा

मागधों के कथन हैं। ऐतरेय ब्रा० VIII (२२) में अंग वैरोचन राजा थे। महागोविंद सुत्तंत में धतरत्थ अंगपति थे। अंग के पुत्र दधिवाहन उत्तराधिकारी थे। कहते हैं कि उनकी कन्या चन्द्रबाला स्त्रियों में पहली महावीर की शिष्या जैन थी। पौराणिक वंशावली के अनुसार कोई अंग और दधिवाहन त्रेता में भी पड़ते हैं। कौशाम्बी नरेश शतानीक (नं० ७६) ने चम्पा पर धावा किया। अंगपति ब्रह्मदत्त ने मगधपति भट्टिय को हराया। वत्सपति अंगराज के साथी थे। कौशाम्बी नरेश (७७) उदयन ने दृढ़ वर्मन को फिर से अंगपति बनाया। (प्रिय दर्शिका अंक IV, बिंबिसार ने अपने पिता के समय ब्रह्मदत्त से अंग जीत कर मगध में मिला लिया।

मगध

इसमें वर्तमान पटना और गया जिले हैं। गिरिव्रज या गया के निकट पुराना राजगृह राजधानी थी। ऋग्वेद III ५३,४ में प्रमगंड कीकट नरेश था। यास्क निरुक्त (६,३२) कीकट को अनार्य कहते हैं। अभिधान चिन्तामणि में कीकट मगध है। अथर्ववेद V (२२,१४) में मगध का कथन है। पहले मागध बुरे थे। शांखायण आरण्यक में इनका मान हुआ। महाभारत में बृहद्रथ पहले मगधपति हैं। ऋग्वेद I (३६ १८ X ४९,६) में जरासन्ध म असंबद्ध बृहद्रथ हैं। उस काल इसमें ८०००० ग्राम लगते थे और यह विन्ध्याचल तथा गंगा, चंपा और सोन नदियों के बीच में था। इसकी परिधि २३०० मील कही गई है (रिजडेविड्स)। गौतम बुद्ध की उत्पत्ति से पीछे वाला मागध विवरण यथा स्थान आवेगा।

वज्जी, वज्ञी

इस काल यह प्रजातंत्र राज्य था। इसका फैलाव २३०० वर्गमील बौद्ध ग्रंथों में लिखा है। मिथिला वैशाली से उत्तर पच्छिम ३५ मील पर है। इसी के निटक जनकपुर नामक स्थान है। विदेह राज्य टूट कर ही वज्जी संघ बना। इसमें निम्न कथित अष्ट कुल थे:—विदेह, लिच्छवि, ज्ञात्रिक, वज्जी, उग्र, भोग, ऐक्ष्वाकु और कौरव। पहले चार प्रधान थे। विदेहों की राजधानी मिथिला थी तथा लिच्छवियों की वर्तमान

मुजफ्फर नगर जिले में वैशाली (प्राचीन विशाला पुरी) थी। ज्ञात्रिकों की राजधानियां वैशाली के निकट, कुंडपुर और कोल्लाग थीं। इनमें सिद्धार्थ और तत्पुत्र महावीर जिन थे। वज्जी का कथन पाणिन IV (२, १३१) में है। वैशाली पूरे संघ की भी राजधानी थी। उसके तीन भाग थे। वैशालिक वंश के संस्थापक इक्ष्वाकु पुत्र विशाल थे (रामायण के अनुसार) तथा पुराणों में वे नाभाग के वंशधर थे। विशाल के पीछे हेमचन्द्र, सुचन्द्र, धूम्राश्व, सृंजय, सहदेव, कुशाश्व, सोमदत्त, काकुत्स्थ और सुमति का होना राय चौधरी कहते हैं। सहदेव और सृंजय शतपथ ब्राह्मण II (४४, ३४) में हैं। लिच्छवि बाहरी न होकर असली क्षत्रिय थे। वे जैनों तथा बौद्धों के सहायक थे। महावीर जिन तथा कुणिक अजातशत्रु की मातायें लिच्छवि थीं।

मल्लसंघ

मल्ल के दो भाग थे, जिनकी राजधानियां कुशिनारा या कुशावती, और पावा थीं। चीनी यात्री ह्यूनसांग के अनुसार यह पहाड़ी राज्य शाक्य के पूर्व और वज्जी के उत्तर में था, किन्तु अन्यों का विचार है कि यह संघ राज्य वज्जी के पूर्व और शाक्य के दक्षिण में था। कुसिनारा कसिया के निकट था। पावा वर्तमान पडरौना है। मल्लों और लिच्छवियों को मनु व्रात्यक्षत्रिय कहते हैं, शायद इनके जैन बौद्ध प्रेम के कारण। लिच्छवियों ने जाट गुप्त नरेश चन्द्रगुप्त को अपनी कन्या भी ब्याही। विदेह के समान पहले मल्ल भी राजतन्त्र था। कुश जातक में ओक्कक (ऐक्ष्वाकु) मल्ल राज थे। अन्य राजा महासुदसन थे। महाभारत ii (३०, ३) में भी एक मल्ल-राज थे। भोग नगर, उलूपिया और उरुवेल-कप्प भी मल्लों के नगर थे। बिम्बिसार के पूर्व मल्लसंघ था। जैन कल्पसूत्र कहता है कि ९ मल्ल तथा ९ लिच्छवियों ने मिलकर काशी कोशल के १८ गण राजस बनाये। समय पर मगध ने मल्ल भी जीत लिया।

चेतिय या चेदि

इस राज्य के दो उपनिवेश थे, जिनमें एक नैपाल में और दूसरा

कौशाम्बी के पूर्व पुराने चेदि बुन्देलखंड तथा निकट के देश में था और कभी नर्मदा तक फैलता था। राजधानी सुक्तिमती थी। ऋग्वेद VIII (५, ३७, ३९) दानस्तुति कशु चैद्य का कथन करता है। चेतिय जातक यों राजवंश देता है:—महासम्मत, रोज, वररोज, कल्यान, वर कल्यान, उपोसथ, मान्धाता, वर मान्धाता, चर, उपचर या अपचर। शायद यही महाभारत के उपरिचर वसु हों। जातक तथा महाभारत दोनों इनके पांच-पांच पुत्र बतलाते हैं। जातक ४८ कहता है कि काशी से चेदि के मार्ग में डाकू लगते थे।

वंश वत्स

इसकी राजधानी कोशाम्बी (वर्तमान कोसम) प्रयाग के निकट थी। रामायण I (३२, ३-६) तथा महाभारत I (६३, ३१) कहते हैं कि चेदि राज ने कौशाम्बी बसाई। काशी राज (नं० ३९) वत्स वंशकर थे (हरिवंश २९, १३, महाभारत XII ४९, ८०) शतानीक (दूसरे) पौरव (न० ७६) ने विदेह राजकुमारी से विवाह किया तथा दधिवाहन के समय अंग पर आक्रमण किया। जातक (३५३) कहता है कि संसुमार गिरि का भर्गराज्य वत्स का करद था।

कुरु

जातकों में इन्द्रप्रस्थ पर युधिष्ठिर के वंशजों का राज्य लिखा है, तथा धनंजय कौरव्य और सुतशोम के नाम शासकों में हैं। राष्ट्रपाल कौरव सरदार था। जैनों के उत्तराध्यान सूत्र में कुरुदेश के इशुकार नगर में इशुकार राजा लिखे हैं। सम्भवतः यह परीक्षित की उस दूसरी शाखा के शासक थे, जिसकी राजधानी इन्द्रप्रस्थ तथा इशुकार थी। अनन्तर कौटिल्य के अनुसार कुरु देश में संघ राज्य स्थापित हुआ।

पांचाल

यहाँ के दुर्मुख निमि के समकालीन थे। दुर्मुख विजयी कहे गए हैं। चूलनि ब्रह्मदत्त पांचाल राज्य का कथन जातक (५४६), उत्तराध्यान सूत्र, भासकृत स्वप्न वासदत्ता, तथा रामायण, I ३२, में है। कौटिल्य यहां भी संघ राज्य बतलाते हैं।

यायाति, सेतव्या नरेश, हिरण्य नाभ कौशल, और कपिलवस्तु के शाक्य। महाकोशल के समय मगध में बिंबिसार राजा थे।

बुद्ध के समय में ये सोलहों राज्य वर्तमान न थे वरन् इनमें से कुछ लुप्त हो चुके थे जैसा कि ऊपर दिखाया गया है। फिर भी बौद्धों के अंगुत्तर और विनय ग्रन्थों में इन सोलह राज्यों की नामावली लिखी है जिससे जान पड़ता है कि यह कुछ प्राचीनतर समय से सम्बन्ध रखती है। दक्षिण के राज्यों का वर्णन इसमें नहीं है। कुछ बौद्ध ग्रन्थों मे पैठण उपनाम पतिस्थान का नाम आया है। यह आंध्रों की राजधानी थी। दक्षिणपथ का भी नाम है। इससे दक्षिण देश का अर्थ निकलता है। महाभारत में भी सहदेव के विजय में दक्षिणपथ का नाम मिलता है। निकाय ग्रन्थों में कलिङ्ग के वन का नाम लिखा है और यह भी कहा गया है कि उस काल दूर देशों में समुद्र यात्रायें होती थीं तथा जहाज़ चलते थे। कालिंग उपनिवेश की राजधानी दन्तिपुर में थी। वाल्मीकीय रामायण इन प्राचीन बौद्ध ग्रन्थों से पुरानी है। उस में लिखा है कि रामचन्द्र के समय में ठेठ दक्षिण में चोल और पाण्ड्य राज्य थे। इस कथन से इतना अवश्य सिद्ध होता है कि वाल्मीकि के समय वाले उत्तरी आर्य लोग दक्षिण का हाल बहुत कुछ जानते थे। बहुतेरे पाश्चात्य विद्वानों का मत है कि आर्य लोग पंजाब से पूर्व की ओर गंगा और यमुना के निकट से आये। रिस डेविड्स का कथन है कि इन मार्गों के अतिरिक्त आर्य लोग सिन्धु नदी के किनारे कच्छ होते हुए अवन्ती गये और कश्मीर से पहाड़ के किनारे किनारे कोशल होते हुए शाक्य, तिरहुत, मगध और अंग देशों में पहुँचे।

छठी सातवीं शताब्दी बी० सी० के कुछ भारतीय मुख्य नगरों का वर्णन कर देना भी उचित समझ पड़ता है। (१) अयोध्या कोशल देश में सरयू के किनारे स्थित थी। इसका वर्णन ऊपर कई बार आ चुका है। सूर्य-वंशियों की यह प्रधान राजधानी थी किन्तु महाभारत और बुद्ध के समयों में इसकी कोई प्रधानता न रही। (२) काशी उपनाम वाराणसी सदैव से अपने वर्तमान स्थान पर स्थित है। बौद्धकाल के पीछे इस राज्य का फैलाव ८५ मील का कहा गया है। (३) चम्पा अंग

देश की राजधानी थी। यह भागलपुर के पूर्व २४ मील पर स्थित है। भारतीय उपनिवेशियों ने कोचीन-चाइना में इसी नाम की एक पुरी बसाई। कश्मीर में भी चम्पा नामक एक नगर था। (४) कम्पिला उत्तरी पाञ्चाल की राजधानी थी। (५) कौशाम्बी (कोसम्भी) पुरी को कौरव राजा ने हस्तिनापुर के डूब जाने पर बसाया, ऐसा महाभारत में लिखा है। यह यमुना नदी के किनारे काशी से २३० मील की दूरी पर है। पीछे से यह वत्सों की राजधानी हुई। बौद्ध ग्रन्थों में इसका वर्णन बहुतायत से आया है। (६) मथुरा यमुना नदी के किनारे अब भी स्थित है। इसमें बहुत से प्राचीन चिह्न मिलते हैं। बुद्ध के समय में मथुरानरेश को अवन्तिपुत्र भी कहते थे। इससे जान पड़ता है कि उसकी माता उज्जैन के घराने की थी। गौतम बुद्ध भी यहाँ पधारे। मथुरा का पुराना नाम मधुपुरी था। पीछे से मधु के वंशियों से छीनकर इस पर रामचन्द्र के भाई शत्रुघ्न ने राज्य जमाया। इनके भी वंशजों को निकाल कर यादव भीमरथ ने इसे अपनी राजधानी बनाया। बुद्ध के समय में इसकी बहुत अवनति हो गई थी किन्तु मिलिन्द के काल (१५७ बी० सी०) में यह फिर उन्नत दशा में थी। इसके नाम पर दक्षिण में भी एक नगर बसाया गया। (७) मिथिला विदेह-नरेश की राजधानी तिरहुत में थी। (८) राजगृह उपनाम राजगिरि बिम्बिसार का बसाया हुआ है। इस नामके दो नगर थे जिन में से पुराने को गिरिव्रज कहते थे। बिम्बिसार ने नया राजगृह बसाया। (९) रोरुक सौ-वीर (सूरत) की राजधानी थी। यहाँ वणिज व्यापार बहुत होता था। कहते हैं कि यहूदी राजा सालोमन के जहाज भी व्यापारार्थ यहाँ आते थे। पीछे से इसका नाम रोरुआ भी हो गया। (१०) सागल भारत के उत्तर पश्चिम में था। यह मद्र देश की राजधानी थी और महाभारत के समय में साकल कही जाती थी। राजा मिलिन्द यहीं राज्य करते थे। (११) साकेत (वर्तमान सुजानकोट) जिला उन्नाव (अवध प्रदेश) में सई नदी के किनारे पर था। प्राचीन काल में यह कई बार कोशल का राज-निवास था। बुद्ध के समय में कोशल की राजधानी श्रावस्ती थी जो साकेत से ४५ मील पर थी। हिन्दुस्तान के ६ बड़े नगरों में उस काल यह भी एक था।

(१२) श्रावस्ती (सावत्थी) पुरी सूर्यवंश के राजा श्रावस्त की बसाई हुई थी। इसका स्थान जानना कठिन है। यह साकेत से ४५ मील उत्तर, राजगृह से ३३७ मील उत्तर-पश्चिम, सांकाश्य से २२५ मील, अचिरवती नदी के किनारे स्थित थी। बुद्ध के समय में यह राजा प्रतिनर्द की राजधानी थी। (१३) (उज्जैनी) उज्जैन प्राचीन काल में भी अपने वर्तमान स्थान पर थी। अशोक पुत्र महीन्द्र यहीं उत्पन्न हुआ। इसी ने लंका में बौद्धमत फैलाया। (१४) वैशाली लिच्छवी राजकुल की राजधानी थी। बुद्ध के समय में यहां वज्जी लोग रहते थे जिनसे अजातशत्रु का युद्ध हुआ। यह तिरहुत प्रदेश में गङ्गाजी से २५ मील की दूरी पर थी। इनके अतिरिक्त २० मुख्य नगरों में निम्न भी थे:— आलवी, इन्द्र पत्त, संसुमार गिर, कपिल वस्तु, पातलिपुत्तक, जेतुत्तर, संकस्स, कुसिनारा और उपत्थ (राय चौधरी)। इस काल में निम्न स्थानों पर विश्वविद्यालय थे:—

(१) तक्षशिला (तक्सीला) (२) कन्नौज, (३) काशी, (४) उज्जैन, (५) मिथिला, (६) मगध, (७) श्री धन्य कटक, (८) राजगृह, (९) वैशालि, (१०) कपिलवस्तु, (११) श्रावस्ती, (१२) कौशाम्बी, (१३) जेतवन, और (१४) नालन्द। यहां पर दूर दूर से विद्यार्थी आ आकर विविध विद्याओं की शिक्षा पाते थे।

इस काल भारत में नगरों की न्यूनता और ग्रामों की बहुत प्रधानता थी और ग्राम-निवासी किसी प्रकार गिरे हुए अथवा नीच नहीं समझे जाते थे। वे अपने ही लिए काम करते और मजदूरी करना अपनी महत्ता के प्रतिकूल समझते थे। उनको अपने ग्राम, कुटुम्ब और पद का अभिमान था और बहुत करके उन पर उन्हीं के मुखियाओं का शासन था जिनको वे स्वयं चुनते थे। रिस डेविड्स कहते हैं कि उस काल प्रत्येक गांव एक छोटा सा प्रजातन्त्र राज्य था। दास-प्रथा इस काल भारत में अज्ञात थी। राजा युधिष्ठिर के समय में कुछ दास अवश्य थे जिनकी गणना हबशियों की भांति नीच श्रेणी में न हो कर साधारण गार्हस्थ्य सेवकों की भांति होती थी। ३०५ बी० सी० वाले यूनानी राजदूत मेगास्थनीज़ ने लिखा है कि भारत में दास-प्रथा

अज्ञात थी। इससे जान पड़ता है कि दास-प्रथा ने भारत में कभी ज़ोर नहीं पकड़ा।

कौटिल्य के अर्थ शास्त्र से दासों का अस्तित्व प्रकट है, किन्तु ग्रीक राजदूत उनका अभाव बतलाता है। जान पड़ता है कि दास कहे जाने वालों की संख्या इतनी कम थी और उनसे ऐसा सुव्यवहार था कि राजदूत ने उन्हें भी अदास समझा।

जातकों के देखने से प्रकट होता है कि बौद्ध काल के पूर्व सब जातियों के मनुष्य अपनी जातियों से इतर व्यापार भी करने लगे थे। ब्राह्मण लोग व्यापार करते थे तथा धनुर्विद्या, मृगया, कपड़ा बुनना, पहिया बनाना आदि के भी काम करने लग गये थे। वे खेती बहुतायत से करते और गाएँ तक चराने लगे थे। क्षत्रिय लोग व्यापार करते थे और धनुर्विद्या के काम की नौकरी भी। एक क्षत्रिय के विषय में लिखा है कि उसने कुम्हार, माली, बावर्ची और झाड़ूआ बनाने वाले के काम किये थे। फिर भी इन लोगों की जातियों में कुछ गड़बड़ नहीं हुआ।

मुर्दों के जलाने की इस काल कई प्रथायें थीं। बड़े आदमियों के शव जलाये जाते थे और उनकी राख इकट्ठी करके गाड़ दी जाती थी तथा उसी पर स्तूप बनाया जाता था। साधारण मनुष्यों के शव जलाये जाते और कभी कभी मैदानों में रख दिये जाते, जहां या तो उन्हें पशु पक्षी खा जाते अथवा वे सड़ कर नष्ट हो जाते थे। कुछ ऐसी ही प्रथा पार्सियों में भी अब तक है। उस समय के प्रचलित व्यापारों के नाम महाराजा अजातशत्रु और गौतम बुद्ध की बातचीत में कहे गये हैं। यद्यपि यह छठी शताब्दी बी० सी० की है तथापि यही दशा बौद्धकाल के कुछ पहले थी। व्यापारों के नाम निम्नानुसार हैं :—(१) हाथी सवार, (२) घुड़-सवार, (३) रथी, (४) धनुर्धारी, (५—१३) सेना की भिन्न-भिन्न ९ श्रेणियां, (१४) दास, (१५) बावर्ची, (१६) नाई, (१७) नहलाने वाले, (१८) हलवाई, (१९) माली, (२०) धोबी, (२१) जुलाहे, (२२) झौआ बनाने वाले, (२३) कुम्हार, (२४) मुहर्रिर, (२५) मुसद्दी, (२६) किसान।

इनके अतिरिक्त १८ प्रकार के कारीगर भी प्राचीन पुस्तकों में मिलते हैं जिनमें लकड़ी, पत्थर, धातु आदि पर काम करने वालों को समझना चाहिये। चमड़ा और हाथी दांत का काम, रँगने, जौहरीपन, मछली मारने, कसाई, मल्लाह, चित्रकार आदि के भी कार्य बहुतायत से होते थे। इनके अतिरिक्त सौदागरों की भी संख्या बहुत थी तथा इनकी रक्षा के लिये स्वेच्छासेवक पुलिस भी होती थी। रेशम, मलमल, जिरह बख्तर, कारचोबी, कम्मल, दवायें, जवाहिरात, हाथीदांत आदि के व्यापार बहुतायत से होते थे। सौदा में बदलौअल नहीं होती थी वरन् मुद्राओं का व्यवहार था। महाभारत आदि में सोने की मुद्राओं का वर्णन है। बौद्धकाल में तांबे के सिक्के चिपन का हाल लिखा है किन्तु चांदी के सिक्कों का वर्णन नहीं है। सौदागर एक दूसरे पर हुंडी काटते थे। सूद का लेना उचित समझा जाता था। मनुस्मृति में सवा रुपया सैकड़ा मासिक सूद लिखा है और कहा गया है कि इससे अधिक लेने वाला पापभागी होता है। रिस डेविड्स ने लिखा है कि गरीबी कहीं नहीं दीखती थी। किसी स्वतन्त्र मनुष्य का मजदूरी करना मात्र बड़ी विपत्ति समझी जाती थी। जमींदार लोग उस काल में न थे और प्रजा को पर्याप्त भूमि जोतने को मिलती थी।

व्यापारिक मार्गों का हाल रिस डेविड्स ने अच्छा लिखा है। श्रावस्ती से पतिट्ठान (पैठण) पर्यन्त मार्ग माहिष्मती, उज्जैन, गोनर्द, विदिशा, कौशाम्बी और साकेत होकर था। श्रावस्ती से राजगृह का रास्ता सीधा न था वरन् पहाड़ की तराई होकर। मार्ग में सेतव्य, कपिलवस्तु, कुशिनारा, पावा, हस्तिग्राम, भण्डग्राम, वैशाली, पाटलिपुत्र और नालन्द पड़ते थे। पूर्व से पश्चिम का रास्ता बहुत करके नदियों द्वारा था। गंगा में सहजाति और यमुना में कौशाम्बी पर्यन्त नावें चलती थीं। व्यापारियों का निम्न स्थानों को जाना भी लिखा है:—विदेह से गंधार को, मगध से सौवीर को, भरुकच्छ (भड़ोच) से बर्मा को, और दक्षिण से बावेरु (बैबिलोन) को। चीन का आना जाना पहले पहल मिलिन्द के ग्रन्थों में मिलता है। रेगिस्तानों में लोग रात को चलते थे और मार्ग बताने वाले नक्षत्रों के

सहारे रास्ता ठीक रखते थे। लंका का नाम नहीं आया है। ताम्रपर्णी द्वीप का कथन है जिससे लंका का प्रयोजन समझ पड़ता है।

वैदिक समय से सम्बन्ध रखने वाला साहित्य-काल इसी समय के साथ समाप्त होता है। आर्य-सभ्यता ने भारत में राजनीति, धर्म, समाज, साहित्य, व्यापारादि की जो जो उन्नति की, उसका वर्णन हम ऊपर दे आये हैं। अब तक भारतीय समाज ने प्राचीन परिपाटियों का उचित मान करके धीरे धीरे विकास करते हुए सभी विभागों में उन्नति दिखलाई किन्तु दस्यु-पराजय से इतर कोई क्रान्ति अथवा भारी उथलपथल नहीं हुआ। प्रायः सभी बातों में ऋषियों, राजाओं, सुधारकों आदि ने प्राचीनता का उचित मान रखकर नवीन परिशोधनों में मन लगाया। जैसे एक दिन का शिशु बढ़ते बढ़ते पूरा जवान होकर बुड्ढा तक हो जाता है, किन्तु किसी दिन उसमें भारी परिवर्तन देखने में नहीं आता, इसी प्रकार हमारा भारतीय आर्यसमाज उन्नति करता हुआ शैशव एवं युवावस्था को पार करके आदिम कलिकाल के प्रारम्भ में वृद्ध दशा को पहुंच गया। वैदिक विचारों की उन्नति चरम सीमा के भी आगे निकल गई और ऋग्वेद का सीधा सादा धर्म ब्राह्मण ग्रन्थों में उन्नति करता हुआ सूत्रों के तनाव में ऐसा उलझा कि विधि-निषेध ही ने उसका स्थान ले लिया और यही धर्म के मुख्याङ्ग बन बैठे। अतः हमारा भारतीय हिन्दू-समाज सरल धर्म, सरल मत एवं सरल आचारों के विचार को खो कर कट्टर पण्डितों की पोथियों का हर बात में आश्रित सा हो गया। यहाँ तक कहा गया है कि इन्द्र से विद्यार्थी, बृहस्पति से गुरु और दिव्य सहस्र वर्ष अध्ययन काल होने पर भी व्याकरण का अन्त नहीं मिलता है। यही दशा भारतीय धार्मिक सिद्धान्तों की हुई। हमारी विद्याओं में आ सब कुछ गया किन्तु भारी ग्रन्थों के गूढ़ीकरण में सरल सिद्धान्तों का ज्ञान ऐसा दुर्ज्ञेय हो गया कि साधारण समाज को कर्तव्य जानने के लिए अड़चन पड़ने लगी। इन सब कारणों से भारतीय समाज का ऐसा समय आ गया कि जब क्रान्ति का होना अनिवार्य सा हो जाता है। इसी लिए हम देखते हैं कि थोड़े ही दिनों में जैन आर बौद्धधर्मों का प्रादुर्भाव हुआ। गौतम बुद्ध और महावीर

हिन्दू समाज के पहले भारी डिसेंटर (विरुद्ध-मत-प्रवर्तक) थे। इन्हीं के प्रादुर्भाव से हमारे साहित्य और मत में वैदिक समय का अन्त हो गया और बौद्ध तथा पौराणिक विचारों का पुष्टिकरण होने लगा। भगवान् बुद्ध की उत्पत्ति भारतीय इतिहास में एक नवीन युग सा स्थापित कर देती है।

अब प्रजातन्त्र रियासतों, मागधों तथा एक दो स्फुट विषयों पर कथन करके हम यह अध्याय समाप्त करेंगे।

प्रजातंत्र रियासतें

उपर्युक्त १६ रियासतों में वैशाली के वज्जियन तथा पावा और कुशिनारा के मल्लों के प्रजातन्त्र राज्य महत्त्वायुक्त थे। छोटे प्रजातन्त्रों में निम्न की गणना है :--कपिलवस्तु के शाक्य, रामगाम के कोलिय, संसुमार पहाड़ में भग्ग, अल्लकप्प के बूलिय, केसपुत्त के कालाम, और पिप्फलिवन के मोरि। प्रजातंत्रों की यह नामावली रिस डेविड्स में है। राय चौधरी ने भी इसे लिखा है। शाक्यों में बहिनों से भी विवाह होता था (रायचौधरी)। भग्गों का कथन ऐतरेयब्रा० VIII ८ में है जहाँ भार्गायण राजा कैरिशि सुत्वन का विवरण है। छठी शताब्दी बी० सी० में ये लोग वत्सराज के अधीन थे। केशिपुत्त केशिन लोगों का कथन शतपथ ब्रा० (वैदिक अनुक्रमणी) में है। मोरिय लोगों में स्वयं चन्द्रगुप्त मौर्य थे।

राजाओं के नाम

उस काल गन्धार के राजा पुक्कसाति थे, सौवीर (सिन्ध नदी के निचले देश) में रोरुक के रुद्रायण, शूरसेन के अवन्तिपुत्त सुबाहु और अंग के ब्रह्मदत्त।

अनार्य राज्यों में यक्ष आलवक की राजधानी आलवी थी। अन्य यक्षराज्य भी थे।

ऐन्द्र महाभिषेक

निम्न सम्राटों के ऐसे अभिषेक हुए :--

'परीक्षित से पूर्व, शार्यात, विश्वकर्मा, सुदास, मरुत्त और भरत।

परीक्षित के पीछे-जनमेजय, शतानीक, आम्बाष्ठ्य युघाश्रौष्ठि, और अंग।

(रायचौधरी)

बार्हद्रथ कुल के अन्तिम राजा रिपुञ्जय को उसके मंत्री पुलिक, (मुनिक, सुनिक अथवा शुनक) ने मारकर अपने पुत्र प्रद्योत को राजा बनाया। इसके वंशधर पालक, विशाख्ययूप, जनक और नन्दि-वर्धन ने एक दूसरे के पीछे राज्य किया। पुराणों के अनुसार इनका राजत्व-काल १३८ वर्षों का है। प्रद्योत के विषय में लिखा है कि उसने पड़ोसी राजाओं पर अपना अधिकार जमाया और भला मनुष्य होने पर भी २३ वर्ष अधर्मपूर्ण राज्य किया। इस वंश का विशेष कथन यथास्थान होगा। परीक्षित से शिशिनाग तक (शिशुनाग को छोड़ के) का समय पुराणों में इस प्रकार से दिया है--

विष्णु पुराण—१०५० वर्ष।
भागवत्—११५० वर्ष।
मत्स्य और वायु पुराण—१०५० वर्ष।

प्रद्योतों के पीछे मगध में शिशुनाग ने अपना राज्य जमाया। यह नहीं लिखा है कि शिशुनाग कौन था और किस प्रकार राजा हुआ? केवल इतना कहा गया है कि प्रद्योतों का बल चूर्ण करके यह नरेश बना। कुल मिलाकर दस शैशुनाग राजे हुए जिनका राजत्व-काल ३६० वर्ष पुराणों में लिखा है। इन्हीं में से राजा अजातशत्रु ने २५ वर्ष राज्य किया और उसके पिता बिम्बिसार ने २८ वर्ष। ये दोनों गौतम बुद्ध के समकालिक थे।

पार्जिटर महोदय ने महाभारत काल से मौर्य पर्यंत शासकों के समय निम्नानुसार दिए हैं:—

राजे और महाराजे।	समय बी० सी०
सेनजित बार्हद्रथ, गद्दी पाए।	८५०
सेनजित और उनके पीछे १५ बार्हद्रथ राजे।	२३१ वर्ष।
प्रद्योतों का अधिकारारम्भ।	६१९
पांच प्रद्योत राजे	५२ वर्ष

शिशुनाग अधिकारारम्भ।	५६७
दस शिशुनाग राजे।	१६५ वर्ष
महापद्मानन्द का राज्यारम्भ।	४०२
महापद्म और उसके आठ पुत्र।	८० वर्ष
चन्द्रगुप्त मौर्य का राज्यारम्भ।	३२२

इस अध्याय के लिखने में डाक्टर राय चौधरी तथा रिस डेविड्स से सहायता ली गई है।

सत्रहवाँ अध्याय

ब्राह्मण साहित्य काल (रचनाएँ)

९५०–६०० बी० सी०

हम ऊपर कह आये हैं कि यजुर्वेद और अथर्ववेद की रचना दसवीं शताब्दी बी० सी० के पीछे तक होती रही। फिर भी ऋक् की मुख्यता के कारण वैदिक समय दसवीं शताब्दी पर्यन्त ही माना गया है। सामन्, यजुः और अथर्व के विषय में हमें जो कुछ कहना था वह सब ऊपर के अध्यायों में कहा जा चुका है। यहां केवल इतना कह देना शेष है कि ये वेद भी प्राचीन काल में ही बनते आये थे, सो इनके सभी कथन पीछे से ही सम्बन्ध रखने वाले न समझने चाहिएँ। जैसे अथर्ववेद में मागध और अङ्ग लोग अनार्य माने गये हैं। इस बात से यह निष्कर्ष नहीं निकल सकता कि छठी सातवीं शताब्दी तक यही दशा रही। वेदों के विषय में यहां केवल इतना कह कर अब हम ब्राह्मण काल की मुख्यताओं का कथन करते हैं।

ब्राह्मण ग्रन्थ वेदाङ्ग माने जाते हैं, किन्तु हम इस कथन का विरोध न करते हुये भी केवल संहिता भाग को वेद कहते आये हैं। ऐसा ही प्रायः अन्य विद्वानों ने भी किया है। ब्राह्मण ग्रन्थों में एक प्रकार से वेदों की व्याख्या की गई है। ये संख्या में बहुत थे किन्तु अब प्रायः ७० ही मिलते हैं। इनके दो मुख्य विभाग हैं, अर्थात् कर्मकाण्ड और ज्ञानकाण्ड। ज्ञानकाण्ड को उपनिषत् कहते हैं और ब्राह्मण ग्रन्थ कहने से सहसा कर्मकाण्ड ही पर ध्यान जाता है। यद्यपि उपनिषत् ब्राह्मण ही के अङ्ग हैं, तथापि इन दोनों में विषय का बहुत बड़ा अन्तर है। प्रत्येक ब्राह्मण में एक न एक उपनिषत् अवश्य है, किन्तु प्रत्येक उपनिषत् किसी न किसी ब्राह्मण का अङ्ग नहीं है, क्योंकि कुछ उपनिषत् केवल आरण्यकों से सम्बन्ध रखते हैं, और शेष ब्राह्मण और

आरण्यक दोनों से पृथक् हैं। ब्राह्मण ग्रन्थों में अनेकानेक याज्ञिक विषयों से सम्बन्ध रखनेवाले नियमोपनियम हैं। आरण्यकों में वान-प्रस्थाश्रम सम्बन्धी नियम हैं। उपनिषदों को निकाल डालने से आरण्यकों में ब्राह्मणों की अपेक्षा ज्ञान कथन बहुत विशेष है। ज्ञान की दृष्टि से भी उत्तरोत्तर वृद्धि के अनुसार आरण्यकों को ब्राह्मणों और उपनिषदों के बीच में स्थान मिलेगा।

रैप्सन कृत कैम्ब्रिज हिस्टरी आव् इंडिया के प्रथम अध्याय में कथित ब्राह्मण साहित्य पर मुख्य विचारों का सारांश यहां देकर हम अपने विचार लिखेंगे। पंच विंश ब्राह्मण का गद्य शायद यजुर्वेदीय गद्य से भी पुराना हो। गोपथ ब्राह्मण कौशिक और वैतान सूत्रों से भी पीछे का है। उपनिषदों में बृहदारण्यक और छान्दोग्य सब से पुराने हैं। जैमिनीय उपनिषत् सामवेदीय जैमिनीय ब्राह्मण का अंग है। उपर्युक्त उपनिषदों तथा केन और काठक के अतिरिक्त कोई उपनिषत् बुद्ध से पुराना नहीं है। बहुतेरे सूत्रों में जो श्लोक हैं वे उन सूत्रों से बहुत पुराने हैं। ब्राह्मण काल में सभ्यता का केन्द्र कुरुक्षेत्र है। शतपथ और ऐतरेय ब्राह्मणों में पाश्चात्यों की निन्दा है। उत्तर कुरु तथा उत्तर मद्र हिमालय के उस पार थे। अनन्तर कोशल, विदेह, मगध और अंग की ख्याति होती है। आन्ध्र, पुण्ड्र, मूतिब, पुलिन्द, शबर और नैषध के भी कथन हैं। यास्क कृत निरुक्त प्रायः ५०० बी० सी० का है। अथर्व वेद में मूजवन्त, गान्धार और महावृष के कथन हैं। छान्दोग्य रैक्यपर्ण को महावृष में मानता है। यास्क कहते हैं कि काम्बोज की भाषा साधारण बोलचाल से कुछ पृथक् थी। वैदर्भ भीम का कथन ऐतरेय में है तथा भीम का जैमिनीय उपनिषत् ब्राह्मण में। कौरव राजधानी आसन्दीवन्त, पाञ्चाल राजधानी काम्पील तथा काशी पति की राजधानी वरणावती पर काशी के भी यहां कथन हैं। इस उपनिषत् में आया है कि सरस्वती नदी विनशन की बालू में लुप्त होकर ४४ दिनों की यात्रा पर प्लक्ष प्रास्रवण में फिर निकलती है। इस ब्राह्मण में नागरिक जीवन का विकास है। भारतों के स्थान पर हम कौरवों और पांचालों के कथन पाते हैं। पांचालों में क्रिवि, अनु, द्रुह्यु, सृंजय, वशी, उशीनर आदि ...

कुरु पांचाल आर्य्य सभ्यता के नमूने हैं। उनके यज्ञ तथा भाषा श्रेष्ठतम हैं। वैदिक साहित्य उन में कोई शत्रुता नहीं बतलाता। अथर्ववेद परीक्षित को भारी कौरव राजा कहता है। प्रति सुत्वन उन के पौत्र थे और प्रतीप प्रपौत्र। शतपथ ब्राह्मण जनमेजय का अश्वमेध यज्ञ बतला कर आसन्दीवन्त को राजधानी कहता है। बृहदारण्यकोपनिषत् परीक्षित वंशियों के पतन का कथन करता है। पर अत्नार कोशल और विदेह दोनों का राजा लिखा है। शतपथ ब्राह्मण कहता है कि माधव विदेघ सदानीर (गण्डक) पार करके विदेह में स्थापित हुये। कौशीतकि उपनिषत् भी काशी और विदेह का सम्बन्ध बतलाता है। जल जातूकर्ण्य कोशल, विदेह और काशी के नरेशों का पुरोहित था। इस से इन तीनों का मेल सम्भव है। अथर्व वेद में अंग और मगध एक दूसरे से दूर हैं। मगध में खनिज पदार्थों का बाहुल्य था। यदि कीकट (गया) मगध में माना जावे तो ऋग्वेद में भी उसकी निन्दा है। ऋग्वेद के समय ऋषि गण तथा राजन्यवर्ग बहुत कुछ वंश परम्परागत वर्ग थे किन्तु लोग एक से दूसरे में हो जाया करते थे। विवाहों के प्रतिकूल बन्धन कम थे। अनन्तर भेद प्रकट होने लगे, विशेषतया विशों में। ये भेद व्यापारानुसार बढ़े। रथकार पृथक् वर्ण से हो गये। समय पर आर्यों में शूद्रा स्त्रियों के विवाह बढ़ने से आर्य्य रुधिर की शुद्धता के प्रश्न उठे! सूत्रों में पुरुषों के विवाह अपनी या नीची जातियों में हो सकते थे। कुछ सूत्रों में आर्य्यों को शूद्राओं से विवाह की आज्ञा थी। ब्राह्मण ग्रन्थों में सगोत्रीय विवाह तीन ही चार पुश्तों तक वर्जित थे। वत्स और कवश की मातायें शूद्रा थीं। राजकन्याओं के साथ ब्राह्मणों के विवाह प्रायः होते थे। ऋग्वेद में विश्वामित्र केवल ऋषि हैं किन्तु पंच विंश और ऐतरेय ब्राह्मणों में राजा जह्नु के वंशधर भी हैं। वेदानुक्रमणी में कई राजन्य वेदर्षि भी हैं। जनक वैदेह, अश्वपति केकय, काशिराज अजात शत्रु, पांचाल राज जैवलि प्रवाहण ब्राह्मणों को ज्ञानोपदेश करते हैं। सत्य काम जाबाल अज्ञात पिता के पुत्र होकर भी ब्राह्मण माने जाते हैं। कोई वैश्य या शूद्र ब्राह्मण न हो सका।

ब्राह्मण काल में राज्य बड़े बड़े भी हो जाते हैं तथा यज्ञों में रीतियां

पढ़ जाती हैं। निम्न लोग रत्निन कहलाये जाते हैं:—पुरोहित, राजन्य, महिषी, वावाता (प्यारी महारानी), परिवृक्ती (त्यक्ता महारानी), सूत, सेनानी, ग्रामणि, क्षत्री (Chamberlain), संग्रहीत्रि (सारथी या कोषाध्यक्ष), भाग दुग्ध (कर वसूल करने वाला), अक्षवाप (जुये का निरीक्षक), और स्थपति (जज)। सभा या समिति का व्यवहार घटता है। राजा फ़ौजदारी (दंड विधान) व्यवहार का अध्यक्ष था। अब तक क़ानून मुआहिदा न था। पुत्री से पुत्र अच्छे थे। स्त्री का पद कुछ गिर चुका था। क़र्ज़े का व्यवहार कुछ कुछ था। राजाओं में बहु विवाह चलता था। खेती की उन्नति हुई। गेहूँ, जौ, सरसों, चावल आदि का प्रचार बढ़ा। शिल्प की भारी उन्नति होकर व्यापारों की संख्या बढ़ी।

अब अन्य आधारों के अनुसार कथन होता है। यजुर्वेद को छोड़ देने से ब्राह्मणों से पुराना समस्त आर्य्य-जाति का ग्रन्थ कोई नहीं है। ब्राह्मणों के सारांश का नाम कल्प-सूत्र है। प्रत्येक वेद में अनेक ब्राह्मण सम्बन्ध रखते हैं। ऋग्वेद के ब्राह्मण ऐतरेय और कौशीतकि हैं। कौशीतकि का अंग सांख्यायन है। सांख्यायन नामक एक ऋषि थे जिन्होंने कल्पसूत्र और गृह्यसूत्र बनाये। इन्हीं के नाम पर यह ब्राह्मण है। जान पड़ता है कि इसी नाम के इनके कोई पूर्व पुरुष थे जिन्होंने यह ब्राह्मण बनाया होगा। हिन्दू शास्त्रानुसार वेदों की भांति ब्राह्मण ग्रन्थ भी अनादि और अपौरुषेय हैं। महात्मा सायणाचार्य ने महर्षि जैमिनि के आधार पर वेदों और ब्राह्मणों को अपौरुषेय सिद्ध किया है। ऐतरेय ब्राह्मण महीदास ऐतरेय के नाम पर है। काशी के राजा अजातशत्रु ने बालाकि नामक ब्राह्मण को ब्रह्मविद्या बताई। राजा प्रतर्दन का नाम कौशीतकि ब्राह्मण में आया है। सामवेद के ब्राह्मणों में ताण्ड्य, षड्विंश, सामविधान, वंश, आर्षेय, देवताध्याय, संहितोपनिषद्, छान्दोग्य, जैमिनीय उपनाम तवलकार, सत्यायन और भल्लवी प्रधान हैं। इन सब में ताण्ड्य की मुख्यता है। षड्विंश ब्राह्मण में मूर्ति का कथन है। ब्राह्मणों में पातकों की संख्या में निम्नलिखित बातें भी हैं—शक्तिन वस्तु का खाना, राजा से नजर लेनी, हिंसा, बड़े भाई के अविवाहित रहते हुए छोटे का व्याह करना, वैश्य या शूद्र की नौकरी करनी,

मन्दिरों में नौकरी करनी और आलस्य। षड्विंश ब्राह्मण में फलित ज्योतिष का वर्णन एवं यजुर्वेद के अतिरिक्त पहले पुनर्जन्म का कथन है। इस ब्राह्मण में देवकीपुत्र कृष्ण एक विद्वान् माने गये हैं। कुमारिल भट्ट ने सामवेद के आठ ब्राह्मणों के नाम लिखे हैं। सायणाचार्य ने उन पर भाष्य लिखा है। छान्दोग्य ब्राह्मण विशेषतया छन्दों में है। कुछ पाश्चात्य पण्डितों ने लिखा है कि कई ब्राह्मण ग्रन्थों में बौद्ध मत का कुछ प्रभाव देख पड़ता है।

कृष्ण यजुर्वेद का ब्राह्मण केवल तैत्तिरीय है। इसमें जरासन्ध के पिता राजा बृहद्रथ का नाम आया है। शुक्ल यजुर्वेद का ब्राह्मण शतपथ है। यह ब्राह्मण ग्रन्थों में सर्व प्रधान है और वैदिक ग्रन्थों में ऋग्वेद तथा अथर्व को छोड़ कर इसकी ऐतिहासिक महिमा शेष सभी ग्रन्थों से बढ़ी चढ़ी है। यह ब्राह्मण-काल के प्रायः अन्त में बना। इसमें सौ अध्याय हैं। अतएव इसका नाम शतपथ है। इसमें विदेहराज जनक तथा याज्ञवल्क्य के नाम आये हैं और विष्णु की महिमा कुछ बढ़ी हुई है। शतपथ के देखने से समझ पड़ता है कि कुरु और पाञ्चालों में कोई शत्रुता नहीं थी किन्तु परीक्षित के घराने में कोई भारी घटना हुई थी। मेगास्थनीज के समय में महाभारत में कथित कृष्ण और पाण्डवों का सम्बन्ध भारत में ज्ञात था। शतपथ में परीक्षित-पुत्र जनमेजय का नाम आया है और पिजवन् के पुत्र सुदास का भी। नरमेध के विषय में शतपथ ब्राह्मण में साफ़ लिखा है कि मनुष्य का बलिदान कभी नहीं होता था, वरन् उसकी प्रतिमा मात्र का। फिर भी कुछ पाश्चात्य पादरी लोग यह प्रमाणित करने का प्रयत्न करते हैं कि वैदिक समय में नर-बलि अवश्य होती थी किन्तु ब्राह्मण-काल में सभ्यता का विचार बढ़ जाने से नर-बलि का निषेध होकर नर-प्रतिमा मात्र की बलि का विधान रह गया। अपने इस दुराग्रहपूर्ण कथन का आधार स्वरूप वे केवल शुनःशेप का उदाहरण देते हैं। इसके अतिरिक्त किसी भी हिन्दू ग्रन्थ में उनको नर-बलि का कोई प्रमाण नहीं मिलता है। इस अवसर पर भी वास्तविक नर-बलि नहीं हुई।

शतपथ ब्राह्मण विशेषतया याज्ञवल्क्य-कृत समझ पड़ता है।

तैत्तिरीय ब्राह्मण में लिखा है कि द्विज देवताओं से हुए और शूद्र असुरों से। यहाँ देवताओं तथा असुरों से आर्यों और अनार्यों से प्रयोजन समझ पड़ता है। प्रलय के समय मनु मत्स्य की सहायता से उत्तरीय पर्वतों की ओर चले गये। वहाँ इन्होंने पाकयज्ञ किया जिससे इडा नाम्नी स्त्री उत्पन्न हुई। इसीसे मनु ने सन्तान उत्पन्न की। ब्राह्मण ग्रन्थ में यह मछली अवतार नहीं मानी गई है और यह कौन मनु थे सो भी नहीं लिखा है। शतपथ ब्राह्मण में विष्णु को वामन कहा गया है। एक पाश्चात्य पण्डित का कथन है कि वैदिक मन्त्रों में मनुष्य देवताओं से डरता है, ब्राह्मण ग्रन्थों में (मनुष्य) देवताओं को पराजित कर देता है और उपनिषदों में (मनुष्य) देवताओं की कुछ परवा नहीं करता। अथर्ववेद का ब्राह्मण गोपथ कहलाता है। ब्राह्मण ग्रन्थों में मुख्यतया ६ विषयों का कथन रहता है, अर्थात् विधि, अर्थवाद, निन्दा, शंसा, पुराकल्प और परकृति का। इनमें वर्णन यज्ञ सम्बन्धी रहते हैं। महर्षि जैमिनि कहते हैं कि यही सब बातें वेदों में भी पाई जाती हैं।

पाश्चात्य पण्डितों का विचार है कि जब वेदमन्त्र बहुत अधिक हो गये और अधिकतर मंत्रों की आवश्यकता न रही तब ब्राह्मणों ने अपनी भारी उत्पादिनी शक्ति को याज्ञिक विधि और अर्थवाद के फैलाव में लगाया। यही दशा कुछ कुछ यजुर्वेद से ही प्रारम्भ हो चुकी थी किन्तु ब्राह्मण ग्रन्थों में इसकी विशेष उन्नति हुई। ब्राह्मण ग्रन्थों का मुख्य कार्य मंत्रों और याज्ञिक विधि का पारस्परिक सम्बन्ध दिखाना और उनका धार्मिक भाव प्रकाशन है। कुछ कथा भागों और चमत्कारिक भावों को छोड़ देने से ब्राह्मण ग्रन्थों का साहित्यिक मूल्य कुछ भी नहीं है। ब्राह्मण जाति यजुर्वेद से ही जन्मज हो गई थी और अथर्ववेद में ही उसका प्रभाव पड़ गया था। यह ब्राह्मण ग्रन्थों में और भी बढ़ा हुआ देख पड़ता है। वेदों की प्रधानता उच्च विचारों और प्राकृतिक वर्णनों में है, किन्तु ब्राह्मणों की केवल रस्म-रिवाजों में दिखाई देती है। पहले ब्राह्मण ग्रन्थ वेदों के फैलाव मात्र माने जाते थे किन्तु पीछे से उनकी महिमा बढ़ गई और वे वेदाङ्ग समझे जाने लगे। ब्राह्मण ग्रन्थों में विधि का पूरा वर्णन नहीं है

क्योंकि ये ग्रन्थ यज्ञ कराने वाले में इस का कुछ ज्ञान पहले से मान लेते हैं।

बहुत से ब्राह्मण ग्रन्थ लुप्त हो गये हैं क्योंकि प्रस्तुत ग्रन्थों में बहुत से ऐसे ग्रन्थों के उद्धृत भाग हैं जो अब अप्राप्य हैं। कुल मिला कर सारे ब्राह्मण ग्रन्थों में एक प्रकार का साम्य पाया जाता है, किन्तु ध्यानपूर्वक पढ़ने से उनके निर्माणकाल का पता उन्हीं की रचना के ढङ्गों से लगता है। यजुर्वेद के पीछे पञ्चविंश और तैत्तिरीय ब्राह्मण सब से पुराने हैं, तथा इनके पीछे जैमिनीय, कौशीतकि और ऐतरेय। ब्राह्मणों में शतपथ सब से नया है। गोपथ और सामवेद के छोटे छोटे ब्राह्मण उससे भी नये हैं। ब्राह्मणों में कुछ गाथायें पद्य में भी हैं। विचार किया जाता है कि ऐतरेय ब्राह्मण कुरु पांचाल देश में बना। कौशीतकि ब्राह्मण से प्रकट होता है कि उत्तरीय भारत में पठन-पाठन-प्रणाली सब से अच्छी थी और वहां के पठित विद्यार्थियों का अधिक मान था। शतपथ ब्राह्मण में राजा जनमेजय का नाम लिखा है और आसुरि नामक एक आचार्य का नाम कई बार आया है। ये सांख्यशास्त्र के एक बड़े आचार्य कहे गये हैं। इन के नाम आने से विदित होता है कि सांख्यशास्त्र के मुख्य आचार्य महर्षि कपिल शतपथ ब्राह्मण के बहुत पहले हुए। आसुरि कपिल के शिष्य कहे गये हैं। कपिल दो थे, एक स्वायम्भुव मनु की पुत्री देवहूति के पुत्र और दूसरे सगरात्मजों के मारनेवाले। यह निश्चय नहीं है कि सांख्यकार कपिल इन्हीं दोनों में से एक थे अथवा कोई तीसरे व्यक्ति। स्वायम्भुव मनु के दौहित्र कपिल वैदिक समय से भी पहले के हैं। उस काल में अध्यात्मज्ञान का इतना बढ़ना कि सांख्यशास्त्र ही बन जाता, नितान्त सन्दिग्ध है। सगर के समकालिक कपिल भी सांख्यशास्त्र-निर्माण के लिये उचित से अधिक पुराने समझ पड़ते हैं। इस शास्त्र का निर्माण उपनिषत्काल में समझ पड़ता है। सांख्यकार कपिल बुद्ध काल से पहले के माने जाते हैं।

कालिदास ने विक्रमोर्वशी और शकुन्तला नाटकों में महाराजा पुरूरवा और दुष्यन्त के वर्णन किये हैं। पुरूरवस और उर्वशी का कुछ कथन ऋग्वेद में भी आया है जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है। ये दोनों कथायें शतपथ में विस्तार पूर्वक लिखी हैं। महा प्रलय का

भी वर्णन इसी ब्राह्मण में है।

ब्राह्मण-काल में गुरुओं और गुरुद्वारों की परिपाटी स्थिर हो चुकी थी। हम स्वारोचिष मन्वन्तर में लिख आये हैं कि ऋषियों का जंगलों में रहना उसी अवैदिक समय में प्रारंभ हो गया था। इस परिपाटी ने वैदिक समय में बहुत बल पाया। ऋग्वेद में लिखा है कि ब्रह्मचारी को कृष्ण मृगचर्म धारण करना चाहिये। ब्राह्मण काल में वर्तमान विश्वविद्यालयों की भांति परिषद् नाम्नी संस्थायें स्थिर हुईं जिनमें गुरुद्वारों से निकले हुए प्रवीण विद्यार्थी अध्ययन करते थे। इन परिषदों में बड़े बड़े आचार्य अपने प्रिय शिष्यों को शिक्षा देते थे। कुरुओं और पांचालों की परिषदें सर्वश्रेष्ठ थीं। इन्हीं के कारण ब्राह्मण ग्रन्थों के अवलोकन से प्रकट होता है कि उत्तरी भारत में पठित विद्यार्थियों का मान अधिक होता था।

ब्राह्मण ग्रन्थों का परम सूक्ष्म वर्णन हम ऊपर दे आये हैं। इनके पीछे आरण्यकों का विषय आता है जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है। आरण्यक का शाब्दिक अर्थ "वन सम्बन्धी" है। ब्राह्मणों की उन्नति होने से आरण्यकों का नम्बर आया। कुछ लोग कहते हैं कि आरण्यक वानप्रस्थ लोगों के लिये बनाये गये और इसीलिये इनका यह नाम पड़ा। कुछ अन्य लोग यह भी अनुमान करते हैं कि यह नाम इस कारण पड़ा कि यह बड़ी हुई आध्यात्मिक विद्या नगरों में न सिखलाई जाकर वनों में ही सिखलाई जाने योग्य थी। बहुत से आरण्यक ब्राह्मण ग्रन्थों के सम्बन्ध में ही लिखे गये। ऐतरेय आरण्यक इसी नाम के ब्राह्मण से सम्बन्ध रखता है। इसमें पांच खण्ड और अट्ठारह अध्याय हैं, जिनमें अन्तिम दो सूत्र साहित्य में मिल जाते हैं। कौशीतकि ब्राह्मण का कौशीतकि आरण्यक है। आरण्यकों के कुछ भाग ब्राह्मण ग्रन्थों के समान हैं और अधिकांश उपनिषदों के। इसलिये जो कथन ब्राह्मण और उपनिषदों के विषय में किया जाय वही इनके विषय में भी घटित होता है। आरण्यकों में बृहदारण्यक सर्वप्रधान समझा पड़ता है। इसका विषय ऐसा आध्यात्मिक है कि यह उपनिषद् भी समझा जाता है।

ब्राह्मण ग्रन्थों की मुख्य महिमा उपनिषदों पर ही अवलम्बित है।

यदि इस चमत्कारी रत्न को ब्राह्मण साहित्य से निकाल डालें तो वर्तमान पंडितों के लिए ब्राह्मणों की गरिमा लुप्तप्राय हो जाय। उपनिषदों में जगदुत्पत्ति, जीवात्मा और परमात्मा पर विचार किये गये हैं। वैदिक धर्म की गरिमा उपनिषदों पर ही अवलम्बित है; इसीलिये इन्हें वेदान्त कहते हैं। पाश्चात्य पण्डित शोपिनहार का कथन है, "उपनिषदों से मुझे जीवन में शान्ति मिली है और मरणानन्तर भी इन्हीं से शान्ति मिलने की आशा है।" प्रसिद्ध पण्डित मैक्समुलर कहते हैं कि उपनिषत् मानव-मस्तिष्क के बड़े ही चमत्कारिक फल हैं। इनसे संसार भर के प्रत्येक देश, प्रत्येक समय और प्रत्येक साहित्य को गरिमा प्राप्त हो सकती है।

उपनिषत् का शब्दार्थ गुरु के पास बैठ कर सीखने की विद्या है। महर्षि पाणिनि ने इस शब्द से रहस्य विद्या का प्रयोजन लिया है। इसके कई अन्य अर्थ भी लगाये जाते हैं किन्तु हमें यही दो प्रधान समझ पड़ते हैं। छान्दोग्य में इसका वही अर्थ किया गया है जो प्रायः साधना का है। शंकराचार्य कठोपनिषत् की प्रस्तावना में इसका अर्थ करते हैं, "पुनरागमन तथा पुनर्जन्म भर का नाश करने वाली विद्या।" उपनिषदों की संख्या अनिश्चित है। ये १२३ से ११९४ तक माने गये हैं। मुख्य उपनिषत् गणना में दस हैं, अर्थात्—

ईश, केन, कठ, प्रश्न, मुण्डक, माण्डूक्य, तैत्तिरीय, ऐतरेय, छांदोग्य, बृहदारण्यक।

इनके अतिरिक्त कौशीतकि और श्वेताश्वतर की भी प्रधानता है। इनमें मुख्यता इस बात की है कि साम्प्रदायिक मतसंकीर्णता का अभाव दिखाई पड़ता है। अथर्ववेद के उपनिषत् नवीन एवं साम्प्रदायिकत्व से पूर्ण हैं। ऋग्वेद के उपनिषत् उसके ब्राह्मणों के नाम पर ऐतरेय और कौशीतकि कहलाते हैं। कृष्ण यजुर्वेद के प्रधान उपनिषदों में तैत्तिरीय तथा मैत्रायणीय हैं और शुक्ल यजुः के ईश और बृहदारण्यक। छांदोग्य उपनिषत् सामवेद का है। अथर्ववेद के उपनिषत् संख्या में बहुत अधिक हैं, जिनमें कठ और मुण्डक प्रधान हैं। ये अथर्ववेद के उपनिषत् तीन प्रकार के हैं अर्थात् ईश्वर संबंधी, योग संबन्धी और शिव अथवा विष्णु सम्बन्धी। प्राचीन उपनिषत्

प्रधानतया गद्य ग्रन्थ हैं। इनमें कहीं पद्य भी पाया जाता है और कुछ उपनिषत् पद्य के भी हैं। प्राचीन उपनिषत् ब्राह्मण ग्रन्थों के समकालिक तथा रचनाशैली से उन्हीं के समान हैं, किन्तु विषयों में बहुत बड़ा अन्तर है। नवीन उपनिषत् बहुत पीछे तक बनने गये। बड़े ग्रन्थों में कुछ गाथायें पाई जाती हैं। इनमें कहीं कहीं गुरुओं और शिष्यों में प्रश्नोत्तर भी मिलते हैं। प्रश्नोपनिषत् में पिप्पलाद ऋषि गार्गी आदि अपने छः शिष्यों को उपदेश देते हैं और कठोपनिषत् में यम नचिकेता को ज्ञान सिखाते हैं।

कहते हैं कि मोक्ष के लिये दो मार्ग हैं, अर्थात् ज्ञान और उपासना। जो लोग परमात्मा को समझ सकते हैं वे सभी पदार्थों में उसी को देखते हैं। जिनकी बुद्धि इतनी दूर न पहुँचे वे वेदविहित कर्म्मों को करें। कठोपनिषत् के निर्माण-क्रम, रचना शैली और विचार-क्रम बहुत ही उत्तम हैं। इसमें यमराज नचिकेता को जीवात्मा और परमात्मा का अन्तर सिखलाते हैं। इसकी प्रथम वल्ली में जीव का अस्तित्व सिद्ध किया गया है। बृहदारण्यक में विराज का क्रम उत्तमता से कहा गया है और उसी में ऐसा सृष्टिक्रम दिखाया गया है कि विराज ही से क्रमशः कई नर मादाओं के जोड़े हुए, जिनसे सर्वप्राणी उत्पन्न हुए। काशिराज अजातशत्रु द्वारा बालाकि गार्ग्य का शिक्षण इसी उपनिषत् में लिखा हुआ है। महाराजा अजातशत्रु के समकालिक विदेहराज जनक थे। अजातशत्रु को इस बात की शिकायत थी कि पण्डित लोग उनके यहाँ नहीं रहते थे और मिथिलेश जनक को अपना संरक्षक समझते थे। जनक के यहाँ एक बार बहुत बड़ा यज्ञ हुआ, जिसमें कुरु पांचाल के बहुत से ब्राह्मण भी सम्मिलित थे। मिथिलेश ने एक हजार गौयें सर्वप्रधान पण्डित को दान कीं। इस पर जब किसी को भी उन्हें लेने का साहस न हुआ तब महर्षि याज्ञवल्क्य ने उन्हें ग्रहण किया। अब शेष पण्डित लोग उनसे वाद करने लगे, किन्तु सब पराजित हुए। इन वादियों में विदग्ध उपनाम शकल प्रधान था। छान्दोग्य उपनिषत् में आरुण के पुत्र उद्दालक ने अपने पुत्र श्वेतकेतु को ज्ञान सिखाया। इस उपनिषत् में बहुत से ऋषिगण केकय-पुत्र अश्वपति के [illegible] का ज्ञान सीखने

गये हैं। श्वेताश्वतरोपनिषत् में सांख्याचार्य कपिल का नाम लिखा है। शंकराचार्य ने इस उपनिषत् की एक बड़ी टीका लिखी। इस टीका में सांख्य और वेदान्त के मतभेद मिटाने का प्रयत्न किया गया है।

वेदान्त के पांच प्रधान भेद हैं अर्थात् अद्वैत, विशिष्टाद्वैत, शुद्धाद्वैत, द्वैताद्वैत और द्वैत। अद्वैत में एक ईश्वर माना गया है, द्वैत में ईश्वर और जीव तथा विशिष्टाद्वैत में ईश्वर, जीव और प्रकृति। फिर भी प्रकृति और जीव ईश्वर के विशेषणमात्र हैं। शुद्धाद्वैत में भी ये तीनों माने गये हैं, किन्तु ईश्वर, जीव और प्रकृति में क्रम से आनन्द और चित्त का आवरण माना गया है। द्वैताद्वैत भेद तथा अभेद दोनों को मानता है तथा द्वैत ईश्वर, जीव और प्रकृति तीनों को सत के समान कहता है। अतः ये तीनों ही ईश्वर को मान कर चलते हैं। उधर सांख्य में ऐसा द्वैतवाद है जो न केवल प्रकृति और जीव को मानता है वरन् ईश्वर को असिद्ध समझता है। हिन्दू-दर्शन-शास्त्र के छः प्रधान अंग हैं, अर्थात् सांख्य, योग, न्याय, वैशेषिक, पूर्वमीमांसा तथा उत्तरमीमांसा। इनके मुख्यकर्ता क्रम से कपिल, पतञ्जलि, गौतम, कणाद, जैमिनि और व्यास हैं। ये सब मुनि ब्राह्मण काल के नहीं हैं, किन्तु इन छओं दर्शनों के मूल विचारों का प्रादुर्भाव ब्राह्मणकाल ही में या कुछ ही पीछे हुआ। पीछे से जिस जिस आचार्य ने जिस जिस शास्त्र को उन्नत बनाया, उसी के नाम पर वह कहलाने लगा। कपिल और जैमिनि बुद्ध पूर्व के समझे जाते हैं। केनोपनिषत् में ईश्वर की शक्ति बहुत अच्छी तरह दिखलाई गई है, और एक उदाहरण द्वारा सिद्ध किया गया है कि बिना ईश्वरीय बल के अग्नि अथवा मरुत् एक तिनके को भी जला या उड़ा नहीं सकते। माण्डूक्य उपनिषत् में जाग्रत्, स्वप्न, सुषुप्ति तथा तुरीय अवस्थाओं का वर्णन है और ॐ शब्द की महिमा भी कही गई है। शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरुक्त, छन्द और ज्योतिष को हमारे यहाँ वेद का षडङ्ग कहते हैं। इन सबके नाम मुण्डकोपनिषत् में आये हैं। इससे विदित होता है कि इन छओं वेदाङ्गों की स्थापना ब्राह्मण काल में हो गई थी।

उपनिषदों का सदुपदेश मुख्यतया ईश्वरवाद है। यह ईश्वरवाद तर्क पर अवलम्बित है, न कि अन्धभक्ति पर। सत्यता की सब से बड़ी महिमा कही गई है। इसके मनोगत कराने के लिए सत्यकाम जावाल का उदाहरण छान्दोग्य उपनिषत् में दिया हुआ है। कहते हैं कि जब यह महात्मा शिष्य होने के लिए गुरु के पास गये तब उन्होंने इनके पिता का नाम पूछा। इस पर अपनी माता से पूछ कर जावाल ने गुरु से कहा, "मेरी माता मेरे पिता का नाम नहीं जानती, क्योंकि मेरे गर्भाधान के समय उसके पास कई मनुष्य आये थे जिस लिए वह किसी एक में मेरा पितृत्व स्थापित नहीं कर सकती।" जावाल की इस सत्यप्रियता से प्रसन्न होकर गुरु ने इस बालक की माता जबाला के नाम पर इसका नाम सत्यकाम जावाल रक्खा और अपने शिष्यों में इसको सर्वप्रधानता दी। छान्दोग्य उपनिषत् का मत है कि प्रारम में ईश्वर केवल एक था। उसने अग्नि का उत्पादन किया, जिस से जल हुआ और जल से पृथ्वी। ऋग्वेद में स्वर्ग नरक का विचार नहीं है। ब्राह्मणों में स्वर्ग, कर्म, प्रकृति, भविष्य-स्थिति आदि पर विवाद पाया जाता है। उपनिषदों में पुनर्जन्म के विचार उन्नत हो गये हैं। उपनिषदों का मत है कि ज्ञान ने संसार को बनाया, ज्ञान ही उसे स्थिर किए है और ज्ञान ही ईश्वर है।

जैसे कि वैदिक समय में पुरूरवा, नहुप, ययाति, वैवस्वतमनु, चाक्षुप मनु, पृथु, अम्बरीप आदि राजपुरुषों ने वेद रचना में भाग लिया था, वैसे ही ब्राह्मणकाल में जनक, अजातशत्रु, अश्वपति, जैवलि आदि राजपुरुषों ने उपनिषदों में पूरा योग दिया। जैवलि पांचालराज थे और उन्होंने श्वेतकेतु को ज्ञान सिखाया। उपनिषदों और वेदों में कुछ भाग लेते हुए भी राजन्य पुरुषों ने ब्राह्मण ग्रन्थों में कोई प्रधानता नहीं दिखलाई। आरण्यकों के विधि सम्बन्धी भागों में भी उनकी प्रधानता नहीं है। इससे प्रकट होता है कि कर्मकाण्ड केवल ब्राह्मणों की रचना है, किन्तु ज्ञान काण्ड में उनको क्षत्रियों से सहायता मिली। यह सहायता जैन और बौद्ध काल में शत्रुता में परिवर्तित हो गई जैसा कि हम आगे लिखेंगे। कुछ लोगों का यह भी विचार है कि मुख्यतया ज्ञानकाण्ड का आविर्भाव बढ़े हुए कर्म-

काण्ड पर क्षत्रियों की अश्रद्धा से हुआ।

उपनिषदों के समय में याज्ञिक अग्नि सब आर्यों के घर जला करती थी और दैनिक हवन सबके यहाँ होते थे। दैनिक पंच महायज्ञ में देवपूजन, पितृपूजन, अतिथिपूजन, संसारपूजन तथा गृह्यदेवपूजन होता था। इस प्रकार अतिथिसत्कार हमारे यहाँ सभ्यता मात्र न होकर धर्म का अंग था। मानुष कर्तव्यों में उपनिषदों का क्या विचार है, इसके विषय में तैत्तिरीय उपनिषत् का एक छोटा सा अवतरण यहाँ लिखा जाता है। "सत्य बोलो, स्वकर्तव्य पालन करो, वेदाध्ययन को न भुलाओ, उचित गुरुदक्षिणा देने के पीछे विवाह करके पुत्रोत्पादन करो, सत्य से मत हटो, कर्तव्य से मत हटो, लाभदायक पदार्थों को मत भुलाओ, महत्त्व को मत भुलाओ, वैदिक शिक्षा को मत भुलाओ, देवयज्ञ और पितृयज्ञ को मत भुलाओ, माता को देवी के समान मानो, पिता को देवता के समान मानो, अनिन्दित कर्मों पर श्रद्धा रक्खो, औरों पर नहीं, हमारे द्वारा किये हुये उचित कार्यों पर श्रद्धा रक्खो।"

विधवा विवाह ब्राह्मण काल में उचित माना जाता था। ज्योतिष, शिक्षा, व्याकरण, दर्शन और धर्मशास्त्र पर उस काल बहुत ध्यान दिया जाता था। ये सारे शास्त्र धार्मिक नीतियों से निकले हैं और इनका परस्पर सम्बन्ध भी है। आज कल के विद्वानों ने इसी बात को कसौटी माना है कि जिन शास्त्रों का धर्म से सम्बन्ध हो वे अवश्य भारतीय समझने चाहिये। वेदाङ्ग ज्योतिष की उन्नति ब्राह्मण काल में बहुत हुई। हमारे यहाँ चान्द्र वर्ष का चलन था, जिससे यह सौर वर्ष से सदैव कुछ पीछे हट जाता था। इसी लिए आजकल प्रायः अधिमास अर्थात् लौंद का प्रयोग होता है। लौंद का चलन वैदिक समय में भी था क्योंकि ऋग्वेद में लिखा है कि यह मास इन्द्र ने बनाया। ब्राह्मण काल में लौंद मास मोटे प्रकार से प्रायः पाचवें वर्ष पड़ता था। अट्ठाईस नक्षत्रों का हाल भी ज्ञात था। वैदिक समय में इनकी गणना पुनर्वसु से चलती थी, आजकल के समान अश्विनी से नहीं। सायनमेष का भी ज्ञान ब्राह्मणों को हो गया था। ब्राह्मणकाल में वैदिक समय के धर्म ने कुछ उन्नति अथवा अवनति की थी।

अवैदिक समय में वहाँ तक, पर्वत, भूत प्रेतादि का पूजन चलता था। यह अनार्यों का धर्म था। आर्यों ने अपने साथ वरुण और इन्द्र के पूजन के विचारों को लाकर फैलाया। धीरे धीरे तैंतीस वैदिक देवताओं का विचार उठकर पुष्ट हुआ और महर्षि विश्वामित्र के काल में एकेश्वरवाद चला तथा देवताओं की यह संख्या बढ़कर ३३३९ हो गई। पुरुष, विराज, प्रजापति, विश्वकर्मा, स्कंभ आदि नामों से ईश्वर का पूजन विधान उठकर पुष्ट हुआ। यही विचार कभी कभी इन्द्र और अग्नि द्वारा भी प्रकट किया गया है। हवनों, यज्ञों, बलि आदि की स्थापना वैदिक समय में ही भली भाँति हो गई थी। अग्निहोत्र आदि के लिये कभी न बुझने वाली स्थिर अग्नि का विधान इसी काल में हो चुका था। ब्राह्मण काल में याज्ञिक रीतियों में बड़ा विस्तार हुआ और उचित रीति से मन्त्रोच्चारण एवं उचित मंत्रों के साथ यज्ञ रीतियों के सम्पादन पर ऐसी श्रद्धा बढ़ी कि वास्तविक धर्म इन रीतियों के उलझाव में कुछ दब सा गया, यहाँ तक कि बहुत करके रीतियों ने ही धर्म का आसन ग्रहण किया। वेदों के पढ़ने से जो प्रत्येक ऋषि की व्यक्तिगत स्वतन्त्रता और श्रद्धा के विचार सभी स्थानों पर पाठक के चित्त में अङ्कित रहते हैं, उस स्वावलम्बी श्रद्धा एवं दृढ़ता को ब्राह्मण ग्रन्थों में हम नहीं पाते हैं। यही वैदिक और आदिम ब्राह्मण धर्मों का मुख्य भेद है। इसीलिए जान पड़ता है कि इसी रीति-सम्बन्धी दृढ़ता से ऊब कर लोगों ने उसके शिथिलीकरणार्थ वानप्रस्थ और संन्यासाश्रम के विचार चलाये, जिसमें यह सिद्ध किया गया कि निरमिक संन्यासी का दर्जा अग्निवान् से भी ऊँचा है। आरण्यकों का विधान इसी लिए उत्पन्न हुआ जान पड़ता है। आरण्यकों से औपनिषदिक विचारों का उठना परम स्वाभाविक था और ऐसा ही हुआ भी। इसी समय में जीवात्मा का अनित्य सिद्ध किया गया और पुनर्जन्म-सम्बन्धी आवागमन के विचार दृढ़ हुए। दार्शनिक सिद्धान्तों की भी स्थापना एवं दृढ़ता इसी शुभ काल में हुई। कठोपनिषद् में एक बड़े सुन्दर उदाहरण द्वारा दिखलाया गया है कि ब्रह्मविद्या की पदवी सभी सांसारिक पदार्थों से उच्चतर है। नचिकेता

यम से ब्रह्मविद्या जानना चाहता है। यम उसे धन, धान्य, पुत्र, पौत्र राज्य आदि सभी सांसारिक प्रलोभन दिखलाकर इससे हटाना चाहते हैं, किन्तु वह इन सब को तुच्छ मानकर इसी की खोज में ही लगा रहता है। इस दृढ़ता को देखकर ही यमराज उसे इस विद्या का पात्र समझ कर यह उत्तम ज्ञान सिखाते हैं। प्रयोजन यह है कि बिना सांसारिक प्रलोभनों के छोड़े कोई ब्रह्म विद्या को प्राप्त नहीं हो सकता। उपनिषदों ही द्वारा संसार में पहले पहल ईश्वर का विचार, पूर्ण दृढ़ता और ज्ञान के साथ प्रसिद्ध किया गया। संसार के संबन्ध में माया का विचार पहले पहल श्वेताश्वतर में आया। संसार माया है और ईश्वर मायी। छान्दोग्य उपनिषत् में लिखा है कि यह सारा संसार वही है अर्थात् सत् एव परमात्मा। हे श्वेतकेतो! तू भी वही है। इसी स्थान पर शंकराचार्य संबन्धी "तत्त्वमसि" के विचार बीज रूप से छान्दोग्य उपनिषत् में पाये जाते हैं।

उपनिषदों का विचार है कि परमानन्द पूर्ण ज्ञान ही से प्राप्त होता है। शंकराचार्य का मत है कि परमात्मा तथा जीवात्मा में केवल अविद्या का भेद है। यह विचार भी बीजरूप में उपर्युक्त उपनिषत् के कथन में आ गया है। कार्मिक विचारों की वृद्धि से जीवन और मृत्यु का भेद उठ जाता है और वह एक ही उन्नति के विविध रूप मात्र रह जाते हैं। ऐतरेय और शतपथ मुख्य ब्राह्मण हैं। पाश्चात्य पंडितों ने समयानुसार उपनिषदों के चार भाग किये हैं। वे पहली कक्षा में बृहदारण्यक, छान्दोग्य, तैत्तिरीय, ऐतरेय और कौशीतकि को रखते हैं। यह उपनिषदों के लिए प्राचीनतम कक्षा है। प्रश्न, मुंडक और केन के कुछ भाग इनके पीछे आते हैं। दूसरी कक्षा में कठ, ईश, श्वेताश्वतर, और महानारायण रक्खे गये हैं। तीसरी में मैत्रायणीय और माण्डूक्य, और चौथी में अथर्ववेदीय उपनिषत्। याज्ञवल्क्य ने महाराजा जनक से संवाद करते हुए सिद्ध किया है कि ईश्वर का अन्वयात्मक कथन असिद्ध है क्योंकि उसका शुद्ध वर्णन व्यतिरेक द्वारा ही किया जा सकता है। अन्वयवाची कथन उसे कहते हैं जिसमें किसी पदार्थ में मुख्य मुख्य गुण आरोपित करके उसका वर्णन किया जाय। व्यतिरेक में 'वह क्या नहीं है' ऐसे कथनों द्वारा उसका ज्ञान

कराया जाता है। महर्षि याज्ञवल्क्य आदि ने ईश्वर को व्यतिरेक द्वारा अग्राह्य, अविनाशी, अपरतन्त्र, अचल आदि कहा है। आरण्यकों, उपनिषदों आदि में ईश्वर मुख्यतया निर्गुण है। अरूप तो वह है ही, किन्तु गुणों की भी स्थापना उस में कम है। मनुष्य की निर्बलता से उसे गजग्राह को सी पुकार सुनने वाले व्यक्तिमापन्न ईश्वर की मानसिक प्रेरणा रहती है। ऐसा ईश्वर न पाकर केवल परब्रह्म के युक्ति संगत भाव से समाज सन्तुष्ट न रह सका। इस काल तक वैष्णव ईश्वरत्व कम था और विशेषता शैव ईश्वरत्व की थी। उपर्युक्त असन्तोष से बृहस्पति का चार्वाक मत लोकायत विचारों से निकला तथा महर्षि कपिल और जैमिनि के अनीश्वर वाद दार्शनिक रूपों में प्रकट हुये, जिससे सर्व साधारण में अनीश्वर वाद का मान हो गया तथा शैव ईश्वरत्व भी गिर सा गया। समय पर आचारात्मक बौद्ध धर्म चला, जिसने अपने मत में ईश्वर और वेदों को भी स्थान न दिया। वाल्मीकीय रामायण तथा कौटिल्य कृत अर्थशास्त्र की साक्षी से उस काल (छठी से पहली दूसरी शताब्दी बी० सी०) तक जो मत सर्व साधारण में प्रचलित मिलता है, वह वैदिक रूप लिये हुये कुछ मोटिया पन भी धारण किये था। अनन्तर पांचवीं शताब्दी बी० सी० के निकट बादरायण व्यास द्वारा गीता का निर्गुण सगुण ईश्वर युक्त आचारात्मक धर्म निकला।

ब्राह्मण काल का यह साहित्यिक इतिहास इसी स्थान पर समाप्त होता है। वैदिक समय में प्राकृत शक्तियों का व्यक्तीकरण और एक प्रकार से देवताओं का बहुलीकरण हुआ, किन्तु ब्राह्मण काल में उस बहुलीकरण में एकीकरण का भाव बड़ी दृढ़ता के साथ दिखलाया गया। वैदिक समय की रचनाओं में साहित्य की प्रधानता है और ब्राह्मणकाल में तर्क पूर्ण दर्शन की। वैदिक समय में उत्पादिनी शक्ति बलवती थी, किन्तु ब्राह्मण काल में स्थिरीकरण का भाव प्रधान रहा। वैदिक कवि बालकों के समान सभी पदार्थों पर आश्चर्य प्रकट करते हैं, किन्तु उपनिषदों के कवि प्रगाढ़ पंडित की भांति जटिल दार्शनिक प्रश्नों को हल करते हैं। दर्शन शास्त्र की उत्पत्ति आश्चर्य से है, ऐसा पंडितों का मत है।

जब कोई व्यक्ति किसी अज्ञात पदार्थ को देख कर उसे मामूली नहीं समझता और उसके तत्त्व पर विचार करता है तभी पूर्ण ज्ञान के अभाव में उस पर आश्चर्य प्रकट करता है। ज्ञानोन्नतिकरण का यह आश्चर्य सर्वप्रधान सहायक है। हमारे वैदिक ऋषियों ने प्रकृति को मामूली न मानकर उसका ध्यानपूर्वक निरीक्षण किया और अपने प्राथमिक ज्ञानानुसार उसके निगूढ रहस्यों का साहित्यपूर्ण वर्णन किया। वे लोग इस काव्य में इतने नहीं भूल गये कि जगत्पिता को जान ही न पाते, किन्तु जगत्पिता पर उनका ध्यान कम था और जगत् पर विशेष। इधर ब्राह्मण काल वाले ऋषिगण बाहरी प्रकृति पर मुग्ध होना छोड़कर उसके निगूढ़तम रहस्यों में घुस गये और अपने परिश्रम का चामत्कारिक फल उपनिषदों के रूप में छोड़ गये हैं, जिस जाज्वल्यमान प्रतिभापूर्ण रचना पर आज सारा संसार मुग्ध है। जिस भाव से वैदिक प्रश्न हाथ में लिये गये थे उसका स्वाभाविक फल औपनिषत् ज्ञान था। इसीलिये जहाँ पुरानी रचनायें वेद कहकर पुकारी गईं, वहाँ इनका वेदान्त कह कर आदर किया गया। इसी के साथ यह भी कहा जाता है कि जहाँ वैदिक ऋषि जीवन के उल्लास में मग्न है, वहाँ ब्राह्मण ग्रन्थों का ऋषि दुःखवादी जीवन विचार की जड़ जमाता है। हिन्दू शास्त्र सांसारिक जीवन को दुःख मूलक समझता है। उसी की जड़ मुक्ति के रूप में ब्राह्मण काल में जमती है।

कराया जाता है। महर्षि याज्ञवल्क्य आदि ने ईश्वर को व्यतिरेक द्वारा अदृश्य, अविनाशी, अपरतन्त्र, अचल आदि कहा है। आरण्यकों, उपनिषदों आदि में ईश्वर मुख्यतया निर्गुण है। अरूप तो वह है ही, किन्तु गुणों की भी स्थापना उस में कम है। मनुष्य की निर्बलता में उसे गजग्राह की सी पुकार सुनने वाले व्यक्तिमापन्न ईश्वर की मानसिक प्रेरणा रहती है। ऐसा ईश्वर न पाकर केवल परब्रह्म के युक्ति संगत भाव से समाज सन्तुष्ट न रह सका। इस काल तक वैष्णव ईश्वरत्व कम था और विशेषता शैव ईश्वरत्व की थी। उपर्युक्त असन्तोष से बृहस्पति का चार्वाक मत लोकायत विचारों में निकला तथा महर्षि कपिल और जैमिनि के अनीश्वर वाद दार्शनिक रूपों में प्रकट हुये, जिससे सर्व साधारण में अनीश्वर वाद का मान हो गया तथा शैव ईश्वरत्व भी गिर सा गया। समय पर आचारात्मक बौद्ध धर्म चला, जिसने अपने मत में ईश्वर और वेदों को भी स्थान न दिया। वाल्मीकीय रामायण तथा कौटिल्य कृत अर्थशास्त्र की साक्षी से उस काल (छठी से पहली दूसरी शताब्दी बी० सी०) तक जो मत सर्व साधारण में प्रचलित मिलता है, वह वैदिक रूप लिये हुये कुछ मोटिया पन भी धारण किये था। अनन्तर पांचवीं शताब्दी बी० सी० के निकट बादरायण व्यास द्वारा गीता का निर्गुण सगुण ईश्वर युक्त आचारात्मक धर्म निकला।

ब्राह्मण काल का यह साहित्यिक इतिहास इसी स्थान पर समाप्त होता है। वैदिक समय में प्राकृत शक्तियों का व्यक्तीकरण और एक प्रकार से देवताओं का बहुलीकरण हुआ, किन्तु ब्राह्मण काल में उस बहुलीकरण से एकीकरण का भाव बड़ी दृढ़ता के साथ दिखलाया गया। वैदिक समय की रचनाओं में साहित्य की प्रधानता है और ब्राह्मणकाल में तर्क पूर्ण दर्शन की। वैदिक समय में उत्पादिनी शक्ति बलवती थी, किन्तु ब्राह्मण काल में स्थिरीकरण का भाव प्रधान रहा। वैदिक कवि बालकों के समान सभी पदार्थों पर आश्चर्य प्रकट करते हैं, किन्तु उपनिषदों के कवि प्रगाढ़ पंडित की भाँति जटिल दार्शनिक प्रश्नों को हल करते हैं। दर्शन शास्त्र की उत्पत्ति आश्चर्य से है, ऐसा पंडितों का मत है।

जब कोई व्यक्ति किसी अज्ञात पदार्थ को देख कर उसे मामूली नहीं समझता और उसके तत्व पर विचार करता है तभी पूर्ण ज्ञान के अभाव में उस पर आश्चर्य प्रकट करता है। ज्ञानोन्नतिकरण का यह आश्चर्य सर्वप्रधान सहायक है। हमारे वैदिक ऋषियों ने प्रकृति को मामूली न मानकर उसका ध्यानपूर्वक निरीक्षण किया और अपने प्राथमिक ज्ञानानुसार उसके निगूढ़ रहस्यों का साहित्यपूर्ण वर्णन किया। वे लोग इस कार्य में इतने नहीं भूल गये कि जगत्पिता को जान ही न पाते, किन्तु जगत्पिता पर उनका ध्यान कम था और जगत् पर विशेष। इधर ब्राह्मण काल वाले ऋषिगण बाहरी प्रकृति पर मुग्ध होना छोड़कर उसके निगूढ़तम रहस्यों में घुस गये और अपने परिश्रम का चामत्कारिक फल उपनिषदों के रूप में छोड़ गये हैं, जिस जाज्वल्यमान प्रतिभापूर्ण रचना पर आज सारा संसार मुग्ध है। जिस भाव से वैदिक प्रश्न हाथ में लिये गये थे उसका स्वाभाविक फल औपनिषद् ज्ञान था। इसीलिये जहाँ पुरानी रचनायें वेद कहकर पुकारी गईं, वहीं इनका वेदान्त कह कर आदर किया गया। इसी के साथ यह भी कहा जाता है कि जहाँ वैदिक ऋषि जीवन के उल्लास में मग्न है, वहीं ब्राह्मण ग्रन्थों का ऋषि दुःखवादी जीवन विचार की जड़ जमाता है। हिन्दू शास्त्र सांसारिक जीवन को दुःख मूलक समझता है। उसी की जड़ मुक्ति के रूप में ब्राह्मण काल में जमती है।

अठारहवाँ अध्याय

सूत्र साहित्य काल

७०० से १०० बी० सी० पर्यन्त (मुख्यतया)

अब तक हमारे ऋषियों ने वेदों और ब्राह्मणों की ओर ध्यान रक्खा तथा आरण्यकों और उपनिषदों को दृढ़ किया था। हमारे यहाँ ब्राह्मणों में अब तक लेखन-प्रणाली का अच्छा प्रचार नहीं हुआ था, जिससे ये भारी तथा बहुसंख्यक ग्रन्थ बन कर शताब्दियों पर्यन्त स्मरण-शक्ति द्वारा ही रक्षित रक्खे गये। वे महानुभाव कोटि कोटि धन्यवाद के भाजन हैं जिन्होंने पराई रचनाओं को केवल संसार के हितार्थ इतने दिनों तक स्मरण-शक्ति द्वारा रक्षित रक्खा। फिर भी इस अधिकता से पण्डितों को शिष्यवर्ग मिलते रहे कि इतना परिश्रम करते हुए भी लेखन-कला के विशेष प्रचार की आवश्यकता न प्रतीत हुई। तथापि ज्यों ज्यों ग्रन्थों की संख्या तथा आकार बढ़ते गये, त्यों त्यों उनके रक्षण-संबन्धी कठिनता का भी बोध होने लगा। इसलिए हमारे ऋषियों को भारी भारी तर्क-समुदाय के याद दिलाने को छोटे छोटे सूत्रों की आवश्यकता पड़ी, जिनकी भाषा तार द्वारा भेजे हुए समाचारों से भी अधिक सङ्कुचित है। ऋषियों ने संक्षिप्त गुण को इतना बढ़ाया कि किसी सूत्र से बिना भाव घटाये अर्ध मात्रा भी घटा पाने से उन्हें पुत्रोत्पत्ति के समान प्रसन्नता होती थी। इन्हीं संक्षिप्त से संक्षिप्त लेखों को सूत्र कहते हैं। हमारे भारतीय साहित्य में ब्राह्मण के पीछे इसी उपर्युक्त प्रकार के सूत्र-काल का प्रादुर्भाव हुआ। बौद्ध ग्रन्थों से सिद्ध है कि गौतम बुद्ध के समय से पूर्व भी देश में लेखन का अच्छा प्रचार था, किन्तु आर्यों ने अपने धार्मिक ग्रन्थों का लिखना पसंद न करके कई शताब्दियों पर्यन्त उन्हें फिर भी स्मरण-शक्ति द्वारा ही रक्षित रक्खा। इसीलिए लेखन-प्रचार के कई शताब्दी पीछे पर्यन्त सूत्रकाल चलता रहा। फिर भी लेखन-कला

के कारण नाटक तथा इतिहास ग्रन्थ भी इसी काल से बनने लगे जिनका जन्म ही लेखन-कला के प्रचार से हुआ क्योंकि वैदिक ग्रन्थों की भाँति इनके स्मरण रखने की कोई पर्वाह नहीं करता था। अब हम सूत्रों का कुछ संक्षिप्त कथन करके इस काल के अन्य साहित्यिक प्रस्तारों का वर्णन करेंगे।

सूत्र तीन प्रकार के होते हैं, अर्थात श्रौत सूत्र, धर्म सूत्र और गृह्य-सूत्र। इनके पीछे अथवा साथ ही साथ व्याकरणादि के सूत्र बने। पाश्चात्य पंडितों का मत है कि सूत्रों का समय वैयाकरण पाणिनि के समय से कुछ कुछ मिलता है। कुछ सूत्र इनसे पीछे लिखे गये और अधिकांश इनसे बहुत पहिले। बहुत से पण्डित पाणिनि का समय ६०० बी० सी० के निकट मानते हैं, किन्तु मंजु श्री मूल कल्प नामक आठवीं शताब्दी के एक प्रामाणिक बौद्ध ग्रन्थ में वे महापद्मनन्द के दरबार में माने गये हैं। यह चौथी शताब्दी बी० सी० का आदि में था। एकाध महाशय अब भी पहला ही समय ठीक मानते हैं। श्रौत सूत्रों में प्रधान यज्ञों की विधियों के वर्णन हैं। किसी सूत्र-समुदाय में एक प्रकार के ऋत्विजों के कर्तव्य का कथन है और किसी में दूसरे का। कई सूत्र-समुदाय पढ़ने से ऋत्विजों के पूरे कर्तव्यों का बोध होता है। ऋत्विज् तीन प्रकार के हैं अर्थात् होता, अध्वर्यु और उद्गाता। ब्रह्मा इन सब का निरीक्षक होने से चौथा ऋत्विज कहा जा सकता है। भारतीय पंडित गृह्य सूत्रों को ही धर्म सूत्र भी कहते हैं, किन्तु पाश्चात्य विद्वानों ने इनको पृथक माना है। गृह्यसूत्रों में गृहस्थों के आन्हिक तथा इतर कर्तव्यों के विधान हैं। धर्मसूत्रों में सामाजिक एवं न्याय (क़ानून) संबन्धी नियमों के कथन हैं। इन तीनों प्रकार के सूत्रों के मुख्य आधार वेद ही हैं। इन सूत्रों के वर्णन इतने पूर्ण हैं कि जिसने कभी यज्ञ न देखा हो वह भी इनके द्वारा यज्ञों तथा अन्य कथित विषयों का पूरा ज्ञान प्राप्त कर सकता है। भारतीय सामाजिक उन्नतियों एवं आचारों का इतिहास जानने में सूत्र ग्रन्थ बड़े उपयोगी हैं। सूत्रों तथा वेदों के अर्थ लगाने में प्रातिशाख्य सूत्र अच्छी सहायता देते हैं। प्रातिशाख्य सूत्रों के अतिरिक्त व्याकरण सूत्र और वैदिक अनुक्रमणिका प्रधान

हैं। अनुक्रमणिकाओं में प्रत्येक सूक्त के कवि देवता आदि के वर्णन हैं।

ऋग्वेद से सांख्यायन और आश्वलायन सूत्रों का सम्बन्ध है। सांख्यायनकार कविगण पीछे से उत्तरी गुजरात में पाये गये थे और आश्वलायन वाले कृष्णा और गोदावरी के बीच में रहते थे। राजाओं के बड़े यज्ञों के वर्णन सांख्यायन में आश्वलायन से अधिक विस्तार से कथित हैं। सांख्यायन में १८ काण्ड हैं, और आश्वलायन में १२। सांख्यायन सूत्रों का सम्बन्ध सांख्यायन ब्राह्मण से है और आश्वलायन का ऐतरेय से। आश्वलायन ऋषि शौनक के शिष्य थे। इन्होंने ही ऐतरेय आरण्यक भी लिखा। सामवेद के तीन श्रौत सूत्र उपलब्ध हैं अर्थात् मशक, लात्यायन तथा द्राह्यायन। मशक को आर्षेय कल्प भी कहते हैं। लात्यायन में मशक के उद्धरण हैं। शुक्ल यजुर्वेद का कात्यायन सूत्र है जो चौथी शताब्दी बी० सी० में बना। कात्यायन ने पाणिनीय अष्टाध्यायी पर वार्तिक भी लिखे। प्राकृत व्याकरण भी इन्हीं का बनाया हुआ है। कथासरित्सागर के अनुसार ये नन्द-कुल के मंत्री थे। कहा जाता है कि मुद्राराक्षस के राक्षस मंत्री ही का नाम वररुचि कात्यायन था। कात्यायन गोभिल के पुत्र और शौनक के शिष्य थे। ये चौथी शताब्दी बी० सी० में हुए। इनका शुक्ल यजुर्वेद पर श्रौत सूत्र २६ अध्यायों का है। कृष्ण यजुर्वेद के ६ श्रौत सूत्र हैं जिनके रचयिताओं में आपस्तम्ब, हिरण्यकेशी, बोधायन और भारद्वाज की प्रधानता है। वैखानस (श्रौत सूत्र) तथा मानव श्रौत सूत्र भी इसी वेद से संबन्ध रखते हैं। मनुस्मृति का मानव श्रौत सूत्र से संबन्ध अवश्य है। अथर्ववेद का वैतान सूत्र मात्र है। यह कात्यायन सूत्र के अनुसार चला है तथा अति प्राचीन नहीं है।

गृह्य सूत्र भी श्रौत सूत्रों की भाँति वेदों ही के अनुसार चलते हैं। ऋग्वेद से संबन्ध रखने वाले सांख्यायन, शाम्बव्य तथा आश्वलायन गृह्य सूत्र हैं। शाम्बव्य गृह्य सूत्र में पितृयज्ञ का विधान है। इससे जान पड़ता है कि इस काल में पितृपूजन भली भाँति स्थिर हो चुका था। सामवेद के गोभिल और खदिर गृह्य सूत्र हैं। शुक्ल यजुर्वेद का गृह्य-

सूत्र पारस्कर उपनाम कातीय अथवा वाजसनेय है। यह कात्यायन सूत्र से बहुत संबन्ध रखता है। कृष्ण यजुर्वेद के ७ गृह्य सूत्र हैं और इनके रचयिता प्रायः इस वेद के श्रौत सूत्रकार ही हैं। अथर्ववेद का कौशिक गृह्य सूत्र है जिसमें भारतीय जीवन का अच्छा चित्र खिंचा है। संस्कारों का वर्णन विशेषतः गृह्य सूत्रों ही में है, जिनके अनुसार ४० संस्कार श्रेय हैं, अर्थात् १८ शारीरिक और २२ याज्ञिक। शारीरिक संस्कारों में पुंसवन (पंचमासा), जातकर्म, नामकरण, चूड़ाकरण (मुण्डन), गोदान (दाढ़ी बनवाना), उपनयन, विवाह और अन्त्येष्टि प्रधान हैं। याज्ञिक संस्कारों में पंचमहायज्ञ (ब्रह्म, देव, पितृ, मनुष्य और भूत) और अन्त्येष्टि उपनाम सपिण्डीकरण मुख्य हैं। इन्हीं सूत्रों में श्राद्धों का भी वर्णन पूर्णतया मिलता है। जान पड़ता है कि पितृपूजन का विधान भारत में सूत्रकाल में बहुत पुष्ट हुआ। पितरों की प्रशंसा ऋग्वेद में भी पाई जाती है और यजुर्वेद के ३५वें मंडल में पितृयज्ञ का विधान भी है, जिससे पितृ-पूजन की प्राचीनता प्रमाणित होती है। श्राद्धों में कैसे ब्राह्मण निमंत्रित होने चाहियें और उनका कैसा मान सत्कार हो, यह सब उनमें वर्णित है।

धर्मसूत्रकारों में आपस्तम्ब, हिरण्यकेशी, बोधायन, गौतम, वशिष्ठ आदि प्रधान हैं। धर्मसूत्रों की महत्ता ऐतिहासिकों के लिए श्रौत तथा गृह्यसूत्रों से अधिक है। धर्मसूत्रों ही से बढ़कर समय पर स्मृतियों का निर्माण हुआ। आपस्तंब सूत्र में ब्रह्मचर्य तथा गृहस्थ आश्रमों आदि के धर्मों का वर्णन है। इसमें भोज्याभोज्य के कथन हैं और शुद्धिकरण, प्रायश्चित्तादि के भी विवरण आये हैं। विवाह, दाय और अपराधों के वर्णन भी आपस्तम्ब ने किये हैं। उत्तरी लोगों की निन्दा से प्रकट है कि ये महाशय दाक्षिणात्य थे। इनकी भाषा पाणिनीय व्याकरण के पहले की समझ पड़ती है, जिससे जान पड़ता है कि ये चौथी शताब्दी बी० सी० से पहले के हैं। बूलर ने इन्हें चौथी शताब्दी बी० सी० में माना है। हिरण्यकेशी का ग्रन्थ आपस्तम्ब से सम्बन्ध रखता है। आपस्तम्ब धर्म सूत्र में अन्य ग्रन्थकारों से कोई विशेष मतभेद नहीं है, जिससे जान पड़ता है कि इनके कई शताब्दी पूर्व

हिन्दूमत दक्षिण में पूर्ण स्थिरता के साथ स्थापित हो चुका था। यदि उस काल दक्षिण में हिन्दू मत नया होता, तो इनका ग्रन्थ प्रचीन आर्य ग्रन्थों के समान सारे देश में सम्मानित कभी न होता, क्योंकि उस में स्थानिक बातें आये बिना न रहतीं।

बोधायन धर्म सूत्र भी आपस्तंब ही के समान विषयों पर कथन करते हैं और ये महाशय भी दक्षिणात्य हैं। बूलर का कथन है कि ये महाशय चौथी शताब्दी बी० सी० के पहले के हैं। इससे भी हमारे उपर्युक्त कथन को पुष्टि मिलती है। बोधायन के धर्मसूत्र में कुछ श्लोक भी हैं जो प्रक्षिप्त समझे जाते हैं। दत्त महाशय बोधायन को छठी शताब्दी बी० सी० के समझते हैं। बोधायन ने भारत को तीन भागों में विभक्त किया है। आप गंगा यमुना वाले देश को सर्वोत्कृष्ट कहते हैं, दक्षिणी तथा पूर्वी बिहार, दक्षिणी पंजाब, सिन्ध, गुजरात, मालवा और दक्षिण दूसरे दर्जे के, तथा बंगाल, उड़ीसा, और ठेठ दक्षिण तीसरे दर्जे के। ये दर्जे आर्यसभ्यता के प्रचारानुसार थे। दूसरी श्रेणी के मनुष्य मिलित जाति के कहे गये हैं। जो कोई पंजाब के आरट्ट, ठेठ दक्षिण के कारस्कर, बंगाल एवं उड़ीसा के पुण्ड्र, बंग तथा कलिंग, दक्षिणी पंजाब के सौवीर और प्रानन लोगों में कहीं गया हो, उसे पुनीत होने को यज्ञ करना पड़ेगा। बोधायन निम्न स्थानों के निवासियों को मिश्र जातियों के मानते हैं:—मुल्तान, सूरत, दक्षिण, मालवा, पश्चिमी बंगाल और बिहार। बौद्ध ग्रन्थ कौशलों को शुद्ध अमिश्र जाति वाले मानते हैं। सूत्रों में पहले पहल (मोहंजोदड़ो के पीछे) देवताओं की प्रतिमाओं के कथन हैं, जैसे ईशान, मीढ़ शी, जयन्त, क्षेत्रपति। धर्म सूत्र ग्रन्थों में कुटुम्बों का न होकर समाज का विशेष कथन है। बोधायन के अनुसार दाक्षिणात्यों के विशेष चलन निम्नानुसार हैं:—अपनी स्त्री अथवा बिना जनेव हुये बालकों के साथ भोजन करना, बासी खाना खाना, मामा या फूफू की कन्या के साथ विवाह करना। उन्हीं के अनुसार उत्तर वालों के निम्न कथित चलन हैं:—ऊनका व्यापार करना, शराब पीना, शस्त्रास्त्र का व्यापार करना, समुद्र यात्रा करनी आदि। आपस्तम्ब तथा बोधायन की भाषा देखते हुये गौतमीय भाषा पाणिनीय नियमों

पर विशेष चलती है।

गौतम ने यद्यपि अपने ग्रन्थ को धर्मशास्त्र कहा है तथापि वास्तव में वह धर्मसूत्र ही समझा जाता है। यह ग्रन्थ कल्पसूत्र का अंग नहीं है जैसा कि आपस्तम्ब और बौधायन के हैं। पाश्चात्य पंडितों का मत है कि बौधायन धर्मसूत्र के कुछ भाग गौतम धर्मसूत्र पर अवलंबित हैं और कुछ उनसे लिये भी गये हैं। गौतम उत्तरीय ब्राह्मण थे और बौधायन दाक्षिणात्य। उस काल किसी ग्रन्थ का उत्तर से दक्षिण को जाना शताब्दियों का काम था। इससे गौतम का काल चौथी पाँचवीं शताब्दी बी० सी० से पूर्व समझ पड़ता है। कुमारिल का कथन है कि गौतम सूत्र सामवेद से सम्बन्ध रखता है। वशिष्ठकृत धर्म-शास्त्र में गौतम के अवतरण हैं और मनुस्मृति में वाशिष्ठ धर्म-शास्त्र के उद्धरण पाये जाते हैं। इससे सिद्ध होता है कि वशिष्ठ का समय गौतम और मनुस्मृति के बीच में है। वशिष्ठ ने मानव-सूत्र के भी अवतरण दिये हैं। इससे भी सिद्ध होता है कि मनुस्मृति मानव-सूत्र के आधार पर बनी।

शुल्व सूत्रों में वेदी आदि बनाने के ढङ्ग लिखे हैं। इनसे रेखा-गणित का अच्छा ज्ञान विदित होता है। कुछ लोगों का विचार था कि ब्राह्मणों ही ने इन सब धार्मिक रीतियों तथा विधियों को चलाया, किन्तु अब यह भली भाँति सिद्ध हो गया है कि यद्यपि ब्राह्मणों ने इनकी उन्नति बहुत अधिकता से की और इन सब को क्रम-बद्ध करके अपना बुद्धि-वैभव दिखलाया, तथापि इन सब का मूल प्राचीन आर्य-सभ्यता में वर्तमान था। इसके उदाहरण-स्वरूप आर्यों तथा पार्सियों के यज्ञ, सोम, यज्ञोपवीत, अग्नियज्ञ, विवाह की सप्तपदी आदि से सम्बन्ध रखने वाले विचार हैं। लकड़ियों को रगड़ कर अग्नि उत्पन्न करने का भी ढङ्ग दोनों जातियों में एकसा पाया जाता है।

सूत्रवत् वैदिक ग्रन्थोंके हमारे यहाँ ६ भाग माने गये हैं, जिन्हें वेदाङ्ग कहते हैं। इनके नाम शिक्षा (उच्चारण), छन्द, व्याकरण, निरुक्त (शब्दविभाग), कल्प (धार्मिक विधि), और ज्योतिष हैं। शिक्षा का कुछ वर्णन हम वैदिक अध्यायों में कर आये हैं। छन्द का विधान पिङ्गल से सम्बन्ध रखता है। कहते हैं कि शेषनाग ने छन्दों का विधान

किया। इससे जान पड़ता है कि छन्दःशास्त्र नागों का बनाया हुआ है। व्याकरण के सबसे पहले आचार्य पाणिनि प्रसिद्ध हैं, जिन्होंने अष्टाध्यायी की रचना की। इनसे पहले का कोई व्याकरण ग्रन्थ अब हस्तगत नहीं होता, किन्तु स्वयं पाणिनि ने अपने पूर्व के ६४ वैयाकरणों के नाम लिखे हैं। यास्क भी एक प्रकार से वैयाकरण थे, यद्यपि अब उनकी महत्ता केवल निरुक्त पर ही अवलम्बित है। यास्क पाणिनि से बहुत पहिले के हैं। इनके समय में भी व्याकरण का ज्ञान बहुत फैल चुका था, क्योंकि इन्होंने व्याकरण सम्बन्धी दो शाखायें उत्तरी और पूर्वी कही हैं तथा प्रायः २० वैयाकरणों के नाम लिखे हैं जिनमें शाकटायन, गार्ग्य और शाकल्य प्रधान हैं। पाणिनि का व्याकरण ऐसा उत्कृष्ट बना कि इनके पहले वाले सभी वैयाकरणों के ग्रन्थ और यश लुप्त हो गए और यदि यास्क ने निरुक्त न लिखा होता तो उनके ग्रन्थ की भी वही दशा होती जो औरों की हुई।

शांख्यायन गृह्य सूत्र में सुमन्तु, जैमिनि, वैशम्पायन और पैल के नाम हैं तथा आश्वलायन सूत्र में भारत और महाभारत के। शाम्बव्य सूत्र भी महाभारत का कथन करता है। नवीन सूत्र उसी समय के हैं जब भारत और रामायण बनीं। शतपथ ब्राह्मण में जनमेजय थोड़े ही दिन पहले के महाराजा हैं। वैशम्पायन और व्यास के नाम तैत्तिरीय आरण्यक में हैं, किन्तु महाभारत से उनका सम्बन्ध अकथित है। कात्यायन के वार्तिक में पहले पहल कुरु पाण्डवों का कथन है। (हाप्किंस)।

मैकडानेल महाशय के अनुसार यास्क सूत्रकाल के आदि में हुए। पाणिनि के समय का कथन ऊपर आ चुका है। इनके पीछे वाले व्याकरणकारों में कात्यायन और पतञ्जलि प्रधान हैं और ये तीनों मुनित्रय कहाते हैं। कात्यायन नंद वंश के मंत्री होने से चौथी शताब्दी बी० सी० के ही थे और पतञ्जलि पुष्यमित्र के समकालिक होने से दूसरी शताब्दी बी० सी० के। कात्यायन ने पाणिनीय अष्टाध्यायी पर वार्तिक लिखे, जिससे पाणिनि इनके पूर्व ठहरते हैं। हम ऊपर कह आये हैं कि बोधायन चौथी पाँचवीं शताब्दी बी० सी० के थे। इनके ग्रन्थ में महाभारत का हवाला मिलता है। डाक्टर जॉली के

मतानुसार गौतम पांचवीं या छठी शताब्दी बी० सी० के हैं, तब बौधायन आते हैं, फिर आपस्तम्ब, अनन्तर वशिष्ठ। डाक्टर जायसवाल आपस्तम्ब के विषय में जॉली से सहमत होकर उन्हें प्राय: ४५० बी० सी० का मानते हैं, किन्तु गौतम को आपस्तम्ब से पुराना नहीं समझते वरन उन्हें ३५० बी० सी० के निकट का बतलाते हैं। मूलत: बौधायन का ग्रन्थ आपस्तम्ब से पुराना है, किन्तु उस ग्रन्थ का वर्तमान रूप दूसरी शताब्दी बी० सी० तक आ जाता है। वशिष्ठ १०० शताब्दी बी० सी० से पहले का न होगा। अतएव प्राय: सातवीं शताब्दी से चल कर सूत्रकाल प्राय: पहली शताब्दी बी० सी० तक चला।

पुराणों के वर्णन में हम महाभारत की प्राचीनता के प्रमाण लिखेंगे। उधर यास्क पाणिनि से और भी अधिक प्राचीन समझ पड़ते हैं, क्योंकि इन दोनों के बीच में बहुत भारी भारी वैयाकरणों के नाम आये हैं। निरुक्त एवं ज्योतिष का वर्णन हम ब्राह्मणों के अध्याय में कुछ कुछ कर आये हैं। परिशिष्ट, प्रयोग, पद्धति और कारिका नामक ऐसे चार ग्रन्थ हैं जो सूत्रों से कुछ कुछ मिलते हैं। अनुक्रमणिका ग्रन्थ में कात्यायन कृत सर्वानुक्रमणिका प्रधान है। विधि आदि के विषय पर पूरा बल प्रयोग करते हुए भी हमारे ऋषियों ने आचार ही की प्रधानता रक्खी। वशिष्ठ का वचन है, "जैसे स्त्री की सुन्दरता अन्धे को कोई प्रसन्नता नहीं देती, उसी प्रकार षडङ्गों तथा यज्ञों समेत सब वेद उसके लिए शुभ नहीं होते जिसका आचार ठीक नहीं हैं।" सूत्रकाल के ज्योतिषकारों में पराशर और गर्ग की प्रधानता है, किन्तु इन लोगों के नामों पर जो ग्रन्थ मिलते हैं वे ईसा से एक ही दो शताब्दी पहिले के हैं।

हम ब्राह्मण-काल के साहित्य-विवरण में लिख आये हैं कि षड्-दर्शन के मूल सिद्धान्त बीज-रूप से ब्राह्मण ग्रन्थों में मिलते हैं। इनका विकास सूत्रकाल में कुछ अच्छा हुआ। ऊपर गौतम कृत धर्म-सूत्र का वर्णन कर आये हैं। जान पड़ता है कि यही सूत्रकार गौतम न्याय-शास्त्र के भी आचार्य थे। हमारे यहाँ का न्याय शास्त्र अँगरेजी लॉजिक ही के समान नहीं है, वरन् लॉजिक के सिद्धान्तों को कहकर वह और भी बहुत सी बातों का कथन

करता है। गौतम ने पहले सोलह पदार्थों का सम्बन्ध बता कर यह सिद्ध किया कि उनसे मुक्ति किस प्रकार मिलती है? इनके थोड़े ही पीछे आचार्य कणाद हुए जिन्होंने न्याय से सम्बन्ध रखने वाले वैशेषिक शास्त्र को प्रकट किया। इनका सिद्धान्त एक प्रकार का परमाणुवाद है और खेतों से बीन कर केवल कण खाने के कारण इनको कणाद कहते हैं। इनका वास्तविक नाम क्या था सो अब ज्ञात नहीं है। उल्क गोत्री होने के कारण ये औलूक कहलाते थे। हमारे षड्दर्शन में सांख्य और पूर्वमीमांसा अनीश्वरवादी हैं। सांख्य केवल प्रकृति और पुरुष को मान कर चलता है अथच ईश्वर का अस्तित्व नहीं मानता। कपिल ने २५ तत्वों को लेकर संसार-सृष्टि बताई है। इन षड्दर्शन वाले वर्तमान ग्रन्थों में एक दूसरे तथा बौद्ध दर्शनों के भी हवाले हैं। इस से इन वर्तमान ग्रन्थों के नवीन भाग दूसरी तीसरी शताब्दी ईसवी के पीछे के हैं।

उपर्युक्त दोनों अनीश्वरवादी शास्त्रों के प्रादुर्भाव से हिन्दू जगत में अनीश्वरता का पहले पहल शास्त्रीय रूप में बीजारोपण हुआ और पण्डित-समाज में बड़ी खलबली पड़ी। इसलिए महर्षि गौतम तथा कणाद ने ईश्वरवाद के पक्ष को दृढ़ किया। पूर्व मीमांसा में वेदों की महत्ता सिद्ध की गई है और उन पर पाण्डित्य-पूर्ण विचार प्रकट किए गये हैं। जान पड़ता है कि इसी समय या इस से बहुत पूर्व चार्वाक् का शरीरवाद फैला जिसके अनुसार शारीरिक सुख सभी धर्मों का मूल है। महर्षि जैमिनि ने बृहस्पति के इस विचार का खण्डन भी किया है। जैमिनि एक बहुत प्राचीन आचार्य थे, क्योंकि यास्क के ग्रन्थों में इनके सिद्धान्तों का कथन आया है, जिससे इनका यास्क के पहले होना प्रकट होता है। उधर कणाद गौतम के पीछे हुए।

गौतम, पराशर, याज्ञवल्क्य, वशिष्ट आदि ने मनु का उल्लेख किया है। भृगु, गौतम, शौनक, अत्रि आदि के विचार मनु में पाये जाते हैं। भृगु ने मनु के सिद्धान्तों को एकत्र करके मानव धर्म सूत्र रचा।

पांचवीं शताब्दी बी० सी० के लगभग बादरायण व्यास ने उत्तर मीमांसा के आदिम रूप का निर्माण किया। पूर्व मीमांसा में कर्म-

काण्ड की विशेष प्रधानता रही, किन्तु उत्तर में ज्ञान की। मोटे प्रकार से पूर्व मीमांसा और उत्तर मीमांसा का वही सम्बन्ध है जो ब्राह्मण और उपनिषदों का है।

जैन पंडित हेमचंद्र का कहना है कि न्याय के भाष्यकार पक्षिल चाणक्य ही थे। जैमिनि वेदों का महत्त्व स्वीकार करते हैं किन्तु उनका अनादि होना नहीं मानते। गौतम ईश्वर को मानते हैं किन्तु उसकी सृष्टि-शक्ति को नहीं।

भारतवर्ष में वेदान्त या दर्शन की १९ शाखायें थीं। हिन्दू वेदान्त प्रथम ईश्वरवादी था, किन्तु पीछे से अनीश्वरवादी भी हो गया। मुक्ति की समस्या को सब एक मत से मानते हैं।

बृहस्पति कृत चारवाक का मत है कि (१) कष्टप्रद कार्य मत करो। (२) हिंसा न करो। (३) भाग्य नहीं, पुरुषार्थ मुख्य है। आलसी भाग्य पर भरोसा करते हैं। आत्म निर्भर रहो। आत्म-निर्भरता ही शक्ति है। उसी से मोक्ष होती है। (४) परमेश्वर अथवा अन्य लोक नहीं है। (५) वेद और ईश्वर में विश्वास मत करो, क्योंकि वे कृत्रिम और धोखेबाज हैं। (६) सदा बुद्धि पर चलो। बुद्धि बिना धर्म नहीं। (७) आत्मा अमर है और वह क्षिति, जल, पावक और समीर से बना है, अग्नि से भी नहीं। (८) केवल प्रत्यक्ष प्रमाण है।

सब से पहले बृहस्पति ने अनीश्वरवाद चलाया था और ब्रह्मा ने अथर्व दर्शन। अनीश्वरवाद शूद्र राज्यों में तथा ब्राह्मण-वेदान्त क्षत्रिय-राज्यों में उन्नत हुआ।'

जैनों के मुख्य तीन सिद्धान्त हैं अर्थात् (१) सम्यक् दृष्टि, (२) सम्यक् ज्ञान, और (३) सम्यक् कर्म। सम्यक् कर्म में ५ उपभेद हैं अर्थात् (१) सत्यभाषण, (२) अस्तेय, (३) इच्छाध्यान, (४) पवित्रता (मानस, वाचिक एवं कायिक), और (५) अहिंसा।

महाभारत में लिखा है कि आर्य जैन और म्लेच्छों के कारण लोग संदिग्ध हो गए थे। हिरण्यकशिपु और अश्वग्रीव सबसे पहले शरीर-वादी थे। अश्वग्रीव ने वैदिक धर्म को संसार से उठाने का प्रयत्न किया और वेद को चुरा लिया।

ब्राह्मण-काल-पर्यन्त जो वेदों और ब्राह्मणों की रचनायें हुई थीं वे सब अपौरुषेय कहलाती हैं, किन्तु सूत्रकाल के ग्रन्थ मनुष्यकृत हैं ऐसा कट्टर पण्डितों का भी कथन है। वैदिक, ब्राह्मण और सूत्र नामक तीन काल कहे गये हैं। इन तीनों कालों में भाषा भी एक दूसरे से भिन्न थी। वैदिक समय में आर्यों की भाषा आसुरी कहलाती थी जिसमें ऋग्वेद एवं सामवेद का गान हुआ। यह आर्यों की सबसे पुरानी भाषा थी। यजुर्वेद तथा अथर्ववेद की भाषा इससे कुछ उन्नत समझ पड़ती है। यद्यपि यह भेद सभी स्थानों पर दृष्टिगोचर नहीं होता, तथापि कुछ बातों पर विचार करने से यह भाषा ऋग्वेद से कुछ विकसित अवश्य है। यह विकास ब्राह्मणों, आरण्यकों तथा उपनिषदों की भाषा में और भी स्पष्ट होता है। सूत्रकाल में साहित्य का गौरव और लेखकों की संख्या इतनी बढ़ी कि धीरे धीरे नियमों की रचना होने लगी। इन नियम-सम्बन्धी ग्रन्थों का नाम व्याकरण पड़ा। इसी व्याकरण के दृढ़ होने से भाषा का संस्कार हुआ, जिससे उसका नया नाम संस्कृत पड़ गया। व्याकरण का आदि काल सूत्रकाल के आरम्भ से ही समझ पड़ता है, और पाणिनि के समय में वह दृढ़ता को प्राप्त हुआ। पाणिनि के पूर्व वाले वैयाकरण भी भाषा का संस्कार करने के प्रयत्न में लगे रहे किन्तु उस में सफलता पाणिनि को हुई। व्याकरण सम्बन्धी विचारों के बहुतायत से समस्त सूत्रकाल की भाषा संस्कृत कही जा सकती है। अतः वैदिक समय की भाषा आसुरी हुई और सूत्रकाल की संस्कृत। ब्राह्मणकाल की भाषा इन दोनों के बीच में थी। इन तीनों को हम आर्य-भाषा कह सकते हैं। नवीन परिष्कृत संस्कृत भाषा का आरंभ काल यजुर्वेद और ब्राह्मण ग्रन्थों से है। यह धीरे धीरे दो स्थितियों में सुधर कर वर्तमान रूप को पहुँची है।

ब्राह्मण-काल-पर्यन्त आर्य-भाषा ही की महत्ता रही और प्राकृत भाषा इसके संसर्ग से उन्नति अवश्य करती गई किन्तु उसने ऐसा विभव नहीं प्राप्त किया कि उसमें ग्रन्थ लिखे जाते। यदि कुछ प्राकृत ग्रन्थ उस काल बने भी हों तो वे ऐसे नीरस और शुष्क थे कि बहुतायत से रक्षित नहीं रह सके। सूत्रकाल में ही हम प्राकृत को पहले

पहल साहित्य क्षेत्र में अवतीर्ण होते देखते हैं। ब्राह्मण लोग सूत्रकाल पर्यन्त उच्च विषयों में लगे रहे। इसीलिए उन्होंने राज-यश-गान अपनी महत्ता के प्रतिकूल समझा। यही कारण है कि राजनीतिक इतिहास रक्षित करने का भार सूत लोगों पर पड़ा। कहते हैं कि जब महर्षि वेदव्यास ने अपने शिष्यों में वेद को बाँटा, तब पुराणों का विषय लोमहर्षण सूत को सौंपा। इससे जान पड़ता है कि जब इस विषय को क्षुद्र समझ कर ब्राह्मणों ने इसका तिरस्कार किया, तब सूतों ने इसे अपनाया। यह सूत लोग आर्य-भाषा में प्रवीण न रहने के कारण प्राकृत की ही ओर झुकते थे। उसी भाषा का साधारण जन-समुदाय में व्यवहार भी विशेष होगा। इसलिए पुराणों के विषय-वर्णन के साथ प्राकृत का पहला लेखन-काल प्रारम्भ हुआ। राजा लोग भी अपना तथा अपने पूर्व पुरुषों का वृत्त एकत्रित करने का प्रयत्न करते थे। सबसे अधिक वंशावलियों पर ध्यान रहता था। यह ऐतिहासिक मसाला भी प्राकृत ही में एकत्रित होता था। जान पड़ता है कि वर्तमान ब्रह्मभट्ट और चारणों की भाँति पूर्व काल में इन बातों पर सूतों ने विशेष ध्यान दिया और इसीलिए राजाओं ने वंशवृत्त-रक्षणार्थ उन्हीं से काम लिया। ये वृत्त भी पहले स्मरण-शक्ति द्वारा रक्षित रहे, किन्तु लेखनकला के चलन से सब से पहले उसका प्रयोग भी इन्हीं विषयों पर हुआ।

सर्व साधारण तथा स्त्रियाँ भी इतिहासों के सुनने का चाव रखती थीं। शायद इसीलिए कहा गया है कि पुराण स्त्रियों तथा शूद्रों ही के लिए हैं। अतः प्रकट होता है कि राजाओं, सूतों, स्त्रियों तथा शूद्रों के प्रोत्साहन से हमारे यहाँ पहले पहल इतिहास का प्रादुर्भाव हुआ। पार्जिटर महाशय ने सिद्ध किया है कि प्राचीनतम संस्कृत-पुराण-ग्रन्थ प्राकृत पुराणों के आधार पर बने और बहुत स्थानों पर श्लोक प्राकृत से जैसे के तैसे उठाकर संस्कृत में अनुवादित हो गये, यहाँ तक कि कहीं कहीं भविष्य पुराण में प्राकृत शब्द के स्थान पर वैसा ही संस्कृत शब्द लाने का प्रयत्न करने से व्याकरण तथा छन्दादि की भी अशुद्धियाँ हो गईं। यदि उन स्थानों पर प्राकृत शब्द रक्खे जायँ तो यह अशुद्धियाँ दूर हो सकती हैं। बौद्ध निकाय ग्रन्थों से विदित होता

है कि ऐसे प्राचीन समय में भी सर्वसाधारण में पुराण सुनने की प्रथा थी जब संस्कृत के पुराण ग्रन्थ न बने थे। इन बातों से सिद्ध होता है कि प्राकृत में श्लोकबद्ध पुराण भी बने थे और सर्वसाधारण में उनका गान होता था। उनमें साहित्यिक चमत्कार विशेष न था, इसीलिए संस्कृत-पुराण ग्रन्थ बनने के कारण उनका लोप हो गया। श्रीकृष्ण के बड़े भाई बलरामजी की तीर्थ-यात्रा के वर्णन में लिखा है कि नैमिषारण्य में इन्होंने किसी सूत को व्यासासन पर बैठे हुए सहस्रों श्रोताओं को पुराण सुनाते देखा। उस श्रोतृ-समाज में अनेक ब्राह्मणों को भी देखकर बलरामजी को पौराणिक सूत की अनुचित महिमा पर इतना क्रोध आया कि इन्होंने तत्काल उसका वध करके एक ब्राह्मण को उसके स्थान पर पुराण बाँचने के लिए नियत किया। (इस कथन का आधार १२वें अध्याय में है।) इस बात से सिद्ध होता है कि उस काल भी पुराण बाँचने की प्रथा थी और सूतों के अतिरिक्त कुछ ब्राह्मण लोग भी इसमें पटु हो गये थे।

लेखन-कला का भी चलन भारत में सूत्रकाल से ही हुआ। बौद्ध इतिहासकार रिज डेविड्स ने अनेकानेक प्राचीन बौद्ध ग्रन्थों से अवतरण देकर सिद्ध किया है कि छठी शताब्दी बी० सी० में लेखनकला भारत में सर्वसाधारण में प्रचलित थी। इनके अनुसार छठी शताब्दी बी० सी० के मध्य अथवा आठवीं के प्रारम्भ में द्राविड़ व्यापारी लोग समुद्रमार्ग से बैबिलोन को प्रायः जाते आते थे। यह देश पश्चिमी एशिया में है। वहीं से इन लोगों ने फ़ारसी की भाँति दाहिनी ओर से बाईं ओर लिखी जाने वाली लिपि सीखी और उसका भारत में प्रचार किया। हमारे यहाँ की प्राचीन ब्राह्मी लिपि भी इसी प्रकार लिखी जाती थी। इसी के पीछे भारत में खरोष्ठी लिपि का प्रचार हुआ जो वर्तमान लिपि की भाँति बाईं ओर से चलती है। सब से पुरानी लिपि भारत में मोहंजोदड़ो और हड़प्पा में मिली है। यह अभी पढ़ी नहीं गई है। पुरा शास्त्र वेत्ताओं ने इस का समय ३२५० से २७५० बी० सी० में कभी माना है। अष्ट करणी गायों का कथन ऋग्वेद में होने से उस काल भी लेखन का कम से कम कुछ प्रयोग सिद्ध है।

श्याम शास्त्री का मत है कि हमारे यहाँ की लेखन-विद्या का प्रादुर्भाव देव-पूजन से हुआ, अर्थात् जिस काल प्रतिमाएँ न थीं, तब विविध सांकेतिक चिह्नों द्वारा पृथक् पृथक् देवताओं का पूजन होता था। समझा जाता था कि इन सांकेतिक चिह्नों में देवताओं का निवास है, अर्थात् ये देवनगर हैं। इन्हीं से समय पर लिपि निकली और वह देवनागरी कहलाई। इस मत को मानने से भारतीय लिपि-प्रणाली का बैबिलोन से आना असिद्ध ठहरेगा। जनरल कनिंगहम का भी मत है कि भारत में लिपि-प्रणाली बैबिलोन व पश्चिमी एशिया से असंबद्ध है और यहाँ पण्डितों ने स्वयं अपनी लिपि का प्रादुर्भाव किया। मोहनजोदड़ो और हड़प्पा के पीछे अशोकादि के प्राचीन शिला-लेख सब खरोष्ठी में मिलते हैं। अशोक-काल से प्राचीनतर केवल एक पाषाण लेख नेपाल की तराई में मिला है जिसमें १४ अक्षर मात्र हैं। प्राचीन प्राकृत पुराण ग्रन्थों के अस्तित्व से प्रकट होता है कि भारत में लेखनकला का चलन आठवीं शताब्दी बी० सी० से अवश्य है। जिस काल महर्षि व्यास ने महाभारत बनाई, उस काल पुराण-लेखन में स्मरण से काम नहीं लिया जाता था, क्योंकि महाभारत ही में लिखा है कि व्यासदेव इसे बना बना कर लिखाते गये। इस ग्रन्थ का आदिम नाम जय था, जो छठी सातवीं शताब्दी बी० सी० का कहा जाता है।

यहाँ तक हम सूत्रकाल की विद्या-विषयिणी उन्नतियों का विवरण करते आये हैं। अब उन्हीं के सहारे सामाजिक अवस्था का कुछ वर्णन किया जायगा। धर्म सूत्रों ही से बढ़ कर समय पर स्मृति ग्रन्थों का निर्म्माण हुआ। सब से पहला स्मृति-ग्रन्थ मानव-धर्म-शास्त्र अथवा मनुस्मृति है। कण्व वंशी तीसरे राजा नारायण के राजकवि भास कहे जाते हैं। उन्होंने १३ नाटक रचे। नारायण पहली शताब्दी बी० सी० में थे। इतना प्रकट है कि मानव-धर्म-शास्त्र भास से पहले का है। मनुस्मृति का समय पाश्चात्य पण्डितों ने दूसरी शताब्दी बी० सी० से दूसरी शताब्दी ईसवी तक के बीच का माना है पर इस ग्रन्थ का समय निरूपण कठिन कार्य है क्योंकि यह कई बार करके बना और क्षेपक पूर्ण भी है। कुल मिला कर भारतीय पण्डितों का विचार है कि

इसका आदिम रूप महाभारत के पीछे का नहीं है। आज कल मुख्य स्मृतियां १८ मानी गई हैं। स्मृतिकारों में मनु, अत्रि, हारीत, शंख-लिखित (दोनों ने मिल कर एक ही स्मृति रची), पराशर, व्यास, नारद, विष्णु, वशिष्ठ और याज्ञवल्क्य मुख्य हैं। सत्ययुग के लिए मनुस्मृति की प्रधानता मानी गई है, त्रेता में गौतम की, द्वापर के लिए शंख-लिखित की तथा कलियुग में पराशर की।

प्रसिद्ध १८ स्मृतियों के रचयिता निम्नानुसार हैं:—मनु, अत्रि, विष्णु, हारीत, याज्ञवल्क्य, उशना, अंगिरा, यम, आपस्तंब, संवर्त, कात्यायन, बृहस्पति, पराशर, व्यास, शंख-लिखित, गौतम, शातातप और वशिष्ठ। स्मृतियों का काल बी० सी० पांचवीं से कई शताब्दियों तक चलता है। सामाजिक विवरण के लिये स्मृतियों से बहुत कुछ मसाला मिलता है किन्तु उन्हें छोड़ कर केवल सूत्र ग्रन्थों से भी अच्छा सामाजिक विवरण प्रकट होता है। स्मृतियों का विवरण आगे के भाग से सम्बद्ध है।

सब से पहले हम स्त्रियों के अधिकारों तथा विवाहों के विषय में विचार करेंगे। नारद, देवल तथा पराशर ने स्त्रियों को सबसे अधिक अधिकार दिये। इनके विचार में मासिक ऋतु से भूत जार की शुद्धि होती है और गर्भ तक रह जाने से प्रसव के पश्चात् स्त्री शुद्ध हो जाती है। यह भी कहा गया है कि यदि किसी का पति बेपता हो जाय तो जाति के अनुसार वह दो से लेकर यथाक्रम ८ वर्षों के पीछे दूसरा पति कर सकती है। पंचापत्तियों में भी इन्होंने स्त्रियों के लिये दूसरे पति का विधान किया है। निकट के सम्बन्धियों में विवाह वर्ज्य किया गया है, यद्यपि युधिष्ठिर के समय तक यह प्रथा जारी थी। मिश्रित विवाहों की प्रथा सूत्रकाल में भी चलती रही। स्वयं गौतम बुद्ध से एक ब्राह्मण ने अपनी कन्या ब्याहने को कहा था और फिर वही कन्या राजा उदयन को ब्याही गई। उदयन कुलीन क्षत्रिय थे, किन्तु उनकी तीन रानियों में से एक ब्राह्मणी थी, एक क्षत्रिया तथा एक वैश्या। इसके बहुत पीछे तक यह चाल चलती रही।

वर्णाश्रम धर्म की प्रथा बहुत प्राचीन काल से हमारे यहाँ चली आती थी। वर्ण विभाग के ही अन्तर्गत जातिभेद भी था। सूत्र-काल

में ब्राह्मण-काल की अपेक्षा जातिभेद की अधिक दृढ़ता हुई किन्तु आश्रमभेद की परिपाटी में कुछ शिथिलता आने लगी। आदिम काल में अधिकांश विद्यार्थी गुरुओं के यहां जाकर ब्रह्मचर्य-विधान से विद्या ग्रहण करते थे। अनाथ बालकों के लिये भी शिक्षा का प्रबंध था और वे पुण्य शिष्य कहलाते थे। यह संस्था सूत्रकाल में बहुत कम हो गई और वानप्रस्थ तथा संन्यास की परिपाटी भी कमी को प्राप्त हुई। हिन्दू धर्म के अनुयायी बढ़े और अनेकानेक आदिम निवासी इसमें आये। प्रारंभ में ब्राह्मण और क्षत्रिय बहुत कम थे। उत्तरी भारत में प्रायः वैश्यों ही का प्राधान्य था। उत्साही, स्वतंत्र स्वभाव द्रविड़ों के बहुत से लोग बंगाल और कलिंग को गये और यहां उन्होंने राज्य स्थापित किये। उनमें से जो लोग आर्य आगमन समय तक पूर्ण हिन्दू बनने से बच रहे थे उनको इन्होंने अपने में मिला लिया। उनमें से बहुत लोग वैश्य हो गये तथा शेष शूद्र रहे। पतित या जातिच्युत आर्य भी शूद्र ही कहाते थे। इन ४ वर्णों के अतिरिक्त एक बड़ी जाति निषाद भी थी। अब वे अछूतों में हैं और उनकी संख्या प्रायः २५ प्रतिशत है। बहुतेरे विदेशीय भी समय पर जातियों में सम्मिलित हो गये। ग्रीक, पार्थियन, सीदियन, शक, तुर्क, हूण, कुशान आदि सब हिन्दू हो गये। स्वच्छ आचरण के कारण शूद्र भी रसोइया बनाया जा सकता था। स्त्री और पुरुष सब लम्बे बाल रखते थे, विशेष कर वशिष्ठ गोत्र वाले अवश्य ऐसा करते थे। शिखा का उल्लेख प्रथम शतपथ ब्राह्मण में आया है। जो जन-समुदाय कोई विशेष कार्य करता था, उसकी एक पृथक् जाति सी होती थी। अम्बष्ठ, निषाद, उग्र, मागध, वैदेहक, सुनार, बढ़ई, लोहार, कुक्कुटक, चाण्डाल, आदि अनेकानेक जन-समुदाय इस प्रकार के थे। वशिष्ठ, बोधायन और गौतम के अनुसार कुछ जातियों की उत्पत्ति मिश्रित थी, जैसे—चाण्डाल = शूद्र + ब्राह्मणी; वैन = शूद्र + क्षत्रिया; अन्त्यवासिन = शूद्र + वैश्या; रमक = वैश्य + ब्राह्मणी; पौल्कस = वैश्य + क्षत्रिय; सूत = क्षत्रिय + ब्राह्मणी; अम्बष्ट = ब्राह्मण + क्षत्रिया; उग्र = क्षत्रिय + वैश्या; निषाद = वैश्य + शूद्रा। इनको उपजाति भी कहते थे। शांति पर्व में लिखा है कि काले, मिश्रित जन्मी मनुष्य,

जो अपवित्र, क्रूर स्वभाव वाले, लालची तथा सब कर्मकर्ता थे, शूद्र कहलाये। कहीं कहीं आया है कि मूलतः शूद्र आर्यों और दस्युओं के मेल से उत्पन्न दास श्रेणी के मनुष्य थे। प्राय: वे द्रविड़ (Dravidian) जाति के परिवर्तित लोग थे। कोई कोई यह भी सोचते हैं कि शूद्र मूलतः अनार्य्यों की कोई भारी जाति थी, और पीछे कुछ आर्य्यों एवं अन्यों को मिलाकर इसका व्यापक नाम हो गया। अंतिम वेदों में उनको निषाद जाति अर्थात् शिकारी कहा है। ये लोग जैसे के तैसे हिन्दूधर्म में आ गये और इनकी जाति जैसी की तैसी बनी रही। इन लोगों को चार ही जातियों में स्थान मिलना था, क्योंकि शास्त्रकारों ने लिखा है कि हिन्दुओं में कोई पंचम वर्ण नहीं है। इसलिये इन लोगों को अपने अपने सामाजिक प्रभावानुसार चातुर्वर्ण्य के किसी न किसी विभाग में स्थान मिल गया। स्थानानुसार ब्राह्मणों के भी दस विभाग हो गये जिनमें उत्तरीय पंचगौड़ कहलाये और दाक्षिणात्य पंचद्राविड़। पंचगौड़ों में सारस्वत, कान्यकुब्ज, गौड़, मैथिल और उत्कलों की गणना है, तथा पंचद्राविड़ों में महाराष्ट्र, द्रविड़, तैलंग, कारनाटक और गुर्जर की।

वैदिक समय में आर्यसभ्यता का केन्द्र पंजाब एवं कुरु क्षेत्र रहा, ब्राह्मण-काल में कुरुक्षेत्र तथा बिहार और सूत्र समय में कान्यकुब्ज (कन्नौज)। बौद्ध काल में यही केन्द्र मगध हो गया। कश्मीरी ब्राह्मण सारस्वत हैं तथा सनाढ्य और कुछ बंगाली ब्राह्मण कान्य-कुब्ज हैं। कहते हैं कि कान्यकुब्जों के ५ घराने बङ्गाल में गए थे, जिनसे बंगाली कान्यकुब्जों का वंश चला। ये लोग शेष बङ्गाली ब्राह्मणों को बेटी प्राय: नहीं देते थे। जैसे ब्राह्मण-काल में वानप्रस्थाश्रम के लिये नियमोपनियम बने थे, उसी तरह सूत्रकाल में गृहस्थ तथा संन्यासाश्रम के रचे गये तथा अन्य आश्रमों के भी दृढ़ हुए। यज्ञों की परिपाटी वैदिक समय में उठकर ब्राह्मण काल में पुष्ट हुई थी। सूत्रकाल में उसकी विशेष उन्नति तो न हुई और वह पतनोन्मुख रहा, किन्तु फिर भी किसी न किसी भांति वह चलती गई।

सूत्रकाल में विशेष ध्यान गार्हस्थ्य नियमों तथा सामाजिक अधिकारों पर रहा और हिन्दू समाज-बंधन में अच्छी सफलता दिखलाई

गई। महाभारत युद्ध के समय भारत के ठेठ पूर्व, ठेठ पश्चिम और ठेठ दक्षिण में अहिन्दुओं का निवास था, किन्तु सूत्रकाल में वे सब हिन्दू हो गये और समस्त भारतवर्ष में अहिन्दू बहुत कम रह गये। अतः जैसे ब्राह्मण काल में आर्यों ने राजनीतिक उन्नति को चरमसीमा पर पहुँचाया था, उसी प्रकार सूत्रकाल में धार्मिक-विस्तार चरमसीमा को पहुँच गया। मोहनजो दड़ो और हड़प्पा के अतिरिक्त महाभारत युद्ध पर्यन्त भारत में प्रतिमा-पूजन का कोई भी उदाहरण नहीं मिलता। यदि ढूँढ खोज कर कोई एकाध उदाहरण दिखला देवे, तो इतना अवश्य कहा जायगा कि देश में प्रतिमा का चलन बहुत ही कम था। प्रकृति पूजन से मानस प्रतिमा पूजन निकला। सूत्रकाल मे प्रतिमा-पूजन का चलन कुछ कुछ हुआ किन्तु वह समाज के अधोभाग में ही रहा और ऊँची श्रेणियों में न आया। प्रतिमा की मुख्यता विशेषतया बौद्धमत विस्तार के साथ दूसरी शताब्दी से है। गौ ब्राह्मण महिमा इस काल में और भी बढ़ी और अनजान मे भी इनके हिंसक को कठोर दण्ड दिया गया।

व्यापार-सम्बन्धिनी जातियों के हिन्दूमत में सम्मिलित होने से इसमें भी जाति संबन्धी दृढ़ता का समावेश होने लगा। ये व्यापारी जातियाँ खान पान, बेटी व्यवहार आदि का सबन्ध अपनी संस्था के बाहर प्रायः नहीं करती थीं। इनके उदाहरण का प्रभाव शेष हिन्दुओं पर भी बहुत पड़ा और ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य आदि में जो वैवाहिक और खान पान सम्बन्धी स्वच्छन्दता थी, उसका चलन समय के साथ कम होता चला। इसलिये यद्यपि मिलित विवाहादि नितान्त लुप्त नहीं हुए, तथापि इनका चलन दिनों दिन घटता ही गया। यद्यपि शूद्रों की सभी जातियाँ शास्त्रानुसार आपस में सम्बन्ध कर सकती हैं, तथापि वास्तव मे ऐसे विवाहों का चलन समाज में नहीं है।

इन लोगों के हिन्दूमत मे आने से इनके प्राचीन भूतप्रेतादि के पूजन विधान तथा कराल देवताओं के विचार भी इस में घुसने लगे। अब तक ब्रह्मा, विष्णु, महेश का पूजन विधान लोक में प्रचलित नहीं हुआ था। यद्यपि विष्णु और शिव के नाम ऋग्वेद में हैं और यज्ञ में इन्हें भी भाग मिलता था, तथापि इनकी गणना अमुख्य देवताओं में थी और ईश्वर के प्रधान स्थानापन्न होने का गौरव इन्हें बिलकुल

नहीं प्राप्त हुआ था। यजुर्वेद तथा अथर्ववेद में हम शैव ईश्वरत्व पाते हैं। शतपथ ब्राह्मण में देवताओं में विष्णु का अधिक मान मिला किन्तु कृष्ण का पूजन उस समय तक नहीं चला था। शतपथ ब्राह्मण ही में दक्ष और पार्वती का बलिप्रदान का उल्लेख है। श्रीदेवी का आवाहन प्रथम तैत्तिरीयारण्यक में किया गया। कृष्ण ने सरस्वती का तथा शाम्ब ने सूर्य का पूजन चलाया। सूत्रकाल में अनार्यों द्वारा बहुतायत से हिन्दूमत ग्रहण होने के कारण उनकी धार्मिक योग्यतानुसार कुछ साधारण देवताओं की प्रधानता हिन्दू-मत में बढ़ने लगी। इसलिये रुद्र की उन्नति फिर से होने लगी और उनके अनुयायियों में भूत-प्रेतादि भी सम्मिलित हो गये। महा-भारत-काल में बंगाल में अनार्यों की बस्ती प्रचुरता से थी। सूत्रकाल में इन लोगों के समूह के समूह एक बारगी हिन्दू हो गये। इनमें कराल देवताओं की परम प्रचुरता थी। इसलिये बंगाली हिन्दू धर्म में चक्र-पूजन, काली, भैरव, कापालिक आदि की प्रधानता हो गई।

जब रुद्र का महत्त्व अनार्यों के कारण बढ़ा और उनको संहार का कार्य मिलने का समय आने लगा, तब जगदुत्पादक की भी आवश्यकता पड़ी और इसलिये ब्रह्मा का विचार उठने लगा। ब्राह्मण-काल पर्यन्त ईश्वर से पृथक् ब्रह्मा का कोई विचार नहीं समझ पड़ता और विष्णु भी जगत्संचालक नहीं ज्ञात होते। सब से पहले नारायण ने ब्रह्मा को जाना। सूत्रकाल में इन तीनों विचारों के उठने का मसाला एकत्रित हो गया और बौद्ध काल में उनके त्रिरत्न के जोड़ पर हिन्दुओं में त्रिमूर्ति का भाव उठकर उसकी दृढ़ता हुई तथा अवतारों का विचार भी पुष्ट हुआ। इस प्रकार वर्तमान हिन्दूमत के इन हिन्दू विचारों का बीजारोपण भी सूत्रकाल में हो गया, और समय पर ब्राह्मण धर्म से ही हिन्दू धर्म निकला।

प्राचीन हिन्दू धर्म ब्राह्मण-काल-पर्यन्त रहा और नवीन बौद्धकाल के पीछे से है। धार्मिक उन्नति के लिए सूत्रों तथा बौद्धों के समयों को परिवर्तन-काल मान सकते हैं। वैदिक समय में हिन्दूमत का बीजा-रोपण हुआ, ब्राह्मण-काल में उसका पुष्टीकरण देखा गया तथा सूत्र काल में प्रसार एवं परिवर्तनारम्भ। बौद्धकाल में यह परिवर्तन पूरा

हुआ और पीछे में वर्तमान हिन्दूमत की दृढ़ता देखने में आई ।

मोहंजो दड़ो और हड़प्पा में सिंह वाहिनी मातृदेवी या पृथ्वी देवी की मूर्तियां बहुधा मिलती हैं । यहीं शक्ति पूजन का मूल था । त्रिनेत्र शिव भी पशुपति के रूप में (हाथी, चीता, भैंसा और गैंड़ा के निकट) मिलते हैं अथच योनि (अर्घे) और लिंग के रूप में भी । वे दो मृग चर्मों पर बैठे हैं । जानवरों का भी पूजन था तथा सींग देवत्व का चिन्ह था । गिरिपूजन भी चलता था । ऋग्वेद में शिव केवल ३३ देवताओं में से थे, इन्द्र मुख्य थे और विष्णु उपेन्द्र । शक्ति ईश्वर में ही थी, किन्तु मुख्यता इन्द्र, अग्नि और वरुण की थी । यजुर्वेद और अथर्ववेद में शैव ईश्वरत्व है जो औपनिषत्काल तक चला । यजुर्वेद से यज्ञों का महत्व बढ़ा जो ब्राह्मण काल में कर्म काण्ड के साथ वृद्धिगत हुआ । आरण्यकों और उपनिषदों के साथ ज्ञान काल सबलता पूर्वक चला तथा परमेश्वर के निर्गुण भाव पर बल बढ़ा । निर्गुण परमात्मा निष्कल परब्रह्म परमेश्वर था, और सगुण सकल, अपरब्रह्म ईश्वर । अनन्तर बृहस्पति, कपिल, जैमिनि और बुद्ध के साथ शंकावाद उठकर पुष्ट हुआ तथा आचारात्मक बौद्ध धर्म स्थापित होकर शैव ईश्वरत्व शिथिल पड़ा । यह शंकावाद लोकायत विचारों से चला था । निर्गुण ब्रह्म पर साधारण जन समुदाय की श्रद्धा न जमने का यह फल था । कपिल का प्रादुर्भाव गौतम बुद्ध (५६३ बी० सी०) के पूर्व हो चुका था । बृहस्पति शायद कपिल से भी पूर्व के थे और जैमिनि कपिल और बुद्ध के बीच में समझ पड़ते हैं । बौद्धमत का प्रचार याज्ञिक रीतियों से अश्रद्धा तथा निर्गुण ब्रह्म की ओर लोक रुचि की कमी से हुआ । इन विचारों के कारण ईश्वरवाद को भारी धक्का लगा ।

ऐसी दशा में महर्षि बादरायण व्यास ने पांचवीं शताब्दी बी० सी० के लगभग भगवद्गीता का मूल रूप रचा जिसमें हिन्दू निर्गुणवाद के साथ सगुणवाद मिलाकर ईश्वरभक्ति को दृढ़ किया । अब तक देश में वेदों का मत साहित्यात्मक था, उपनिषदों का तर्कात्मक, तथा बुद्ध का आचारात्मक । आपने गीता में इन तीनों गुणों के साथ सगुण विश्वासात्मक मत भी जोड़कर हिन्दू मत को सर्व-

साधारण में फैलने के योग्य बनाया। सगुणत्व के एक मोटिया भाव होने से आपने गीता में कम से कम विश्वासात्मिकता रक्खी अथच यथासाध्य स्थूलता न आने दी। अतएव इस काल हमारे सामने बौद्ध तथा गीता के दो मत ऐसे आये जो दो महोपदेशकों द्वारा प्रचारित थे। इधर वाल्मीकीय रामायण (छठी से तीसरी शताब्दी बी० सी०) तथा कौटिल्य कृत अर्थशास्त्र (तीसरी से पहली शताब्दी बी० सी०) में हमें एक तीसरा मत मिलता है जो महोपदेशकों द्वारा तो समर्थित न था, किन्तु देश में प्रचलित खूब था। इसी के सुधारने के बुद्धदेव और बादरायण ने असफल प्रयत्न किये।

इस प्रचलित मत में अवतार नहीं हैं, तथा वैदिक देवता एवं काम, कुबेर, शुक्र, कार्तिकेय, गंगा, लक्ष्मी, उमा आदि देवी-देवता हैं। विष्णु और शिव की महत्ता है। नाग, वृक्ष, नदी, तड़ागादि पूजित हैं। देवताओं के मन्दिर और प्रतिमायें हैं किन्तु शिव लिंग नहीं। पशुबलि है। आवागमन सिद्धान्त की पूरी उन्नति नहीं है। तीसरी शताब्दी बी० सी० के महानारायणीय उपनिषत् में विष्णु वासुदेव हैं। प्रतिमा कल्प सूत्र में है किन्तु उसके पूजन का आदेश नहीं। प्राचीन ग्रीक लेखकों की साक्षी से गंगा स्नान में पुण्य माना जाता था। यह पुण्य गीता की गंगा में नहीं है। अर्थशास्त्र में छोटे बड़े देवता हैं। पहाड़ों, नदियों, वृक्षों, आग, चिड़ियों, नागों, गायों आदि के पूजन मरी आदि से बचने को किये जाते थे, तथा इसी अभिप्राय से रीतियों, मन्त्रों और जादू के काम कराये जाते थे। आवागमन, कर्म और मुक्ति के कथन नहीं हैं। यह धर्म कुछ-कुछ अशोक वाले के समान है।

बादरायण व्यास ने वासुदेव मत को वेद विरुद्ध मान कर उसकी समीक्षा की है। इधर गीता में स्वयं कृष्ण विष्णु और वासुदेव हैं तथा शैव माहात्म्य गिरा हुआ है। चौथी शताब्दी से पूर्व वाले बौधायन ने गीता का एक अवतरण दिया है, तथा तीसरी शताब्दी बी० सी० में प्राप्त निर्देश नामक बौद्ध ग्रन्थ में व्यूह-पूजन है, किन्तु वह गीता में नहीं है। इससे गीता का अस्तित्व पाँचवीं शताब्दी बी० सी० में जाता है। फिर भी उसमें वासुदेव का वैष्णवपन प्राप्त है जो मत

बादरायण के प्रतिकूल है। इसमें गीता में पीछे भी घटा-बढ़ी हुई ऐसा प्रकट है। पाश्चात्य पंडितों ने उसमें पहली दूसरी शताब्दी तक के कुछ विचार दिखलाये हैं। समझ पड़ता है कि बादरायण ने गीता में पहले केवल वैष्णव ईश्वरत्व कहा, किन्तु जब आगे चलकर वासुदेव से विष्णु का एकीकरण हुआ, तब वासुदेव सम्बन्धी वैष्णव विचार भी उसमें जुड़ गये। गीता के थोड़ा ही पीछे से व्यूह-पूजन का चल पड़ा। इसमें बलराम, प्रद्युम्न, अनिरुद्ध, भरत, लक्ष्मण और शत्रुघ्न भी ईश्वरांश माने जाते हैं।

बुद्ध के पूर्व की प्रतिमा मोहंजोदड़ो के अतिरिक्त अब केवल श्री की मिलती है, सो भी सांकेतिक। प्रयोजन यह है कि प्रतिमा है नहीं किन्तु सकेत से उसका अस्तित्व बतलाया गया है। प्राचीन बौद्ध मूर्तियां भी इसी प्रकार सांकेतिक हैं। आगे चलकर बौद्धमत और कुशान साम्राज्य के प्रभाव विस्तार से देश में प्रतिमा पूजन का चल चढ़ा। इसका विवरण दूसरे भाग में यथा स्थान होगा।

यह भाग अब इसी स्थान पर समाप्त होता है। इस अध्याय में बुद्ध से पीछे के भी कुछ विवरण आ गये हैं। कारण यह है कि यह विषय बुद्ध पूर्व से उठकर तीसरी शताब्दी बी० सी० तक चला गया है।

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
३५	२१	३५	— —
३५	२६	१० कारन्धम—अवीक्षित	कारन्धम—१० अवीक्षित
३६	९	अभयद्	अभयद्—
३८	८	संजय	सृंजय
३८	१३	वेदृषि	वेदर्षि
३८	२३	चायमान	चयमान
४१	१२	उपयुक्त	उपर्युक्त
४१	१९-२०	३०, जह्नु—अजक	जह्नु—३० अजक
४३	८	ज्यामन	ज्यामघ
४७	२१	के	के पिता
४७	अन्तिम	सत्य—शिवम्त	सत्य शिवम्त
४८	६	गुरु कावशेय	तुरुकावशेय
४८	७	पुराण	एवं पुराण
५६	१७	पशास्त्रायें	प्रशास्त्रायें
५८	१८	ध्रूमवर्ण	धूम्रवर्ण
६५	२३	प्राकृति कमर्दनों	प्राकृतिक मर्दनों

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
७२	१	सावर्णि	सावर्णि
८१	१६	जाते ही थे	जाते ही न थे
९६	अन्तिम	५६	६५
९८	१०	१९०	१९१
९९	१९	मातरिश्वम्	मातरिश्वन्
१०१	७	पुरुकुम्त	पुरुकुत्स
१०६	२३	चार	चार में
१०७	१२	७९व	७९वां
१०९	३	पतवारों	यादवानों
११३	२	तुर्ग	दुर्ग
११३	१४	पतवारों	यादवानों
११६	७	हुइ	हुईं
११८	शिरोभाग	६	७
१२३	अन्तिम	वध्प्रश्व	वध्युश्व
१२६	११	परादास	परांदास
१३२	४	माई	भाई

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
१४३	९	रक्खे	रक्खा
१४४	१५	दैन्य	दैत्य
१४७	अन्तिम	व्रतन	वर्तन
१६९	५	भाग	भोग
१७४	अन्तिम	प	पौंड्र
१८१	१६	पांचाल	कोशल
१८६	१७	उत्तरायथ	उत्तरापथ
१९०	२३	योवनावस्था	यौवनावस्था
१९०	२८	संभव:	संभवत:
१९३	१२	बाहर की	बाहर भी
२०८	३	कन्द	स्कन्द
२०४	२	थे	ये
२०४	१२	सुधाम	सुदाम
२०४	२१	जयत	जयंत
२०८	८	शर्फात	शर्यात
२०८	१६	विदेघ	विदेप

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
२१३	१७	मृगायार्ध	मृगयार्थ
२१४	१२	द्रोग	द्रोण
२२४	११	पारव	पौरव
२२९	९	३५	३४
२३७	२६	गश	यह
२४०	१६	तोवश	तौर्वश
२४०	२५	मर्दनापुर	मदनापुर
२४२	१२	वश...नाम था	(वश...नाम था)
२४३	१२	अयागव	अयोगव
२४४	१२	चाक्षुस	चाक्षुष
२४६	२१	तिमिध्वज, शम्बर	तिमिध्वज शम्बर
२४८	११	शिवि	शिव
२५२	१९	वैराग्य	वैराग्य,
२५७	१७	रहुँचे	पहुँचे
२६०	शिरोभाग	१२	१३
२६४	२७	सिहिका	सिंहिका

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
२६८	१९	है	है"
२६९	११	महात्म्य	माहात्म्य
२७५	४	व्यवहार	व्यवहार से
२७६	१८	पुर्वोक	पूर्वोक्त
२७९	२५	कवल	केवल
२८७	१०	याध्य	वध्य
३०२	१०	वाष्णेयों	वार्ष्णेयों
३२१	अन्तिम	इमेंन	इनमें
३२८	२८	शार्याभिमान	शौर्याभिमान
३३४	९	अतविपुरी	अवंतिपुरी
३३६	१४	फरण	पण
३५५	१३	आर	और
३५६	८	कालिया	कालिय
३६९	२०	वाहद्रथ	वार्हद्रथ
३७३	२८	वामदत्ता	वासवदत्ता
४०२	१३	आदि में	आदि

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
४१७	२३	लाहार	लोहार
४१७	२८	क्षत्रिय	क्षत्रिया
४१८	२९	गाहस्थ्य	गार्हस्थ्य

नोट—ग्रन्थ में बिन्दु, मात्रा आदि कहीं कहीं छापने में टूट गये हैं। उन्हें शुद्धिपत्र में स्थान देने से विस्तार बहुत हो जाता। आशा है कि पाठक महाशय ऐसे स्थानों को सुगमता पूर्वक शुद्ध रूप में पढ़ लेंगे।

मिश्र बन्धु